

योग वासिष्ठ

० प्र०)

योग वासिष्ठ

[द्वितीय खण्ड]

(सरल हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण)

★

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियों, १८ पुराणों योग वासिष्ठ, आदि के प्रसिद्ध भाष्यकार और हिन्दी के लगभग १५० ग्रन्थों के रचयिता।

★

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)

योग वासिष्ठ

[द्वितीय खण्ड]

निर्वाण-प्रकरण

(जनोपयोगी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

*

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, योग वासिष्ठ,
२० स्मृतियाँ, १८ पुराणों के प्रसिद्ध
भाष्यकार ।

*

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर) बरेली–२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं. ७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमन लाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली २४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ७४२४२

❀

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❀

❀

संशोधित संस्करण

सन् १९८९

❀

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस

सेठ भीकचन्द मार्ग, मथुरा (उ० प्र०)

❀

मूल्य :

बीस रुपये मात्र ।

दो शब्द

योग वासिष्ठ के छै प्रकरणों में से अन्तिम 'निर्वाण प्रकरण' सबसे बड़ा है। यदि कहा जाय कि सम्पूर्ण ग्रन्थ का आधा भाग यही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। यह जितना बड़ा है उतना ही अधिक महत्वपूर्ण भी माना जाता है। इसमें भारतीय अध्यात्म के सभी सिद्धांत विवेचन सहित वर्णित हैं, साथ ही स्पष्ट करने वाले विविध उपाख्यान भी सम्मिलित किये गये है। चूड़ाला का उपाख्यान अधिक विस्तृत और महत्वपूर्ण है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि स्त्री को भी अध्यात्म विद्या में प्रवेश करने और उन्नति करने का वैसा ही पूर्ण अधिकार है जैसा कि पुरुष को। इसमें गीता की कथा तक सम्मिलित कर ली गई है और कृष्ण-अर्जुन संवाद संक्षेप में पाया जाता है। गीता में न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाऽयं भूत्वा, भविता वा न भूयः" और योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय जैसे श्लोक ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। इसमें अर्जुन को भी विष्णु का ही दूसरा अवतार बतलाया गया है जो अधिकांश पाठकों के लिए एक नई बात जान पड़ेगी। भागीरथ द्वारा गंगावतरण का उपाख्यान भी इसमें पाया जाता है।

अन्त में सबका सारांश यही निकलता है कि इस जगत में जो कुछ है वह ब्रह्म ही है और तीनों लोक ब्रह्ममय ही हैं। मनुष्यों को जो विविध प्रकार के सुख-दुःख के अनुभव होते हैं वे सब संकल्प के परिणाम हैं। दूसरे शब्दों में यह समस्त जगत् केवल एक माया है, वास्तविकता कुछ नहीं। इसी को तरह-तरह के उपाख्यानों द्वारा सिद्ध किया गया है। अनेक उपाख्यान तो इतने लम्बे हो गये हैं कि उनकी पूर्वा पर समझकर याद रखना भी कठिन होता है। इससे उनको संक्षेप में ही प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है और आशा है इससे वे पाठकों के लिए अधिक समझ सकने लायक सिद्ध होंगे।

—प्रकाशक

विषय-सूची

योग वासिष्ठ

निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्द्ध)

निर्वाण प्रकरण (उत्तरार्द्ध)

———

योग वासिष्ठ

द्वितीय खण्ड

निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्द्ध)

१– मुनवचिन से श्रोताओं का उत्थान

उपशमप्रकरणादनन्तरमिदं शृणु ।
एवं निर्वाणप्रकरणं ज्ञातं निर्वाणदायि यत् ॥१
कथयत्येवमुद्दामवचने मुनिनायके ।
श्रवणैकरसे मौनस्थिते राजकुमारके ॥२
मुनिवागर्थनिक्षिप्तमनस्यस्ततपःक्रिये ।
राजलोके गतस्पन्दे जित्रार्पित इव स्थिते ॥३
बसिष्ठचसामर्थं विचारयति सादरम् ।
लसदंगुलिभङ्गेन मुनिनाथे स्फुरद्भ्रुवि ॥४
एवं प्रक्षुभिते तस्मिन्गृहे दाशरथे तदा ।
प्राप्ते वासरवृद्धत्वे शान्तशङ्खस्वने शनैः ॥५
संहरन्प्रस्तुतं वस्तु वचो मधुरवृत्तिमत् ।
उवाच मुनिशार्दूलः सभामध्ये रघुद्वहम् ॥६

बाल्मीकिजी ने कहा—हे भद्र ! उपशन प्रकरण के अनन्तर अब इस मोक्ष फल के देने वाले निर्वाण प्रकरण को सुनिये । १ । यह उस समय का वर्णन है जब कि मुनिनायक वसिष्ठजी उस गम्भीर अर्थ का

प्रतिपादन कर रहे थे, उनकी वाणी के आनन्द में विभोर राजकुमार श्रीराम मौन अवस्थित थे और राजाओं सहित सम्पूर्ण सभा उन महर्षि वसिष्ठ के वाणी-सामर्थ्य की ओर इंगित करती हुई तर्जनी अँगुली के संकेत तथा भ्रूभंगिमा को देखते हुए मुनिगण भी चित्रार्पित के समान निश्चय बैठे थे। २-४। इस प्रकार महाराज दशरथ के भवन में यह-कार्य क्रम चल रहा था। दिवस का चौथापन उपस्थित हो रहा था' शंख-ध्वनि धीरे-धीरे शान्त हो रही थी, उस समय उपस्थित विषय का उपसंहार करते हुए मुनिशार्दूल वसिष्ठजी मधुर वाणी में श्रीराम के प्रति बोले ।५-६।

राघवाऽनघ वाग्जाल मयैतत्प्रविसारितम् ।
तेन चित्तखगं बध्वा क्रोडीकृत्याऽऽगतां नय ।।७

विचार्यैतदशेषेण स्वधियैवं पुनः पुन ।
अनेनैव पथा साधो गन्तव्यं भवताऽधुना ।।८

अनयैव धिया राम विहरन्नेव वध्यसे ।
अन्यथाऽधः पतस्याशु विन्ध्यखाते यथा गजः ।।९

असङ्गेन यथाप्राप्तो व्यवहारोऽस्य सिद्धये ।
इत्येव शास्त्र सिद्धान्तमादायोदारवान् भव ।। १०

हे सभ्या हे महाराज रामलक्ष्मणभूमिपाः ।
सर्वं एव भवन्तोऽद्य तावद्वयापारमोहनकम् ।।११

कुर्वन्त्वयं हि दिवसः प्रायः परिणाताकृतिः ।
शेषं विचारयिष्यामो विचार्यं प्रामरागताः ।।१२

वसिष्ठ ने कहा—हे राघवे ! हे अनघ! वाणी विलास पूर्वक यह जो तत्वोपदेश मैंने किया है, उसके सहारे चित्त रूपी पक्षी को बाँधकर आत्मरूपता की प्राप्ति मे तत्पर कीजिए ।७। अपनी बुद्धि से बारम्बार विचार करके पूर्व उपदिष्ट पथ पर ही अब आपको चलना चाहिए ।७। हे राम ! इस बुद्धि के विलास द्वारा ही आप कभी बन्धन में नही पड़ेगे । इसके अतिरिक्त किसी अन्य माग पर जाने से अधःपतन सम्भव है, जैसे कि विंध्य पर्वत के गर्त में हाथी गिर जाता है ।८-९। मेरे वचन

पर चलना सिद्ध करने के लिए आपको संगरहित व्यवहार करना चाहिए। सब शास्त्रों के सिद्धान्त रूप इस उपदेश को मन में दृढतापूर्वक स्थिर कर उदारवान् हो जाइये।१०। हे सभ्यगण ! हे महाराज ! हे राम लक्ष्मण आदि भूपतिवर्ग ! अब आप सभी अपने-अपने आन्हिक कर्मों का अनुष्ठान करिये, क्योंकि दिवस समाप्ति पर है। अवशिष्ट विचार का प्रारम्भ कल प्रातःकाल आने पर किया जायेगा।११-१२।

इत्युक्ता मुनिना तेन सा सर्वैव तदा सभा।
प्रोत्तस्थौ पद्मवदना सविकासेवपद्मिनी ॥१३
राजानः स्तुतराजानः कृतराघववन्दनाः।
परिष्टुते वसिष्ठे ते जग्मुरात्मनिवेशनम् ॥१४
विश्वामित्रेण सहितो वसिष्ठो गन्तुमाश्रमम्।
उत्तस्थावासनाच्छ्रीमान्नमस्कृतनभश्चरः ॥१५
ततः प्रहरमात्रेण निद्राभामुद्रिताननाः।
उत्स्वप्नसुन्दरीमीयुः पद्मा इव दिवाकरम् ॥१६
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नाः प्रहरत्रयमेव तत्।
वासिष्ठमुपदेशं ते चिन्तयामायासुरक्षरम् ॥१७
प्रहररस्याऽर्धमात्रं ते तत आमुद्रितेक्षणाः।
उत्स्वप्नमाययुर्निदां क्षणाद्विद्रावितश्रमाम् ॥१८
इति शुभमनसां विवेकभाजामधिगतसारतयोदिताशयानाम्।
अभजतविरतिंतदात्रियामामलिननिशाकरवक्त्रतांजगाम॥१९

वाल्मीकिजी बोले—महर्षि वसिष्ठ के इस प्रकार कहने पर कमल के समान आयोजित अथवा विकसित कमलिनी के समान व्यवस्थित वह सभा थी। अन्यान्य राजाओं ने महाराज दशरथ की स्तुति की एवं श्री राम की वन्दना की और महर्षि वसिष्ठ की प्रशंसा करते हुए चले गये।१३-१४। आकाश में विचरण करने वाले देवताओंको नमस्कार करते हुए वसिष्ठजी भी विश्वामित्रजी के साथ अपने आश्रम के लिए जाने को उठे।१५। फिर दिन के आगमन की इच्छा वाले सभी व्यक्ति प्रहर मात्र रात्रि में शयन को प्राप्त होकर स्वप्न देखने लगे ॥१६। राम

लक्ष्मण और शत्रुघ्न यह तीनों भाई महर्षि के उपदेश पर निरन्तर तीन प्रहर तक विचार करते रहे। उस समय उन्हें श्रेष्ठ स्वप्न युक्त निद्रा की प्राप्ति हुई।१७-१८। फिर उन पवित्र मन एवं विस्तृत हुए आशय वाले पुरुषों की रात्रि का जब गमन हुआ, तब वह रात्रि सूर्य किरणों से मलीनता को प्राप्त हुए चन्द्रमा के अङ्क में मुख छिपाकर विदा हो गई।१९।

२– आत्मतत्व में विश्रान्ति

ततः क्लिन्नेन्दुवदना पर्याकुलतमःपदा ।
क्षीयमाणा बभौ श्यामा विवेक इव वासना ॥१
रामलक्ष्मण शत्रुघ्ना उत्थायाऽनुचरैः सह ।
ययुर्वन्दितसन्ध्यास्ते पुण्यं वासिष्ठमाश्रमम् ॥२
तत्र वन्दितसन्ध्यस्य निर्गतस्याऽपि सद्मतः ।
मुनेर्वन्दिरे पादौ पदोर्दत्वाऽर्ध्यसन्ततिम् ॥३
क्षणात्तत्सदनं मौनं मुनिब्राह्मणराजभिः ।
हस्त्यश्वरथयानैश्चशनैर्नीरन्ध्रतां ययौ ॥४
अथाऽसौ मुनिशार्दूलस्तयैव सहसेनया ।
गृहं दशरथं काले रामाद्यनुगातो ययौ ॥५
तत्रैनं पूर्वसम्बन्धः कृतसन्ध्यो महीपतिः ।
दूरमार्गं विनिर्गत्य पूजयामास सादरम् ॥६
पुष्पमुक्तामणिव्रातैर्भूयोऽत्यधिकभूषितान् ।
सभां प्रविष्य ते सर्वे विविशुर्विष्टरालिषु ॥७

बाल्मीकिजी बोले—उपरोक्त प्रकार चन्द्रमा रूपी मुख और अन्धकार रूपी पाँवों को प्राप्त हुई रात्रि उसी प्रकार नष्ट हो गई जिस प्रकार विवेक उदय के होने पर वासना नष्ट हो जाती है।१। उस समय राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि अपने-अपने अनुचरों सहित उठकर नित्य-कर्म—स्नान संध्या आदि से निवृत्त होकर महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पर पहुँचे। २। वहाँ जाकर संध्याकर आश्रम से बाहर निकलने वाले महर्षि वसिष्ठ

जी के चरणों में पहुँचकर इन्होंने अर्घ्य आदि पूर्वक प्रणाम किया ।३। वसिष्ठजी का वह आश्रम क्षणभर में ही मुनियों, ब्राह्मणों, राजाओं तथा गज, अश्व, रथ आदि अन्यान्य वाहनों से खचाखच भर गया ।४। तब मुनि शार्दूल, श्रीराम आदि के सहित तथा संपूर्ण सेना के साथ महाराज दशरथ के भवन पर जा पहुँचे ।५। उस समय सन्ध्या क्रम से निवृत्त एवं वसिष्ठजी के आगमन के लिए उत्सुक महाराज दशरथ ने मार्ग में पहुँचकर ही महर्षि का पूजन किया ।६। तब पुष्पों एवं मणि-मुक्ताओं से विशेष प्रकार से सजाई गई उस सभा में वे प्रविष्ट हुए और सभी श्रोतागण अपने-अपने स्थानों पर जा बैठे ।७।

अथ तस्मिन्नवसरे ह्यास्तनाः सर्व एव ते ।
श्रोतारः समुपाजग्मुर्नभश्चरमहीचराः ।।८
विवेश सा सभा सौम्या कृतान्योन्याभिवन्दना ।
बभौ राजसमाभोगा शान्तवातेव पद्मिनी ।।९
मुनिस्त्वनुज्झितेनाथ तेनैव रघुनन्दनम् ।
क्रमेणोवाच वाक्यज्ञोवाक्यं वाक्यार्थकोविदम् ।।१०
कच्चित्स्मरसि यत्प्रोक्तं ह्यो मया रघुनन्दन ।
वाक्यमत्यन्तगुर्वर्थं परमार्थावबोधनम् ।।११
इदानीमवबोधार्थं मन्यच्च रिपुमर्थन ।
उच्यमानं मयेदं च शृणु शाश्वतसिद्धये ।।१२
वैराग्याभ्यासवशतस्तथा तत्वावबोधनात् ।
संसारस्तीर्यते तेन तेष्वेवाऽभ्यासमाहर ।।१३
सम्यक्तत्वावबोधेन दुर्बोधे क्षयमागते ।
गलिते वासनावेशे विशोकं प्राप्यते पदम् ।।१४

इनके पश्चात् आकाशगामी तथा पृथ्वी का विचरण करने वाले एवं अन्यान्य जो भी श्रोता थे, वे सभी वहां पहुँचे ।८। परस्पर अभिवादन करते हुए अपने-अपने स्थान पर आसीन हुए। उस समय वह सौम्य सभा मालिनी के समान शोभा पाने लगी ।९। अब वाणी विशारद मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी पूर्व क्रम के सन्दर्भ में ही वाक्यार्थ के

जानने वाले श्रीरामजी से कहने लगे ।१०। वसिष्ठजी बोले—हे रघु नन्दन ! मैंने कल जो परामार्श का बोध कराने वाला एवं गूढ़ वाक्य जिस शैली में कहा था, क्या उसका आपको स्मरण है ।११। हे अरि-मर्दन ! अब आप मोक्ष स्वरूप नित्य फल को प्राप्त कराने वाले इस अन्य ज्ञान के कारण रूप का श्रवण कीजिए, जिसे मैं आपके प्रति कहता हूँ । ।१२। देखिये, वैराग्य का अभ्यास और आत्मतत्व का ज्ञान यह संसार से पार करने वाले हैं, आप इन्हीं के अभ्यास में सचेष्ट हो ।१३। सम्यक् तत्व का अवबोध होने से अज्ञान नष्ट होता है और तब वासना-संस्थान का भी नाश हो जाता है । ऐसा होने पर ही शोक रहित मोक्ष पद की प्राप्ति सम्भव है ।१४।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमदृष्टोभयकोटिकम् ।
एकं ब्रह्मैव हि जगात्स्थितं द्वित्वमुपागतम् ।।१५
सर्वभावानवच्छिन्नं यत्र ब्रह्मैव विद्यते ।
शान्तं समसमाभासं तत्राऽन्यत्वं कथं भवेत् ।।१६
इति मत्वाऽहमित्यन्तमुक्त्वा मुक्तवपुर्महान् ।
एकरूपः प्रशान्तात्मा साक्षात्स्वात्मसुखो भव ।।१७
नाऽस्ति चित्तं न चाऽविद्या न मनो न च जीवकः ।
एताः स्वकलना राम कृता ब्राह्मण एव ताः ।१८
याः सम्पदो याश्च दृशो याश्चितो यास्तदेषणाः ।
ब्रह्मैव तदनाद्यन्तमब्धिवत्प्रविजृम्भते ।।१९
पाताले भूतले स्वर्गे तृणे प्राण्यम्बतेऽपि च ।
दृश्यते तत्परं ब्रह्म चिद्रूपं नाऽन्यदस्ति हि ।।२०
तावदज्ञानकलना यावदब्रह्मभावना ।
यावदास्था जगज्जाले तावच्चित्तादिकल्पना ।।२१

दिशा, काल और तीनों प्रकार के परिच्छेद से रहित, सीमाओं अथवा द्वैत-दर्शन से विनिर्मुक्त एक ब्रह्म ही जगत् रूप से स्थित है, द्वैत की प्रतीति तो अज्ञान के कारण ही होती है ।१५। जबकि सभी भावों में अवच्छिन्न, शान्त और एक रूप से भासित ब्रह्म का अस्ति-

त्व ही सर्वत्र विद्यमान है, अन्यत्व की सिद्धि किस प्रकार सम्भव है? १६। इसलिए आप अहम् को त्यागकर अद्वैत ब्रह्म का निश्चय मानते हुए मुक्त, महान्, एकरूप, प्रशान्तात्मा तथा साक्षात् आत्मस्वरूप हो जाइये।१७। न चित्त है, न अज्ञान है, न मन है और न जीव ही है, हे राम! यह सब तो उस ब्रह्म की विशिष्ट कल्पनाएँ ही हैं।१८। भोग्य पदार्थ, भोग का सम्पूर्ण व्यापार अथवा उनमें प्रतिबिम्बित चिदाभास एवं उन भोगों की कामनायें इन सभी रूपों में आदि-अन्त-रहित ब्रह्म ही समुद्र के समान गहरा है।१९। पाताल पृथ्वी स्वर्ग, तृणादि वस्तुएँ, जीव एवं आकाश, यह भी चिद्रूपब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हैं।२०। जब तक अज्ञान का अंश रहता हैं तभी तक अब्रह्म की भावना रहती हैं। संसार के जाल में आस्था रहने तक ही चित्त आदि की कल्पना रही आती है।२१।

देहे यावदहम्भावो दृश्येऽस्मिन्यावदात्मता।
यावन्ममेदमित्यास्था तावच्चित्तादिविभ्रमः॥२२
यावन्नोदितमुच्चैस्त्वं सज्जनसङ्गतः।
यावन्मौर्ख्यं न संक्षीणं तावच्चैतादिनिम्नता।२३
भोगेश्वरनास्थमनसा शीतलामलनिर्वृतेः।
छिन्नाशापाशजालस्य क्षीयते चित्तविभ्रमः।२४
तृष्णामोहमरित्यागः नित्यशीतलसंविदः।
पुंसःप्रशान्तचित्तस्य प्रबुद्धा त्यक्तचित्तभूः॥२५
भावितानन्तचित्तत्वरूपरूपान्तरात्मनः।
स्वान्तर्विलीनजगतः शान्तो जीवादिविभ्रमः॥२६
असम्यग्दर्शने शान्ते मिथ्याभ्रमकरात्मनि।
उदिते परमादित्ये परमार्थैकदर्शने॥२७
अपुनर्दर्शनायैव दग्धसंशुष्कपर्णवत्।
चित्तं विगलितं विद्धि वह्न घृतलवं यथा।२८

शरीर में अहं भाव रहने तक दृश्य जगत में आत्म-रूपता का अस्तित्व रहता है, तेरा-मेरा की भावना रहने तक ही चित्त आदि

विभ्रम सम्भव है ।२२। पूर्णता उदय न होने तक सज्जनों का संग नहीं मिलता और तब मूर्खता भी नष्ट नहीं होती और चित्त-वृत्ति भी अधः पतन की ओर गतिगामिनी रहती है ।२३। जिसका अन्तःकरण भोगों से विरत हो गया है, जिसको शीतल एवं निर्मल वृत्ति प्राप्त हो गई हैं, जिसका आशा जाल टूट-फूट गया है, उसका चित्त-विभ्रम नष्ट हो जाता है ।२४। तृष्णा रूपी मोह का त्याग करने से ही शीतल आत्मज्ञान उत्पन्न होता है, तभी चित्त में भी शांति प्राप्त होती है और परित्यक्त चित्तभूमि ज्ञानरूपी फल से युक्त हो जाती है ।२५। जो अनन्त चित्त-स्वरूप एवं दृश्य जगत् से भिन्न रूप वाला अर्थात् आत्मस्वरूप हो गया है, अथवा यह विश्व जिसके अपने चित्त में ही विलीन हो गया है, उस जीवादि के सम्पूर्ण विभ्रम नष्ट हो जाते हैं ।२६। मिथ्या भ्रम का दर्शन कराने वाले अन्धकार का नाश एवं आत्मज्ञान रूपी सूर्य का उदय होने पर विकसित हुआ चित्त उसी प्रकार ही फिर दिखाई नहीं देता जिस प्रकार जला हुआ सूखा पत्ता या अग्नि में गिरा हुआ घी का अंश पुनः दर्शन नहीं देता ।२७-२८।

जीवन्मुक्ता महात्मानो ये परावरदर्शिनः ।
तेषाँ या चित्तपदवी सा सत्त्वमिति कथ्यते ॥२९
जीवन्मुक्तशरीररेषु वासना व्यवहारिणी ।
न चित्तनाम्नी भवति सा हि सत्त्वपदं गता ॥३०
शान्ता व्यवहारबन्तोऽपि सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः ।
नित्यं पश्यन्ति तज्ज्योतिर्न द्वैतैक्ये न वासना ।३१
अन्तर्मुखतया सर्वं चिद्वह्नहौ त्रिजगन्तृणम् ।
जुह्वतोऽन्तर्निवर्तन्ते मुनेश्चित्तादिविभ्रमाः॥ ३२
विवेकविशदं चेतः सत्त्वमित्यभिधीयते ।
भूयः फलति नो मोहं दग्धबीजमिवाऽङ्कुरम् ॥३३
संरोहवीषणाविद्धं यथा परशुनाऽग्निना ।
न तु ज्ञानानिर्दग्धं प्रबोधविशदं मनः ॥३४

जो सत्य-असत्य का अनुभव प्राप्त किये हुये जीवन्मुक्त महात्मा हैं, उनकी चित्त पदवी ही सत्य कही जाती है ।२९। उन जीवन्मुक्त के देहों में व्यवहृत भावना चित्त नाम की नहीं होती, क्योंकि वह सत्यपद में अवस्थित हो गई है ।३०। सत्य में स्थित, संयतेन्द्रिय. शांत व्यवहार वाले महात्मा द्वैत अथवा वासना से रहित होते हैं, क्योंकि ब्रह्मज्योति के साक्षात् दर्शन से उनकी बाधा नष्ट हो चुकी होती है ।३१। सर्वात्म भावना से युक्त होकर त्रिजगत् रुपी उपेक्षणीय तिनके की चिदात्मक अग्नि में आहुति देते हुए मुनि के चित्त आदि विभ्रम अतिक्रमण कर जाते हैं ।३२। विवेक द्वारा बोधित चित्त ही सत्य हैं, क्योंकि दग्ध हुये बीज में अंकुर न फूटने के समान ही उसमें मोह रूपी फल नहीं लग पाता ।३३। फरसे से छिन्न और अग्नि से दग्ध हुए तृण आदि तो आन्तरिक बीज शक्ति रहने पर पुनः पुनः अंकुरित हो सकते हैं परन्तु ज्ञान की अग्नि में भस्म हुये वासना बीज वाले अन्तःकरण में पुनः फल नहीं लग पाते ।३४।

चिदात्माऽसि निरंशोऽपि पारावारबिवर्जितः ।
रूपं स्मर निजं स्फारं माऽस्मृत्या सांमितो भव ॥३५
तां स्वसत्तां गतः सर्वमसर्वं भावयोदयी ।
तादृग्रूपोऽसि शान्तोऽसि चिदसि ब्रह्मरूप्यसि ।३६
यः पदार्थविशेषोऽन्तर्न त्वां न ह्येव सोऽस्ति ते ।
तदस्यतदसि स्वस्थश्चिद्घनाऽऽमन्नमोऽस्तु ते ।३७
आद्यन्तवर्जितविशालशिलान्तराल
संपीडचिद्घनवपुर्गगनामलस्त्वम् ।
स्वस्थो भवाऽऽजठरपल्लवकोशलेखा ।
लीलास्थिताखिलजगज्जय ते नमस्ते ।३८

हे राम ! आप चित्त स्वरूप को भूलकर परिच्छिन्न मत होओ, अपने विशाल रूप का स्मरण करो आप निरंश एवं पारावार रहित चिदात्मक रूप ही तो हैं ।३५। हे रघुनन्दन ! आप चित्त स्वभाव से स्थित एवं सर्वातिशायी आनन्द के लाभ से महान् अभ्युदय युक्त होकर परि

च्छिन्न जगत् में अपरिच्छिन्न भावना करिये। आप परिपूर्ण रूप, शांत-चैतन्य और ब्रह्मरूप हैं।३६। हे राम ! आप असत्पदार्थ रूप नहीं हैं, आप सत्स्वरूप है। परन्तु जगत् व्यावृत्ति से कल्पित जो शब्द हैं, उनसे आप परे हैं। अब अजगत् स्वरूप के आशय से आपको सत् और असत् कहा जाता है। हे अपने ही स्वरूप में अवस्थित रहने वाले चिद्घन ! आपको नमस्कार है।३७। आदि अन्त रहित, विशाल स्फटिक शिला जैसे अन्तराल के समान चिद्घन जैसे स्वभाव वाले आप दुःखादि से युक्त नहीं है। यह सोचकर आप स्वस्थ होइये। सब ओर से विस्तृत चित्शिला रूपी आपके जठर में पल्लवकोश के समान कल्पित अपनी ही लीला में स्थित अखिल विश्व की जय करने वाले रघुनन्दन ! ऐसे आपको नमस्कार है।३८।

३. द्वैतभ्रम की शांति से एक रूप में स्थिति

भाविभूरितरंगाणां पयोवृन्दमिवाऽम्बुधौ।
या चिद्वहत्यनन्तानि जगन्त्यनघ सो भवान्।१
भव भावनयामुक्तो भावाभावविवर्जितः।
चिदात्मन्संस्थिताः क्वेव वद ते वासनादयः।२
जीवोऽयं वासनादीदमिति चित्कचति स्वतः
इतरोक्यत्यर्थयोरत्र कः प्रसंगोऽथ कथ्यताम्।३
एवं प्रवर्तितमिदं महच्चक्रमिदं चिरम्।
न च प्रवर्तितं किञ्चिन्न च शीघ्रं च नो चिरम्।४
स्ववेदनमनन्तं च सर्वमेवमखण्डितम्।
विद्यते व्योमनि व्योम न कस्मिश्चिन्न किञ्चन।५
शून्यं शून्ये समुच्छूनं ब्रह्म ब्रह्मणि बृंहितम्।
सत्यं विजृंभते सत्ये पूर्णं पूर्णमिव स्थितम्।६
रूपालोकमनस्कारान्कुर्वन्नपि न किञ्चन।
ज्ञः करोत्यनुपादेयन्न ज्ञस्यैव हि कर्तृता।७

वशिष्ठ जी बोले—हे अनघ ! हे राम ! जिस प्रकार समुद्र की असंख्य तरङ्गों का कारण सामान्य जल है, उसी प्रकार चैतन्यात्मक चित्त ही असंख्य लोकों के वहन के कारण है अर्थात् वही आप हैं, वही आत्मा है ।१। आप भाव वाली कल्पना को त्याग द्वैत भावना से मुक्त हो जाइये । बताओ तो कि आप में वासना आदि का वास कहाँ पर है ? ।२। जीव, वासना और जगत् रूपी भेद चित्त की ही कल्पनामात्र है । इसलिए जगत् रूपी शब्द और अर्थ की प्राप्ति चिद्रूप में किस प्रकार सम्भव है ? ।३। यह दिखाई पड़ने वाला बिश्वरूपी चक्र अभ्यास परम्परा से चिति ने ही प्रस्तुत किया है, परमार्थ दृष्टि से तो न्यून अथवा चिरकाल से प्रस्तुत नहीं किया है ।४। यथार्थ में तो यह सभी अखण्डित एवं स्वचैतन्य स्वरूप व्योम ही निज में स्थित है अन्य कुछ भी नहीं है ।५। शून्य में शून्य तथा ब्रह्म में ब्रह्म ही महान् है । सत्य के द्वारा ही सत्य प्रकाशित है तथा पूर्ण में पूर्ण के समान ही विद्यमान है ।६। अनुपादेय बुद्धि के द्वारा वाह्य इन्द्रियाँ और उनके साथ ही मन के व्यापार में प्रवृत्त हुआ ज्ञानी स्वयं कुछ भीं नहीं करता, इसलिए उसमें कर्तृता का अभाव है ।७।

यदुपादेयबुद्धया च तद् दुःखाय सुखाय ते ।
भावाभावेन नाऽऽदेयमकर्तृ सुखदुःखयोः ।८
यथा नानाऽप्यनानैव खं खे खानीति वाग्गणः ।
सार्थकोऽप्यतिशून्यात्मा तथाऽऽत्मजगतोः क्रमः ।९
अन्तर्व्योमामलो बाह्ये सम्यगाचारचञ्चुरः ।
हर्षामर्षविकारेषु काष्ठलोष्ठसमस्थितिः ।१०
यस्य नाऽहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमांल्लोकान्न हान्ति न निबध्यते ।११
यन्नस्ति तस्य सद्भावप्रतिपत्तिरुदाहृता ।
मायेति सा अभिज्ञानादेव नश्यत्यसंशयम् ।१२
निःस्नेहदीपवच्छान्तो यस्यान्तर्वासनाभरः ।
तेन चित्रकृतेनेव जितंज्ञेनाविकारिणा ।१३

यस्याऽनुपादेयमिदं समस्त
पदार्थजातं सदसद्दशासु ।
न दुःखदाहाय सुखाय नैव
विमुक्त एवेह सजीव एव ।१४

उपादेय बुद्धि द्वारा ग्रहण किये गये विषय ही आपके दुःख अथवा सुख के निमित्त हैं। यदि उपादेय बुद्धि नहीं है तो करने योग्य भी कुछ नहीं रहते। अगृहीत कभी सुख या दुःख का निमित्त नहीं हो सकता और इसीलिये ज्ञानीजनों को सुख या दुःख की प्राप्ति नहीं होती ।८। जैसे घट-पटादि व्याधियों के रूप में अनेक रूप होता हुआ भी अनेक नहीं एक रूप ही होता है तथा आकाश में भी अनेक आकाश हैं ऐसे वाक्य प्रयोग शून्यार्थक होते हुए अपनी विभिन्न उपाधियों के कारण सार्थक है. वैसे ही आत्मा और जगत् का क्रम समझना चाहिये ।९। हे राम ! आप अन्दर में आकाश के समान स्वच्छ बाह्य रूप से अपने श्रेष्ठ आचरणों में निरत रहकर हर्ष और अमृतरूपी विकारों के मध्य काष्ठ और लोष्ठ के समान स्थित होइये ।१०। जिसमें अहं की भावना नहीं है वह यदि इन लोकों का विनाश करदे तो भी वह विनाशकारी न होता हुआ विनाश के दोष से भी आक्रान्त नहीं होता ।११। तीनों काल में जिसका अस्तित्व नहीं, उसके व्यवहार ज्ञान के लिये माया शब्द प्रयुक्त हुआ है उस माया की निवृत्ति आत्मज्ञान से ही सम्भव है ।१२। घृत तेलादि से रहित बुझे हुये दीपक के समान जिसकी भावनायें मर गई है उसने सब कुछ जीत लिया समझो तब क्या वह विजय यथार्थ नहीं है ? जैसे राजा अपने शत्रु को जीत लेता हैं वैसे ही अधिकारी ज्ञानी रागादि पर विजय प्राप्त कर लेता है ।१३। जिसके लिए यह सब भोग पदार्थ मिथ्या आत्मा रूप होने से सदा प्राप्ति होते रहने के कारण प्राप्ति-अप्राप्ति रूप सुख-दुःख के निमित्त नहीं होते, वह जीवित रूप से मुक्त ही है ।१४।

४. आत्म ज्ञान से अज्ञान का नाश

मनो बुद्धिरहङ्कार इन्द्रियादि तथाऽनघ ।
अचेत्यचिन्मयं सर्वं क्व ते जीवादयः स्थिताः ।१
एकेनैवाऽऽत्मना दत्ता नानातेयं महात्मना ।
यथैकेनैव चन्द्रेण तिमिराप्पात्रदर्पणैः ।२
भोगतृष्णाविषावेशो यदैवोपशमं गतः ।
तदैवमस्तुमज्ञामान्ध्यं ध्वान्तक्षयादिव ।३
अध्यात्मशास्त्रमन्त्रेण तृष्णाविषविषूचिका ।
क्षीयते भावितेनाऽन्तः शरदा मिहिका यथा ।४
मौर्ख्ये क्षीणे क्षतं विद्धि चित्तं राम सबान्धवम् ।
विलीनाम्बुधरे व्योम्नि जाड्यं शाम्यत्यविघ्नितः ।५
अचित्तत्वं गते चित्ते क्षीयते वासनाभ्रमः
हारमुक्तासमावेशश्छिन्ने तन्ताविवाऽनघ ।६

वसिष्ठजी वाले—हे अनघ ! हे राम ! मन, बुद्धि अहङ्कार और इन्द्रिय इत्यादि विषय, शून्य एवं चित्स्वरूप है तो आपके जीव आदि की स्थिति कहाँ होगी ? ।१। जलपात्र या दर्पण के सम्बन्ध से चन्द्रमा अथवा तिमिर रोग जैसे अनेक रूपता का आभास कराते हैं वैसे ही यह महान् आत्मा अपनी सत्ता सैसर्ग के अभ्यास से अनेक रूपता की प्राप्ति कराती है (अर्थात् अनेक रूप दिखाई देते हैं) ।२। आत्म साक्षात्कार से विषयेद्रेक का शमन होने पर अज्ञान उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार प्रकाश होने पर नेत्रों का अन्धकार दूर हो जाता है।३। शरद्काल की प्राप्ति पर वर्षा नष्ट होने के समान अध्यात्म शास्त्र के विचार से तृष्णा रूपी विष विशूचिका का नाश हो जाता है।४। हे राम ! मेघ के शान्त होने पर जेसे आर्द्रता नष्ट होती है वैसे ही अज्ञान के विनाश में बांधव सहित चित्त की वृत्तियाँ शाँत हो जाती हैं।५। हे निष्पाप ! वैसे सूत्र के टूट जाने पर हार में गुँथे हुये मोतियों की एक लिप्तता

नष्ट होतो है। वैसे ही चित्त के अचित्त प्राप्त कर लेने पर वासनारूपी भ्रम नष्ट हो जाता है।६।

रघुनाथ विद्यातारय शास्त्रार्थं भायवन्ति ये।
कृमिकीटत्वयोग्याय चेतसा संमिलन्ति ते।७
नवतामरसाकारकान्तलोचनलोलता।
शान्ते मौर्ख्येऽक्षतावाते चलता सरसो यथा।८
स्थिरतामुपयातोऽसि भावाभावविवर्जितः।
पदे परमविस्तारे नभसीव प्रभञ्जनः।९
मन्ये मद्वचनैर्बोधमागतोऽसि रघूद्वह।
विगताज्ञाननिद्रोऽन्तर्नृ पतिः परहैरिव।१०
सामान्ये च लगन्त्येव जने कुलगुरोगिरः।
अत्युदारमतौ राम न लगन्ति कथं त्वयि।११
वयमिह हि महानुभाव नित्यं
कुलगुरवो भवतां रघूद्वहानाम्।
मदुदितमिदमाशु धायमार्यं।
शुभवचनंह्यदि हारवत्वयेति।१२

हे रघुनाथ! मेरे द्वारा कहे उक्त शास्त्रार्थ की उपेक्षा कर जो व्यक्ति उसे नष्ट करना चाहते हैं, वे कृमि कीट आदि की योनि प्राप्त करने वाली बुद्धि से सम्पर्क करते हैं।७। जैसे वायु का वेग शान्त होने पर जल की तरंगें शान्त हो जाती है वैसे ही अज्ञान नष्ट होने पर वासना जनित चंचलता का शमन हो जाता है।८। जिस प्रकार प्रभंजन वायु आकाश में स्थिर रहता है वैसे ही आप भाव-अभाव से विमुक्त रहते हुये वे परम पद में स्थिर रहते हैं।९। रघूद्वह! मैं समझता हूँ कि आप मेरे वचनों के द्वारा अज्ञान रूपी निद्रा को छोड़कर आत्मज्ञान की ऐसी ही प्राप्ति कर चुके हैं जैसे वन्दीजनों के प्रशस्ति ज्ञान को सुनता हुआ राजा निद्रा को त्याग देता है।१०। हे राम! जब कि सामान्य मनुष्य भी अपने कुलगुरु के वचनों से बोध को प्राप्त हो जाते हैं तो आप जैसे उद्धार एवं बिशिष्ट पुरुषों को उसकी उपलब्धि क्यों न हो।११।

हे रघुनन्दन ! मैं अपनी वंश परम्परा में अपका कुलगुरु हूँ, अतः आप मेरे वचनों को बार-बार विचार करते हुये के समान हृदय में धारण कीजिये ।१२।

५. उपदेश से जीवन्मुक्तता की प्राप्ति

अहो अहं गतिश्चन्त्वं भवद्वाक्यार्थभावनात् ।
शान्तं जगज्जाल मिदमग्रस्थमपि नाथ मे ।१
परामान्तः प्रयातोऽस्मि परमात्मनि निर्वृतिम् ।
दीर्घविग्रहसन्तप्तं वृष्टयेव वसुधातलम् ।२
शाम्यामि शीतलाकारः सुखं तिष्ठामि केवलम् ।
प्रसादमनुयातोऽहं सरो निर्वारणं यथा ।३
जातोऽस्मि गतसन्देहः शान्ताशामृगतृष्णिकः ।
आत्मनैवाऽन्तराऽऽनन्दं तत्प्राप्तोऽस्म्यन्तवर्जितम् ।४
रसायनरसास्वादो यत्र नाथ तृणायते ।५
अद्याऽहं प्रकृतिस्थोऽस्मि स्वस्थोऽस्मि मुदितोऽस्मि च ।
लोकारामोऽस्मि नमो मह्यं नमोऽस्तु ते ।६

श्रीराम ने कहा—हे भगवन् ! आपके उपदिष्ट वाक्यों द्वारा मैं चैतन्यता को प्राप्त हो चुका हूँ अब वह प्रत्यक्ष उपस्थित जगत् रूपी जाल विलीनता को प्राप्त हो चुका है ।१। जैसे अनावृष्टि से सन्तप्त पृथ्वीतल वर्षा से शाँत हो चुका होता है, वैसे ही आपके उपदेश रूपी वर्षा से मेरा अन्तःस्थल परम शान्ति को प्राप्त हुआ है ।२। शान्ति का अनुभव करता हुआ मैं आनन्द और सुख से परिपूर्ण हूँ जैसे विक्षुब्ध करने वाले हाथियों के चले जाने पर सरोवर शांत रहता है, वैसे ही शाँति मुझे प्राप्त हो गई है ।३। मैं सन्देह रहित हो गया, मृगतृष्णा जैसी आशा नष्ट हो गई, विषय-विकार एवं उसके विरोध वाली वृत्तियाँ भी मुझमें नहीं रही । शरत्काल की प्राप्ति पर नभ जैसे स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही मैं भी निर्मल हो गया हूँ ।४। मैं आपके द्वारा

उस अविनाशी आनन्द को प्राप्त हो गया हूँ जिसके समक्ष अमृत का स्वाद भी तृण के समान फीका और उपेक्षा योग्य प्रतीत होता है ।५। आज मैं प्रकृतिस्थ, स्वस्थ और प्रसन्न हूँ । लोकों के विश्रान्ति—स्थल रूपी मुख का ही मै मूल भूत हूँ । अतः मैं राम, स्व को और आपको भी नमस्कार करता हूँ ।६।

कोऽभवं प्रागहं तादृक् तृष्णानिगडयन्त्रितः ।
अन्तराऽऽत्मानमेवेति विहसामि विकासवान् ।७
आ इदानींस्मृतं सम्यग्यधौष सकलोऽस्म्यसौ ।
यस्त्वद्वागमृतापूरस्नातेनाऽयमहं स्थितः ।८
अहो नु विततां भूमिमधिरूढोऽमि पावनीम् ।
इहस्थ एवं यत्राऽर्को न पातालमिव स्थितः ।९
मह्यं सत्तामुपेताय भावाभावभवार्णवात् ।
नमो नित्यं नमस्याय जयाम्याऽऽत्मात्मनाऽऽत्मनि ।१०
अनुभववशतो हृदब्जकोशे स्फुटमलितां समुपांगतेन नाथ ।
तववरवचसेहवीतशोकांचिरमुदितां दशामुपागतोऽस्मि ।११

अब मैं ज्ञानी सर्व धर्मातीत आत्मा के अतिरिक्त तृष्णारुपी बन्धनों में बँधा हुआ वह अन्य कौन था ? वह विचार कर हँसता हूँ ।७। आपके अमृत प्रवाह में स्नान करके परमार्थ रुप से मैं जैसा था वह सब मैं ही हूँ, वह मुझे स्मरण होता है ।८। अहा ! यहाँ वहाँ रहता हुआ मैं भी किसी पवित्र भूमि पर चढ़ गया हूँ, वहाँ जहाँ कि सूर्य पाताल के समान अधः स्थित में नहीं रहता ।९। मैं भाव-अभाव वाले संसार समुद्र के पार होकर सर्वाधिष्ठान्न रुप ब्रह्म को प्राप्त हो चुका हूँ तथा अपनी महिमा से सर्वोत्कृष्ट स्थित हूँ । अतः सबके नमस्कार योग्य अपनी आत्मा को नमस्कार करता हूँ ।१०। हें प्रभो ! अपने हृदय कमल के कोश में भौंरे के समान स्थित हुये आपके श्रेष्ठ वचनामृत से मैं इसी लोक में रहता हुआ शोकादि से विमुक्त चिर प्रसन्न एवं जीवन्मुक्त स्थित हो गया हूँ ।११।

६. अज्ञान वृक्ष का उच्छेद

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमवचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।१
यस्याऽज्ञानात्मनोऽज्ञस्य देह एवाऽऽत्मभावना ।
उदितेहि रुषैवारिपवोऽभिभवन्ति तम् ।२
यस्य ज्ञानात्मनो ज्ञस्य सत्येवाऽऽत्मनि संस्थितिः ।
सन्तुष्ट्यैवाऽक्षसुहृदो न घ्नन्ति तमनिन्दितम् ।३
सर्वभावविकारैस्तु नित्योन्मुक्तस्त्वलेपकः ।
नाऽऽत्माऽस्तमेति भगवन्न चोदेति सदोदितः ।४
जडस्याऽज्ञस्य तुच्छस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।
शरीरकोपलस्याऽस्य यद्भवत्यस्तु तत्तथा ।५

वसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो ! अब आप पुनः मेरे परम वाक्यों को सुनिये । इन वचनों को मैं निरतिशय आनन्दरूप आत्मा की प्रीति के लिए आप सबके हित की इच्छा से कहता हूँ ।१। अज्ञान के कारण देह में उत्पन्न हुई आत्म भावना क्रोध को उत्पन्न करती है जिससे इन्द्रियाँ शत्रु रूप धारण कर आत्मा पर अधिकार कर लेती है ।२। जो ज्ञानी पुरुष तीनों काल में, आत्मा में ही स्थित रहता है, उसे आत्मदर्शन जनित सन्तोष के कारण इन्द्रियाँ नष्ट नहीं कर सकती, अपितु मित्रवत् ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायिका रहती हैं । ३ । सभी भाव विकारों से निर्लिप्त आत्मा कभी उदय और अस्त को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह तो सदा उदित ही रहता है ।४। जड़, ज्ञान-रहित, तुच्छ, कृतघ्न और नाशवान् इस देह रूपी पत्थर का चाहे कुछ भी हो, पर आत्मा पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता ।५।

तद्गता याऽप्यतद्वृत्ते रम्बवरस्येव वायुतः ।
जरामरणमापच्च सुखदुःखे भवाभवौ ।
मनागति न सन्तीह तस्मात्व निर्वृतो भव ॥६

स्थितोदेहतयाऽत्युच्चैः पातोत्पातमयो भ्रमः ।
दृश्यते केवलं ब्रह्मण्यप्सु वीचिचयो यथा ।७
आत्मसत्तोपजीवित्वादात्माऽनुभवतीह हि ।
देहयन्त्रं पयः सत्तामात्रादूर्मिमिव स्थितम् ।८
आधारस्पन्दनेनांगे यथा क्षोभो न वा भवः ।
सूर्यादेः प्रतिविम्वं तथा देहेनदेहिनः ।९
सम्यगदृष्टं यथाभूते वस्तेन्येवाऽभिजायते ।
स्थितिर्देहमयोऽज्ञानं विभ्रमो लयमेति च ।१०

हे राम निर्प्लित स्वभाव होने से जैसे आकाश, वायु, कोष, कम्प आदि विकारों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही जीव वृद्धावस्था, मरण आदि सुख-दुःख वाले देहादि से तथा नाशवान् संसार आदि से आत्मा का कुछ सम्बन्ध नही होता। इसलिये आप निवृंत्त हो जाइये क्योंकि देह में आत्मा का भ्रम होने से ही इन विकारों की, जल में उठती हुई तरङ्गों के समान उपस्थिति है। यथार्थ में वह ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।६-८। जैसे प्रतिबिम्ब वाले दर्पण के हिलाने पर सूर्य आदि नही हिल सकते, वैसे ही देहादि के क्षोभ से आत्मा क्षुब्ध नही होता।९। आत्मा पूर्ण साक्षात्कार होने से सत्य स्वरूप उस आत्मा में ही स्थित होकर अज्ञान से उत्पन्न हुये भ्रम का नाश हो जाता है।१०।

असम्यग्दर्शिनो देहस्याऽऽवर्तपरिवर्तनैः ।
अन्तः शून्याः स्फुरन्तीह ते मोहार्जुनपादपाः ।११
अपर्यालोचितात्मार्था अपरामृष्टसंविदः ।
स्पन्दन्ते चेतितोन्मुक्तास्तृणवन्मूढबुद्धयः ।१२
अज्ञानमापदां निष्ठा का हि नाऽऽपदजानतः ।
इयं संसारसरणिर्वहत्यज्ञप्रमादतः ।१३
अज्ञस्योग्राणि दुःखानि सुखान्यपि दृढानि च ।
पुनः पुनर्निवर्तन्ते युगं प्रत्यचला इव ।१४

शरीरधनदारादावास्थां समनुबध्नतः ।
इदं दुर्दुखमज्ञस्य न कदाचन शाम्यति ।१५

जिस आत्मा का साक्षात्कार नही हुआ उसको शरीर के आवागमन के द्वारा मोह रूपी असंख्य अर्जुन वृक्षों का स्फुरण होता रहता है ।११। जो आत्म-स्वरूप का पर्यालोचन सम्यक् न कर सके, वह मूढ़ बुद्धि पुरुष चैतन्य-शून्य रह कर तृण के समान प्रस्फुरित होते हैं, अर्थात् अचेतन देह को चेतन कभी नही कहा जा सकता ।१२। विप्रत्तियों का आश्रय स्थान अज्ञान ही है । ऐसी कौन-सी विपत्ति है जो अज्ञानी को प्राप्त नही हो सकती ? संसार सरणि का प्रवाह अज्ञानी के प्रमाद से ही तो प्रवाहित है ।१३। अज्ञानी को घोर कष्टों और क्षणिक सुखों की भी बार-बार प्राप्ति होती रहती है, जैसे हल अथवा रथ पर्वतों को पार नही कर सकते वैसे ही अज्ञानी पुरुष उन सुख-दुःखों से पार नही जा सकते । ।१४। शरीर, धन और स्त्री आदि में जो आसक्ति रखता है उस अज्ञानी पुरुष के दुःखों का कभी शमन नही होता ।१५।

नरकश्रीरिहाऽज्ञानं दुष्कृतव्यालवेष्टितम् ।
परिपालयति प्रीता मयूरी वारिदं यथा ।१६
नेत्रलोलालिनीलोला स्फुरिताधरपल्लबा ।
मूर्खार्थमेव विकसत्यंगना विषवल्लरी ।१७
अज्ञस्य हृदि सद्भूमावेव पेलवपल्लवः ।
विद्यते पतगच्छायो रागविद्रुमद्रुमः ।१८
जन्म बाल्यं व्रजत्येतद्यौवनं युवता जराम् ।
जरामरणमभ्येति मूढस्यैव पुनः पुनः ।१९
जगज्जीर्णारघट्टेऽस्मिन् रज्ज्वा संसृतिरूपया ।
मज्जनोन्मज्जनैरज्ञो यन्त्रे कलशतां गतः ।२०

पाप रूपी नागों द्वारा लपेटे हुई अज्ञानी पुरुष की नरक रूपिणी वैसे ही प्रतीक्षा करती हैं, जैसे कि मोरनी मेघ की प्रतीक्षा करती है।१६। चंचल नयन भ्रमरियों वाली, फड़कते अधरपल्लवों वाली नारी रूपिणी विष-बेल मूर्खों के लिए ही बढ़ती जाती है ।१७। अज्ञानी पुरुष के

मन रूपी उर्वरा भूमण्डल में पत्ती से युक्त, पाप आदि पक्षियों की छाया से ओतप्रोत राग रूपी वृक्ष फलता-फूलता है ।१८। अज्ञानी पुरुष ही बाल रूप में बारम्बार जन्म लेता बारम्बार यौवनावस्था प्राप्त करता, बारम्बार बुढ़ापे की ओर अग्रसर होता और बारम्बार ही मृत्यु को प्राप्त होता है (अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है) ।१६। अज्ञानी पुरुष ही संसार रूपी इस पुराने रहट में सृष्टि रूपी रस्सी से बँधकर कलश के समान ही जल में डूबता-उतरता रहता है ।२०।

जगदनल्पसङ्कल्पकल्पनाकल्पपादपः ।
अज्ञानात्प्रसृता यस्माज्जगत्पर्णपरम्पराः ।२१
यस्मिंस्तिष्ठन्ति राजन्ते चरन्ति विलसन्ति च ।
विचित्ररचनोपेता भुरिभोगिविहंगमाः ।२२
यत्र जन्मानि पर्णानि कर्मजालं च कोरकम् ।
फलानि पुण्यपापानि मञ्जर्यो विभवश्रियः ।२३
अज्ञानेन्दूदयेनैता योषिदोषधयः स्फुटम् ।
संसारवनखण्डेऽस्मिन् परां शोभामुपागताः ।२४
आपातमात्रमधुरत्वमनर्थसत्व
माद्यन्तवत्त्वमखिलंस्थितिभंगुरत्वम् ।
अज्ञानशाखिन इति प्रसृतानि राम
नानाकृतीनि विपुलानि फलानि तानि ।२५

असीम सङ्कल्प-विकल्प रूपी कल्प वृक्ष अत्यन्त ऊँचा प्रतीत होता है क्योंकि वह असत् पदार्थों द्वारा सब कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ है, उसी वृक्ष से, अज्ञान के कारण संसार रूपी पत्तों का विकास होता है ।२१। उस कल्प वृक्ष पर अद्भुत वर्ण आकार वाले तथा भोगों में अत्यन्त आसक्त पक्षी रहते, निकलते-घूमते तथा विलास करते हैं ।२२। उस कल्पवृक्ष के पत्ते जन्म रूप कलियाँ कर्म-समूह रूप तथा फल पाप-पुण्य रूप हैं उस पर लगने वाली मंजरियाँ वैभव और सम्पत्तियाँ हैं ।२३। इस जगत् रूपी वन में जब अज्ञान रूपी चन्द्रमा का उदय होता है, तब स्त्री रूपी लताएँ परम शोभा को प्राप्त हुई प्रतीत होती हैं ।२४। विषयों में

प्रतीत होने वाला माधुर्य्य, अनर्थ पर्यवसान आदि अन्तःपरिच्छनत्व और सभी दशाओं में अनित्यत्व है वह सब अज्ञान वृक्ष के फल ही हैं। क्योंकि विभिन्न आकृति वाले उसके वे फल जगदाकर रूप से फैलते जाते हैं, अतः उनका जो मूलभूत अज्ञान है उसे ही उखाड़ फैंकना चाहिए २५॥

७. अज्ञान की विभूतियाँ

यन्मुक्तावलिता रत्नभूषिता भान्ति योषितः।
मदेन्दावुदिते क्षुब्धकामक्षीरार्णवोर्मयः ।१
सौवर्णम्भोजकोशस्थलोलालिपटलश्रियम्।
धारयन्ति दृशः स्त्रीणां कपोतलदोलिताः ।२
उद्यानवनखण्डेषु भूमौ कृतमदा मधौ।
हृद्याः सुमनसो भान्ति दासा इव मनोभुवः ।३
क्रव्यादगृध्रगोमायुकौलेयकवलांगिकाः।
स्त्रियः समुपमीयन्ते चन्द्रचन्दनपङ्कजैः ।४
सौवर्णकलाशाम्भोजकलिकामातुलुंगवत्।
दृश्यते स्त्रीस्तनश्रेणी रक्तपूति सुगन्धिका ।५

वसिष्ठजी बोले—जो मद रूपी मयंक के उदय होने पर मुक्ताओं और रत्नों से सुशोभित एवं क्षुब्ध हुए कामक्षीर समुद्र जैसी दिखाई पड़ती हैं, वे स्त्रियाँ अज्ञान विभूति ही समझो।१। कपोल—तल दोला से दोलित नारियों की दृष्टि स्वर्णिम कमल—कोश में स्थित चंचल भौंरों के पटल जैसी शोभा पाती है, उन स्त्रियों को अज्ञान का ऐश्वर्य ही समझना चाहिए।२। ऋतु में प्राप्त वन-उपवन खंडों में कामियों में मद की उत्पत्ति करने वाले सुन्दर पुष्प रूप जो कामदेव के अनुसार दिखाई देते हैं, वह सब अज्ञान ही की लीला है।३। मांस भोजी गृध्र, शृगाल, स्यार आदि के कलेवा के योग्य कोमल अंगों वाली कामनियाँ चन्द्रमा, चन्दन और कमल की उपमा से सुशोभित की जाती हैं वह सब अज्ञान का ही प्रभाव है।४। रक्त-पूर्ति गन्ध वाली नारियों के जिस

नारियों के जिस स्तन मंडल को सुवर्ण-कलश, कमल-कुड्मल अथवा बिजौरे जैसे बताया जाता है; वह अज्ञान की ही पराकाष्ठा है ।५।

व्याधूतजर्जराकीर्णजनतापर्णराजयः ।
स्वकर्मपवना वान्ति नानाऽवकररेणवः ।
कालः कवलितानन्तजगत्पक्वफलोऽप्ययम् ।
घस्मराचारजठरः कल्पैरपि न तृप्यति ।७
मोहमारुतमापीय त्वचा विषमचारिणः ।
स्फुरन्तीहाऽह्यस्त्तिताः शीतलाचलदीप्तयः ।८
क्षुब्धैर्युगपरावर्तैर्वासनाश्रृङ्खलोम्भिता ।
महाशनितिपातैश्च न भग्नाऽबुद्धधीरता ।९
शतशो विद्रुतारिघ्नैर्दनुपुत्रैरभिष्ढुताम् ।
भवभग्नतयामैन्द्री तनुं वहति वासना ।१०

व्याधियों से संतप्त पुत्रादि कुटुम्बी जनसमूह रूपी पत्ते, अविवेक रूपी धूलिकण और दुष्कर्म रूपी पतन का प्रवाह, यह सब अज्ञान ही तो है ।६। परन्तु जगत् रूपी पके हुए फलों का कलेवा करने वाला और सदा भूखे पेट से युक्त रहने वाला काल कल्पों तक तृप्त नहीं हो पाता, इसका कारण अज्ञान ही है ।७। मोह रूपी वायु का सेवन करते हुए देह रूपी विभिन्न त्वचाओं से दिखाई देते हुए और कुटिल गति वाले प्राणी ब्रह्म के प्रकाश रूपत्व को प्राप्त हुये भी इस संसार में आकर तो एक प्रकार से सर्प ही समझो और उसका कारण भी अज्ञान ही है ।८। वासना रूपी श्रृंखलाओं से बँधी हुई वज्र मूर्खता रूपी वीरता क्षुब्ध युगों के परिवर्तन तथा वज्रघातों से भी नष्ट नही होती अर्थात् अज्ञानी पुरुषों के हृदय में वैराग्य की उत्पत्ति नही होती ।९। इन्द्र के समान दानव-पुत्रों से (बलवान्) प्रशंसित इस शरीर का सैंकड़ों पराजित शत्रुओं को पुनः युद्ध की इच्छा से पालन करता हुआ. वासना में प्रवाहित एवं मुक्ति-विषय में नष्ट वेग वाला होना अज्ञान का ही विलास है ।१०।

रागद्वेषसमुत्थेन भावाभावमयेन च ।
जरामरणरोगेण जीर्णाजंगमतातयः ।११
षुदुष्कृतोत्तमध्यानचारिण्यो धरणीतले ।
नियत्या नियतं कालं पीड्यंते कोटपङक्तय. ।१२
क्षणेनाऽदृश्य एवेदं निगिरत्यखिलं सुखी ।
सुदुर्लक्ष्यविए: कालव्यालो विपुलभोगवान् ।१३
कालेन किञ्चिदालक्ष्य स्वशरीराकुलीकृताः ।
शीतवातातपप्रौढाः प्रोल्लसत्पुष्पदीप्तयः ।
फएप्रदाश्चरन्तीहः शीलिनः स्वभ्रविग्रहाः ।१४
मग्नमन्थैरथोन्मग्नं भीमे कालमहार्णवे ।
प्रतिकल्पक्षणं क्षीणेर्ब्रह्माण्डस्फुटबुद्बुदैः ।१५
कालेऽगाधरसस्यन्दे स्थित्वापुनः पुनः ।
कल्पमात्रनिमेषैणोड्डीना कारणसारसाः ।१६

राग द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःखात्मक जरा-मृत्यु रूपी रोग के कारण सभी जंगम जातियां जीर्ण हो गई हैं ।११। भयंकर पाप कर्मो के भोग में ही जो प्रवृत्त हैं, ऐसे कीटों के समूह नियति के द्वारा सदा पीडित किये जाते हैं ।१२। अप्रत्याशित बिल में निवास करने वाला (अर्थात् अदृश्य) विशाल फण वाला एवं विपुल भोग वाला कालरुपी व्याल सम्पूर्ण जगत् को क्षण भर में ही निगल लेता हैं ।१३। परन्तु जिनके शरीर का मूल भाग पृथिवी में समाया हुआ हैं, ऐसे वृक्षादि स्थावर जीव, मनुष्य पक्षी आदि से (फल आदि देते हुये) पीड़ा को प्राप्त होकर भी विकसित पुष्पों से शोभित हुए शीत, वात, धूप आदि सहकर प्रौढ़ता को प्राप्त हुए तपस्वी के समान काल का अतिक्रमण करते हैं (अर्थात् परोपकारी जीव काल को भी जीत लेतेहैं) ।१४। प्रत्येक कल्प में क्षीण होते हुये ब्रह्माण्ड रुपी जो बुलबुले काल रुपी भयंकर महासागर में उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, वह सब अज्ञान की ही लीला है ।१५। जिस काल रुपी महासमुद्र में भ्रम और तृष्णा रुपी अथाह जल प्रवाहित हैं, उसमें कल्प रुपी निमेष में जो

कारण भूत सारस पक्षी (हिरण्यगर्भ) स्थित होकर उड़ जाते हैं, वह भी अज्ञान का ही कार्य करता है ।१६।

उत्पत्योत्पत्यनाशिन्यः सन्तप्ताः सृष्टिविद्युतः ।
कालमेवे स्फुरन्त्येताश्चित्प्रकाशवनोद्यमाः ।१७
उन्मेषकृतवैरिञ्चसृष्टयो देवनायकाः ।
निमेषकृतसंहाराः सन्ति केचन कुत्रचित् ।१८
निमेषोन्मेषसंक्षीणकल्पजालाः सहस्रशः ।१९
रुद्राः केचन विद्यन्ते तस्मिश्चित्परमे पुनः ।
तेऽपि तस्य निमेषेण भवन्ति न भवन्ति च ।२०
तादृशोऽप्यस्ति देवेशो ह्यनन्तेयं क्रियास्थितिः ।
अनन्तसंकल्पमते शून्ये च ब्रह्मणः पदे ।२१
न सम्भवन्ति का नाम शंक्तयश्चित्रपूरकाः ।
याः सम्पदो यदुत सन्ततमापश्च ।२२
यद्बाल्ययौवनजरामरणोपतापाः ।
यन्मज्जनं च सुखदुःखपरम्पराभि
रज्ञानतीव्रतिमिरस्य विभूतयस्ताः ।२३

चित्प्रकाश से प्रकाशित सृष्टि-रूपी प्रतप्त यह विद्युत कालरूपी मेघ में चमक-२ कर लुप्त हो जाती हैं वह अज्ञान का विलास ही है ।१७। इस ब्रह्म चैतन्य में ब्राह्मी सृष्टि को निषेधमात्र उत्पन्न और संहार करने वाले देवाओं के भी नियामक जो ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर हैं, वे भी अज्ञान का लीला-विलास ही हैं ।१८। सहस्रों बार निमेष उन्मेष मात्र समय में ही जिन परमचित् में स्थित रुद्रों ने कल्पों के समूह नष्ट कर डाले हैं, वह भी अज्ञान का ही विलास है ।१९। जिस देवाधिदेव के निमेष से वे रुद्रादि देवनायक भी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं क्यों कि क्रियाओं की स्थिति सभी के लिये अनन्त फल वाली है परन्तु यह भी अज्ञान ही है ।२०-२१। अनन्त प्रचुर सङ्कल्पों तथा सभी विकल्पों से रहित उस ब्रह्मपद में असंख्य आश्चर्यों को पूर्ण करने वाली कौन-सी शक्ति नहीं है ? ।२२। यह सभी सम्पत्तियाँ, निरन्तर प्राप्त आपत्तियाँ

बाल्यावस्था, यौवन, बुढ़ापा और मृत्यु रूपी घोर सन्ताप तथा प्राणी का सुख-दुःख रूपी परम्पराओं में मज्जन यह सब अज्ञानांधकार की ही विभूतियाँ हैं ।२२।

८—अविद्या के नाश से मोक्ष प्राप्ति

संसारवनखन्डेऽस्मिश्चित्पर्वततटे स्थिता ।
कीदृशी सृष्ट्यविद्याख्या लता विकसिता कदा ।१
विद्यावृहत्पर्वाढ्या ब्रह्माण्डत्वक्समावृता ।
देहयष्टिरियं यस्यास्त्रिलोकी लोकलासिनी ।२
सुखं दुःखं भवोऽभावो ज्ञानमज्ञानमेव च ।
अत्रैतान्युवृपत्तनि मूलानि च फलानि च ।३
नानाविधोल्लासवती वासनामोदशालिनी ।
धनप्रवालतरला तनुरत्या विजृम्भते ।४
दिवसव्यूहकुसुमा यामिनीलोलषट्पदा ।
अजस्रं स्पन्दमानैषा प्रपतदद्भुतपल्लवा ५
विकसन्त्यः प्रतिदिन चन्द्रार्कावलयोऽभितः ।
व्योम्नि वातविलोलानि पुष्पाण्यस्याः किल ग्रहाः ।६
चन्द्रार्कदहनालोका यस्यास्तत्कौसुमं रजः ।
अनेनेयं हि गौरांगी स्त्रीव चेतासि कर्षति ।७

वसिष्ठजी ने कहा—हे रघुनन्दन ! इस जगद्रूप वन के एक खण्ड में कूटस्थ चिद्रूप पर्वत स्थित है, उस पर्वत-तट में कार्य-अविद्या कब और कैसे विकसित हुये, यह मुझसे सुनो ।१। यह कार्यविद्या लता वृहदाकार पर्वतरूपी पर्वों से युक्त, ब्रह्माण्ड रूपी त्वचा से आवृत्त और त्रैलोक्यरूपी देहयष्टि अर्थात् अवयवों वाली है ।२। इस लता में प्रतिदिन विकसित होने वाले सुख-दुःख, जन्म, स्थिति तथा ज्ञान-अज्ञान रूपी फल लगते हैं ।३। विभिन्न प्रकार से उल्लसित, वासना, गन्ध से सुरभित, घनीभूत पात्रों से पल्लवित इस लता का देह जँभाई ले रहा है ।४। यह लता दिवसरूपी पुष्पों से युक्त, रात्रिरूप चपल भौरों से वेष्टित, रागादि

विकारों से स्पन्दित प्राणी रुपी पल्लवों से समन्वित हुई निरन्तर काँपती रहती है ।५। आकाश में विकाश को प्राप्त होने वाली चन्द्रमा, सूर्य आदि के सहित नवग्रह रूपी ज्योति की जो पंक्तियाँ हैं, वे ही इस सृष्टि रुपी लता की वायु के कारण हिलते हुए पुष्प हैं ।६। चन्द्र, सूर्य और अग्नि का प्रकाश ही लता के पुष्प-पराग हैं । इन परागों से ही यह गौरांगी नारी के समान आकर्षक प्रतीत होती है ।७।

मसाविषलतैषा हि संसारविषमूर्च्छनाम् ।
ददाति रभसःश्लिष्टपरामृष्टा विनश्यति ।८
स्फीतेऽन्तर्गलिता यस्य अज्ञेऽन्तः संस्थितान्विता
इतो जलमितः शैला इतो नागाः सुरा इतः ।९
इतः पृथ्वीत्वमायता तथेतो द्युतया स्थिता ।
इतश्चन्द्रार्कतां प्राप्ता तथेतस्तारकाकृतिः ।१०
इतस्तम इतस्तेज इतः खमित उर्वरा ।
इतः शास्त्रमितो वेदा इतो द्वयविवर्जिता ।११
क्वचित खगतयोड्डीना क्वचिद्देवतयोत्थिता ।
क्वचित् स्थाणुतया रूढा क्वचित् पवमतां गता ।१२
क्वचिन्नरसंकुलीना क्वचित् स्वर्गविलासिनी ।
क्वचित् सुरपदं प्राप्ता क्वचित् क्रमितया स्थिता ।१३
क्वचिद्विष्णुः क्वचित् व्रह्मा क्वचिद्रुद्रः क्वचिद्रविः :
वचिदग्निः क्वचिद्वायुः क्वचिच्चन्द्रः क्वचिद्यमः ।१४
यत्किञ्चनांऽग भुवनेषु महामहिम्ना
व्याप्तं चरत्तृणलवत्वमुपागतं वा ।
दृश्यस्फुरन्ननु हराद्यपि तामविद्यां
विद्धि क्षयाय तदतीततयाऽऽत्मलाभः ।१५

यह कार्य विद्या महती विष लता ही है क्योंकि यह अविचार से सम्बन्धित होने के कारण संसार रुपी विष से उत्पन्न होने वाली मूर्च्छा प्रदान करती है और पूर्वापरका विचार करने पर उसी समय नाश को प्राप्त होती है ।८। तत्वज्ञानी की आत्मा में विलीन हुई यह लता अज्ञानी

पुरुष के सब ओर अनुवृत्त रहती है। यह कहीं जल तो कहीं पर्वतों से, कहीं सर्पों से और कहीं देवताओं से युक्त है ।६। यह कहीं पृथ्वी रूप है तो कहीं आकाश रूप, कहीं यह चन्द्र-सूर्य रूप से और कहीं तारों के रूप से अवस्थित है ।१०। यह कहीं अन्धकार रूप कहीं तेज रूप से और कहीं आकाश रूप है, कहीं उर्वरा है तो कहीं शास्त्र और वेद रूप है तथा कहीं प्रलय और सुषुप्ति से विवर्जित भी है ।११। यह कहीं पक्षी रूप से उड़ती है और कहीं देव रूप से अवस्थित रहती है, कहीं स्थाणु रूप से और कहीं वायु रूप से गतिमान हैं ।१२। कहीं यह नरक रूप में तो कहीं पाताल में लीन रहती है, कहीं स्वर्ग में विलास करती हुई है तो कहीं देवपद में स्थित है और कहीं यह कृमि हो गई है ।१३। कहीं विष्णु, कहीं ब्रह्म, कहीं रुद्र, कहीं सूर्य रूप से स्थित है। यही कहीं-कहीं अग्नि, कहीं वायु, कहीं चन्द्रमा तो कहीं यमस्वरूपा हो गई है ।१४। हे राम सब लोक अपनी महिमा से व्याप्त तथा सभी पदार्थों के संहारक शङ्कर से अध्याकृत पर्यन्त अथवा अल्प प्रभाव से जर्जर, तृण समान यह जो दिखाई दे रहा है वह सब तत्व ज्ञान को नष्ट करने वाला अविद्या का प्रतिबिम्ब है। उसका अतिक्रमण होने पर ही आत्म लाभ (मोक्ष) सम्भव है ।१५।

६—ब्रह्म ही ज्ञातव्य है

आकारजातमुदितं शुद्धं हरिहराद्यपि।
अविद्यं वेत्यहं श्रुत्वा ब्रह्मन् भ्रममिवाऽऽगतः ॥१
संवेद्येनाऽपरामृष्टं शान्तं सर्वात्मकं च यत्।
तत्सच्चिदाभासमस्तीह कलनोज्झितम् ॥२
समुदेति स्वतस्तस्मात् कला कलनरूपिणी।
जलादावर्तलेखेव स्फुरज्जलतयोदिता ॥३
सूक्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेति सा कल्प्यते त्रिधा।
पश्चान्मनस्तया तेन ज्ञातैव वपुषा पुनः ॥४

तिष्ठत्येतास्ववस्थवासु भेदतः कल्प्यते त्रिधा ।
सत्वं रजस्तम इतिएषैव प्रकृतिः स्मृता ।५

श्रीराम बोले—हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि को भी अविद्या रूप सुनकर मैं मिथ्या भ्रम में पड़ गया हूँ। कृपा कर उसका निवारण करिये ।१। वशिष्ठ जी बोले—हे राम ! संवेद्य से परामृष्ट, शान्त, सर्वात्मक, सच्चित् प्रकाश से सम्पन्न तथा कल्पनाओं से पर जो ब्रह्म है, वही सृष्टि से पहले विद्यमान था ।२। सृष्टि के प्रारम्भ में स्तत्व में स्थित हुई कला जल आदि में आवर्त रेखा के समान पृथक् रूप धारण करती हुई दिखाई देती है । इस आवर्त्त के प्रौढ़, मन्द तथा छाया भेद से तीन प्रकार के तेज की कल्पना करते हैं, वैसे ही कला भी तीन भेद वाली है । सूक्ष्म के पश्चात् हिरण्यगर्भ यह सत्व, रज और तम तीन प्रकार की है । इसलिए सूक्ष्म आदि रूपों में त्रिधा कलिपत की गई है ।३–५।

अविद्यां प्रकृतिं विद्धि गुणत्रितयधर्मिणीम ।
एषैव संसृतिर्जन्तोरस्याः पारं परं पदम् ।६
अत्र ते ये त्रयः प्रोक्ता गुणास्तेऽपि त्रिधा स्मृताः ।
सत्त्वं रजस्तम इति प्रत्येकं भिद्यते गुणः ।७
नवधैवं विभक्तेयमविद्या गुणभेदतः ।
यावत्किञ्चिदिदं दृश्यमनयैव तदाश्रितम् ।८
ऋषयो मुनयः सिद्धा नागा विद्याधराः सुराः ।
इति भागमविद्यायाः सात्त्विकं विद्धि राघव ।९
सात्त्विकस्याऽस्य भागस्य नागविद्याधरास्तमः ।
रजस्तु मुनयः सिद्धाः सत्त्वं देवा हरादयः ।१०

सत्वादि त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही अविद्या हैं, प्रणियों का जगत् भी वही है इससे पार हो जाना ही परमपद हैं ।६। प्रकृति रूपिणी इस अविद्या के सत्व, रज, तम यह तीनों गुण भी तीन-तीन भेद वाले हैं ।७। इस प्रकार इस अविद्या के नौ भेद हुए और यह सम्पूर्ण दृश्यमान प्रपंच

इस नवधा अविद्या में ही आश्रित हैं ।८। हे राघव ! ऋषि, मुनि, सिद्ध नाग, विद्याधर और देवगण यह सभी उस अविद्या के सात्विक अंश हैं ।९। इस सात्विक अंश में भी नाग, विद्याधर, तामसिक, मुनि और सिद्ध राजसिक तथा शिव आदि देवता सात्विक हैं ।१०।

तेन रुद्रादयो ह्येते सत्वभागा महामते ।
तिष्ठन्ति मुक्ताः पुरुषा यावद्देहं जगत्स्थितौ ।११
यावद्देहं महात्मानो जीवन्मुक्ता व्यवस्थिताः ।
विदेहमुक्ता देहान्ते स्थास्यन्ति परमेश्वरे ।१२
भाग एष त्वविद्याया एवं विद्यात्वभागतः ।
वीजं फलत्वमायाति फलमायाति बीजताम् ।१३
उदेत्यविद्या विद्यायाः सलिलादिव बुद्बुदः ।
विद्यायां लीयतेऽविद्या पयसीव हि बुद्बुदः ।१४
पयस्तदंगयोर्द्वित्वं भावनादेव भिन्नता ।
विद्याविधादृशोर्भेदभावनादेव भिन्नता ।
पयस्तरंगयोरैक्यं यथैव परमार्थतः ।१५
नाऽविद्यात्वं न विद्यात्वमिह किञ्चन विद्यते ।
विद्याविद्यादृशौ त्यक्त्वा यदस्तीह तदस्ति हि ।१६

हे महामते ! उक्त रुद्रादि देवता जगत् के स्थित रहने पर जब तक देह धारण किये रहते हैं तब तक मुक्त ही रहे जाते हैं ।११। जब तक देह धारण रखते हैं तभी तक जीवनमुक्त रहते हैं, फिर देह से मुक्त होने पर परब्रह्म में लीन हो जाते हैं ।१२। इस प्रकार विद्यात्व को प्राप्त यह अविद्या का सात्विक स्वरूप है, वह बीज रूप होता हुआ उसके फल रूप कार्य विद्या के स्वरूप को प्राप्त होता है और उसका अन्त होने पर कारण विद्या है ।१३। कारण विद्या शुद्ध, सत्व अंश विद्या है, उसी विद्या से जल में उठे बुदबुदे के समान उत्पन्न हुई अविद्या बुदबुदे के समान ही विद्या में विलीन हो जाती है ।१४। जैसे जल अथवा दुग्ध और उसी के दूसरे रूप तरङ्ग में भिन्नता प्रतीत होती है, वैसे ही विद्या और अविद्या में भेद दिखाई देता है, यथार्थ में तो जल और उसकी तरङ्ग में

कोई भिन्नता नहीं है ।१५। वैसे ही विद्या अथवा अविद्या नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व है नहीं, इसलिए विद्या-अविद्या में भेद दृष्टि का परित्याग करने पर जो कुछ शेष रहता है वही अवस्थित है ।१६।

नाऽविद्याऽस्ति न विद्याऽस्ति कृतं कल्पनयाऽनया ।
किञ्चिदस्ति नकिञ्चिच्चचित्संविदिति तत्स्थिम् ॥१७
तदेवाऽविदिताभासं सदविद्येत्युदाहृतम् ।
विदितं सत्तदेवेदमविद्याक्षयसंज्ञितम् ॥१८
विद्याभावादविद्याख्या मिथ्यैवोदेति कल्पना ।
मिथ: स्वान्ते: तयोरन्तश्छायातपनयोरिव ॥१९
अविद्यायां विलीनायां क्षीणे द्वे एव कल्पने ।
एते राघव लीयेते अवाप्यं परिशिष्यते ॥२०
यथाऽम्भोधिस्तरंगाणां यथाऽमलमणिस्त्विषाम् ।
कोशो नित्यमनन्तानां तथा तत्संविदो त्विषाम् ॥२१
यत्तु स्थितं जगदिदं जगदेकवीजे ।
चिन्माम्नि संविदितकल्पतकल्पनेन ।
लोकोर्मिजालमिव वारिणि चित्ररूपं
खादप्यरूपवति यत्र न किञ्चिदस्ति ॥२२

जब विद्या या अविद्या नाम की कोई वस्तु है ही नहीं तो उसकी कल्पना भी व्यर्थ है। यथार्थ रूप में तो आत्मा के अतिरिक्त शेप कुछ भी नहीं बचता, अर्थात् केवल चिदात्मा ही संवित् रुप से विद्यमान रहता है ।१७। अज्ञात रूप से स्थित चित् वस्तु अविद्या कहलाती है और जब वह ज्ञान हो जाता है तब वह सद्रूप अथवा अविद्या क्षयसंज्ञक हो जाती है ।१८। धूप और छाया के समान विद्या और अविद्या की परस्पर विरुद्धता से विद्या का अभाव होने पर अविद्या रूपी मिथ्या कल्पना उदित होती है ।१९। यदि विद्या-अविद्या में से अविद्या का आभाव हो जाय तो चैतन्य में लीन होने के कारण दोनों की ही कल्पना समाप्त हो जाती है। तरङ्गों का कोश समुद्र और रश्मियों का कोश मणि है, वैसे ही सब संवित् रश्मियों का कोश अविनाशी ब्रह्म है । यह विश्व उस एक

बीज रूप ब्रह्म में वासना जनित कल्पना से उसी प्रकार स्थित रहता है, जिस प्रकार अद्भुत तरंगें जल में स्थित रहती हैं। उस परब्रह्म के जान लेने पर फिर जानने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहता।२०-२२।

१०—ब्रह्म ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति

तस्मान्न किञ्चिदेवेदं जगत्स्थावरजंगमम्।
न किञ्चिद् भूततां प्राप्तं यत्किञ्चिदस्ति विद्धि हे ॥१
यत्र काचिन्न कलना भावाभावमयात्मिका।
तद्विदं राम जीवादि सर्वंव्यर्थं किमीहसे ॥२
सम्बन्धोऽयमसावन्तर्हृदितो व्यपदिश्यते।
न तं लभामहे सर्वं रज्जुसर्पभ्रमादिव ॥३
अपरिज्ञात आत्मैव भ्रमतां समुपागतः।
ज्ञात आत्मत्वमायाति सीमान्तः सर्वसंविदाम् ॥४
गच्छन्पश्यति गच्चन्तं स्थितं तिष्ठञ्छिशुर्यथा।
भ्रान्तमेवमिदं चेतः पश्यत्यात्मानमाकुलम् ॥५
कोशकारवदात्मानं वासनातनुतन्तुभिः।
वेष्टयच्चैव चेतोऽन्तर्बालत्वान्नाऽवबुध्यते ॥६

वशिष्ठजी बोले—हे राघव ! ब्रह्म के ज्ञान होने पर वह स्थावर-जंगम स्वरूप दिखाई पड़ने वाला जगत् कुछ भी नहीं रहता। भूत स्वरूप को कुछ भी प्राप्त नहीं होता है यह समझ लीजिये।१। जिस ब्रह्म में भाव-अभाव की कल्पना नहीं होती, यह जीव आदि उसी के पदार्थ हैं। हे राम ! आप मिथ्या पदार्थों की इच्छा क्यों करते हैं ?।२। जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम होने पर भी वह सर्प नहीं हो सकता, वैसे ही देह के प्रति हृदय में उत्पन्न आत्मभाव विचार करने पर नहीं रहता।३। अज्ञान आत्मा जगत् रूपी भ्रम को तो प्राप्त हो गया है परन्तु भले प्रकार जान लेने पर उसकी वह भ्रान्ति नष्ट हो जाती है।४। अनजान शिशु के समान अज्ञान से उपहित हुआ वह आत्मा चित्त की चंचलता से अपने को

चलता हुआ तथा चित्त के स्थिर होने पर स्वयं को स्थिर हुआ देखता है। ऐसे भ्रांत होकर चित्त को आत्म स्वरूप मान बैठता है।५। यह चित्त अविवेकी बालक के समान है, इसलिए मकड़ी के जाले के समान वासना-जाल में बँधता हुआ भी स्वयं को नहीं जान पाता।६।

मौर्ख्यमत्यन्तघनतामागतं समवस्थितम्।
स्थावरादितनुप्राप्तं कीदृशं भवति प्रभो।७
अमनस्त्वमसम्प्राप्तं मनस्त्वादपि च च्युतम्।
तटस्थं रूपमाश्रित्य स्थितैषा स्थावरेषु चित्।८
तत्र दूरस्थिता मुक्तिर्मन्ये वेद्यविदां वर।
सुप्तपुर्यष्टका यत्र चित्स्थिता दुःखदायिनी।
मूकान्धजडवत्तत्र सत्तामात्रेण तिष्ठति।९
बुद्धिपूर्वंविचार्येदं यथावस्त्ववलोकनात्।
सत्तासामान्यबोधो यः स मोक्षश्चेदन्नतकः।१०
विचार्याऽऽर्यैः सहाऽऽलोक्यं शास्त्राण्यध्यात्मभावनात्।
सत्तासामान्यनिष्ठत्वं यत्तद्ब्रह्म परं विदुः।११
अन्तःसुप्ता स्थिता मन्दा यत्र बीज इवाऽङ्कुरः।
वासना तत्सुषुप्तत्वं विद्धि जन्मप्रदं पुनः।१२

श्रीराम ने कहा—हे भगवन्! अत्यन्त घनता को प्राप्त होता हुआ वह अविवेक स्थावरादि शरीरों में अवस्थान करता हुआ किस प्रकार टिका रहता है?।७। वशिष्ठजी बोले—अमनस्तत्व को प्राप्त हुए और मनस्तत्व से च्युत हुये इन दोनों के मध्य में तटस्थता को प्राप्त कर यह चित् स्थावर जीवों में स्थित होता है।८। हे ज्ञातव्य के ज्ञाताओं में प्रमुख राम! चित्त और अचित्त के जानने में असमर्थ तथा बाह्याभ्यांतरिक इन्द्रियों से युक्त होने से दुखदायी चित्त जहाँ रहता है उनसे मुक्ति बहुत दूर रहती है, क्योंकि वहाँ मूक, अन्धे अथवा जड़ के समान चित्त की ही सत्ता होती है।९। वशिष्ठजी बोले—बुद्धि पूर्वक शास्त्र विचार और आत्मावलोकन से जिस सत्ता का सामान्य बोध होता है, वही अनन्त मोक्षप्रद है।१०। अध्यात्म भावना से शास्त्रों के विचार से तत्व का

साक्षात्कार करने पर सत्ता में जो सामान्य निष्ठा होती है, ज्ञानीजन उसी को ब्रह्मपद कहते हैं ।११। बीज में अंकुर के समान दिखाई न पड़ने वाली तथा सुप्त के समान जो वासना है वही पुनर्जन्मदात्री सुषुप्ति है, ऐसा जानिये ।१२।

यत्राऽस्ति वासनाबीजं तत्सुषुप्तं न सिद्धये ।
निर्बीजा वासना यत्र तत्तुर्यं सिद्धिदं स्मृतम् ।१३
वासनायास्तथा वह्नेर्ऋणव्याधिगिषामपि ।
स्नेहवैरविषाणां यः शेषः स्वल्पोऽपि बाधते ।१४
रक्तमांसास्थियन्त्रेऽस्मिन्कः स्यामहमिति स्वयम् ।
यावद्विचार्यते तावत् सर्वमाशु विलीयते ।१५
आद्यन्तयोरसद्रूपे नूनं परिहृते हृदा ।
सर्वस्मिन्नेव यः शेषस्तमविद्याक्षयं विदुः ।१६
रूपं स्वनाम्न एवाऽस्या ज्ञायते निःस्वभावकम् ।
न हि जिह्वागतस्वाद्य स्वादोऽन्यस्मात् प्रतीयते ।१७
नाऽविद्या क्वचिदप्यस्ति ब्रह्मैवेदमखण्तिम् ।
सदसत्कलनास्भारमशेषं येन मण्डितम् ।१८
घटपटशकटावभासजालं
न विभुरितीत्युदितेह सा त्वविद्या ।
घटपटशकटावभासाजालं
विभुरिति चेद्गलितैव सा त्वविद्या ।१९

जहाँ वासना का बीज है, वहीं सुषुप्ति अर्थात् जन्म है, वह सिद्धि के निमित्त नहीं है, परन्तु जहाँ वासना का बीज नहीं है, वही तुर्यपद की सिद्धि है ।१३। वासना अग्नि, ऋण, शत्रु, स्नेह बैर और विष का यदि किंचित् भी अवशेष है तो वह स्वल्प होने पर भी अनर्थकारी हो जाता है ।१४। रक्त और हाड़-मांस के बने देह रूपी इस यन्त्र में मैं स्वयं कौन हूँ ? इसका जैसे-जैसे विचार किया जाता है, वैसे-वैसे ही अविद्या-परिवार विलीन होता जाता है ।१५। उस प्रकार के विचार पूर्ण मन के द्वारा आदि-अन्त वाले सद्रूप दृश्य के परिहृत होने पर जो

चिदात्मा शेष रहता है, उसे ही ज्ञानीजन अविद्या का क्षय कहते हैं।१६। अविद्या नाम से हीं उसके अस्वाभाविक रुप का ज्ञान हो जाता है, जिस प्रकार कि जिह्वा द्वारा लिये गये स्वाद की अनुभूति किसी अन्य प्रकार से नहीं होती।१७। अविद्या का कहीं अस्तित्व नहीं है, यह विश्व अखण्डित ब्रह्म-रूप ही है, उसी ब्रह्म ने सत्-असत् के विस्तृत रूप जगत् की रचना की है।१८। घट, पट, शकट आदि के रूप में दिखाई पड़ने वाला यह जगज्जाल ब्रह्मरूप नहीं है, ऐसा मानने पर ही अविद्या का उदय हुआ समझो और जब यह विवेक जागृत हुआ कि घट, पट, शकट आदि रुपों वाला यह संसार अपरिच्छिन्न सच्चिदानन्द ब्रह्म से भिन्न नहीं है तभी समझलो कि अविद्या का नाश हो गया।१९।

११–चिदात्मा का ज्ञान

पुनः पुनरिदं राम प्रबोधर्थं मयोच्यते।
अभ्यासेन विना साधो नाऽभ्युदेत्यात्म भावना ॥१
अज्ञानमेतद्‌बलवदविद्येतरनामकम्।
जन्मान्तरसहस्रोत्थं घनं स्थितिसुपागतम् ॥२
त्वमविद्यालतामेतां प्ररूढां हृदयद्रुमे।
ज्ञानाभ्यासविलासासिपातैश्छिन्धि स्वसिद्धये ॥३
यथा विहरति ज्ञातज्ञेयो जनकभूपतिः।
आत्मज्ञानाभ्यासपरस्तथा विहर राघव ॥४
निश्चयेन हरिर्येन विविधाचारकारिणा।
योनिष्ववतरत्युर्व्यां तत्तज्ज्ञत्वमुदाहृतम् ॥५

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! हे साधो ! आत्म-स्वरूप के परिज्ञानार्थ ही मैं इस रहस्य को बारम्बार कहता हूँ, क्योंकि अभ्यास के बिना आत्म भावना का अभ्युदय नहीं हो सकता।१। इस महाबली आज्ञान का नाम ही अविद्या है, यह जन्म-जन्मान्तर से चला आने के कारण दृढ़ता को प्राप्त हो गया है (इसलिए यह सीधे तरह नष्ट नहीं हो सकता)।२। हृदय रुपी वृक्ष पर चढ़ी हुई इस अविद्या रूपिणी लता को ज्ञानाध्यास रुपी

असि से काट डालो, तभी आत्म-सिद्धि सम्भव है।३। हे राघव ! जैसे महाराज जनक ज्ञानतत्व रूप में पृथ्वी पर स्थित हैं वैसे ही आत्मज्ञान के अभ्यास में तत्पर होकर आप भी बिहार कीजिए।४। अपने जिस निश्चय से भगवान विष्णु अवतरण-काल में गर्भ-वासादि दुःखों से असम्बद्ध रहते है, वह निश्चय आत्मज्ञान का स्वरूप कहा गया है।५।

निश्चयो यस्त्रिनेत्रस्य कान्तया सह तिष्ठतः।
ब्रह्मणो वाऽप्यरागस्य स ते भवतु राघव ॥६
यो निश्चयः सुरगुरोर्वाक्पतेर्भार्गवस्य च।
दिवाकरस्य शशिनः पवनस्य योऽनलस्य च ॥७
नारदस्य पुलस्त्यस्य मम चांऽगिरसस्तथा।
प्रचेतसो भृगोश्चैव क्रतोरत्रैः शुकस्य च ॥८
अन्येषामेव विप्रेन्द्रराजर्षीणां च राघव।
यो निश्चयो विमुक्तानां जीवतां ते भवत्वसो ॥९
येनैते भगवन् धीरा निश्चतेनमहाधियः।
विशोकाः संस्थितास्तन्मे ब्रह्मन्प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥१०

हे राघव ! जो निश्चय पार्वतीजी के साथ रहने वाले त्रिनेत्र शिव का है, अथवा जो निश्चय वीतराग ब्रह्माजी का है, आप भी उस निश्चय पर रहें।६। हे राम ! देवगुरु वृहस्पति, दैत्य गुरु शुक्राचार्य सूर्य, चन्द्रमा वायु, अग्नि नारद, पुलस्त्य, अङ्गिरस, प्रचेता, भृगु, क्रतु, अत्रि, शुक्र तथा इन्हीं के समान अन्यान्य जीवन्मुक्त, विपेन्द्र और राज-ऋषियों का जो निश्चय आत्मा के विषय में है, वही आपका हो।७-९। राम बोले हे ब्रह्मन् ! उपरोक्त महा बुद्धिमान महानुभाव जिस निश्चय के कारण शोक-रहित होकर स्थित हैं, उस निश्चय को तात्विक रुप से मुझे बताइये।१०।

राजपुत्र महावाहो विदिताखिलवेद्य हे।
स्फुटं शृणु यथा पृष्टमयमेषां हि निश्चयः ॥११
यदिदं किञ्चिदाभोगि जगज्जालं प्रदृश्यते।
तत्सर्वममलं ब्रह्म भवत्येतद्व्यवस्थितम् ॥१२

गृह्यते ब्रह्मणा ब्रह्म भुज्यते ब्रह्म ब्रह्मणा ।
ब्रह्म ब्रह्मणि ब्रंहाभिर्ब्रह्मशक्त्येव बृंहति: ।१३
ब्रह्म मच्छत्रुरूपं मे ब्राह्मणोऽपियकृद्यदि ।
तद्ब्रह्मणि ब्रह्मनिष्ठं किमन्यद् कस्यचित्कृतम् ।१४
रागादीनामवस्थानं कल्पितानां खवृक्षवत् ।
असङ्कल्पेन नष्टानां क: प्रसंगोऽत्र वर्धते ।१५

वसिष्ठजी बोले—हे राजकुमार ! हे महाबाहो ! हे सम्पूर्ण ज्ञातव्य के ज्ञाता ! आपने जो प्रश्न किया, इसका उत्तर अर्थात् उनका जो निश्चय है, वह स्पष्ट रूप से श्रवण कीजिए ।११। यह जो भोग रूप सम्पूर्ण जगज्जाल दिखाई पड़ रहा है, वह निर्मल ब्रह्मरूप तथा परमार्थ रूप में स्थित है ।१२। ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म का ग्रहण होता है ब्रह्म द्वारा ब्रह्म ही उपयुक्त होता है । ब्रह्म शक्ति के द्वारा ब्रह्म से ही ब्रह्म की वृद्धि होती है ।१३। यदि ब्रह्म मेरे शत्रु के रूप में हैं यदि ब्रह्म के द्वारा ही मेरा अप्रिय होता है, तब ब्रह्मनिष्ठ के लिये तो ब्रह्म के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? ।१४। जब इस ब्रह्म में आकाश-वृक्ष के समान, असंकल्प से नष्ट हो जाने वाले कल्पित विषयों का प्रसङ्ग ही नहीं हैं तो उनकी वृद्धि ही कैसी ।१५।

ब्रह्मण्येव हि सर्वस्मिश्चरणस्पन्दनादिकम् ।
स्फुरति ब्रह्म सकलं सुखितादु:खिते कुत: ।१६
ब्रह्मणि संदृप्तं ब्रह्म ब्रह्मणि संस्थितम् ।
स्फुरित ब्रह्मणि ब्रह्म नाऽहमस्मीतरात्मक: ।१७
घटो ब्रह्म पटो ब्रह्माऽहमिदमाततम् ।
अतो रागविरागाणां मृषेव कलनेह का ।१८
मरणें ब्रह्मणि स्वैरं देहब्रह्मणि संगते ।
दुखितनां कैव स्याद्रज्जुसर्पभ्रमोपमा ॥१९
सम्भोगादौ सुखं ब्रह्मण्यास्थिते देहब्रह्मणि ।
सम्पन्नमेतन्म इति मुधा स्यात्कलना कुत: ।२०

इस सर्वात्मक ब्रह्म में ही चलना फिरना आदि है, और क्योंकि वही सुख में स्फुरित होता है, इसलिये उसमें दुःख सुख कहाँ से आये।१६। ब्रह्म ब्रह्म में ही संतृप्त है ब्रह्म ब्रह्म में ही स्थित है, ब्रह्म का स्फुरण भी ब्रह्म से ही होता है, अतः मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूँ।१७। घट और पट ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूँ, यह विश्व ब्रह्म है अतः मिथ्या राग-विरागादि की इसमें कल्पना ही कैसी ?।१८। देह रूपी ब्रह्म में मरणधर्मा ब्रह्म की जब स्वयं उपलब्धि हो गई, तब रस्सी में सर्प भ्रम के समान वह दुःखमयी झूँठी कल्पना के सिवाय और क्या हो सकता है ?।१९। सम्भोग आदि से युक्त ब्रह्म में जब देव रूपी ब्रह्म सुख से स्थित हो तो मुझे यह उपलब्धि हुई, ऐसी मिथ्या कल्पना कहाँ से आई ?।२०।

कटकत्वं यथा हेम्नो यथाऽऽवर्तो जलस्य च।
तदतद्भावरूपेयं तथा प्रकृतिरात्मनः।२१
इदं हि जीवभूतात्म जडरूपमिदं भवेत्।
इत्यज्ञानात्मनो मोहो न च ज्ञानात्मनः क्वचित्।२२
अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्याऽऽनन्दमयं जगत्।
अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं सचक्षुषः।२३
अस्मिन्ब्रह्मघटे नित्यमेकस्मिन्सर्वतः स्थिते।
न किञ्चिन्म्रियते नाम न च किञ्चन जीवति।२४
यथोल्लासविलासेषु नश्यति न जायते।
तरंगादिमहाम्भोधौ भूतवृन्दं तथाऽऽमनि।२५

जैसे स्वर्ण में कटकत्व और जल में आवर्तत्व होना स्वाभाविक है, वैसे ही जड़ और अजड़ रूप होना प्रकृत्यात्मक ब्रह्म का स्वभाव है।२१। यह जीव भूतात्मा है अथवा यह पदार्थ जड़ है, इस प्रकार के मोह की प्राप्ति अज्ञानात्मक ही होगी, ज्ञानात्मा को कभी नहीं हो सकती।२२। जैसे अँधे को यह विश्व अँधेरा और दृष्टिवान् को प्रकाश रुप दिखाई देता है, वैसे ही अज्ञानी को यह संसार दुःख रुप तथा ज्ञानी को आनन्द रुप, प्रतीत होता है।२३। सर्वत्र स्थित इस ब्रह्म रुप घट में न किसी का मरण है, न जीवन है।२४। जैसे महासागर में उल्लास विलास की

विलास की स्थिति में तरङ्गादि न मरते हैं, न उत्पन्न होते हैं, वैसे ही आत्मा में भूतों का उत्पत्ति मरण नहीं होता ।२५।

मनो बुद्धिरहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
ब्रह्मैव सर्वं नानात्म सुखं दुःखं न विद्यते ॥२६
अयं सोऽहमिदं चित्तमित्याद्यर्थोत्थया गिरा ।
शब्दप्रतिश्रवेणाऽद्राविवाऽऽत्माऽऽत्मनि जृम्भते ॥२७
अभावितं ब्रह्मतया ब्रह्माऽज्ञानमलं भवेत् ।
अभावितं तथा यथा हेम च मृद्भवेत् ॥२८
स्वयंप्रभुर्महात्मैव ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ।
अपरिज्ञातमज्ञानमज्ञानामिति कथ्यते ॥२९
ज्ञातं ब्रह्मतया ब्रह्म ब्रह्मैव भवति क्षणात् ।
ज्ञातं हेमतया हेम हेमैव भवति क्षणात् ॥३०

जब मन, बुद्धि, अहङ्कार, तन्मात्रा और इन्द्रियादि सब ब्रह्म रुप हैं उससे भिन्न नहीं, तब सुख-दुःख रह ही नहीं सकते ।२६। जैसे पर्वत की सन्निधि में एक ही शब्द प्रतिध्वनित होता रहता है, वैसे ही यह मैं, यह चित्त इत्यादि विषयों के सहित वाणी से आत्मा ही स्व-आत्मा में जँभाई लेता रहता है ।२७। ब्रह्म का ब्रह्म स्वरुप न जानने पर वह ही अज्ञान स्वरुप हो जाता है, जैसे स्वर्ण का ज्ञान रूप से न हो तो वह मिट्टी के समान ही है ।२८। ब्रह्मज्ञानियों का कथन हैं कि स्वयं शक्तिमान अर्थात् महानात्मा ब्रह्म ही अज्ञानियों के द्वारा 'अज्ञान' कहा जाता है । ।२९। ब्रह्म के स्वरुप का ज्ञान होते ही ब्रह्म उसे उसी प्रकार स्पष्ट हो जाता है, जिस प्रकार स्वर्ण के स्वर्णत्व के जान लेने पर तुरन्त ही स्वर्ण उपलब्ध हो जाता है ।३०।

यस्मिन्सर्वंयतः सर्वंयत्सर्वं सर्वतश्च यत् ।
यो मतः सर्व एकात्मा परं ब्रह्मेति निश्चयः ॥३१
चिदात्मा ब्रह्म यत्सत्यमृतं ज्ञ इति नामभिः ।
प्रोच्यते सर्वगं तत्त्वं चिन्मात्रं चैत्यवर्जितम् ॥३२

भूवायोकिलबीजानां सम्बन्धेऽङ्कुरकर्मसु ।
शक्तिद्रद्गमनोयान्तस्तच्चिद्ब्रह्माऽहमाततम् ॥३३
सर्वगा प्रकृता स्वच्छरूपा भानोरिव प्रभा ।
आलोककारिणी कान्ता चिद्ब्रह्मेदमहंततम् ॥३४
संभोगानन्दवच्चैवा मृतास्वादशक्तिमत् ।
स्वानुभूत्येकमात्रं यच्चिद्ब्रह्माऽस्मि तदव्ययम् ॥३५

जिसमें सब अवस्थित हैं, जिससे इस सबकी उत्पत्ति हुई है जिसमें यह सब विलींन होता है, जो सर्व व्यापक, सर्वात्मा, एकात्म स्वरूप है निश्चय ही वह ब्रह्म है ।३१। चिदात्मा ब्रह्म, सत् सत्य, ऋत और ज्ञानादि नामों वाला, चैत्य-रहित चिन्मात्ररूप ब्रह्म की ही सर्वत्र चर्चा है ।३२। पृथ्वी, जल, पवन और बीजों के सम्पर्क से अंकुरादि फूटने में जो चित्ति शक्ति भीतर अवस्थित है वही सर्वव्यापी ब्रह्म है और वही मैं हूँ ।३३। सूर्य के सर्वत्र व्याप्त, स्वाभाविक स्वच्छ प्रभा के समान प्रकाश देने वाली चित्त शक्ति ही ब्रह्म है दिखाई पड़ने वाले पदार्थों के रूप में यही विस्तार को प्राप्त हुई है, मैं भी उसी का स्वरूप हूँ ।३४। सम्भोग आनन्द से सम्पन्न, अमृतमयी स्वादशक्ति से युक्त स्वानुभव रूप जो एक मात्र अव्यय ब्रह्म है, मैं वही हूँ ।३५।

घटे पटे तटे कूपे स्पन्दमानं सदा तनौ ।
जाग्रत्यपि सुषुप्तस्थं चिदात्मानमुपास्महे ॥३६
उष्णमग्नौ हिमे शीतं मृष्यमन्ने शितं क्षुरे ।
कृष्णं ध्वान्ते सितं चन्द्रे चिदात्मानुमुपास्महे ॥३७
आलोकं बहिरन्तस्थं चित्तं च स्वात्मवस्तुनि ।
अदूरमपि दूरस्थं चिदात्मानमुपास्महे ॥३८
माधुर्यादिषु माधुर्यं तीक्ष्णादिषु च तीक्ष्णताम् ।
गतं पदार्थजातेषु चिदात्मानमुपास्महे ॥३९
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु तुर्यातुर्यातिगे पदे ।
समं सदैव सवत्र चिदात्मानमुपास्महे ॥४०

घट, पट, तट एवं कूप आदि में स्थित चतुर्विध जीवों में स्पन्दन-शील एवं जाग्रत अवस्था में सुषुप्त के समान अवस्थान करने वाला जो चिदाकार आत्मा है, हम उसी की उपासना करते हैं ।३६। जो अग्नि में उष्णता, हिम में शीतलता, अन्न में मधुरता, छुरे में तीक्ष्णता, अँधेरे में कालापन, चन्द्रमा में श्वेतता, रुप जो चिदात्मा है, हम उसकी उपासना करते हैं ।३७। जो बाहर और भीतर आलोक रुप से स्थित है, स्वात्म पदार्थ में जो चित्-रुप होने के कारण निकट ही स्थित होते हुये भी अज्ञान वश दूर प्रतीत होता है, उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं ।३८। मिष्ठान्नों में रूमाधुर्य प और तीखे पदार्थों में तीक्ष्णता रूप जो चिदात्मा है हम उसकी उपासना करते हैं ।३६। जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में एक रूप से स्थित, तुरीय और अतुरीय पदों का उल्लंघन कर परमप : में अवस्थित एवं सर्वत्र सदा समान रुप से रहने वाले चिदाकार आत्मा की हम उपासना करते हैं ।४०।

अहार्यममृतं सत्यं चिदात्मानमुपास्महे ।४१
शब्दरूपसस्पर्शगन्धैराभासमागतम् ।
तैरेव रहितं शान्तं चिदात्मानमुपागतः ।४२
आकाशकोशविशदं सर्वलोकस्य रञ्जनम् ।
न रञ्जनं न चाऽऽकाशं चिदात्मानमुपागतः ।४३
महामहिम्ना सहितं सर्वभूतिभिः ।
कर्तृत्वे वाऽप्यकर्तारं चिदात्मानमुपागतः ।४४
अखिलमिदमहं ममैव सर्वं
त्वहमपि नाऽहमथेरच्च नाऽहम् ।
इति विदितवतो जगत्कृतं मे
स्थिरमथवास्तु गतज्वरो भवामि ।४५

क्षीर सागर से उत्पन्न हुए अमृत से भी अद्भुत चन्द्रमा में स्थित सुधा से विलक्षण, सर्वदा प्राप्त जो सत्य चिदात्मा है हम उसी की उपासना करते हैं ।४१। शब्द, रुप, रस, स्पर्श और गंध की अभि-

व्यक्ति जिससे प्राप्त होती है, परन्तु जो उन विषयों से निर्लिप्त हैं उस शान्त चिदाकार आत्मा के स्वरूप को मैं प्राप्त हो गया हूँ।४२। आकाश के समान विशाल, सब लोगों का रंजन कर्ता, परन्तु जो न रंजन रूप है, न आकाश रूप ही है, मैं उसी चिदात्मा के स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ।४३। महती महत्ताओं से सम्पन्न एवं सभी विभूतियों से रहित, जगत्-कर्ता होकर भी अकर्ता जो चिदात्मा है, मैं उसी रूप को प्राप्त हो गया हूँ।४४। यह सम्पूर्ण सृष्टि मैं ही हूँ, यह सभी कुछ मेरा है, मैं देहादि जड़ रूप नहीं हूँ, इसका ज्ञान होने पर, फिर चाहे जगत् कृत्रिम रहे अथवा अकृत्रिम उसके प्रति मैं किसी प्रकार से सन्तप्त नहीं हूँ।४५।

१२—स्थिर बुद्धि से भ्रान्ति निवारण

इति निश्चयवन्तस्ते महान्तो विगतैनसः।
सत्याः सत्ये पदे शान्ते समे सुखमवस्थिताः।१
इति पूर्णधियो धीराः समनीरागचेतसः।
न निन्दति न नन्दति जीवितं मरण तथा ।२
इत्यलक्ष्यचमत्कारा नारायणभुजा इव।
ऋजवः स्खलिताकारा अपरा इव मेरवः।३
रेमिरे वनखण्डेषु द्वीपेषु नगरेषु च।
देवोपवनमालासु स्वर्गे च सुरा इव।४
भ्रेमुः कुसुमपूर्णासु दोलान्दोलचलासु च।
विचित्रवनलेखासु मेरुश्रृंगशिखासु च ।५

वसिष्ठजी बोले कि हे राम ! उपरोक्त प्रकार से निश्चयवान् पाप-रहित, सत्यस्वरूप, सत्यप्रद में स्थित एवं शान्त हुए महात्मा ज्ञानीजन परम सुख में अवस्थान कर गए।१। इस प्रकार पूर्ण बुद्धि वाले महात्मा समान चेता, राग-विराग से रहित तथा जीवन-मरण की निन्दा प्रशस्ति से मुक्त रहते हैं।२। इस प्रकार ब्रह्म रूपी लक्ष्य-वेधन में चमत्कार - हस्त महात्मा भगवान् नारायण की भुजाओं के समान

हैं । सरल एवं विनम्र स्वभाव वाले मेरु पर्वत के समान वे अटल हैं ।३। यह महात्मा गण वनखण्ड द्वीप, नगर आदि में उसी प्रकार विचरण करते हैं, जिस प्रकार देवगण स्वर्ग के देवोद्यान आदि में रमण करते हैं ।४। यह पुष्पों से परिपूर्ण झूलों के झोटों में, विचित्र वन पंक्तियों में एवं मेरु पर्वत की शिखाओं पर भ्रमण करते हैं ।५।

चक्रु विजितशत्रूणि चामरच्छत्रवन्ति च ।
विचित्रार्थानि राज्यानि चित्राचारमयानि च ।६
अनुजग्मुरितान् सर्वान्नानाचारविचेष्टतान् ।
श्रुतिस्मृत्युदितारम्भामितिकर्त्तव्यतामिति ।७
ईदृशीरमणीयेषु ललनाहास्यहारिषु ।
विहाराहाररम्येषु भोगाभोगेषु भूषिताः ।८
विवुशुश्चारुचूतासु मन्दारवलितासु च ।
अप्सरोगीतपूर्णासु नन्दनोद्यानभूमिषु ।९
सचराचरभूतेषु विश्रान्ताखिलजन्तुषु ।
यज्ञक्रियाकलापेषु गार्हस्थ्येषु यथाक्रमम् ।१०

जिन राज्यों में पशुओं पर विजय पाई गई, जिनके राज्य सिंहासन सदा छत्र चँवर आदि से शोभा पाते रहे, जिनमें विचित्र अर्थ आदि की व्यवस्था रही, ऐसे उन राज्यों को भी इन महात्माओं ने भोगा है ।६ उन्होंने सभी धर्माचरणों का पालन किया था और श्रुति-स्मृति आदि के अनुसार समस्त यज्ञादि का भी अनुष्ठान किया था ।७। उन्होने हृष्ट-हृष्ट वैभव और रमणियों के हास-परिहास के समान मनोहारी आहार विहार का भी उपभोग किया था ।८। आम के सुन्दर वृक्षों से सम्पन्न उद्यानों में मन्दार पुष्पों के सुगन्धित हारों से लिप्त होकर अप्सराओं के नृत्य-गान से युक्त नन्दन कानन की सुरम्य भूमि में प्रविष्ट होकर उन जीवन्मुक्तों ने बिहार किया था ।९। चराचर प्राणियों से परिपूर्ण लोकों में अखिल जीवों के सुख-साधन रूप क्रिया कलाप में और गृहस्थ जीवन में भीं वे प्रविष्ट हो चुके थे ।१०।

तेरुर्हतगजेन्द्रासु भ्रान्तभूरिशिवासु च ।
भेरीभाङ्कारभीमासु संग्रामार्णववीथिषु ।११
तस्थुः पुरुषजित्तासु हृतवित्तौहृतासु च ।
संरम्भक्षोभरौद्रीषु सर्वासु द्वन्द्वरीतिषु ।१२
मनस्तेषां तु नो रागमनुपाधि गतभ्रमम् ।
असक्तं मुक्तमाशान्तं परं सत्त्वपदं गतम् ।३
न ममज्जुः क्वचिदपि सङ्कटेषु महत्स्वपि ।
महदप्युपयातेषु कुलशैला सरस्विव ।१४
नोल्ललास विलासिन्या श्रिया परमकान्तया ।
परिपूर्णेन्दुलक्ष्म्येन जलराशौ रघूद्वह ।१५

जिन भयङ्कर संग्रामों में वृहदाकार हाथी मारे गये, जिनमें शृगाल नर-मादा उन्मुक्त विचरण करते रहे, जो भेरी के स्वरों से भय करता को प्राप्त हुए, ऐसे उन घोर युद्ध रूपी समुद्र मार्गों को भी उन महात्माओं ने पार कर लिया ।११। चित्तों को क्लेश देने वाली, धन-हरण करने वाले शत्रुओं से पराभूत हुई, क्रोध-क्षोभादि से रौद्र रूप वाली हुए द्वन्द्व रीतियों में भी यही महात्मा अटल रहते थे ।१२। उन महात्माओं का मन राग-रेहित, उपाधि-रहित, भ्रम-रहित, आसक्ति शून्य, मुक्त, शान्त और श्रेष्ठ परम सत्वपद को प्राप्त हो गया ।१३। वे घोर सङ्कट अथवा महान् ऐश्वयं प्राप्त करके भी उसी प्रकार विचलित नहीं हुए जिस प्रकार सरोवरों के वृद्धि ह्रास से कुल पर्वत विचलित नहीं होते ।१४। हे रघुवर ! जिस प्रकार समुद्र पूर्ण चन्द्रमा की कांति से उल्लसित होता है, उस प्रकार इन आत्मज्ञानियों का मन लक्ष्मी और कान्ता को प्राप्त करके भी उल्लास को प्राप्त नहीं होता था ।१५।

न मल्लौ दुःखशोकेन ग्रीष्मेणेव वनस्थलम् ।
जहर्ष च न भोगोघैरवश्यायैरिवौषधि ।१६
ते हि केवलमव्यग्राः कुर्वन्तः काममञ्जरीः ।
इष्टानिष्टफल राम नाऽभिलेषुर्नतत्यजुः ।१७

नोदगुः कार्यसंपत्तावाक्रान्ता नाऽस्तमाययुः ।
जहषुर्न सुखप्राप्तौ मम्लुर्नैव च सङ्कटे ।१८
मुमुहुर्न विमोहेषु न ममज्जुर्विपत्क्रमैः ।
न जहषुः शुभे शोके रुरुदुर्नैव भवानिव ।१९
प्राकृताचारसंप्राप्ते कुर्वन्तः कर्म केवलम् ।
स्थिता विगतसरम्भमपरा इव मेरवाः ।२०

जैसे ग्रीष्म ऋतु में वनस्थल मलिनता को प्राप्त हो जाता है, वैसे तत्वज्ञानी का मन दुःख–शोक से मलीन नहीं होता । उसी प्रकार जैसे ओस से औषधियाँ उल्लास को प्राप्त होती हैं, वैसे ही उनका मन भोगों से प्रसन्न भी नहीं होता ।१६। हे राम ! वे तत्वज्ञानी पुरुष कर्तृत्व के अभिमान से बचते हुए, काम मंजरियों का सेवन करते हुए भी इच्छित अनिच्छित की अभिलाषा नहीं करते थे और न उनका त्याग ही करते थे ।१७। वे शत्रु-जेता न तो सम्पत्ति की प्राप्ति कर हर्षित होते थे और न संकट प्राप्त होने पर दुःखित होते थे, उन्हें सुख से हर्ष या दुःख से खिन्नता नहीं होती थी ।१८। वे मोह के कारणों से न तो मोहित होते थे और न विपत्तियों से विचलित ही । उन्हें शुभ कार्यों से भी कोई हर्ष नहीं होता था और न शोक की प्राप्ति से वे आपके समान रुदन ही करते थे ।१९। आचार से युक्त कर्मों को करते हुए, क्रोध रहित एवं पर्वत के समान वे दृढ़ रहते थे ।२०।

तां त्वं दृष्टिमवष्टभ्य राघवाऽघविनाशिनीम् ।
अनहंकृत्याहङ्कारो विहरस्व यथाक्रमम् ।२१
यथा भूतामिमामेव पश्यन्सर्गपरम्पराम् ।
मेरुस्थितोऽब्धिगम्भोरः सममास्त्व गतभ्रमः ।२२
चिन्मात्रं सर्वनेवेदमित्थमाभासतां गतम् ।
नेह सत्यमसत्यं वा क्वचिदस्ति न किञ्चन ।२३
महत्ताबलमालम्ब्य त्यक्त्वेदमवहेलया ।
असक्तबुद्धिः सर्वत्र भव भव्य-भवक्षयी ।२४

किं रोदिषि घनोद्वेगं मूढयच्चाऽनुशोचसि।
भ्रमस्युद्भ्रान्तचित्तश्च सौम्यावर्तः तृण यथा।२५

हे राघव ! आप जीवन्मुक्तों की पापनाशिनी उस दृष्टि के अवलम्ब द्वारा अहं-दोष से रहित चिन्मात्र में ही आत्मबुद्धि रखते हुए यथाक्रम विहरिए।२१। इस सृष्टि परम्परा को देखते हुए आप मेरु के समान दृढ़, समुद्र जैसे गम्भीर एवं समदृष्टि हो जाइये।२२। यह सभी दृश्यमान जगत् चिन्मात्र रूप ही है, इसमें सत्य-असत्य नहीं हैं, और न चित्स्वरूप के अतिरिक्त किसी अन्य का अस्तित्व ही है।२३। हे राम ! अवहेलना पूर्वक जगत् का त्याग और ब्रह्मरूपत्व का अवलम्बन कीजिये तथा अनासक्त बुद्धि रख कर भवसागर का नाश करने वाले हो जाइये मूढ़ के समान शोक-संतप्त क्यों हो रहे हैं ? जल के भ्रमरों में जैसे तृण उद्–भ्रान्त होता है वैसे आप भ्रान्त एवं चञ्चल क्यों हो रहे हैं।२४-२५।

अहो नु भगवन्नूनं सम्यग्जातमलक्षयः।
त्वत्प्रसादात्प्रबुद्धोऽस्मि सूर्यसंगादिवाऽम्बुजम्।२६
भ्रान्तिरस्तंगता नूनं मिहिका शरदीव मे।
सशान्ताखिलसन्देहः करिष्ये वचनं तव।२७
व्यपगतमदमोहो भानमात्सर्यमुक्त-
श्चिरतरमुदितात्मा शान्तशोकश्चिरेण।
पुनरसुखमगच्छन्स्वच्छयैकान्तबुद्धया।
यदि ह वदसि साधो तत्करिष्येऽविशङ्कम्।२८

श्रीराम बोले—हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मेरा मन का मल नष्ट हो गया हैं जैसे सूर्य के सम्पर्क से कमल खिल जाता है, वैसे ही मेरी बुद्धि विस्तृत हो गई हैं।२६। जैसे शरत्काल की प्राप्ति पर वर्षा नष्ट हो जाती है वैसे ही मेरी भ्रान्ति दूर हो चुकी है, अब मैं सन्देह रहित एवं शान्त होकर आपके वचनों के अनुसार चलूंगा।२७। मेरा मद, मोह, मान, मात्सर्य मिट चुका, चिरकाल के पश्चात् मेरी आत्मा शोक-संताप से रहित, शान्त एवं प्रमुदित हुई है। अब मैं भ्रम

रूप दुःख में भी नहीं पड़ूँगा, अतः निश्चय बुद्धि वाला मैं अब हे साधो ! आप जिस कर्त्तव्य का उपदेश करेंगे, उसका निःशङ्क रूप से पालन करूँगा ।२८।

—×—

१३—काकभुशुण्ड का प्रसंग वर्णन

सम्यग्ज्ञानविलासेन वासनाविलयोदये ।
जीवन्मुक्तपदे ब्रह्मन्नूनं विश्रान्तवाहनम् ।१
प्राणस्पन्दनिरोधेन वासनाविलयोदये ।
जीवनमुक्तपदे ब्रह्मन्वद विश्रम्यते कथम् ।२
संसारोत्तरणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ।
तां विद्धि द्विप्रकारां त्वं चित्तोपशमधर्मिणीम् ।३
आत्मज्ञानप्रकारोऽस्या एकः प्रकटितो भुवि ।
द्वितीयः प्राणसंरोधः शृणुयोऽयं मयोच्यते ।४
सुलभत्वाददुःखत्वात् कतरः शोभनोऽनयोः ।
येनाऽवगतमात्रेण भूयः क्षोभो न बाधते ।५

श्री राम बोले—ब्रह्मन् ! सम्यग् ज्ञान के द्वारा वासना के विलीन होने पर जीवन्मुक्त पद में मुझे विश्रान्ति की प्राप्ति हुई है ।१। हे भगवन् ! अब आप यह बताइये कि प्राण का स्पन्द रोकने पर वासना का नाश होकर जीवन्मुक्तपद में विश्रान्ति की प्राप्ति किस प्रकार होती है ? ।२। वसिष्ठ बोले संसार से पार करने वाला उपाय ही 'योग' कहा जाता है। चित्त को लीन करने वाले इस उपाय के दो भेद हैं—प्रथम आत्मज्ञान और दूसरा प्राण निरोध। अब इनके विषय में कहता हूँ ।३-४। श्रीराम ने पूछा—हे प्रभो ! उन दोनों में से कौन सा उपाय ऐसा है जो सुलभ, कष्ट-रहित और श्रेष्ठ है, जिसके जान लेने पर क्षोभ से वाधा की प्राप्ति नहीं होती ? ।५-६।

प्रकारौ दावपि प्रोक्तौ योगशब्देन यद्यपि ।
तथापि रूढिमायातः प्राणयुक्तावसौ भृशम् ।६
एको योगस्तथा ज्ञानं संसारोत्तरणक्रमे ।
समावुपायौ द्वावेव प्रोक्तावेकफलप्रदौ ।७
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः ।
ततस्त्वभिमतः साधो सुसाध्यो ज्ञाननिश्चयः ।८
द्वावेव किल शास्त्रोक्तौ ज्ञानयोगौ रघूद्वह ।
तत्रोक्तं भवते ज्ञानमन्तस्थं ज्ञेयनिर्मलम् ।९
प्राणापानतया रूढो दृढदेहगुहाशयः ।
अनन्तसिद्धिदः साधो योगोऽयं बुद्धिदः शृणु ।१०

वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! यद्यपि शास्त्रों में दोनों को ही 'योग' कहा गया है, फिर भी प्राण के निरोध में ही 'योग' की अधिक प्रसिद्धि है ।६। ज्ञानीजन यह भी कहते हैं कि संसार-सागर से पार करनेमें योग और ज्ञान दोनों ही समान फल देने वाले हैं ।७। किसी सुकुमार चेता पुरुष के लिए योग असाध्य है तो किसी के लिये ज्ञान कठिन । हे रघुवर ! शास्त्रों में उक्त दोनों उपायों का वर्णन है। उनमें ज्ञेय को स्पष्ट करने वाला अंतर्ज्ञान आत्मज्ञान है ।८-६। हे साधो ! प्राण-अपान की समता वाला योग दृढ़ देह रूपी गुफा का आश्रय करता है, सिद्धि चाहने वालों को अनन्त सिद्धियों का देने वाला और ज्ञानेच्छुकों को आत्म ज्ञान का दाता है ।१०।

अस्ति तावदनन्तस्य तस्य क्वचिदयं किल ।
जगद्रूपः परिस्पन्दो मृगतृष्णा मराविव ।११
तत्र कारणतां यातो ब्रह्मा कमलसंभवः ।
स्थितः पितामहत्वेन सृष्टभूतभरभ्रमः ।१२
तस्याऽहं मानसः पुत्रो वसिष्ठः श्रेष्ठचेष्टितः ।
ऋक्षचक्रे ध्रुवधृते निवसामि युगं प्रति ।१३
सोऽहं कदाचित्स्थाने स्वर्गे तिष्ठञ्छनक्रतोः ।
श्रुतवान्नारदादिभ्यः कथं सुचिरजीविनाम् ।१४

कथाप्रसंगे कस्मिंश्चिदथ तत्राऽभ्युवाच ह।
शातातपो नाम मुनिर्मौनी मानी महामतिः ।१५

हे राम ! उस अनन्त परमपद में कहीं, जैसे मरुभूमि में मृगतृष्णा है, वैसे ही यह जगद्रूप है ।११। उसमें कारण रूपता को प्राप्त हुए एवं प्राणि-समूह में भ्रम उत्पन्न करने वाले कमलयोनि पितामह ब्रह्माजी अवस्थित हैं ।१२। उन्हीं पितामह ब्रह्मा का मानसपुत्र एवं श्रेष्ठ आचार वाला मैं वसिष्ठ ध्रुव द्वारा धारण किए हुए सप्तर्षिलोक में वैवस्वत् मन्वन्तर तक स्थिर रहता हूँ ।१३। कभी मैंने स्वर्ग स्थित इन्द्र सभा में स्थित रह कर देवर्षि नारद से दीर्घजीवी प्राणियों की कथा श्रवण की थी ।१४। उस कथा के प्रसंग में शातातप नाम के एक मित-भाषी, सम्माननीय एवं मेधावी मुनि कहने लगे ।१५।

मेरोरीशानकोणस्थे पद्मरागमये दिवि ।
अस्ति कल्पतरुः श्रीमाञ्छृंगे चूत इति श्रुतः ।१६
तस्य कल्पतरोर्मूर्ध्नि दक्षिणस्कन्धकोटरे ।
कलधौतलताप्रोते विद्यते विहगालयः ।१७
तस्मिन्निवसति श्रीमान्भुशुण्डो नाम वायसः ।
वीतरागो बृहत्कोशे ब्रह्मेव निजपंकजे ।१८
स यथा जगतां कोशे जीवतीह सुराश्चिरम् ।
चिरञ्जीवी तथा स्वर्गे नभूतो न भविष्यति ।१९
स दीर्घायुः स नीरागः स श्रीमान् स महामतिः ।
स विश्रान्तमतिः शान्तः स कान्तः कालकोविदः ।२०

शातातप बोले मेरु पर्वत के ईशानकोण में पद्मराग मणि के समान प्रकाशित शिखर पर एक कल्पतरु वृक्ष सुशोभित हैं, ।१६। उस कल्प-तरु के ऊपर स्वर्ण और रजतमय कल्पलताओं से सम्पन्न दक्षिण तने के कोटर में पक्षियों का एक घौंसला था ।१७। उस घौंसले में ऐश्वर्यवान् एवं वीतराग एक कौआ रहता है । उसका नाम भुशुण्ड है । जैसे ब्रह्माजी विशाल कोश वाले अपने कमल में निवास करते हैं, वैसे ही काक भुशुण्ड वहाँ निवास करते हैं ।१८। हे देवताओ, वह पक्षीराज इस विश्व

कोश में जिस प्रकार चिरकाल से जीवित है, उस प्रकार का चिरंजीवी तो इस स्वर्गलोक में भी न कोई हुआ, न होगा ।१९। वह काकभुशुण्ड दीर्घायु, राग-शून्य, ऐश्वर्यवान् महान् एवं स्थिर बुद्धि वाला, शान्त, कमनीय तथा काल की गति का ज्ञाता है ।२०।

इति तेन भुशुण्डोऽसौ भूयः पृष्टेन वर्णितः ।
यथावद्देव देवानाँ सभायाँ सत्यमुक्तवान् ।२१
कथावसरसशान्तावथ याते पूर्णे सुरव्रजे ।
भुशुण्डविहगं द्रष्टुमहं यातः कुतूहलात् ।२२
भुशुण्डःसस्थितो यत्र मेरोः श्रृंगं तदुत्तमम् ।
संप्राप्तवान् क्षणेनाऽहं पद्मरागमयं वृहत् ।२३
सुरकिन्नरगन्धर्वविद्याधरसमन्वितम् ।
जगज्जालमिवाऽनन्त दशाशाकाशपूरकम् ।२४
नीरन्ध्रकलिकाजालं नीरन्ध्रमृदुपल्लवम् ।
नीरन्ध्रविकसत्पुष्पं नीरन्ध्रवनमालितम् ।२५

उस काक भुशुण्ड के विषय में मैंने कुछ कालोपरान्त उन शातातप से पुनः पूछा था तो उन्होंने पूर्व प्रकार से ही उसका वर्णन किया इससे उनके वर्णन की सत्यता में सन्देह नहीं रहा ।२१। कथा प्रसंग की समाप्ति पर सब देवता अपने-अपने स्थान को गये और मैं भी उत्कंठा पूर्वक काकभुशुण्ड को देखने की इच्छा से चल पड़ा ।२२। उस मेरु पर्वत के पद्मरागमणि जैसे चमकते हुए श्रेष्ठ शिखर पर जहाँ काक-भुशुण्ड रहता था मैं एक क्षण में ही जा पहुँचा ।२३। वह शिखर देवता, किन्नर, गन्धर्व और विद्याधरों आदि से समन्वित था, जगत् जाल के समान अनन्त वह शिखर दसों दिशाओं और आकाश को भी व्याप्त किए हुए था ।२४। वह कलिका-जाल से परिपूर्ण और कमनीय पल्लवों से युक्त था । वहाँ सुन्दर पुष्प खिले हुए थे, जिनसे वनमालाएं प्रसूत होती थीं ।२५।

नीरन्ध्रमञ्जरीपुञ्जं नीरन्ध्रमणिगुच्छकम् ।
नीरन्ध्रांशुकरत्नाढ्यं लताविलसनाकुलम् ।२६

सर्वत्र कुसुमापूरैः सर्वत्र फलपल्लवैः।
सर्वामोदरजःपुञ्जैः परं वैचित्र्यामागतम् ।२७
तस्य कक्षेषु कुञ्जेषु लतापत्रेषु पर्वसु।
पुष्पेष्वालयसंलीनान् विहगान् दृष्टवानहम् ।२८
निशानाथकलाखण्डमृणालशकलैधितान् ।
अर्जुनाक्ष्भोजिनीकन्दकवलान् ब्रह्मसारसान् ।२९
विरञ्चेरथ हसानां पोतकान् सामगायिनः।
ॐकारवेदसुमृदो ब्रह्मविद्यानुशासनात् ।३०

सर्वत्र मंजरी पुञ्ज और मणि जैसे पुष्प गुच्छे लगे थे, रत्न रूपी वस्त्रों से आवेष्टित उस शिखर पर लतायें झूम रही थी ।२६। सब ओर सुन्दर पुष्प खिले हुए फल-पत्र और परागों से युक्त अद्‌भुत प्रतीत होने वाले उस कल्पतरु को मैंने देखा ।२७। फिर उस वृक्ष के तने और पुष्प, पत्र, लता आदि से युक्त शाखा के विबरों में घोंसले बनाकर रहने वाले पक्षियों की देखा ।२८। वहाँ कमलनाल के समान चन्द्रमा की कला के खण्डों से बढ़ते हुए, कमलिनी कन्द का भोजन करने वाले, ब्रह्माजी, के वाहन सम पक्षी मुझे दिखाई दिये ।२६। वहीं ब्रह्माजी के वाहन वे हंस भी मैंने देखे जो वेद एवं ब्रह्मविद्या में पारंगत थे और वहाँ साम-गान कर रहे थे ।३०।

उद्‌गीर्ण मन्त्रनिचायान स्वाहाकारनिभस्वनान् ।
अथस्थितैकतडिस्पुञ्जनीलमेघसमोपमान ।३१
देवैर्निरीक्षतान् नित्यं यज्ञवेदिलतादलान्।
शुकान्काशानवाञ्छ्यामाञ्छिशुञ्छिखिशिखान् ।३२
गौरीरक्षितवर्हौघानभंकान् वरबर्हिणः।
स्कन्दोपन्यस्तनिःनेषशैवविज्ञानकोविदान् ।३३
द्वितुण्डाँश्च भरद्वाजान् हेजचूडान्विहंगमान्।
कलविंकबलान् गृध्रान्कोकिलान् क्रौञ्चकुक्कुटान् ।३४
भासचाषबलाकादीन् वहूनन्याँश्च राघव ।
भूतौघं जगतीवाऽहं दृष्टवांस्तत्र पक्षिणः ।३५

फिर मैंने मंत्र पाठ करते हुए, स्वाहाकार के समान शब्द वाले शंखोपम विद्युत् और नीलमेघ जैसे उन शुकों को मैंने देखा जो अग्नि के वाहन कहे गये हैं, उनका देवगण नित्य दर्शन किया करते थे। वे यज्ञ वेदियों को आच्छादिय करने वाले कुशों के तुल्य हरित वर्ण के थे फिर अग्नि शिखा के समान देदीप्यमान शिखाओं वाले मयूरों के अर्भक देखे जिनके परों की रक्षिका पार्वती जी हैं, जो स्वामी कार्तिकेय द्वारा उपादेय शैव ज्ञान में पारंगत थे।३१-३३। तदनन्तर दो चोंच वाले भारद्वाज नामक पक्षी और सोने की शिखा वाले पक्षी तथा कलविंक, गृघ्र कोयल, क्रौंच मुर्गा आदि विहंग समूह को मैंने वहाँ देखा।३४। हे राघव ! वही बलाका आदि अन्य अनेक रूप वाले बहुत से पक्षियों को मैंने उसी प्रकार देखा, जैसे विश्व में विविध प्रकार के जीव भरे पड़े हैं।३५।

तत्र पश्याम्यहं यावदेकान्ते स्कन्धैकोटरे।
विचित्रकुसुमास्तीर्णे विविधामोदशालिनि।३६
पुण्यकृद्योषितां स्वर्गे प्रियस्तवकवासिताः।
अपरिक्षुभिताकाराः सभायां वायसाः स्थिताः।३७
विभेद्य मेधावातेन समेनौवाऽपसारिताः।
तेषां मध्ये स्थितः क्षीमान् भुशुण्डः प्रीन्नताकृतिः।३८
प्राणस्पन्दावधानेन नित्यमन्तर्मुखः सुखी।
चिरञ्जीव इति विख्यातश्चिरजीवितया तया।३९
जगद्विदितदीर्घायुर्भुशुण्ड इति विश्रुतः।
युगागमापायदशादर्शनप्रौढमानसः।४०

फिर जैसे ही मेरी दृष्टि फिरी तो एकान्त कोटर पर अद्भुत सुगन्धित पुष्पों से सुशोभित अप्सराओं के उपभोग के योग्य स्वर्ग जैसे स्थान में, अक्षुब्ध आकृति वाले बहुत से काक स्थित हैं। उन पुष्पों से सुगन्धित शान्त सभा जैसे वातावरण में उन कांकों के मध्य में उन्नत देह वाले श्रीमान् काकभुशुण्डजी विराजमान हैं।३६-३८। प्राणायाम की क्रिया से प्राणके निरोध द्वारा अन्तर्मुख वृत्तिवाला वह काक बड़ा सुखी

था और चिर जीवन प्राप्त करने के कारण 'चिरजीवी' नामसे विख्यात हो गया था ।३९। संसार में विदित वह दीर्घायुष्य काक युगों की उत्पत्ति और विनाशों को देखता-देखता प्रौढ़ हृदय का हो गया था ।४०।

१४—काकभुशुण्ड—वसिष्ठ भेंट

अथ तस्याऽहमपतं दीप्यमानवपुः पुरः ।
किञ्चिद्विक्षोभितसभः खान्नक्षत्रमिवाऽचले ।१
चुक्षोभ वायसास्थानं नीलोत्पलसरः समम् ।
मत्पातमन्दवातेन भूकम्पेनेव सागरः ।२
अशंकितमभि प्राप्तं दर्शनान्मामनन्तरम् ।
भुशुण्डस्तु वसिष्ठोऽयं प्राप्तइत्यवयुक्तवान् ।३
पत्रपुञ्जात् समुत्तस्थौ मेघशाव इवाऽचलात् ।
हे मुने स्वागतमिति प्रोवाच मधुराक्षरम् ।४
सगल्पमात्रजाताभ्यां कराभ्यां कुसुमाञ्जलिम् ।
मह्यमाशु तदैवाऽदान्मेघो हैममिवोत्करम् ।५

वसिष्ठजी बोले-हे राम वहाँ पहुच कर मैं अपने दीप्तिमय देह से उस काकभुशुण्ड के सामने वैसे ही उतरा जैसे कोई आकाशमय नक्षत्र पर्वत पर उतर आवे। मेरे उतरते ही इस सभा में कुछ हलचल–सी उत्पन्न हो गई ।१। जैसे भूकम्प के धक्कों से सागर में उथल पुथल मच जाती है वैसे ही मेरे उतरने के कारण आये हुए मन्द वायु के झोंके से नील कमलों से परिपूर्ण सरोवर जैसी प्रतीत होने वाली उस कौओं की सभा में उथल पुथल मच गई ।२। फिर उस त्रिकालदर्शी भुशुंड ने मुझे देखते ही अशङ्कित चित्त से यह वशिष्ठ जी आगये, ऐसा समझ लिया ।३। तदुपरान्त पर्वत से उठते हुए अल्प मेघ के समान, पत्र समूह से उठते हुए भुशुण्ड ने मधुर शब्दों में कहा—हे मुने, आपका स्वागत हैं ।४। यह कहते ही उसने अपने दोनों हाथों से पुष्पांजलि की वर्षा मेरे ऊपर उसी प्रकार की, जिस प्रकार कि मेघ हिम की घोर वर्षा करता है। अञ्जलि के पुष्प उसके सङ्कल्प मात्र से ही उत्पन्न हो गये ।५।

इदमासनमित्युक्त्वा नव कल्पतरुच्छदम्।
उपानीतवति त्यक्तभृत्ये वायसनायके।
भुशुण्ड उत्थिते स्वीयकलापक्षेषु पक्षिषु।६
उपविष्टं मुनिं दृष्ट्वा स्वासनोन्मुखदृष्टिषु।७
समन्तात् खगवृन्देन भुशुण्डेन समं ततः।
तस्मिन्कल्पलतापुञ्जे ह्युपविष्टोऽहमासने।८
अर्घ्यपाद्यादि सम्पाद्य भुशुण्डस्तुष्टमानसः।
मामुवाच महातेजाः सोहृदान्मधुराक्षरम्।९
अहो भगवताऽस्माकं प्रसादो दर्शितश्चिरात्।
दर्शनामृतसेकेन यत्सिक्ताः सद्द्रुमा वयम्।१०

फिर उस काकनायक भुशुण्ड ने भृत्यवर्ग की अपेक्षा स्वयं उठ कर कल्पवृक्ष के नवीन पत्रों का आसन लाकर उपस्थित किया और बोला कि यह आसन है।६। तब मैं उस आसन पर बैठा, भुशुण्ड भी बैठ गया। मुझे आसन पर स्थित हुआ देखकर सभा में स्थित सभी काक अपने-अपने आसनों की ओर देखने लगे इस प्रकार जब सभी उस कल्पलता कुंज में अपने-अपने आसनों पर बैठ गये तब भुशुण्डने अर्घ्य,पाद्यादि से मेरा सत्कार किया और अत्यन्त हर्षित चित्त से मधुर वाणी में बोला।७-९। भुशुण्ड ने कहा—हे भगवान्! मेरा अहोभाग्य है जो दीर्घकाल के पश्चात् आपका अनुग्रह युक्त दर्शन हमें प्राप्त हुआ है, उस दर्शनामृत से सींचे गये हम आज पुण्यवृक्ष के समान ही पवित्र हो गये हैं।१०।

मत्पुण्यचिरसंभारप्रेरितेन त्वयाऽधुना।
मुने मान्यैकमान्येन कुतश्चाऽऽगमनं कृतम्।११
कच्चिदस्मिन्महामोहे चिरं विहरतस्तव।
अखण्डितैव समता स्थिता चेतसि पावने।१२
किमर्थमद्याऽऽगमनक्लेशेनात्मा कदर्थितः।
वचनश्रवणोत्कानामाज्ञां नो वक्तुमर्हसि।१३
त्वत्पाददर्शनादेव सर्वं ज्ञातं मया मुने।
त्वदागमनपुण्येन वयमायोजितास्त्वया।१४

चिरञ्जीवितचर्चाभिर्वयं वः स्मृतिमागताः ।
येनेदमास्पदं पादैस्त्वं पवित्रितवानयम् ।१५

यद्यपि आपका आगमन मेरे चिर संचित पुण्यों की प्रेरणा से ही हुआ, फिर भी महामान्य ! इस समय आप कहाँ से पधार रहे हैं ।११। हे मुने ! इस महामोह से आच्छन्न विश्व में दीर्घकाल से विचरण कर रहे हैं । आपके पवित्र चित्त में अखण्डता तो समान रूप से स्थित है न ? ।१२। हे प्रभो ! इतने कष्ट सहकर आपका आगमन किस उद्देश्य से हुआ है । हम आपके आदर्शपूर्ण वचनों को सुनने के लिए उत्कंठित हो रहे हैं क्योंकि आज्ञा देने में आप सर्वदा समर्थ हैं ।१३। हे मुने ! आपके चरणों के दर्शन करते ही मैं यह जान गया हूँ कि आपने अपने आगमन रूपी पुण्य से हम पर बड़ा उपकार किया है ।१४। देव सभा में हमारी चर्चा ही आपके द्वारा हमारी स्मृति का एक मार्ग है और उसी द्वारा आपने अपने चरणों से मुझे पवित्र कियाहै ।१५।

ज्ञातत्वादागमोऽप्येवं त्वां पृच्छामीह यन्मुने ।
भवद्वाक्यामृतास्वादवाञ्छितं प्रविजृम्भते ।१६
इत्युक्तवानसौ पक्षी भुशुण्डश्चिरजीवतः ।
त्रिकालामलसंवेदी तत्र प्रोक्तमिदं मया ।१७
विहंगम महाराज सत्यमेतत्त्वयोच्यते ।
द्रष्टुमभ्यागतोऽस्म्यद्य त्वामेव चिरजीविनम् ।१८
आशीतलान्तःकरणो दिष्ट्या कुशलवानसि ।
पतितोऽसि न बुद्धात्मा भीषणां भववागुराम् ।१९
तदेतं संशयं छिन्धि भगवन्वकथय सत्यतः ।
कस्मिन्कुले भवाञ्जातो ज्ञातज्ञेयः कथं भवान् ।२०

हे मुने ! यद्यपि आपके आगमन के विषय में मैंने पहिले से ही सब कुछ जान लिया है, फिर भी आपकी वाणी रूपी अमृत का रसास्वादन करने की उत्कठा बढ़ रही है, इसलिए आपसे पूछ रहा हूँ ।१६। उन चिरजीवी एवं त्रिकाली काकभुशुण्ड के इस प्रकार कहने पर मैं बोला

।१७। वसिष्ठजी ने कहा—हे विहंगराज ! आप यथार्थ कह रहे हो, मैं आज आप चिरजीवी के दर्शनार्थ ही आया हूँ ।१८। आपका अन्तःकरण पूर्वतया शांत है। आप प्रबुद्धात्मा एवं कुशल हो इसीलिए इस भीषण भवजाल से बचे हुए हो । हे भगवन् ! आप सर्वज्ञानी हो, इसीलिए मेरे इस संशय का समाधान करो कि आप किस कुल में उत्पन्न हुए हो, इस तत्वज्ञान की प्राप्ति आपको किस प्रकार हुई ।१९-२०।

कियदायुश्च ते साधो वृत्तं स्मरसि किञ्च वा ।
केनाऽयं वा निवासस्ते निर्दिष्टो दीर्घदर्शिनः ।२१
यत्पृच्छसि मुने सर्वं तदिदं वर्णयाम्यहम् ।
अनुद्वेगितया यत्नात्कथा श्राव्या महात्मना ।२२
अथ राम भुशुण्डोऽसौ न प्रहृष्टो न वक्रधीः ।
सर्वांगसुन्दरः श्यामः प्रावृषीव पयोधरः ।२३
स्निग्धगम्भीरवचनः स्मितपूर्वाभिभाषणः ।
करस्थविल्वफलवत्प्रतोलितजगत्त्रयः ।२४
तृणवदहृष्टसकलः प्रमेयीकृतसंसृतिः ।
लोकाजव जवीभावे दृष्टज्ञानपरावरः ।२५

हे साधो ! हे दीर्घदर्शी, आपकी आयु और इत्तिवृत्त क्या है ? निवास रूप इस कल्पवृक्ष को आपके लिए किसने निश्चित किया है ? आप उद्वेग रहित होकर इस कथा को कहिये ।२१-२२। वशिष्ठजी बोले- हे राम ! फिर वह वर्षा के मेघों जैसा श्याम वर्ण वाला सर्वांग सुन्दर, लाभ-हानि से प्रसन्न या दुःखित न होने वाला काकभुशुण्ड स्निग्ध और गम्भीर वाणी कहने लगा, अभिभाषण पूर्व उसमें स्मितता थी। हाथों की विल्वफल के समान इंगित से प्रतीत होता था कि त्रयलोक की इयत्ता का उसे पूर्ण ज्ञान था ।२३-२४। उसके लिए विश्व के सम्पूर्ण भोग तृण के समान थे, वासना-भूमि इस जगत् के रहस्य को वह भले प्रकार जानता हुआ परावर ब्रह्म का पूर्ण ज्ञाता हो गया था ।२५।

धारस्थिरमहाकारो विश्रान्तिगतमन्दरः ।
परिपूर्णमनाः शुद्धः क्षीरार्णवि इवाऽऽगनः ।२६
परिविश्रान्तधीः शान्तः परमानन्दघूर्णितः ।
आविर्भावतिरोभावतज्ज्ञः ससारजन्मनाम् २७
सरभसवदनाभिरामरूपः ।
प्रियमधुरोचितगानहृद्यवाक्यः ।
स्वयमिव नवमाश्रितः शरीरं
सकलभयापहरं प्रहर्षयुक्तः ।२८
इदममलगिरा स मामाऽऽह शुद्ध-
ममृतमनुज्झितसंभ्रमक्रमेण ।
कथयितुमखिल निजं स्वरूपं
मधुपमिव स्तनितेन मुग्धमेघ ।२९

वह धीर, स्थिर एवं महानाकार था, समुद्र मन्थन के पश्चात्, मन्दराचल के निर्गत होने पर जैसी विश्रान्ति क्षीर सागर ने धारण की थी वैसी ही विश्रान्ति मनोरथों की परिपूर्ण और शुद्ध मन की उसे पूर्ण उपलब्धि थी ।२६। वाह्य रूप से विश्रान्त बुद्धि वाला, शान्त एवं भीतर से परमानन्द से परिपूर्ण था । संसार के आविर्भाव, तिरोभाव एवं प्राणियों के जन्मादि का उसे ज्ञान था ।२७। उसकी वाणी वीणा-गान के समान प्रिय, मधुर एवं सरस थी । मानो भय का अपहरण करने वाले आनन्द-युक्त ब्रह्म ने काकभुशुण्ड के रूप में नवीन देह धारण किया है ।२८। इस प्रकार यह निर्मल वाणी से कहने लगा जिस प्रकार मेघ अपने गर्जन के द्वारा मकरन्द पान में अनुरक्त भ्रमर से कह रहा हो ।२९।

१५–पानोत्सवादि कावर्णन

अस्त्यस्मिञ्जगति श्रेष्ठः सर्वनाकनिवासिनाम् ।
देवदेवो हरो नाम देवदेवाभिवन्दितः ।१

षट्पदश्रेणिनयया यस्योच्चस्तबकस्तनी ।
विलासिनी शरीरार्धे लता चूततरोरिव ।२
हिमहारसिता यस्य लहरीस्तवकोम्भिता ।
आवेष्टतजटाजूटा गंगाकुसुमालिका ।३
क्षीरसागरसंभूत प्रसृतामृमनिर्झरः ।
प्रतिबिम्बकरः श्रीमान्यस्य चुडामणिः शशी ।४
अनावरतशिरश्चन्द्रप्रस्रवेणाऽमृतीकृतः ।
यस्येन्द्रनीलवत्कायकूटः कण्ठे विभूषणम् ।५

काकभुशुण्ड बोले–हे महामुने ! इस जगत् में सभी देवलोक निवासियों के देवाधिदेव एवं सभी देवताओं द्वारा वन्दित भगवान् शंकर ही हैं ।१। आम के वृक्ष जैसे उनके देहार्ध में भौंरों की पंक्ति जैसे नेत्रों वाली और उन्नत पुष्प गुच्छों के समान स्तनमयी लता शोभा पाती है ।२। जो गंगा रूपिणी कुसुम-मालिका के हार के समान लहर रूपी स्तवकों से गूँथी गई है उसने उनके जटा जूट को वेष्टित किया हुआ है ।३। क्षीरसागर से उत्पन्न हुआ अमृत की वर्षा करने वाला चन्द्रमा ही उनके लिए प्रतिबिम्ब दिखाने वाला एवं चूड़ामणि स्वरूप है ।४। चन्द्रमा के निरन्तर अमृत प्रवाह से विष शक्ति से रहित एवं संजीवनी शक्ति को प्राप्त हुआ, कालकूट विष उनके कंठ में नीलमणि के समान विभूषित है ।५।

धूलिलेखामहावर्तं स्वच्छपावकसम्भवम् ।
परमाणुमयं भस्म यस्य ज्ञान जलं सितम् ।६
निर्मलानि जितेन्दूनि मृष्टानि घटितानि च ।
यस्याऽस्थीन्येव रत्नानि देहकान्तमयानि च ।७
सुधाकरसुधाधौतं नीलनीरदपल्लवम् ।
तारकाबिन्दुशवलं यस्य चाम्बरमम्बरम् ।८
भ्रम च्छवांगनापक्वमहामांसौदनाकुलम् ।
बहिर्भूतं गृहं यस्य श्मशानं हितपांडुरभ् ।९

कपालमालाभरणाः पीतरक्तवसासवाः ।
अन्त्रस्त्रग्दामवलिता वन्धवो यस्य मातरः ।१०

प्रलय की कारण रूपा, अग्निजा, झंझावातों को प्रकट करने वाली परमाणुमयी, शुभ्र एवं ज्ञानजलात्मिका भस्म ही उनका अंग राग है ।६। चन्द्रमा के जलाने वाली, अत्यन्त निर्मल मणियों के समान स्वच्छ की गई, मालाकार ग्रन्थित देहकान्त रूप अस्थियां ही उनकी शोभा बढ़ाने वाले रत्नरूप हैं ।७। चन्द्रामृत द्वारा प्रक्षालित, नील मेघ के पल्लवों से समन्वित और तारे रूपी बिन्दुओं से सम्पन्न जो आकाश है, वही उनके लिए वस्त्र रूप हैं ।८। परिपक्व नर-मांस एवं बलि के ओदन से परि-व्याप्त घूमती हुई श्रृगालियों से युक्त बस्तियों से बाहर जो हिम के समान खेत श्मशान है, वही उनका घर है ।९। कपाल-माल से समन्वित, रक्त-वसा रूपी आसव का पान करने वाले, आँत रूपी सूत्र से वेष्टित हैं, ऐसे उनके मातृकागण और बांधव हैं ।१०।

प्रस्फुरन्मूर्धमणयश्चरन्तो मसृणांगकाः ।
भुजंगा वलया यस्य प्रकचत्कनकत्विषः ।११
दृक्पातदग्धशैलेन्द्रं जगत्कवललालसम् ।
भैरवाचरितं यस्य लीलामन्त्रासितासुरम् ।१२
स्वस्थीकृतजगज्जातस्यव्यापारस्थचेतसः ।
यहृच्छया करस्पन्दो यस्याऽसुरपुरक्षयः ।१३
एकाग्रमूर्तयः स्नेहरागद्वेषविवर्जिताः ।
स्ववशना यस्य ते शैलाः सरसा अपि नीरसाः ।१४
यस्य नेत्रत्रयोद्भासिवदनस्याऽमलप्रभाः ।
यथा गणास्तथैवाऽन्याः परिवारो हि मातरः ।१५

चिकने अंग वाले, मस्तक मणियों सुशोभित, सोने सी कांति वाले भुजंग उनकी भुजाओं में कंकण स्वरूप से शोभित हैं ।११। देखने मात्र से हिमालय को भी भस्म करने में समर्थ, संसार को निगल लेने के लिए लालायित, लीला मात्र से असुरों को त्रास पहुँचाने वाली एवं भयंकर उनकी जीवन-चर्या है ।१२। परन्तु सत्य-संकल्प-युक्त उनका

चित्त विश्व-कल्याण की भावना से प्राणियों को देखते हुए ही समाधि में स्थित रहता है। उसी समाधि के टटने पर उनके हाथ का हिलना मात्र ही विकराल असुरों और बड़े-बड़े नगरों को नष्ट करने में समर्थ होता है।१३। स्नेह, राग और द्वेष से रहित, रसमय होते हुए भी भोजन जिनके लिए नीरस है, अशनादि से वितृष्णाओं से जो रहित हैं, एकान्त पर्वत में ही जो ध्यान के योग्य हैं।१४। त्रिनेत्र, दीप्तिमय मुख वाले उन शंङ्कर का सर्वशक्ति से समन्वित प्रमथगण एवं मातृकागण रूपी परिवार ही सहायक है।१५।

जया च विजया चैव जयन्ती चाऽपराजिता।
सिद्धा रक्ताऽलम्बुसा च उत्पला चेति देवताः।१६
सर्वासामेव मातृणामष्टावेतास्तु गायिकाः।
आसामनुगतास्त्वन्यास्तासामनुगताः पराः।१७
तासां मध्ये महार्हाणां मातृणां मुनिनायक।
अलम्बुसेति विख्याता माता मानद विद्यते।१८
वज्रास्थितुण्डश्चण्डाख्यं इन्द्रनीलाचलोपमः।
यस्यास्तु वाहनं काको वैष्णव्या गरुडो यथा।१९
इत्थष्टैश्वर्ययक्तारता मातरो रौद्रचेष्टिताः।
कदाचिन्मिलिता व्योम्नि सर्वाः केनाऽपि हेतुना।२०

जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, सिद्ध-रक्ता, अलम्बुसा और उत्पला नाम की यह आठ मातृकाएँ प्रमुख हैं तथा अन्य मातृकायें इन्हीं का अनुकरण करती हैं और उन अनुकरण करने वाली मातृकाओं का अनुसरण उनकी अनुगत मातृकाएँ करती है।१६-१७। हे मुनिराज ! हे मानद ! उन महिमामयी आठ मातृकाओं में भी अलम्बुसा नाम की मातृका अधिक प्रसिद्ध है।१८। जैसे वैष्णवी शक्ति का वाहन गरुड़ है, वैसे ही अलम्बुसा का वाहन इन्द्रनील पर्वत के समान नीला एवं वज्र जैसे दृढ़ अस्थियों के मुख वाला चन्ड नामक काक है।१९। एक समय की बात है, जब वे भयंकर चेष्टा वाली एवं अष्टसिद्धि सम्पन्न सभी मातृकाएँ गगन मडल में एकत्रित हुई।२०।

उत्सवं परमं चक्रुः परमार्थप्रकाशकम् ।
वामस्रोतोगता एतास्तुम्बुरुं रुद्रमाश्रिताः ।२१
पूजयित्वा जगत्पूज्यौ देवौ तुम्बुरुभैरवौ ।
विचित्रार्थाः कथाश्चक्रुर्मदिरामदतोषिताः ।२२
अथेयमाययौ तासां कथावसरतः कथा ।
अस्मानुमापतिर्देवः किं पश्यत्यवहेलया ।२३
प्रभावं दर्शयामोऽस्य पुनर्नाऽस्मांस्त्वसौ यथा ।
दृष्टमात्रमहाशक्तिः करिष्यत्यवधीरणम् ।२४
इति निश्चित्य ता देव्यो विवर्णवदनांगिकाम् ।
उमामेव वशीकृत्य प्रोक्षयामासुराहृताः ।२५
माययाऽपहृतां भर्तुरवाद्रंगमुपागताम् ।
तामालोलकचां देव्यः शेपुरोदनतां गताम् ।२६

वाम स्रोत प्रतिपादिता इन अष्ट मातृकाओं ने तुम्बुरु नामक रौद्र रूप धारण कर परमार्थ प्रकाशनार्थ उत्सव किया ।२१। जगत्पूज्य तुम्बुरु देव और भैरव आदि का पूजन कर मद-पान से सन्तुष्ट हुई वे मातृकाएँ परस्पर वार्तालाप में तत्पर हुईं ।२२। विभिन्न कथाओं के प्रसंग में यह बात भी चल पड़ी कि उमापति शंकर भगवान हम मातृकाओं को अवहेलनापूर्वक क्यों देखते हैं ।२३। इसलिए अब हमें अपना प्रभाव दिखलाना चाहिए, जिससे कि वे हमारी महाशक्ति को जान लें और पुनः हमारा तिरस्कार न करें ।२४। इस प्रकार निश्चय करके उन मातृकाओं ने अपने रूपादि परिवर्तन पूर्वक रुद्र शक्ति उमा को अपने वश में कर समंत्रक जल से उसी प्रकार प्रोक्षित किया, जिस प्रकार यज्ञीय पशु को प्रोक्षित किया जाता है ।२५। फिर उन मातृकाओं ने माया द्वारा अपहरण की हुई चंचल केश वाली पार्वती को ओदन कर करने के लिए अभिशप्त किया ।२६।

पार्वतीप्रोक्षणदिने तस्मिंस्तत्र महोत्सवः ।
बभूव तासां सर्वासां नृत्यगेयमनोहरः ।२७

अत्यानन्दमनुद्दामरवमेवाऽबरं बभौ ।
दींर्घावियवविक्षेपविकासिजघनोदरा: ।२८
अन्या जहसुरुद्दामतालक्ष्वेडाघनांबरम् ।
लसदंगविकारं च ध्वनत्सगिरिकानना: ।२९
अन्या जगुर्ध्वनच्छैलगृहमापानतोषिता: ।
वारीव रववद्रञ्जज्जगन्मण्डलकोटरे ।३०
अन्या: पानं पपु: पुष्टचर्चितांगशिर:खुरम् ।
लालाघुरघुरारावरणदाकाशकोटरे ।३१
पपुरुदगुरथोच्चै: सत्वरा जग्मुरूचु-
र्जहसुरपुरहीषु: पेतुरुच्चैर्ववल्गु: ।
ननृतुरनिशामादु: स्वादु मांस चदेव्य-
स्त्रिभुवनमपवृत्तं चक्रुरुन्मत्तवृत्ता: ।३२

पार्वती के प्रोक्षण वाले दिन उन्होंने नृत्य ज्ञान आदि से युक्त मनोहर उत्सव मनाया ।२७। उच्च घोष और उल्लास से परिपूर्ण गगन-मण्डल उस उत्सव से आलोकित हो उठा । उस समय उन देवियों के अंग दीर्घावयव-विक्षेप से विकास को प्राप्त होने लगे ।२८। बनों और पर्वतों को मनोहर शब्द से परिपूर्ण करती हुई कुछ अन्य देवियाँ अपने सिंहनाद और करताल-ध्वनि करती हुई एवं कान्तिमय अंगों को प्रदर्शित करती हुई सविकार अट्टहास करने लगीं ।२९। विश्व-गुहा में पान से परितृप्त कुछ देवियाँ पर्वतों और घरों को पतिध्वनित करती हुई चन्द्रमा के उदय से शब्दवान् हुए समुद्र के समान गर्जन करने लगीं ।३०। लीला पूर्वक उत्पन्न शब्द से मस्तक के खुर तक अपने अंगों को पुष्ट एवं चर्चित करती हुई वे देवियाँ आकाश के एक कोटर पर स्थित हुईं पानोत्सव मनाने लगीं ।३१। उनमें कुछ पान करती कुछ उच्च गर्जन करतीं, कुछ द्रुत गति से चलतीं बोलतीं हँसती परस्पर रक्षा में अवस्थित होती और कुछ परस्पर मुख में या अग्नि में होम करने में लगीं कुछ गिरतीं, कुछ प्रलाप करती कुछ नृत्य करती कुछ जाती हुई ऐसी

उन्मत्त हो रही थीं, जिससे कि त्रिलोकी ही सदाचरण से शून्य हो गई ।३२।

१६ काकभुशुण्ड की जन्म कथा

इत्युत्सवे वर्तमाने तासां वाहास्त उत्तमाः ।
तथैव मत्ता जहसुर्नंनृतुः पपुरप्यसृक् ।१
तत्रैकत्राऽऽसवोन्मत्ताः काश्चिन्ननृतुरम्बरे ।
रथहंस्यः स्थिता ब्राह्म्याः काकश्चाऽलम्बुसारथः ।२
नृत्यन्तीनां च हंसीनां पिबन्तीनामथऽऽसवम् ।
तले चाऽब्धितटानां तु रतिः सम्यगजायत ।३
संजातरतयो मत्ताः सर्वा हंस्यः क्रमेण ताः ।
रेमिरे सह काकेनाऽप्यथ मक्तास्तदा किल ।४
सप्तानां कुलहंसीनां दयितो वायसस्त्वसौ ।
क्रमेणाऽरमतैकत्र यावदन्योन्यमीप्सितम् ।५
अथ ता गर्भधारिण्यो बभूवुः रतितोषिताः ।
देव्यश्च कृतनृतत्यास्ताः सुप्रशांतमथाऽऽययुः ।६

काकभुशुण्ड कहने लगे—हे मुनिवर ! मातृकाओं के उस उत्सव में उनके चण्डादि वाहन भी उन्हीं के समान उन्मत्त होकर हँसते हुए नृत्य-पान आदि में व्यस्त थे ।१। ब्राह्मी शक्ति के रथ में योजित होने वाली मराली भी चण्ड आदि के साथ एकत्रित होकर नृत्यादि से मत्त हो गई ।२। समुद्र तट के समतल भाग में नृत्य-पान से उन्मत्त मरालियों में रति-भाव की जागृति हुई ।३। रति भाव के जाग्रत होने के कारण वे हंस मादाएँ उन निकृष्ट जीव कौओं के साथ ही रमणरत हो गई ।४। चण्ड नामक वह कौआ उन सात राजहंसिओं के साथ तब तक रमण-रत रहा, तब तक कि वे पूर्णतया परितृप्त न हो गई ।५। तृप्त हुई उन हंसियों ने गर्भ धारण किये और जब उत्सव समाप्त हो गया तब वे मातृकाएँ, उस कृत्य को अपनी ही लीला का विलास समझकर क्रोध रहित शंकर के पास पहुँची ।६।

ददुरोदनतां यातामीश्वराय प्रियामुमाम् ।
भोजनाय महामायां देव्यस्ताः शूलपाणये ।७
प्रिया मे भोजने दत्तेत्येवं शशिशेखरः ।
बुध्वा बभूव रुषितो यदा मातृगणं प्रति ।८
तदा तास्तां समुत्पाद्य स्वांगदानेन वै पुनः ।
ददुर्भूयो विवाहेन पार्वतीमिन्दुमौलये ।९
ततो देव्यो हरश्चैव परिवारस्तथैतयोः ।
सर्वे सन्तुष्टमनसः स्वां स्वामुपययुर्दिशम् ।१०
अन्तर्वत्न्यो बभूवुस्ता ब्राह्मयो हंस्यो मुनीश्वर ।
वृत्तान्तं कथयामासुब्रह्मिया देव्या यथास्थितम् ।११
हे वत्स्यः साम्प्रतं वत्सवत्यो मे रथकर्मणि ।
न समर्था भवन्त्यो हि स्वैरं चरत साम्प्रतम् ।१२

वहाँ जाकर ओदन स्वरूप हुई उमा को उन्होंने शूलपाणि भगवान् शङ्कर को समर्पित किया ।७। ओदन रूप हुई उमा को समर्पित की गई देखकर शंकर क्रोधित हुए, तब उन देवियों ने अपने-अपने शरीर के अवयवों से पार्वती कल्पित की और विवाह विधि से उनको सौंप दिया ।८-९। तदन्तर परम सन्तोष को प्राप्त हुए शिवजी अपने परिवार सहित एवं वे देवियाँ सभी अपनी-अपनी दिशा को गये ।१०। हे मुनिराज ! ब्राह्मी शक्ति के रथ में योजित की जाने वाली वे गर्भवती हंसियाँ भी ब्राह्मी शक्ति के पास पहुँचीं और उन्होंने अपना सब वृत्तान्त उन्हें सुना दिया ।११। जिसे सुनकर ब्राह्मी ने कहा कि हे पुत्रियो ! अब तुम रथ वहन कार्य में समर्थ नहीं हो, इसलिए इच्छानुसार विचरण करो ।१२।

अजनाभिसमोजान्तवैरिञ्चकमलाकरे ।
गर्भालसा विचेरुस्ता राजहंस्यो मुनीश्वर ।१३
एवं विपक्वगर्भास्ता नाभीकमलपल्लवे ।
सुवथे स्म मृदून्यण्डान्यथ वल्लमय इवाऽङ्कुरान् ।१४

तानि कालं समासाद्य ततोऽण्डान्येक विंशतिः ।
गर्भाकान्त्या दिधा जग्मुर्ब्र ह्माण्डानीव सारवत् ।१५
अण्डेभ्यस्तेभ्य एवं हि जाता वयमिमे मुने ।
भ्रातरश्चण्डतनया वायसा एकविंशतिः ।१६
मातृभिः सह हंसीभिर्ब्राह्मी भगवती ततः ।
चिरमाराधिता सम्यक्समाधिविरता सती ।१७
प्रसादपरया काले भगवत्याततः स्वयम् ।
तथा समःनुगृहीताः स्मो येन मुक्तावयं स्थिताः ।१८

हे मुनीश्वर ! तब वे गर्भ के आलस्य से युक्त राजमरालियाँ भगवान् विष्णु के नाभिकमल में, जहाँ से कि ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे, विचरण करने लगीं ।१३। इस प्रकार उनके गर्भ परिपक्व हो जाने पर उन्होंने उस नाभि प्रदेश के पद्मभाग पर बेलों के अंकुर उत्पन्न करने के समान अण्डे उत्पन्न किए । उन्होंने कुल इक्कीस अण्डे दिए जो कि हंसियों के परस्पर पग प्रहार से, स्वर्ण-रजत के खप्परों के रूप वाले ब्रह्माण्ड के द्विधा विभक्त होने के समान, द्विदल हो गए ।१४-१५। हे मुने ! इस प्रकार, हम उन अण्डों के द्वारा उत्पन्न चण्ड के पुत्र इक्कीस कौए हुए ।१६। समय पाकर हमने अपनी माता मरालियों के साथ समाधि से निवृत्त हुई भगवती ब्राह्मीदेवी की दीर्घकाल तक आराधना की ।१७। तब कृपा करने को तत्पर हुई उन भगवती ब्राह्मी ने स्वयं साक्षात् रूप से हमको जीवन्मुक्त होकर स्थित रहने का अनुग्रह प्रदान किया ।१८।

सशान्तमनसः शांता एकांत ध्यानसंस्थितौ ।
तिष्ठाम इति निश्चित्य पितुः पार्श्वे वयं गताः ।१९
आलिंगितास्ततः पित्रा पूजितालम्बुसा वयम् ।
तया दृष्टाः प्रसादेन संस्थितास्तत्र संयताः ।२०
पुत्राः कच्चिचदपर्यन्तवासनातन्तुगुण्ठितात् ।
भवन्तो निर्गता नूनमस्मात् संसारजालकात् ।२१

नो चेद्वयं भगवतीं तदिमां भृत्यवत्सलाम् ।
प्रार्थयामो यथा यूयं भवथ ज्ञानपारगाः ।२२
तात ज्ञातमलं ज्ञेयं ब्राह्मया देव्याः प्रसादतः ।
किन्त्वेकान्तस्थितेः स्थानमभिवांछाम उत्तमम् ।२३
सर्वरत्नगजाधारः समस्तसुरसंश्रयः ।
अस्ति ह्येव महोत्सेधो मेरुर्नाम महीधरः ।२४
लसच्चन्द्रार्कदीपस्य भूतवृन्दकलत्रिणः ।
ब्रह्मांडमण्डपस्याऽन्तःस्तम्भः कनकनिर्मितः ।२५

हमारा मन जब लीनता को प्राप्त हुआ तब एकान्त में समाधिरत रहने का निश्चय करके हम अपने पिता के पास चले।१६। पिता ने हमारा आलिंगन किया। फिर हम सब ने देवी अलम्बुसा को पूजा,तब हम सभी सद्गुणों से युक्त होकर यहाँ पर रहने लगे।२०। तभी एक दिन पिता ने कहा—हे पुत्रो ! वासना रूपी तन्तुओं से निर्मित इस संसार जाल से क्या तुम मुक्त हो ? यदि नहीं हुए हो तो भगवती अलम्बुसा की प्रार्थना करके भवनाशक ज्ञान में पारगत हो जाओ।२१-२२। तब हमने कहा—हे तात ! ब्रह्माजी की कृपा से हमको ज्ञातव्य विषय की प्राप्ति हो गई है। अब हमें अपने निवास-योग्य एकान्त स्थान की आवश्यकता है।२३ चंड बोला—हे पुत्रों ! मेरुपर्वत सर्वोच्च सभी देवताओं का आश्रय स्थान एवं विविध रत्नों का भंडार है।२४। चन्द्र-सूर्य रूपी प्रकाशमान द्वीपों से युक्त, विस्तृत कुटुम्बों से परिपूर्ण रूपी गृह का यह स्वर्ण निर्मित स्तम्भ है।२५।

चतुर्दशविधान्येनं गृहस्थमिव बान्धवाः ।
उपजीवन्ति भूतानि मिथीऽदृष्टपुरास्पदम् ।२६
अस्य त्वीशानदिग्भागे पद्मरागमयं बृहत् ।
विद्यते शृंगमपरो दिवाकर इवोदितः ।२७
अस्याऽस्ति पृष्ठे भूतौघवृतः कल्पतरुर्महान् ।
जगतः शिखरादर्शे प्रतिविम्बमिव स्थितः ।२८

तस्याऽस्ति दक्षिणस्कन्धे शाखा कनकपल्लवा ।
रत्नस्तवकनीरन्ध्रा चन्द्रविम्बोल्लसत्फला ।२९
तत्र पूर्वंमया नीडं कृतमासीत् स्फुरन्मणि ।
देव्यां ध्याननिषण्णाया यस्मिन्किल रमे सुताः ।३०
बुद्धिपूर्वसमाचारैः सम्पूर्णकाकप्रत्रकैः
शीमलाभ्यन्तरं हृद्यं पूरितं कुसुमोत्करैः ।३१
तद्गच्छत सुता नीडं दुर्गं नाकवतामपि ।
भोगं मोक्षं च तत्रस्था निर्विघ्नमलमाप्स्यथ ।३२

चौदहों प्रकार के जीव इसका आश्रय प्राप्त किये हुए हैं जैसे कि एक ग्रहस्थ के आश्रम में उनके परिवारीजन रहते हैं । यह इतना वृहद है कि एक पर्वत पर निवास करते हुए भी किसी जीव को एक दूसरे का नगर अथवा घर दिखाई नहीं देता ।२६। इसके ईशानकोण में द्वितीय सूर्य के समान पद्मरागमणि का एक विशाल शिखर है ।२७। इसके पृष्ठ भाग में विचित्र जीवों को धारण किये हुए एक कल्पवृक्ष है जो शिखर रूपी दर्पण में विश्व के प्रतिविम्ब के समान परिलक्षित होता है ।२८। उसके दक्षिण तने वाली शाखा पर सुवर्ण के पत्ते लगे हैं रत्नों के समान फूलों के गुच्छे लटक रहे है और चन्द्रमा के विम्ब के समान चमकते हुए फल लगे हुए हैं ।२९। हे पुत्रो ! जब अलम्बुसा देवी ध्यानावस्था में थी तब मैंने मणिमय एवं आलोकित उस शाखा पर एक घोंसला बनाकर रमण किया था ।३०। वह घोंसला काक पुत्रों से परिपूर्ण, शीतल एवं विविध प्रकार के पुष्पों से सम्पन्न हैं ।३१। हे पुत्रों ! देवताओं के लिए भी दुर्गम उस घोंसले पर जाकर तुम निवास करो, वहाँ रहकर तुम्हें भोग और मोक्ष की निर्विघ्न रूप से प्राप्ति होगी ।३२।

इत्युक्त्वाऽस्मान्पिता तत्र चुचुम्बाऽभ्यालिलिंग च ।
ददौ देव्या यदानीतमस्भभ्यं च तदातिषम् ।३३
तद्भुक्त्वा चरणौ देव्याः पितुश्चैवाऽभिवाद्य च ।
विन्ध्यकच्चाद्वयं तस्मात्स्थानादालम्बुसात्प्लुताः ।३४

क्रमणाऽऽकाशमुल्यङ्घाय निर्गत्याऽबुदकोटरैः।
पवनस्कन्धमासाद्य वन्दितव्योमचारिणः।३५
परिहृत्य दिनाधीशं लोकांतरपुरं गताः।
स्वर्गमुल्लङ्घ्य याता स्मो ब्रह्मलोकं मुनीश्वर।३६
प्रणामपूर्वंतत्रैतद्यथावत्तत्पितुर्वचः।
मात्रे च भगवत्यै च ब्रह्म्यै चाऽऽशु निवेदितम्।३७
ताभ्यां सस्नेहमालिंग्य गच्छतेत्याज्ञयैधिताः।
वयं कृतनमस्कारा ब्रह्मलोकाद्विनिर्गताः।३८

यह कहकर हमारे पिता ने हमारा चुम्बन आलिंगन किया और भगवती का प्रसाद लाकर हमें दिया।३३। उस प्रसाद का भक्षण करके हमने पिताजी का अभिवादन किया और भगवती अम्बुलसा के उस विंध्य प्रदेश से चल दिये।३४। तब हमने आकाश को लांघते और मेघों के कोटरों को पार करते हुए वायु लोक में जाकर वहाँ विचरण करने वाले देवताओं को प्रणाम किया।३५। हे मुनीश्वर ! फिर हमने सूर्य मण्डल पार किया और स्वर्गलोक में जो पहुँचे। स्वंग से चले तो ब्रह्म-लोक में पहुँचकर भगवती ब्राह्मीदेवी की सेवा में गये और प्रणाम करके पिता द्वारा कहे हुए वचन उनसे निवेदन किये।३६-३७। ब्राह्मी देवी ने हमारा स्नेह पूर्वक आलिंगन किया और 'जाओ' कहते हुए आज्ञा दी। तब उन्हें प्रणाम करके वहाँ से भी उड़ चले।३८।

उल्लंघ्य लोकपालानां पुरीस्तपनभास्वराः।
आकाशगामिनो लोलाः पवनस्कन्धचारिणः।३९
इमं कल्पतरुं प्राप्य निजं नीडं प्रविश्य च।
दूरस्थबाधास्तिष्ठामो मुने मौनमवस्थिताः।४०
जाता यथावयमिमे स्थतिमागताश्च
संप्राप्य बोधमुपशान्तधियो यथावत्।
एतत्तदुक्यमविखण्डमलं मया ते।
शेषेण मां समनुशाधि महानुभाव।४१

लीलापूर्वक आकाश में गमन करने के अभ्यस्त हम काकगण पवन लोक में उड़ते हुए और लोकपालों के नगरों को पार करते हुए इस कल्पतरु पर आकर घोंसले में घुसे हैं। हे मुने ! हम यहाँ निर्बाध एवं मौन रूप से अवस्थित रहते हैं।३६-४०। हे महानुभाव ! आपने जो तीन प्रश्न किये थे—किस कुल में उत्पन्न हुए ? किस प्रकार ज्ञातव्य के ज्ञाता हुए और इस निवास स्थान की उपलब्धि कैसे हुई ? उनका सम्पूर्ण रूप से उत्तर आपको दे दिया है। अब यदि आज्ञा हो तो शेष आयु और अतीत पर भी प्रकाश डालूँ ? ।१४।

१७—आत्मज्ञान की उपलब्धि

आसीत्किञ्चित् पुरा कल्पे जगद्यच्चिरमास्थितम् ।
सन्निवेशेन चैतद्वदद्यापि च न दूरगम् ।१
तदेतद्वृत्तमभ्यासाद्वर्तमानेन वर्णितम् ।
मया मुनीन्द्र बोधाय प्राग्जन्मसाम्यदर्शिना ।२
अद्य मे फलितं पुण्यैश्चिरकालोपसंभृतैः ।
निर्विघ्नमेव पश्यामि यद्‌वभन्त मुने ततः ।३
इदं नीडमिमां शाखामहं चाण्यमयं द्रुमः ।
अद्य पावनतां प्राप्तान्येतानि तव दर्शनात् ।४
इदमर्घ्यमिदं पाद्यं गृहीत्वा विहगार्पितम् ।
नून पावनताँ नीत्वा शेषेणाऽऽदिश चाऽऽशुभो ।५

काकभुशुण्ड बोले हे मुनिश्रेष्ठ, हमारे जन्म के कल्प में यह भौतिक विश्व अवस्थित था, यह सब अवयव संस्थानादि विशिष्टता से इसी कल्प के समान था, इसमें कोई असमानता नहीं थी ।१। हे मुनीन्द्र, यह सब वृत्तान्त यद्यपि पुराना है तो भी इस भ्रान्तिभूत जगत् को पूर्व जन्म के समान रूप से देखने का अभ्यस्त होने के कारण ही इसमें समत्व वर्णन किया है ।२। हे मुने, अपने संचित पुण्य के फल स्वरूप ही मैं आपके निर्विघ्न रूप से दर्शन कर रहा हूँ ।३। यह घोंसला यह शाखा, यह कल्प तरु और मैं स्वयं भी आज आपके दर्शन से अत्यन्त

पवित्रता को प्राप्त हुआ हूँ ।४। हे मुने पक्षियों द्वारा समर्पित इस अर्घ्य पाद्य को आप स्वीकार करें और हमें पवित्र करते हुए शेष सेवा के हेतु प्रश्न करने के लिए स्वीकृति दीजिये ।५।

इदमर्घ्यं च पाद्यं च भूयो दत्तवति स्वयम् ।
भुशुण्डविहगे तस्मिन्निद रामाऽहमुक्तवान् ।६
भ्रातरस्ते विहगेश तादृक्सत्वा महाधियः ।
इह कस्मान्न दृश्यन्ते त्वमेवैको हि दृश्यसे ।७
तिष्ठतामिह न कालो महानतिगतो मुने ।
युगानां पङ्क्तयः क्षीणाः दिवसानामिवाऽनघ ।८
एतावताऽथ कालेन सर्व एव ममाऽनुजाः ।
तनूस्तृणमिव त्यक्त्वा शिवे परिणता पदे ।९
दीर्घायुषो महान्तोऽपि सन्तोऽपि बलिनोऽपि च ।
सर्व एव निगीर्यन्ते कालेनाऽऽकलितात्मना ।१०

वसिष्ठजी कहने लगे–हे राम ! इसके पश्चात् उस काकभुशुण्ड ने स्वयं दूसरी बार अर्घ्य पाद्य निवेदन किया । तब मैंने उससे कहा ।६। हे विहगेश. महान् बुद्धि वाले आपके अन्य भाई यहाँ क्यों नहीं दिखाई पड़ रहे हैं ? ।७। काकभुशुण्ड बोले-हे मुने ! यहाँ निवास करते हुए दीर्घ काल व्यतीत हो गया । हे निष्पाप ! दिनों की पक्तियों की तो बात ही क्या, युगों की पक्तियाँ भी क्षीण हो चुकीं ।८। इतना दीर्घ समय व्यतीत होने के कारण मेरे सभी भाइयों ने तिनके से समान अपने देह त्याग दिए और शिव पद में लीन हो गये ।९। कैसा भी दीर्घायुष्य महान् सन्त, बली क्यों न हो इस अलक्षित रूप वाले काल का कलेवा ही बन जाता है ।१०।

स्कन्धव्यूढार्कशशिषु बहत्स्वविरतं जवात् ।
वातस्कन्धातिवातेषु कच्चित्तात न खिद्यसे ।११
दग्धोदयास्तशैलेन्द्रवनव्यूहैःरवेः करैः ।
चिरमत्यन्तमासन्नैः कच्चित्तात न खिद्यसे ।१२

विषयैर्जागतैः क्षोभैरुच्चैस्तरपद्स्थितैः ।
कथ न क्षोभमायाति कल्पवृक्षोऽयमुन्नतः ।१३
निरालम्बास्पदा ब्रह्मन् सर्वलोकवहेलिता ।
तुच्छेयं सर्वभूताना मध्ये विहगजोविका ।१४
सद्दशेषु च भूतेषु निर्जनेषु वनेषु च ।
कल्पितास्याःस्थितिर्धात्रा शून्ये वा व्योमवर्त्मनि ।१५
कणमस्यां प्रभो जातो जातस्य चिरजीविनः ।
आशापादनिबद्धस्य विहगस्य विशोकिता ।१६

वसिष्ठजी बोले—हे खगराज ! अपने कन्धों पर माला के समान बारह सूर्यों और चन्द्रमाओं का वहन करने वाले वातस्कंधों का उल्लंघन करने वाले प्रलयवात के प्रवाहित होने पर क्या तुम्हारे चित्त में खेद की प्राप्ति नहीं होती ।११। चिरकाल के उदयाचल और अस्ताचल के वनोंको दग्ध करने वाली सूर्यरश्मियाँ क्या तुम्हें खेद नहीं पहुँचातीं ? ।१२। सबके ऊँचे स्थान पर अवस्थित एवं अत्यन्त उन्नत यह कल्प वृक्ष जगत् के विषय रूप से क्षुब्ध होने पर भी यथा क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ।१३। काक ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हम अवलम्ब रहित पक्षी अत्यन्त तुच्छ, सभी के द्वारा अवहेलना को प्राप्त एवं सभी जीवों में अत्यन्त गर्हित जीवन व्यतीत करने वाले हैं। १४ । विधाता ने हमारी जैसी योनियों के लिए निर्जन, अरण्य और शून्यरूपी आकाश में रहने की व्यवस्था की है ।१५। इस जाति में उत्पन्न एक पक्षी दीर्घजीवी होकर आशा रूपी जाल में बँधा है तो वह शोकरहित कैसे हो सकता है ? ।१६।

वयं तु भवगन्नित्यमात्मसन्तोषमास्थितः ।
न कदाचन नीरूपे मुह्यामो जातविभ्रमैः ।१७
न जीवितान्न मरणात् कर्मदेहस्य रोधनम् ।
यथास्थितेन तिष्ठामस्तथैवाऽस्तंगतेहिताः ।१८
अलोकित्रा लोकदशा दृष्टादृष्टात्तुदृष्टयः ।
नूनं संत्यक्तमस्काकं मनसा चञ्चले वपुः ।१९

अनारतनिजालोके नित्यं चाऽपरितापिनी ।
कल्परागस्योपरि सदा वेद्मि कालकलागतिम् ।२०
रत्नाच्छप्रकाशाढ्यौ ब्रह्मन् कल्पलतागृहे ।
प्राणापानप्रवाहेण वेद्मि कल्पमखण्डितम् ।२१

परन्तु हे भगवान् ! हम अपनी आत्मा को सन्तुष्ट रखते हुए जीवित हैं, इस तत्व रहित जगत् में उत्पन्न होने वाले विभ्रमों से हम कभी मोह को प्राप्य नहीं होते ।१७। हम जीवित रहने पर न किसी कर्म का फल चाहते हैं और न मरकर देह को ही नष्ट करना चाहते हैं। जिस प्रकार अब पूर्णकाम रूप से अवस्थित है, उसी प्रकार भविष्य में भी रहेंगे ।१८। हमने इस जगत् की सभी दशायें एवं दृष्टान्त हडि्डयों का पूर्णतया अवलोकन किया है अतः हमारे मन ने हमारी चंचलता का सर्वथा त्याग कर दिया है ।१९। मैं सदा शान्ति देने वाले अपने तेज स्वरूप में अवस्थित होकर इस कल्पवृक्ष पर रहता हुआ काल की कला से भले प्रकार परिचित हो गया हूँ ।२०। हे ब्रह्मन् ! रत्नों से आलोकित इस कल्पलता गृह में रहता हुआ मैं प्राण-अपान के प्रवाह-योग द्वारा अखण्डित कल्प को जानता हूँ ।२१

अविज्ञातदिवारात्रौ ह्यस्मिन्मुच्चैः शिलोच्चये ।
जानामि निजया बुद्ध्या लोककालक्रमस्थितिम् ।२२
सारासारपरिच्छेदि बोधाद्विश्रान्तिमागतम् ।
निरस्तचालं शान्तं सुस्थिरं मे मुने मनः ।२३
परोपशमधर्मिण्या वयमालोकशीतया ।
पश्यन्तो जागतीं मायां धिया धैर्यमुपागताः ।२४
वयमारम्भसुभगा तरला जागती स्थितिः ।
भूयोभूयः परामृष्टा न च किञ्चन बाधते ।२५
सर्वाण्येव प्रयान्त्येव समायान्ति च वा नवा ।
भगवन् भूतजालानि भयमस्माकमत्र किम् ।२६
नोज्झामो न च गृह्णीमस्तिष्ठामो नेह च स्थिता ।
मृदुपादृशा क्रूरा वयमस्मिन् द्रुमेस्थताः ।२७

यह दिन है, यह रात है, इसको न जानता हुआ मैं इस सर्वोच्च शिखर पर रहता हुआ लोकों के कार्यक्रम को भले प्रकार जानता हूँ ।२२। सार-असार के विवेकमय बोध से विश्रान्ति में स्थित हुआ मेरा मन चंचल, शान्त एवं सुस्थिर है ।२३। अत्यन्त शान्त एवं अपने ही तेज से प्रदीप्त हुई शीतल बुद्धि से हम धैर्य पूर्वक जगत् की माया को देखते रहते हैं ।२४। आरम्भ में सुभगा और रसमयी प्रतीत होने वाली संसृति पर हम बारम्बार विचार कर चुके हैं, अतः अब उससे हमें कोई बाधा नहीं है ।२५। सभी जीव व्यावहारिक रूप से ही आवागमन रत हैं, परमार्थ दृष्टि से तो कोई भी नहीं आता-जाता तो फिर हमारे लिये भय ही कैसा ? ।२६। इस कल्पवृक्ष पर अवस्थित हुए हम उपलब्ध वस्तु का त्याग अथवा अप्राप्यकी कामना नहीं करते । जैसे कोई कोमल पद वाला प्राणी कांटे वाले भूखण्ड पर सावधानी से चले या काँटे का उच्छेद करके निष्कण्टक मार्ग से चले उसी प्रकार हम सांवधानी से चलने या संसार मार्ग के उच्छेदन करने वाले क्रूर भी हैं ।२७।

वीतशोकभयायासैस्त्वादृशैः पुरुषोत्तमैः ।
तुष्टैरनुगृहीताः स्मः संस्थिता विगतामयाः ।२८
ततस्ततश्च पथस्तलुठितं न च वृत्तिषु ।
नाऽपरामृष्टतत्वार्थमस्माकं भगवन् मनः ।२९
नाऽतः परतरं किञ्चिमन्ये कुशलमात्मनः ।
सन्तो यदनुगम्यन्ते सन्त्यक्तसकलैषणाः ।३०
आपातमात्ररम्येभ्यो भोगेभ्यः किमवाप्यते ।
सत्संगचिन्तामणितः सर्वसारमवाप्यते ।३१
स्निग्धगम्भीरमसृणमधुरोदारधीरवाक् ।
त्रैलोक्यपद्मकोशेऽस्मिस्त्वमेकः षंट्पदायसे ।३२
अधिगतपरमात्मनोऽपि मन्ये
भवदालोकनशान्तदुष्कृतस्य ।

मम सफलमिहाऽद्य जन्म साधो
सकलभयापहरो हि साधुसंगः ॥३३

शोक, भय और आयास से मुक्त एवं परम सन्तोष को प्राप्त हुए आप जैसे जब हम पर अनुग्रह करते हैं, तभी हम दुःखों से मुक्त होकर स्थित हैं ।२३। इसीलिए इधर-उधर भटकने पर हमारा मन कभी किसी प्रकार वृत्तिको प्राप्त नहीं होता और न कभी तत्वार्थ के विचार से ही शून्य रहा है ।२९। सम्पूर्ण कामनाओं से मुक्त, सन्त जन अपनी आगमन रूपी कृपा हम करते हैं, इसलिए हम सर्वदा कुशलात्मक ही हैं ।३०। ऊपर से सुरम्य दिखाई देने वाले भोगों से कौन-सी उपलब्धि होती है ? प्राप्ति तो सत्संग रूपी चिन्तामणि जनित सारभूत ज्ञान से ही सम्भव है ।३१। हे मुने ! स्निग्ध, गम्भीर, मृदु, मधुर, उदार और धीरता युक्त वाणी वाले आप ही त्रैलोक्य रूपी कमल-कोश में भौंरे के समान हैं ।३२। हे साधो ! मुझे परमात्म-ज्ञान हो चुका है, आपके दर्शन से मेरे सम्पूर्ण पाप भी कट चुके हैं उस पर भी साधु-संग सभी भयों का नाशक होने से आज मैं अपने जन्म को पूर्णतया सफल समझता हूँ ।३३।

१८—सृष्टि रचना

युगक्षोभेषु घोरेषु वात्यासु विषामासु च ।
सुस्थिरः कल्पवृक्षोऽयं न कदाचन कम्पते ॥१
हिरण्याक्षो धरापीठं द्वीपसप्तकवेष्टितम् ।
यदा जहार तरसा नाऽकम्पत तदा तरुः ॥२
भुजाष्टम्भविनसन्मेरुर्नारायणो यदा ।
मन्दरे प्रोद्दधाराऽद्रिं तदा नाऽकम्पत द्रुमः ॥३
यदा शेषाकृतिं रुद्रो न समातैकचेष्टिताम् ।
ययौ गरुत्मान् ब्रह्माण्डं तदा नाऽकम्पत द्रुमः ॥४

यदा कल्पानलशिखाः शैलाब्धिसकलोल्वणः ।
शेषः फणाभिस्तत्याज तदा नाऽकम्पत द्रुमः ॥५
एवंरूपेद्रुमवरे तिष्ठतामापदः कुतः ।
अस्माकं मुनिशार्दूल दौःस्थित्येव किलापऽऽपदः ॥६

काकभुशुण्ड बोले—हे मुने ! यह कल्पतरु युग-परिवर्तन के घोर विक्षोभों और भीषण झंझावतों में भी सदैव सुस्थिर रहता हुआ, कभी भी कम्पित नहीं होता ।१। सात द्वीपों से युक्त इस पृथिवी का जब हिरण्याक्ष ने अपहरण किया था, तब भी यह वृक्ष किंचित् भी नहीं डिगा था ।२। अपनी दो भुजाओं द्वारा जब भगवान विष्णु ने मेरु को दबा कर अन्य दो हाथों द्वारा मंदराचल का उद्धार किया, तब भी यह वृक्ष किंचित् नहीं हिला ।३। भगवान् रुद्र जब पृथ्वी को मस्तक पर निरन्तर धारण करने वाले शेष भगवान् के रूप को प्राप्त हुए तब तथा जब गरुड़ इस भूतल से उड़कर ब्रह्माण्ड में विचरण करने लगे तब भी यह कल्पतरु कम्पायमान नहीं हुआ ।४। प्रलयकाल की प्राप्ति पर जब शेष भगवान् के फणों से शैल, सागर अथवा समस्त जीवों के लिये असह्य प्रलयाग्नि, की ज्वालायें निकलीं, तब भी यह वृक्ष कम्पित नहीं हुआ ।५। हे मुनिशार्दूल ! इस प्रकार इस श्रेष्ठ वृक्ष पर रहते हुए हम विपत्तियों को कैसे प्राप्त हो सकते हैं जबकि विपत्तियों की प्राप्ति तो निकृष्ट स्थानों में ही होती है ।६।

कल्पान्तेषु महावृद्धे भीमोत्पातवायुषु ।
प्रपतत्स्विन्दुभार्केषु कथं तिष्ठसि विज्वरः ॥७
यदा पपात कल्पान्ते व्यवहारो जगत्स्थितौ ।
कृतघ्न इव सन्मित्र तदा नीडं त्यजाम्यहम् ॥८
आकाश एव तिष्ठामि विगताखिलकल्पनः ।
स्तब्धकृतिसर्वांगो मनो निर्वासनं यथा ॥९
जगद्गलितमेर्वादि यात्येकार्णवतां तदा ।
वायवीं धारणां बद्ध्वा संप्लवेऽचलधीस्तदा ॥१०

ब्रह्माण्डपारमासाद्य तत्वान्ते विमले पदे ।
सुषुप्तावस्थया तावत्तिष्ठम्यचलरूपया ॥११
यावत्पुन: कमलज: सृष्टिकर्मणि तिष्ठति ।
तत्र प्रविश्य ब्रह्माण्डं तिष्ठामि विहगालये ॥१२

वसिष्ठजी ने पूछा—हे महाबुद्धे ! कल्प के अन्तिमकाल में जो भयंकर उत्पाद करने वाला और नक्षत्र, चन्द्रमा तथा सूर्य सबको गिरा देने में समर्थ जो वायु चलता है उसके समय तुम निश्चिन्त कैसे रहते होंगे ? ।७। काक ने कहा—हे मुने ! कल्प के अन्त काल में जब जगत् की स्थिति वाला क्रम गिरने लगता है तब मैं भले मित्र को छोड़ देने वाले कृतघ्न के समान ही अपने इस नीड़ को छोड़ देता हूँ ।८। सम्पूर्ण कल्पनाओं को छोड़कर स्थिर स्वभाव में स्थित हुआ मैं, वासना-रहित मन के समान, शून्य आकाश में ही स्थित रहता हूँ ।९। मेरु आदि पर्वतों के द्रवित होने पर जब यह सम्पूर्ण विश्व समुद्र रूप हो जाता है, तब मैं वायु-विषयक धारणा में बँधकर निश्चल बुद्धि हुआ उस उत्प्लव में ही तैरता रहता हूँ ।१०। ब्रह्माण्ड के पार को प्राप्त कर विमल आत्म-पद में सुषुप्ति के समान निर्विकल्प समाधि की अवस्था में ब्रह्मा जी के पुन: सृष्टि कर्म में प्रवृत्ति होने तक लीन रहता हूँ और सृष्टि के कार्यरत होने पर ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होकर अपने कल्पवृक्ष में पुन: अवस्थान करता हूँ ।११-१२।

यथा तिष्ठसि पक्षीन्द्र धारणाभिरखण्डित: ।
कल्पान्तेषु तथा कस्मान्नाऽन्ये तिष्ठन्ति योगिन: ॥१३
ब्रह्मन्नियतिरेषा हि दुर्लंघ्या पारमेश्वरी ।
मयेदृशेन वै भाव्यं भाव्यमन्यैस्तु तादृशै: ॥१४
मत्संकल्पवशेनैव कल्पे कल्पे पुन: पुन: ।
अस्मिन्नेव गिरे: शृंगे तरुरित्थं भवत्ययम् ॥१५
वृहत्तराऽशिलावृक्षामजाततृणवीरुधाम् ।
अशैलवनवृणौघां स्मरामीमां धरामध: ॥१६

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
भस्मसारभरापूर्णा संस्मरामि धरामधः ॥१७

अनुत्पन्नदिवाधीशामज्ञातशशिमण्डलाम् ।
अविभक्तदिवालोकां संस्मरामि धरामधः ॥१८

वसिष्ठजी बोले—हे पक्षीन्द्र जिस प्रकार उन-उन धारणाओं से अखण्डता को प्राप्त हुए तुम प्रलयकाल में भी स्थित रहते हो, उस प्रकार अन्य योगीजन जीवन धारण पूर्वक स्थित क्यों नहीं रहते ? ।१३ काकमुशुण्ड बोले—हे ब्रह्मन् ! ईश्वरीय शक्ति के नियमों का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता इसलिए योगीजन देहों का त्याग कर देते हैं, केवल मैं स्थित रहता हूँ ।१४। प्रत्येक कल्प में मेरे ही संकल्प से मेरु शिखर पर यह कल्पवृक्ष वारम्बार उत्पन्न होता है। मुझे स्मरण है कि मेरु के नीचे स्थित इस पृथिवी में शिला, वृक्ष, तृण, खण्ड, पर्वत, वन और वृक्षादि कुछ भी नहीं था ।१५-१६। मुझे यह भी स्मरण है कि मेरु के नीचे स्थित यह पृथिवी ग्यारह हजार वर्षों तक भस्म सार से परिपूर्ण थी अर्थात् सर्वत्र धूल थी ।१७। मेरु के नीचे स्थित इस पृथिवी पर पहिले सूर्य या चन्द्रमा का आभास नहीं होता था, यह मुझे स्मरण है ।१८।

मेरुरत्नतलोद्योतैरर्धप्रकटकोटरम् ।
लोकालोकमिवाऽऽययाद्रिभुवनं संस्मराम्यहम् ॥१९

प्रवृद्धासुरसंग्रामे क्षीयमाणान्तरामिह ।
पलायमानामभितः संस्मरामि धरामिमाम् ॥२०

चतुर्युगानि चाऽऽक्रान्तामसुरैर्मत्तकाशिभिः ।
दैत्यान्तःपुरतां प्राप्तां संस्मरामि धरामिमाम् ॥२१

वृक्षनीरन्ध्रभूपीठमकल्पितमहार्णवम् ।
स्वयं संजातपुरुषं कच्चित्सर्गं स्मराम्यहम् ॥२२

अपवर्तमभूमि च व्योमस्थामरमानवम् ।
अचन्द्रार्कप्रकाशाढ्यं कच्चित्सर्गं स्मराम्यहम् ।२३

अनिन्द्रममहीपालममध्यस्थाधमोत्तमम् ।
सममन्धककुप्चक्रं कश्चित्सर्गं स्मराम्यहम् ॥२४

फिर मेरु पर्वत के रत्नों से पृथिवी का अर्द्ध कोटर प्रकाशित होने लगा तब यह पर्वतों के कहीं प्रकट होने पर लोकालोक पर्वत के समान दिखाई देने लगी, यह भी याद है ।१९। जब सेना आदि बढ़े हुए असुरों के उत्पन्न होने पर युद्ध के कारण पददलित हुई यह पृथिवी आन्तरिक रूप से क्षीण होने लगीं, तब पलायन करने वालों से इसके व्याप्त होने की भी मुझे याद है।२०। मुझे यह भी स्वीकार हैं मदोन्मत्त असुरों से आक्रान्त हुई यह पृथिवी असुरों के अन्तःपुर रूपमें चार युगों तक रही थी ।२१। फिर मुझे उस सृष्टि की भी याद है जिसमें पृथिवी का पृष्ठ भाग वृक्षों से परिपूर्ण था, उस समय तक महासागर की कल्पना भी नहीं हुईथी और पुरुष वर्ग बिना मैथुनी सृष्टिके ही उत्पन्न होते थे ।२२। मुझे वह भी याद है जब पर्वत या पृथिवी कुछ भी नहीं था, देवता और मनुष्य आकाश में ही रहते थे एवं सूर्य और चन्द्रमा के बिना भी प्रकाश रहता था ।२३। मुझे इसका स्मरण है कि न कोई इन्द्र था न कोई राजा, उत्तम मध्यम और अधम का भेद भी नहीं था, सम्पूर्ण दिक्चक्र अन्धकार से ही परिपूर्ण था ।२४।

सर्गं प्रारम्भकलना विभागो भुवनत्रये ।
कुलपर्वतसंस्थानं जम्बूद्वीपं पृथक् स्थितम् ॥२५

वर्णधर्मधियो सृष्टिविभागो मण्डलावने: ।
ऋक्षचक्रकसंस्थानं ध्रुवनिर्माणमेव च ॥२६

जन्मेन्दुभास्करादीनामिन्द्रोपेन्द्रव्ययस्थितिम् ।
हिरण्यक्षापहरणं वराहोद्धरणं क्षितेः ॥२७

कल्पनं पार्थिवानां च वेदानयनमेव च ।
मन्दरोन्मूलनं चाऽब्धेरमृतार्थं च मन्थनम् ॥२८

अजातपक्षो गरुडः सागराणां च संभवः ।
इत्यादिका याः स्मृतयः स्वल्पातीतजगत्क्रमाः ॥२९
बालैरपि हितास्तात स्मर्यन्ते तासु को ग्रहः ।
गरुडवाहनं विहगवाहनं वृषभवाहनम् ॥३०
गरुडवाहनं कलितवानहं कलितजीवितः ॥३१

प्रथम सर्ग की रचना हुई फिर तीनों लोको में विभाग हुआ, फिर कुल पर्वतों की स्थापना हुई और जम्बूद्वीप में स्थित हुए सृष्टा ने वर्ण धर्म वाली बुद्धि उत्पन्न की फिर मंडलरूप में पृथ्वी का विभाग किया और नक्षत्र चक्र तथा ध्रुव मंडल बनाया ।२५-२६। फिर चन्द्रमा सूर्य, इन्द्र, उपेन्द्र की,रचना हुई । तब हिरण्याक्ष ने उस पृथिवी का अपहरण कर लिया जिसका उद्धार वाराह वेषधारी भगवान् विष्णु ने किया । ।२७। फिर मनुष्यादि में उनके अधिपतियों की कल्पना हुई, मत्स्यरूपधारी भगवान् वेद ले आये, फिर मंदराचल का उन्मूलन कर अमृत प्राप्ति के लिए क्षीरसागर मँथा गया, फिर अनुत्पन्न पंख वाले गरुड़ और समुद्र उत्पन्न हुए । यह सब बात जो मुझे स्मरण है, यह मुझसे अल्प आयु वाले आप जैसोंको भी ज्ञात है, इसीलिए मेरे कथन में विशेषता ही क्या है ? ।२८-२९। मुझ दीर्घजीवी ने यह भी देखा कि इस कल्प में गरुड़ वाहन नारायण ने हंस वाहन ब्रह्माजी का रूप धारणकर सृष्टि-कार्य सम्पादन किया तथा हंस वाहन ब्रह्माजी ने वृषवाहन रुद्ररूप होकर संहार किया और वृषभवाहन रुद्र ने गरुड़वाहन नारायण रूप से सृष्टि का पालन किया ।३०।

१९—युग युग की स्मृतियाँ

ततो जगति जातेषु भगवान् युष्मदादिषु ।
भरद्वाजपुलस्त्यात्रिनारदेन्द्रमरीचिषु ॥१
पुलहोद्दालाकाद्येषु क्रतुभग्वङ्गिरस्सु च ।
सनत्कुमारभृङ्गीशस्कन्देभवदनादिषु ॥२

गौरीसरस्वतीलक्ष्मीगायत्र्याद्यासुभूरिषु ।
मेरुमन्दरकैलास हिमवद्दर्दु रादिषु ॥३
हयग्रीवहिरण्याक्षकालनेमिबलादिषु ।
हिरण्यकशिपुक्राथबलिप्रह्लादकादिषु ॥४
शिविन्यकुपृथूलाख्यवैन्यनाभागकेलिषु ।
नलमान्धातृसगरदिलीपनहुषादिषु ॥५
आत्रेयव्यासबाल्मीकिशुकवात्स्यायनादिषु ।
उपमन्युमणीमङ्किभगीरथशुक्रादिषु ॥६

काकभुशुण्ड बोले-हे भगवन् ! उसके पश्चात् उत्पन्न हुए लोगों में आपके सहित भारद्वाज, पुलस्त्य, अत्रि, नारद, इन्द्र, मरीचि, पुलह, उद्दालक, क्रतु, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार, भृङ्गीश, स्कन्द, गणेश आदि के स्मरण की तो गिनती ही क्या है ? ।१-२। गौरी सरस्वती, लक्ष्मी, गायत्री आदि अनेक शक्तियाँ एक मेरु, मंदर, कैलाश, हिमालय और दर्दुर आदि पर्वतों, हयग्रीव, हिरण्याक्ष, कालनेमि, बल, हिरण्यकशिपु क्राथ, वलि, प्रह्लाद आदि दैत्य-दानवों की तो गिनती ही क्या है ? ।३-४। शिवि, न्यंकु, पृथु उलाख्य, वैन्य नाभाग केलि, नल, मान्धाता, सगर, दिलीप, नहुष आदि राजागण एवं आत्रेय, व्यास, वाल्मीकि, शुक्र, वात्स्यायन आदि ज्ञानी ऋषि और उपमन्यु, मणीमंकि, भगीरथ आदि जो उत्पन्न हुए उनकी क्या गिनती है ? ।५-६।

मुने ते ब्रह्मपुत्रस्य जन्माष्टकमिदं किल ।
संस्मराम्यष्टमे सर्गे तस्मिंस्त्वं मम सङ्गतः ॥७
कदाचिज्जायसे व्योम्नः कदाचिज्जायसे जलात् ।
कदाचिद्वायुतः शैलात् कदाचिज्जायसेऽनलात् ॥८
यादृशो तादृशानेव त्रीन्सर्गान् संस्मराम्यहम् ।
सर्गोऽयं तादृशानेव त्रीन्सर्गान् संस्मराम्यहम् ॥९
अन्तर्धानं गता धात्री वारपञ्चकमुद्धृता ।
मुने पञ्चसु सर्गेषु क्रणैव पयोनिधेः ॥१०

मन्दराकर्षणावेगपर्याकुलसुरासुराम् ।
स्मरामि द्वादश चेदममृताम्भोधिमन्थनम् ॥११
सर्वौषधरसोपेतांबलिग्राहस्तदा दिवः ।
वारत्रयं हिरण्याक्षो नीतवान् वसुधामधः ॥१२

हे मुने ! आप ब्रह्मपुत्र का यह आठवां जन्म है, उस सर्ग में जो आठवां जन्म आपका हुआ था उसमें मेरी आपको भेंट हुई थी, यह मुझे स्मरण है ।७। आप कभी आकाश से, कभी जल से, कभी पवन से, कभी पर्वत से और कभी अग्नि से उत्पन्न होते हैं ।८। इसी सर्ग के आचरण एवं दिशा संस्थान आदि के समान ही इससे पहिले के तीन सर्ग हुए हैं, उनकी मुझे याद है ।६। हे मुने ! जल में विलीन हुए हैं, उनकी मुझे याद है ।६। हे मुने ! जलमें विलीन हुए उस भूतल का कूर्म अवतारधारी भगवान् ने पाँच सर्गो में पाँच बार ही उद्धार किया था ।१०। मुझे यह भी स्मरण है कि मंदराचल को खोजने के श्रम से व्याकुल हुए देव-दानवों द्वारा किया गया अमृत-मंथन बारहवीं बार हुआ था ।११। स्वर्ग निवासी सभी देवताओं से कर वसूल करने वाला हिरण्याक्ष सर्वोषधि और रसों से सम्पन्न इस वसुन्धरा को तीन बार पाताल में ले गया था ।१२।

रेणुकात्मजतां गत्वा षष्ठवारमिमं हरिः ।
बहुसर्गान्तरेणाऽपि चकार क्षत्रियक्षयम् ॥१३
शतंकलियुगानां च हरेर्बुद्धदशाशतम् ।
शौकराजतयैवाऽऽप्तं स्मरामि मुनिनायक ॥१४
त्रिशत्त्रिपुररिक्षोभान् द्वौ नक्षाध्वरसंक्षयौ ।
दशशक्रविघातांश्च चन्द्रमौलेः स्मराम्यहम ॥१५
वाणार्थमष्टौ संग्रामान् ज्वरप्रथमन्त्रकान् ।
विक्षोभितसुरानीकान् स्मरामि हरिशर्वयोः ॥१६
युगं प्रति धियां पुसांन्यूनाधिकतया मुने ।
क्रियाङ्गपाठवैचित्र्ययुक्तान् वेदान् स्मराम्यहम् ॥१७

एकार्थानि समग्राणि बहुपाठानि मेऽनघ।
पुराणानि प्रवर्तन्ते प्रसृतानि युगं प्रति ॥१८

रेणुका के पुत्र रूप में उत्पन्न भगवान् परशुराम ने अनेक सर्गो के अन्तर से छठवीं बार क्षत्रियों को नष्ट किया है।१३। हे मुनिनायक ! सौ बार कलियुग आया और राजा शुद्धोदन के पुत्र रूप में प्रकट हुए भगवान् विष्णु ने सौ बार ही बुद्धत्व को प्राप्त किया।१४। शंकर ने तीन कल्पों में तीन बार ही त्रिपुर नाश किया और दो बार दक्ष-यज्ञ विध्वंस किया मुझे स्मरण है कि उन्होंने दस-इन्द्रों को दंडित किया। ।१५। वाणासुर के लिए ज्वरों और प्रमथ गणों को प्रेरित करने वाले एवं देवताओं को भी क्षुब्ध करने वाले भगवान् हरि और हर के आठ युद्ध हुए, यह मुझे याद है।१६। मुझे याद है कि युग-युग में न्यूनाधिक बुद्धि के कारण किया अङ्ग एवं पाठों में कम या अधिक प्रवृत्ति वाले हे अनघ ! एकार्थक परन्तु अनेक पाठ भेद वाले बहुत से पुराणों की युग-युग में रचना होती रही है।१७-१८।

आख्यानकानि शास्त्राणि निवृत्तानि युगं प्रति।
विचित्रतानि वेशानि संस्मरामि मुनीश्वर ॥१९
भूयस्तान्येव तान्येत्र तथाऽन्यानि युगे युगे।
साधो पदार्थजालानि प्रपश्यामि स्मरामि वै ॥२०
राक्षसक्षतये विष्णोर्महीमवतरिष्यतः।
अधुनैकादशं जन्म रामनाम्नो भविष्यति ॥२१
वसुदेवग्रहे विष्णोर्भुवो भारनिवृत्तये।
अधुना षोडशं जन्म भविष्यति मुनीश्वर ॥२२
जगन्मयी भ्रान्तिरियं न कदाचन विद्यते।
विद्यते तु कदाचिज्जलबुद्बदबत्स्थिता ॥२३
विचित्रसंस्थानविशेषदेशान्
विचित्रकार्याकुलभूतकोषान्।
विचित्र विन्यास विलास वेशान्।
स्मराम्यहं ब्रह्मदिनेष्वशेषान् ॥२४

हे मुनीश्वर ! अद्भुत कथानकों से युक्त अनेक आख्यानों एवं पुराणों की युग-युग में प्रवृत्ति हुई, ऐसा भी मुझे स्मरण है ।१९। हे साधो ! मैं युग-युग में उन्हीं सब पदार्थों को तथा अन्यान्य पदार्थों को भी बारम्बार देखता रहा हूँ, यह मुझे स्मरण है ।२०। अब निकट भविष्य में ही राक्षसों का क्षय करने के लिए ग्यारहवीं बार नारायण का जो अवतार होगा वह राम नाम से होगा २१। हे मुनीश्वर ! पृथिवी का भार हरण करने के लिए वसुदेवजी के घर से विष्णु का जो अवतार होगा, वह सोलहवीं बार होगा ।२२। यह जगन्मयी भ्रान्ति कभी भी विद्यमान नहीं रहती । जैसे जल में बुलबुले उठते हैं, उसी प्रकार यह भी विद्यमान सी प्रतीत होती है ।२३। हे मुने! ब्रह्माजी के दिन रूपी कल्पों में यह अद्भुत संस्थानों वाले देशों से सम्पन्न विचित्र कर्मों में आकुलता पूर्वक लगे हुए प्राणियों के कोशभूत एवं अद्भुत विन्यास, विलास और वेषों वाले युगों का भी मुझे स्मरण है । ।२४।

२०—मृत्यु किसे नहीं मारती

अथाऽसौ वायसश्रेष्ठो जिज्ञासार्थमिदं मया ।
भूयः पृष्टो माहाबाहो कल्पवृक्षलताग्रके ॥१
चरतां जगतः कोशे व्यवहारवतामपि ।
कथं विहगराजेन्द्र देहं मृत्युर्न वाधते ॥२
जानन्नपि हि सर्वज्ञ ब्रह्मञ्जिज्ञासयैव माम् ।
पृच्छसि प्रभवो नित्यं भृत्यं वाचालयन्तिहि ॥३
तथापि यत्पृच्छसि मां तत्ते प्रकथयाम्यहम् ।
आज्ञाचरणमेवाऽऽहुर्मुख्यमाराधनं सताम् ॥४
दोषमुक्ताफलप्रोता वासनातन्तुसन्ततिः ।
हृदि न ग्रथिता यस्य मृत्युस्तं न जिघांसति ।५
निःश्वासवृक्षक्रकचाः सर्वदेहलताघुणाः ।
आधयो यं न भिन्दन्ति मृत्युस्तं न जिघांसति ॥६

वसिष्ठ जी ने कहा हे राम ! हे महाबाहो ! कल्पवृक्ष की लता के अग्रभाग में अवस्थित उन वायसश्रेष्ट से मैंने अगला प्रश्न किया ।१। हे विहगराजों में श्रेष्ठ ! जगत् कोश में बिचरते हुए व्यवहार रत प्राणियों के शरीर को मृत्यु जिससे बाधा नहीं पहुँचती, वह उपाय बताइए ।२। भुशुण्ड बोले—हे सर्वज्ञ ! ब्रह्मन् ! आप सब कुछ जानते हुए भी मुझसे जिज्ञासु के समान जो प्रश्न कर रहे हैं, वह आपके उपयुक्त ही हैं क्योंकि समर्थ पुरुष इसी प्रकार अपने सेवक को वाक्पटु बनाते हैं। ।३। फिर भी आपके प्रश्न का उत्तर देना भी अपना कर्त्तव्य समझता हूँ क्योंकि सज्जन पुरुषों की आज्ञा पालन ही उनकी सेवा कही जाती है ।४। वासना रूपी माला, जिनमें दोष रूपी मोती गुथे हों वह जिसके हृदय कमल पर नहीं पड़ी होती मृत्यु उसका विनाश नहीं करती ।५। देहरूपी लता के लिए घुन अथवा उसके उच्छेद में समर्थ निःश्वासरूपी झोंके जिनके द्वारा उत्पन्न होते हैं वे व्यथायें जिसे नहीं भेदती मृत्यु उसे मारनी नहीं चाहती ।६।

यत्र तिलानां कठिनं राशिमुग्रमिवाऽऽकुलम् ।
यं पीडयति नाऽनंगस्तं मृत्युर्न जिघांसति ॥७
एकस्मिन्निर्मले येन पदे परमपावने ।
संश्रिता चित्तविश्रान्तिस्तं मृत्युर्न जिघांसति ॥८
वपुः खण्डाभिपतितं शाखामृगमिवोदितम् ।
न चञ्चलं मनो यस्य तं मृत्युर्न जिघांसति ॥९
एते ब्रह्मन् महादोषाः संसारव्याधिहेतवः ।
मनागपि न लुम्पन्ति चित्तमेकं समाहितम् ॥१०
नाऽस्तमेति न चोदेति न सम्मतिर्न विस्मृतिः ।
न सुप्तं न च जाग्रत्स्याच्चित्तं यस्य समाहितम् ॥११
अन्धीकृतहृदाकाशाः कामकोपविकारजाः ।
चिन्ता न परिहिंसन्ति चित्तं यस्य समाहितम् ॥१२

तिलों के ढेरे को व्यथित करने वाले कोल्हू के समान उग्र कामदेव जिसे पीड़ित नहीं करता, मृत्यु उसे नहीं मारना चाहती ।७। जिसने

एक मल रहित परम पवित्र पद में अपने चित्त को स्थिर कर लिया है मृत्यु उसके विनाश की इच्छा नहीं करती है ।८। जिनका मन देह रूपी वनखण्ड में बन्दर के समान उछल कूद करने से विरत हो गया है उसे भी मृत्यु मारना नहीं चाहती ।६। हे ब्रह्मन् ! यह सभी महादोग संसार रूपी व्याधि के हेंतु स्वरूप हैं समाहित चित्त को वे कभी विचलित नहीं कर सकते ।१०। जिसका चित्त समाहित है उसका वह चित्त उदय अस्त को प्राप्त नहीं होता । स्मृति-विस्मृति अथवा सुषुप्ति या जागृति भी उसमें नहीं होती ।११। समाहित चित्त वाले की काम क्रोधादि विकारों से हृदयाकाश को आच्छन्न कर देने वाली चिन्ता हिंसा नहीं कर सकती ।१२।

इत्युक्तवन्तं विहगं भुशुण्डं पुनरप्यहम् ।
जानन्नपीदमव्यग्रः पृष्टवान् क्रीडया मुनिम् ॥१३
सर्वसंशयविच्छेदिन्नत्यन्तचिरजीवित ।
यथार्थं ब्रूहि मे साधो प्राणचिन्ता किमुच्यते ॥१४
सर्ववेदान्तवेत्ताऽसि सर्वसंशयनाशकः ।
मामेतत्परिहासार्थं मुने पृच्छसि वायसम् ॥१५
अथवा भवतामेव भगवन् परिशिक्षितुम् ।
पुनः प्रत्युत्तराणीदं का मे क्षतिरुपस्थिता ॥१६
भुशुण्डजीवितकरं शशुण्डस्वात्मलाभदम् ।
शृणु प्राणसमाधानं वक्ष्यप्राणमिदं मया ॥१७
पश्येदं भगवान् सर्वं देहगेहं मनोरमम् ।
त्रिप्रकारमहास्पुण नवद्वारसमावृतम् ॥१८

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! इस प्रकार कहते हुए उस काकभुशुण्ड से मैंने सब कुछ जानते हुए भी, व्यग्रता-रहित चित्त से क्रीड़ा पूर्वक प्रश्न किया ।१३। हे साधो ! हे सर्व संशयों का उच्छेद करने वाले चिरजीवीं विहंगराज ! मुझे यथार्थ रूप से यह बताओ कि प्राणचिन्ता किसे कहा जाता है ? ।१४। काक ने उत्तर दिया—हे मुने ! आप तो सम्पूर्ण वेदान्त के ज्ञाता हैं, सभी संशयों को दूर करने में भी समर्थ हैं

फिर इस प्रकार का प्रश्न आप मुझे कौए का परिहास करने के लिए ही पूछ रहे प्रतीत होते हैं ।१५। अथवा यदि हे भगवान् आप जैसे समर्थ के समक्ष शिक्षा ग्रहण करने की दृष्टि से ही, मैं आप के प्रश्न का उत्तर दूँ तो उसमें हानि ही क्या होगी ? ।१६। हे प्रभो ! मुझ भुशुण्ड को जिसने चिरजीवी बनाया और निर्मल स्वात्म की उपलब्धि कराई उस प्राण-समाधान को कहता हूँ । हे भगवान् ! सब प्रकार से मनोहर इस शरीर रूपी घर का अवलोकन करिये इस त्रिदोषरूपी में लम्बे और नौ द्वार बने हुए हैं ।१७-१८।

पुर्यष्टकमात्रैण तन्मात्रस्वजनेन च ।
अहङ्कारगृहस्थेन सर्वतः परिपालितम् ॥१९
अन्तः पश्यसि सत्कर्ण शष्कुलीचन्द्रशालिकम् ।
शिरोरुहाच्छादनवद्विपुलाक्षिगवाक्षकम् ॥२०
आस्यंप्रधानसुद्वारं भुजपार्श्वोपमन्दिरम् ।
दन्तालिकेसरस्रग्भिर्भूषितद्वारकोटरम् ॥२१
अनारतं रूपरसस्पर्शनद्वारपालवत् ।
संकुलालोकवलितं तारलिन्दकृतस्थितिः ॥२२
रक्तमांसदशादिग्धं स्नायुततिवेष्टितम् ।
स्थलास्थिकाष्ठसम्बद्धं सुकुड्यं सुसमाहितम् ॥२३
इडा च पिङ्गला चाऽस्य देहस्य मुनिनायक ।
सुस्थिते कोमले मध्ये पार्श्वकोष्ठे निमीलिते ॥२४
पद्मयुग्मत्रयं यन्त्रमस्थिमांसमयं मृदु ।
उर्ध्वाधोनालमन्यं मिलत्कोमलसद्दलम् ॥२५

यह घर पुर्यष्टक रूपी वान्धव आदि से परिपूर्ण एवं अहङ्कार रूपी गृहस्थ द्वारा पालित है ।१९। उसको आप देख रहे हैं कि कान रूपी दो सुन्दर चन्द्र शालायें हैं, उस शिरोरुह का आच्छादन करने वाले बाल और नेत्र रूपी दो बड़ी-बड़ी झरोखे हैं ।२०। मुख रूप उसका प्रधान द्वार, दोनों भुजा और पार्श्व उपमन्दिर है, वह प्रमुखद्वार दंत-पंक्ति रूपी कपाटों से सदा सुशोभित रहता है ।२१। रूप, रस, स्पर्श

आदि का ज्ञान कराने वाली इन्द्रियाँ ही उसके द्वारपाल हैं, आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित उस द्वार की नेत्र पुतलियों के समीप ही वह आत्मा गृहपति रूप में अवस्थित है।२२। रक्त माँस और चर्बी रूपी जल मिट्टी गारे आदि से लिप्त, शिरा रूपी रस्सियों से जकड़े हुए स्थूल अस्थि रूपी काष्ठ के आधारों पर टिकी हुई भीत वाला वह घर दृढ़ रूप से बना है।२३। हे मुनिनायक ! इडा पिंगला नाम की दो नाड़ियाँ इसके दाँए बाँए ओर अवस्थित हैं। उसमें अस्थि-माँस युक्त एवं कोमल तीन कमल युग्म है। उनमें नीचें-ऊपर जो नालदण्ड लगे हैं वे परस्पर मिलकर कोमल दल रूप लगते हैं।२४-२५।

सेकेन विकसत्पत्रं सकलाकाशचारिणा।
चलन्ति तस्य पत्राणि मृदुव्याप्तानि वायुना ॥२६
चलत्सु तेषु सर्वेषु मरुत् परिवर्धते।
वाताहते लतापत्रजाले बहिरिवाऽभितः ॥२७
वृद्धि नीतः स नाडीषु कृत्वा स्थानमनेकधा।
ऊर्ध्वाधोवर्तमानासु देहेऽस्मिन् प्रसरत्यथ ॥२८
प्राणापानसमानाद्यै स्ततः स हृदयानिलः।
संकेतैः प्रोच्यते तज्ज्ञै र्विविधाचार चेष्टितै ॥२९
यान्त्यायान्ति विकर्षन्ति हरन्ति विहरन्ति च।
उत्पतन्ति पतन्त्याशु एताः प्राणशक्तयः ॥३०
सएष हृत्पद्मगतः प्राण इत्युच्यते बुधैः।
अस्य काचिन्मुने शक्तिः प्रस्पन्दयति लोचने ॥३१
काचित्स्पर्श मुपदत्ते क्राचिद्वहति नासया।
काचिदन्नं जरयति काचिद्वक्ति वचांसि च ॥३२

नासिका के अग्रभाग से पाँव पर्यन्त समस्त देहाकाश में संचरणशील अपान वायु द्वारा सींचकर उसके पत्र विकसित हो रहे हैं।२६। हृदय-पत्र के संकुचित विकसित होने पर वनमें लता, पत्रादि का व्याप्त करने वाले वायु के समान ही पलस्थ वायु वर्द्धित होता है।२७। नीचे वृद्धि को प्राप्त हुआ वायु हृदयादि को आश्रयण बनाकर ऊपर वह

अवस्थित नाड़ियों में प्रविष्ट होकर शरीर में संचरण करता है।२८। उस वायु की चेष्टाओं के कारण विद्वज्जन उसे प्राण- अपान, समान आदि नामों से कहते हैं।२८-२९। वही प्राण-शक्तियाँ द्रुत गति से चलती, आती, विकर्षण, हरण, करती, विहार, उत्पन्न और पतन आदि का निर्वहन करती हैं। (अर्थात्) वे प्राणशक्तियाँ ही अन्न-रस आदि की गति का संचालन करने वाली हैं।३०। हे मुने ! विद्वानों ने हृदय कमल में अवस्थित शक्ति को प्राण कहा है, इसी की कोई एक शक्ति लोचनों में स्पन्दन करती हैं।३१। प्राण की ही कोई एक शक्ति स्पर्श ग्रहण करती कोई नासिका से श्वास लेती, कोई अन्न का परिपाक करती और कोई बोलती है।३२।

तत्रोर्ध्वाधो द्विसकेतौ प्रसृतावनिलौ मुने।
प्राणापानाविति ख्यातौ प्रकटौ द्वौ वरानिलौ ॥३३
शरीरपुरवालस्य मनसो रथचक्रयोः।
अहङ्कारनृपस्याऽस्य प्रशस्यद्वितुरङ्गयोः ॥३४
तयोर्ममाऽनुसरतः प्राणापानाभिधानयोः।
गतिं शरीरमरुतोराशरीरमरुद्वयोः ॥३५
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु सदैव समरूपयोः।
सुषुप्तसंस्थितस्येव ब्रह्मन् गच्छन्ति वासराः ॥३६
अविरतगतयोर्गतिं विदित्वा
हृदि मरुतोरनुसृत्य चोदितां गतिम्।
न पुनरिह हि जावते महात्मन्
मुदितमनः पुरुषः प्रणष्टपाशः ॥३७

शरीर में ऊर्ध्व गमन और अधोगमन करने वाले जो दो श्रेष्ठ वायु स्थित है वे प्राण और अपान नाम से प्रकट एवं प्रसिद्ध हैं।३३। देहरूपी पुरीका रक्षक जो मन है, वह रथ है, अहंकार रूपी जो राजा है, उसके यह दोनों सुन्दर और इच्छानुसार चलने वाले अश्व हैं।३४। हे ब्रह्मन् ! उन शरीरगत जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति में सदा समान रहने

वाले और अधिक अभ्यास के कारण अवरोध को प्राप्त न होने वाले प्राण और अपान वायुओं की गति का अनुसरण करते हुए मेरे दिवस सुषुप्ति में अवस्थित (समाधिरत) के समान व्यतीत हो रहे हैं ।३५-३६ महात्मन् ! हृदयादि से संचरणशील प्राणापान वायुओं की गति को जानकर मुदित मन हुआ जीव भव पाश से मुक्त होकर पुनः उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् जन्म-मरण के फन्दे से छूट जाता है ।३७।

२१--प्राणायाम द्वारा मोक्ष प्राप्ति

इत्थं स कथयन् पक्षी पृष्टस्तत्र पुनर्मया ।
कीदृशी प्राणवातस्य गतिरित्येव राघवः ॥१
जानन्नपि मुने सर्वा किं मां पृच्छसि लीलया ।
यथापृष्टमहं वच्मि श्रृणु तत्राऽपि मद्वचः ॥२
प्राणोऽयमनिशं ब्रह्मन् स्पन्दशक्तिः सदागतिः ।
सबाह्याभ्यतरे देहे प्राणोऽयमुपरि स्थितः ॥३
अपानोऽप्यनिशं ब्राह्मन् स्पन्दशक्तिः सदागतिः ।
स बाह्याभ्यन्तरे देहे त्वपानोऽयमवाक्स्थितः ॥४
जागृतः स्वपतश्चैव प्राणायामोऽयमुत्तमः ।
प्रवर्तते यतस्तज्ज्ञस्तावज्छ्रयसे श्रृणु ॥५
बाह्योन्मुखत्वं प्राणानां तं यदम्बुजकोटरात् ।
स्वरसेनाऽस्त्ययत्नानां तं धीरा रेचकं विदुः ॥६
द्वादशांगुलर्यन्तं बाह्यमाक्मतामधः ।
प्राणानामंगसस्पर्शो यः स पूरक उच्यते ॥७

वशिष्ठजी बोले—हे राघव ! उस पक्षी के उक्त प्रकार से कहते हुए ही मैंने उससे पुनः पूछा कि हे वायसराज प्राणवायु की गति कैसी हे यह काक बोला, ', हे सर्वज्ञानीं मुने ! आप लीला वश ही यह पूछ रहे हैं परन्तु मैं उस सबका उत्तर दूँगा, आप मेरे वचनों को सुनिए ।२। हे ब्रह्मन् ! यह प्राणशक्ति निरन्तर गति और स्पन्दन वाली है और बाहरी-भीतरी सभी अवयवो में ऊपर की ओर स्थित

रहती है ।३। हे ब्रह्मन् ! अपान शक्ति भी सदा स्पन्दनशील और गतिमती रहती है। वह शरीर के बाहर भीतर रहती हुई नीचे की ओर गमन करती है ।४। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति से युक्त प्राणियों के लिए प्राणायाम श्रेष्ठ साधन है, उसे आप श्रवण करिए ।५। बिना प्रयास ही हृदयपद्मकोश से उपलब्ध, प्राणों की बहिर्मुखता का जो अभ्यास है उसे ज्ञानीजन रेचक कहते हैं ।६। ब्रह्म प्रदेश में बारह अंगुल पर्यन्त अधोगमन करने वाले प्राणों के साथ अङ्गोंका स्पर्श पूरक कहा जाता है ।७।

अपानेऽस्तंगते प्राणो यावन्नाऽभ्युदितो हृदि ।
तावत् सा कुम्भकावस्था योगभिर्याऽनुभूयते ॥८
रेचकः कुम्भकश्चैव पूरकश्च त्रिधा स्थितः ।
अपानस्योदयस्थाने यावदंशान्तादधी बहिः ॥९
बाह्यानाभ्यन्तरांश्चैतान् कुम्भकादीननारतम् ।
प्राणापानस्वभवांस्तान् बुद्ध्वा भूयो न जायते ॥१०
अष्टावेते महाबुद्धे रात्रिन्दिवमनुस्मृताः ।
स्वभावा देहवायूनां कथिता मुक्तिदा मया ॥११
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपताऽपि वा ।
एते निरोधमायान्ति प्रकृत्यातिचलानिलाः ॥१२
अव्यग्रमस्मिन् व्यापारे बाह्यं परिजहन्मनः ।
दिनैः कतिपयैरेव पदमाप्नोति केवलम् ॥१३
सर्वारम्भन्सदा स्वच्छः कुर्वन्वाऽपि बुधो जनः ।
प्राणापानगतिं प्राप्य सुस्वस्थः सुखमेधते ॥१४

अपान वायु का शमन होने पर प्राणवायु जब तक हृदय में अभ्युदयको प्राप्त नहीं होता, उस अवस्था को कुम्भक कहते हैं, इस अवस्था का योगियों को पूर्ण अनुभव होता है ।८। नासिका के अग्रभाग से बारह अंगुल पर्यन्त अपान वायु के उत्पत्ति-स्थान में तीन अवस्था वाला प्राणायाम-रेचक, कुम्भक और पूरक होता है ।९। प्राणापान वायुओं के स्वभाव वाले बाह्याभ्यन्तर जो कुम्भक आदि प्राणायाम हैं, उनका

ज्ञान होने से जीव इस जगत में पुन: उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा ज्ञानी-जन कहते हैं ।१०। हे महामते ! देहवायु स्वभाव वाले यह प्राणायाम आठ प्रकार के हैं जो इनका रात दिन स्मरण करता है, उसे वह मुक्ति दायक हो जाते हैं ।११। चलते, ठहरते, जागते या सोते हुए भी अभ्यास करने पर अत्यन्त चंचल वायु गतिहीन भी हो जाते हैं ।१२। प्राण के चिन्तन रूपी अभ्यास में लगा हुआ एवं बाह्य विषयों से बीतराग हुआ मन कुछ ही दिनों में उस परम पद को प्राप्त कर लेता है ।१३। सभी कर्मों में अनुष्ठित निर्मल चित्त वाला ज्ञानी पुरुष प्राण और अपान की गति जानकर ही स्वस्थ सुख में प्रतिष्ठित हो जाता है ।१४।

सोदयास्तमयं सेन्दुं सरश्मि सगमागमम् ।
हृदये भास्करं देवं य: पश्यति स पश्यति ॥१५
अस्तं गतगति प्राणे त्वपानेऽभ्युदयोन्मुखे ।
बहि: कुम्भकमालम्ब्य चिरं भूयो न शोच्यते ॥१६
अपानेऽस्तं गते प्राणे किञ्चदभ्युदयोन्मुखे ।
अन्त: कुम्भकमलाम्ब्य चित्तं भूयो न शोच्यते ॥१७
पुष्पस्यान्तरिवाऽऽमोद: प्राणस्याऽन्तरवस्थितम् ।
न सप्राणं न वाऽपानं चिदात्मानमुपास्महे ॥१८
जलस्याऽन्तरिवाऽऽस्वादमपानस्याऽन्तरस्थितम् ।
न सप्राणं न वाऽप्राणं चिदात्मानमुपास्महे ॥१९
प्राणक्षयस्योपान्तस्थमपानक्षयकोटिगम् ।
अपानप्राणयोर्मध्यं चिदात्मानमुपास्महे ॥२०
यदखिलकलनाकलङ्कहीन
परिवलितं च सदा कलागणेन ।
स्वनुभवविभवपदं तदग्र्यं
सकलसुरप्रणतं परं प्रपद्ये ॥२१

उदय और अस्त वाला चन्द्रमा, रश्मि और गमन-आगमन से युक्त हृदयाकाश में अवस्थित प्राणरूप सूर्य के जो दर्शन करता है, यथार्थ में वही दर्शन करता है ।१५। प्राणवायु जब अस्त हो जाता है और अपान

का उदय होता है तब बहिःकुम्भक का चिर-अभ्यास करने से संसार रूपी शोक की प्राप्ति नहीं होती ।१६। और अपान वायु के अन्त होने तथा प्राणावायु से किंचित् उदय होने पर आन्तरिक कुम्भक के चिर-अभ्यास से ही भवरूपी इस लोक में नहीं पड़ना होता ।१२। पुष्प के भीतर स्थित सुगन्धि के समान प्राण में अवस्थित तथा प्राण-अपान दोनों से रहित जो चिदात्मा है, हम उसकी उपासना करते हैं ।१८। जल में स्थित देवता के समान अपान में अवस्थित प्राणापान से रहित चिदात्मा की हम उपासना करते हैं ।१९। प्राण और अपान के क्षय को समीप और अन्त में प्रकाशक तथा प्राणापान दोनों में स्थित जो चिदात्मा है, हम उसके उपासक है ।२०। जो सम्पूर्ण कलना कलंकों से रहित है, जो कलाओं से सदैव परिपूर्ण रहता है और जो अपने अनुभव रूपी वैभव से सम्पन्न है, उस सुर वन्दित परम पद की हम उपासना करते हैं ।२१।

२२—वसिष्ठजी का स्वलोक पुनरावर्तन

एतत्ते कथितं ब्रह्मन् ययास्मि यदिहाऽस्मि च ।
त्वदाज्ञामात्रसिद्ध्यर्थे धाष्ट्यं न ज्ञानपारग ॥१
अहो नु चित्रं भगवन् भवता भूषणं श्रुतेः ।
आत्मोदन्तः प्रकथितः परं विस्मयकारणम् ॥२
धन्यास्ते ये महात्मानमत्यन्तचिरजीविनम् ।
भवन्तं परिपश्यन्ति द्वितीयमिव पद्मजम् ॥३
यावदद्य दृशो धन्याः स्वात्मोदन्तमखण्डितम् ।
यथावत्पावनं बुद्धेः सर्वं कथितवानसि ॥४
तदस्तु तव कल्याणं प्रविशाऽऽत्मगुहां शुभाम् ।
मध्याह्नसमयो यन्मे प्रयामि सुरमन्दिरम् ॥५
इत्याकर्ण्य भुशुण्डोऽसौ जग्राहोत्थाय पादपात् ।
सङ्कलिपताभ्यां हस्ताभ्यामुपात्तहेमपल्लवम् ॥६

काकभुशुण्ड बोले—हे ब्रह्मन् ! ज्ञान पारंगत ! आपकी आज्ञा का पालन करने के उद्देश्य से ही मैंने अपने चिरंजीवन की कथा सुनाने की धृष्टता की है ।१। वसिष्ठजी ने कहा, हे भगवन् ! आपने श्रवण योग्य गाथाओं में भूषण स्वरूप एवं विस्मय पद अपने चिरंजीवन की अद्-भुत कथा मुझे सुनाई ।२। हे विहग ! दूसरे ब्रह्मा के समान आप दीर्घ जीवी महात्मा के दर्शन करने वाले धन्य हैं ।३। आपके इतने समय तक दर्शन करने के कारण मेरे नेत्र भी धन्य हो गये हैं । आपने बुद्धि को पावन करने वाला अपना जीवन वृत्त सम्पूर्ण कह दिया है ।४। आपका कल्याण हो, अब आप अपनी श्रेष्ठ गुफा में प्रवेश कीजिये । मेरा भी मध्याह्न कर्म का समय हो गया है । अतः मैं भी अपने देव मन्दिर को प्रस्थान करूँगा ।५। यह सुनकर काक ने उठकर संकल्प से स्पन्दित हाथों में सुवर्ण पल्लव ग्रहण किया ।६।

कल्पवृक्षलतापुष्पकेसरेण हिमत्विषा ।
तत्पात्रं मौक्तिकार्घ्येण पूरयामास पूर्णधीः ॥७
तेनाऽर्घ्यपाद्यपुष्पेण त्रिनेत्रमिव मामसौ ।
आपादमस्तकं भक्त्या पूजयामास पूर्वजः ॥८
अनुप्रज्याकदर्थेन खगेन्द्राऽलमिति ब्रुवन् ।
विष्टरादहमुत्थाय ततः खगवदालुप्तः ॥९
व्योम्नि योजनमात्रं तु मदनुव्रज्यया गतः ।
करं करेणाऽवष्टभ्य बलात् संरोधितः खगः ॥१०
मयि याते क्षणेनैव गगनाध्वन्यदृश्यताम् ।
निवृत्तोऽसौ विहङ्गेन्द्रो दुस्त्यजा संगतिः सताम् ॥११

फिर उस पूर्णज्ञानी पक्षीने कल्पवृक्षलता की पुष्पकेसरों एवं सुवर्ण के समान कान्तिमय मुक्ता रूपी अर्घ्य-जल से पात्र पूर्ण किया ।७। पूर्वकाल में उत्पन्न हुए उस काकने भगवान् त्रिनेत्र के समान ही अर्घ्य पाद्य और पुष्पों से मेरा आपाद मस्तक पूजन किया ।८। फिर हे विहगेन्द्र ! आप मेरे पीछे चलने का कष्ट न करे, ऐसा कहता हुआ मैं आसन से उठा और पक्षी के समान उड़ने लगा ।९। फिर भी वह

काकराज एक योजन तक मेरे पीछे-पीछे चला। तब मैंने उसे अपने हाथ द्वारा, बलात् आगे बढ़ने से रोका।१०। फिर मैं भी क्षण भर में ही उस गगन मण्डल में अदृश्य हो गया, तब कहीं वह वापस लौटा, क्योंकि सज्जनों की संगति दुस्त्याज्य होती।११।

अन्योन्यमपि कस्मिश्चित्तरंगक इवाऽम्बुधौ।
याते कृतयुगस्याऽऽदौ पुरा वर्षशतद्वये।
संगतोऽहं भुशुण्डेन मेरोः शृङ्गद्रुमेऽभवम् ॥१२
आद्ये राम कृते क्षीणे त्रेता संप्रति वर्तते।
मध्ये त्रेतायुगस्याऽस्य जातस्त्वं रिपुमर्दन ॥१३
पुनरद्याऽष्टमे वर्षे तत्रैवोपरि भूभृतः।
मिलितोऽभूद्भुशुण्डो तथैवाऽजररूपवान् ॥१४
इति सकथितं चित्रं भुशुण्डोदन्तमुत्तमम्।
श्रुत्वा विचार्य चैवाऽन्तर्यद्युक्तं तत्समाचर ॥१५
इति सुमतिभुशुण्डसत्कथां यो
विमलमतिः प्रविचारयिष्यतीह।
भवभयबहुलाकुलास्थितां स
प्रसभसत्सरितं तरिष्यतीति ॥१६

सतयुग के दो सौ वर्ष व्यतीत होने पर मेरे पर्वत स्थित कल्पतरु पर उस काकभुशुण्ड, से मेरी प्रथम भेंट हुई थी।१२। हे राम! हे शत्रुमर्दन! सतयुग भी हो चुका, त्रेतायुग वर्तमान है। आपने जन्म धारण किया है, यह त्रेता ही है।१३। अब से आठ वर्ष पूर्व उसी मेरु शिखर पर, जरा-रहित उस काक से मेरी पुनः भेंट हुई थी।१४। इस प्रकार काकभुशुण्ड का यह श्रेष्ठ चरित्र मैंने कहा है, इस सुने हुए पर विचार करने से उसके समान आचरण कीजिये।१५। वाल्मीकि बोले—काकभुशुण्ड की इस श्रेष्ठ कथा का जो निर्मल बुद्धि पुरुष विचार करता है, वह भव-भय से व्याकुल प्राणियों को व्याप्त करने वाली माया रूपी सरिता से पार हो जायगा।१६।

२३—चिदात्मा ही पूज्य देवता है

एवं भुशुण्डवृत्तान्तः कथितस्ते मयाऽनघ ।
अनया प्रशया तीर्णो भुशुण्डो मोहसङ्कटात् ॥१
एतां दृष्टिमवष्टभ्य स्वप्राणाभ्यासपूर्विकाम् ।
भुशुण्डवन्महाबाहो भवतीर्णमहार्णवः ॥२
अन्ये नरमृगा मुग्धा जम्बूद्वीपे स्वजङ्गले ।
विहरन्ति यथा राम तथा मा विहराऽनघ ॥३
अत्यल्पकालशिशरे कर्दमालेपदायिनि ।
न भङ्क्तव्यं बन्धुरूपे महिषेणेव पल्वले ॥४
अन्येन रचितो देहो यक्षेणाऽन्येन रक्षितः ।
दुःखमन्यस्य भोक्ताऽन्यश्चित्रेयं मौर्ख्यचक्रिका ॥५
यथैकरूपा घनता दृषदोऽस्त्यास्मनस्तथा ।
सत्तामात्रैकसामान्यादितरस्याऽप्यसम्भवात् ॥६
अत्रैमामपरां दृष्टिं महामोहविनाशिनीम् ।
शृणु या कथिता पूर्वं मम कैलासकन्दरे ।
संसारदुःखशान्त्यर्थं देवेनार्धेन्दुमौलिना ॥७

वसिष्ठजी गोले—हे राम ! हे अनघ ! इस प्रकार काक वृत्तान्त जो मैंने कहा है, इसी तत्वज्ञान से वह काक मोह रूपी संकट से पार हो गया था ।१। हे महाबाहो ! प्राणायाम के अभ्यास पूर्वक इसी दृष्टि से आप काक के समान ही इस महान् भवसागर से पार हो जाइए ।२। हे राम ! अन्य मनुष्य मृग रूपी मोह में फँसकर अपने वन रूपी जम्बू द्वीपमें जिस प्रकार बिहार करते हैं, आप उस प्रकार मत कीजिए ।३। वह बन्धु वर्ग अल्प कालीन शीतलता प्रदान करने वाले आसक्ति रूपी पंक में सान देने वाली पोखर के समान है, इसमें आप भैंस के समान डुबकी मत लगाइए ।४। इस देह को किसी ने उत्पन्न किया, किसी दूसरे (अहंरूपी) यक्ष ने आश्रयण किया । दुःख किसी तीसरे ने उठाया, परन्तु भोक्ता तो कोई उससे भी अन्य है, यह अज्ञान की क्रिया

कैसीं विचित्र हैं ! जैसे पाषाण का घनत्व उसके पृथक् नहीं है, वैसे ही आत्मा की घनता सामान्य सत्ता से अभिन्न है: क्योंकि तद्रूप से भिन्न कोई रूप है ही नहीं ।६। इस विषय में जो कथा कही जा रही है, उसे आप अपार दृष्टि से सुनिये । यह कथा कैलास पर्वत की गुफा में भगवान् शंकर ने संसार के दुःख का शमन करने के विचार से मुझसे कही थी ।७।

अस्तीन्दुकरसंभारभासुरः पारगो दिवः ।
कैलासोनाम शैलेन्द्रो गौरीरमणमन्दिरम् ॥८
तत्राऽऽस्ते भगवान् देवो हरश्चन्द्रकलाधरः ।
तं पूजयन्महादेव तस्मिन्नेव गिरौ पुरा ॥९
कदाचिदवसं गङ्गातटे विरचिताश्रमः ।
तपोऽर्थं तापसाचारे चिराय रचितस्थितिः ॥१०
अथ कदाचित्तु कृष्णस्य बहुलस्याऽष्टमे दिने ।
गते श्रावणपक्षस्य रात्र्यग्रे क्षयमागते ॥११
दिक्षु संशान्तिरूपासु काष्ठमौनस्थितास्विव ।
खड्गच्छेद्यान्धकारेषु कुब्जेषु गहनेषु च ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे तत्र यामार्धे प्रथमे गते ।
समाधितनुतां नीत्वा स्थितोऽहं बाह्यमग्नदृक् ॥१३
अपश्यं कानने तेजो झटित्येव समुत्थितम् ।
शुभ्रा भ्रशतसंकाशं चन्द्रबिम्बगणोपमम् ॥१४

चन्द्र किरणों के समान जाज्वल्यमान कैलाश नामक जो पर्वतराज ऊँचाई में आकाश से भी पार चला गया है, वह गौरीरमण भगवान् शिव का मन्दिर स्वरूप ही है ।८। चन्द्रकला के धारण करने वाले भगवान् महादेव जो का निवास वहीं पर है । पुराकाल से मैं उस पर्वत पर उन्हीं देवता का पूजन करने के उद्देश्य से गंगा तट पर आश्रम बनाकर रहने लगा । वहाँ मैंने चिरकाल तक तपस्वियों के आचार का पालन करते हुए तपस्या की ।९-१०। तभी एक समय, श्रावण कृष्णा अष्टमी की रात्रि का प्रथमांश व्यतीत होने पर गहन कुंजें तलवार

के काटने योग्य अर्थात् जिसमें केवल तलवारकी चमक ही दिखाई पड़ सकती थी। अन्धकार से परिपूर्ण हो गई थीं और दिशायें काष्ठवत् मौन प्रतीत हो रही थीं।११-१२। इसी अन्तर में जबकि रात्रि का प्रथम अर्द्ध भाग बीत चुका था, मैंने अपनी समाधि को कुछ चैतन्य करके बाहर की ओर देखा।१३। तभी मुझे उस वन में शुभ्रातिशुभ्र अभ्रों के समान नितान्त श्वेत एवं अनेक चन्द्रबिम्बों के समान प्रकाशमान एक महान् तेज उत्पन्न हुआ दिखाई दिया।१४।

प्रकटीकृतदिक्कुञ्ज तदालोक्य स्मयात्।
अन्तःप्रकाशशालिन्या बहिर्दृष्ट्याऽवलोकितम् ॥१५
यावत्पश्यामि तं सानुं प्राप्तश्चन्द्रकलाधरः।
गौरीकरार्पितकरो नन्दिप्रोत्सरिताग्रतः ॥१६
शिष्यान्सम्बोध्य तत्रस्थान् गृहीत्वार्घ्यं सुसंयतः।
अगमं सुमनास्तस्य दृष्टिपूतमहं पुरः ॥१७
तत्र पुष्पाञ्जलिं दत्वा दूरादेव त्रिलोचनः।
दत्तार्घ्येण मया देवः संप्रणम्याऽभिवन्दितः ॥१८
ततो भगवती गौरी तादृश्यैव सपर्यया।
संपूजिता सखीयुक्ता गणमण्डलिका तथा ॥१९
पूजान्ते पूर्णशतांशुरश्मिशीतलया गिरा।
तत्रोपविष्टं प्रोवाच मामर्धेन्दुकलाधरः ॥२०
ब्रह्मन् प्रशमशलिन्यः प्राप्तविश्रान्तयः परे।
कच्चित् कल्याणकारिण्यः संविदस्ते स्थिताः पदे ॥२१
कच्चित्तरस्ते निर्विघ्नं कल्याणमनुवर्तते।
कच्चित् प्राप्यमनुप्राप्तं कच्चिच्छाम्यन्ति भीतयः ॥२२

उस तेज के अकाश से कुंजों सहित सभी दिशायें चमक उठीं। मैं अत्यन्त विस्मय पूर्वक उसे देखने लगा। मैंने उस पर दूर दर्शिता से विचार किया और बाह्याभ्यतर दोनों दृष्टियोंसे उसे ध्यान पूर्वक देखा।१५। तभी मैंने पुनः सामने की ओर दृष्टि की तो देखता हूँ कि चन्द्रकला को धारण किये भगवान् शंकर साक्षात् खड़े हैं। वे

अपने हाथ में पार्वती का हाथ लिए हुए हैं। नन्दीगण आगे से लोगोंको हटा रहे थे।१६। तभी मैंने अपने उपस्थित शिष्यों को सम्बोधित किया और स्वयं सावधान एवं प्रसन्न चित्तसे अर्घ्य पात्र ग्रहण कर उन गौरी-पति भगवान् की दृष्टि से ही पवित्र हुई सन्नधि में पहुँच गया।१७। वहाँ दूर से ही मैंने पुष्पांजलि और अर्घ्य का समर्पण किया और उन त्रिनेत्र को साष्टांग प्रणाम एवं अभिनन्दन किया।१८। तभी मैंने जैसे भगवान् शंकर का पूजन किया था, वैसे ही सखियों से युक्त तथा गण मंडल से घिरी हुई भगवती गौरी का पूजन किया।१९। पूजा-कार्य सम्पूर्ण होने पर उस स्थान पर बैठे हुए मुझ से वे अर्द्ध चन्द्रकला के धारण करने वाले भगवान् गौरीपति पूर्ण चन्द्र रश्मियों के समान शीतल वाणी से बोले।२०। हे ब्रह्मन् ! सांसारिक विषयों से विरक्त ओर पर-ब्रह्म के चिन्तन में विश्रान्ति को प्राप्त हुई तुम्हारी चित्तवृत्तियाँ कल्याण कारी पद में ही तो अवस्थित हैं न ?।२१। कल्याण लक्ष्य में वर्तमान तुम्हारा तप निर्विघ्न रूप से चल रहा है न ? तुम्हें प्राप्तव्य की प्राप्ति तो हो गई है न ? तुम्हारे सांसारिक मलों का पूर्ण रूपेण शमन तो हो चुका है न ?।२२।

एवं वादिनि देवेशे सर्वलोकैककारिणि।
गिराऽनुनयशालिन्यामयोक्तं रघुनन्दन॥२३
त्र्यक्षानुस्मृतिकल्याणवतामिह महेश्वर।
न किञ्चिदपि दुष्प्राप्यं न काश्चन भीतयः॥२४
ज्ञानामृतैककलशो धृतिज्योत्स्नानिशाकरः।
अपवर्गपुरद्वारं त्वदनुस्मरणं प्रभो॥२५
त्वदनुस्मरणोदारचिन्तामणिमता मया।
सर्वासामापदां मूर्ध्नि दत्तं भूतपतेः पदम्॥२६
इत्युक्त्वा सुप्रसन्नं तं भगवंतं महेश्वरम्।
अवोचत्प्रणतो भूत्वा यद्राम तदिदं शृणु॥२७
भगवंस्त्वत्प्रसादेन पूर्णा मे सकला दिशः।
किन्तु पृच्छामि देवेश सन्देहे तत्र निर्णयम्॥२८

ब्रूहि प्रसन्नया बुद्ध्या त्यक्तोद्वेगमनामयम् ।
सर्वपापाक्षयकरं सर्वकल्याणवर्धनम् ॥२९
देवार्चनविधानं तत्कीदृशं भवति प्रभो ॥३०

वसिष्ठजी ने कहा—हे रघुनन्दन ! सभी लोकों के एक मात्र कारण उन देवेश के इस प्रकार कहने पर मैंने अनुनय भरी वाणी से उनसे कहा ।२३। हे महेश्वर ! आप त्रिलोचन भगवान् के निरन्तर स्मरण द्वारा उपलब्ध कल्याण से युक्त जीवों के लिए न तो कुछ दुष्प्राप्य है और न कोई भय ही है ।२४। हे प्रभो ! आपका अनुस्मरण तो ज्ञानामृत से परिपूर्ण कलश रूपही है, वही धृति रूपिणी चाँदनी को चन्द्रमा और चिन्तामणि से विभूषित होकर मैंने, तीनो काल में प्राप्त होने वाली विपत्तियों के शीशों में अपने पाँव से ठोकर मार दी है ॥२५-२६। हे राम ! अत्यन्त प्रसन्न हुए उन शिवजी से इस प्रकार कहने के पश्चात् मैंने प्रणत मुद्रा में उनसे जो पुनः निवेदन किया उसे सुनिए ।२७। मैंने कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपा से यह सम्पूर्ण दिशायें मेरे लिए सम्पूर्ण काम्य पदार्थों से परिपूर्ण रहती है फिर भी हे देवेश ! मेरे मन में जो शंका है, उसका निर्णय आपसे पूछ रहा हूँ ।२८। हे प्रभो ! आप प्रसन्न होकर मुझे बतलाइए कि समस्त उद्वेगों से रहित, निर्मल, सब पापों का क्षय करने वाला, सभी कल्याणों की वृद्धि करने वाला जो देवार्चन विधान है, उसका स्वरूप क्या है ।२९-३०।

शृणु ब्रह्मविदां श्रेष्ठ देवार्चनमनुत्तमम् ।
वदामि मुच्यते येन कृतेन सकृदेव हि ॥३१
कच्चिद्वेत्सि महाबाहो देवः कः स्यादिति द्विज ।
न देवः पुण्डरीकाक्षो न च देवस्त्रिलोचनः ॥३२
न देवः कमलोद्भूतो न देवस्त्रिदशेश्वरः ।
न देवः पावनो नाऽर्को नाऽनलो न निशाचरः ॥३३

न ब्राह्मणो नाऽवनिपो नाऽहं न त्वं द्विजोत्तम ।
न देवो देहरूपो हि न देवश्चित्तरूपधृक् ॥३४
न देवः कमलारूपो नाऽपि देवो भवेन्मतिः ।
अकृत्रिममनाद्यंत देवनं देव उच्यते ॥३५
तदेवाऽस्ति यतः सत्तासत्तात्मकरूपधृक् ॥३६
अज्ञातशिवतत्वानामाराद्यचैनं कृतम् ।
योजनाध्वन्यशक्तस्य क्रोशाध्वा परिकल्प्यते ॥३७

शिवजी बोले—हे ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! मैं तुमसे उस उत्तम देवार्चन-विधान को कहता हूँ जिसके करने से निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ।३१। हे द्विज ! महाबाहो ! क्या तुम जानते हो कि 'देव' कमलोत्पन्न ब्रह्मा भी देव नहीं हैं । देवेश इन्द्र वायु, सूर्य अग्नि, चन्द्रमा इनमें भी कोई देव नहीं है ।३२-३३। हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मण भी देव नहीं हैं राजा भी नहीं । मैं या तुममें से भी कोई देवता नहीं है, न देह रूपधारी देव है, न चित्त रूप धारी ।३४। न लक्ष्मीरूपी देवता है और न मति ही देवता है परन्तु अकृत्रिम आदि अन्त रहित जो चित् है, उसी को ज्ञानीजन देव कहते हैं ।३५। सम्पूर्ण अस्तित्व उसी की सत्ता से होने के कारण वही चिद्रूप देव शब्द से कही जाती है और उसी का पूजन किया जाता है ।३६। जिन्हें शिव तत्व का ज्ञान नही उन्ही के लिए अन्य अर्चन विहित है । क्योंकि अशक्त पथिकों की सान्त्वना के लिए योजना परिणाम वाले मार्ग में कोसों से गणना की जाती है ।३७।

इयत्तादिपिरिच्छिन्नं रुद्रादेः प्राप्यते फलम् ।
अकृत्रिममनाद्यन्तं फलमानन्दमात्मना ॥३८
अकृत्रिमफलं त्यक्त्वा यः कृत्रिमफलं व्रजेत् ।
त्यक्त्वा स मन्दारवनं कारंजं याति काननम् ॥३९

बोधः साम्यं शम इति पुष्पाण्यग्राणि च ।
शिवं चिन्मात्रममल पूज्यं पूज्यविदो विदुः ॥४०
शमबोधादिभिः पुष्पैर्देव आत्मा यदर्च्यते ।
तत्तु देवार्चनं विद्धि नाऽऽकारार्चनमर्चनम् ॥४१
आत्मसंवित्तिरूपं तु त्यक्त्वा देवार्चनं जनाः ।
कृत्रिमार्चासु ये शक्ताश्चिरं क्लेशं भजन्ति ते ॥४२
चेतनाकाशमात्रात्मं यथा जगदिदं प्रभो ।
यथा यच्चेतनस्यैव जीवादित्वं तदुच्यताम् ॥४३

प्रसन्न हुए रुद्रादि देवता तो इयत्ता आदि से युक्त फल ही दे सकते हैं परन्तु तत्व से दर्शन की गई प्रसन्न आत्मा के दर्शन-पूजन से तो आदि अन्त से शून्य स्वभाविक फल की प्राप्ति होती है ।३८। और जो स्वाभाविक फल का त्याग कर बनावटो फलकी ओर दौड़ता है, वह अवश्य ही देव वृक्ष मन्दार के वन का त्याग कर कन्जाके वन की ओर जा रहा समझो ।३९। पूजनीय जो जानने वाले ज्ञानियों का कथन है कि पूजन-सामिग्री में बोध, साम्य-बुद्धि और शम यह उत्तम पुष्प हैं और निर्मल चिन्मात्र शिव ही पूज्य देवता हैं ।४०। शम और बोधादि रूपी पुष्पों के द्वारा जो पूजन किया जाव, वही यथार्थ देवार्चन है, प्रतिमा-पूजन को देव-पूजन मत जानो ।४१। जो आत्म-ज्ञान रूपी देवार्चन पूजन का परित्याग कर कृत्रिम देवार्चन में लगे रहते हैं, उन्हें चिर काल तक क्लेश ही प्राप्त होता है ।४२। वसिष्ठजी बोले—हे प्रभो ! वह विश्व जिससे चेतनाकाशमात्र रूपत्व की प्राप्ति होती है, उसके विषय में मुझसे कहिये ।४३।

चिद्व्योमैव किलाऽस्तीह पारावारविवर्जितम् ।
सर्वत्राऽसम्भवच्चेत्यं यत्कल्पान्तेऽवशिष्यते ॥४४
यद्यत्स्वयं प्रकचितं तस्य स्वकचनस्य तु ।
स्वयं यत्स्पन्दितं नाम तेनेदं जगदित्यलम् ॥४५

इत्येव स्वप्नपुरवज्जगद्भाति चिदात्मकम् ।
एवं चिद्व्योममात्रात्म जगदच्छं न भित्तिमत् ॥४६
याः काश्चन दृशो ये ये भावाभावास्त्रिकालगाः ।
सदेशकलचित्तात्सर्वं चिद्व्योममात्रकम् ॥४७
स एव देवः प्रथितो यः परः परमार्थतः ।
यस्त्वं सोऽहमशेषं वा जगदेव च योऽखिलः ॥४८
सङ्कल्पेन स्वप्नपुरे शरीरं
चिद्व्योमतोऽन्यन्न चास्तिकिञ्चित् ।
तथेह सर्गे प्रथमैकसर्गान्
मुने प्रभृत्यस्ति न रूपमन्यत् ॥४९

शिवजी बोले— पारावार से रहित यह चैत्य-रहित चिदाकाश ही सर्वत्र विद्यमान है । कल्पान्त में भी यही शेष रहता है ।४४। स्वयं प्रकाश वाले पदार्थों के प्रकाश से स्पन्द जैसा प्रतीत होने वाले जगत् के समान चिदाकाश की अपरिच्छन्नता से मायाबरण में न छिप सकने के कारण रागादि से जो स्पन्द सा प्रतीत होता हैं उसी से इस विश्व रूपत्व की प्रतीति होती है ।४५। इस भाँति स्वप्न नगरी के समान यह विचित्र रूप विश्व चिदात्मक ही है । बुद्धि-पूर्वक विचार करने पर इस विश्व की किसी भित्ति (आधार) की सिद्धि नहीं हो पाती ।४६। विभिन्न दृष्टियों से युक्त, त्रिकाल में देश, काल और चित्त से समन्वित भाव और अभाव वाले जो-जो पदार्थ हैं वे सब चिदाकाश मात्र ही है ।४७। परमार्थ रूप से श्रेष्ठ, तुम्हारा तत्परार्थ का, मेरा और सम्पूर्ण विश्व का स्वरूय तथा परिपूर्ण है, वह ज्ञानरूपी पूजन सामग्री से अर्चन के योग्य देवता है वह तुम्हारे पूछने पर मैंने बता दिया है ।४८। जैसे संकलिपत पदार्थों और स्वप्न नगरों के दृश्य पदार्थों में चैतन्याकाश के अतिरिक्त कुच नहीं हैं, वैसे ही प्रथम सर्ग से इस सर्ग तक स्थित इस विश्व से चैतन्याकाश स्बरूप पारमार्थिक रूपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ।४९।

२४—सुःख दुख भोग के लिए ही देह की प्राप्ति

एवं सर्वमिदं विश्वं परमात्मैव केवलम् ।
ब्रह्मैव परमाकाशमेष देवः परः स्मृतः ॥१
तदेतत्पूजनं श्रेयस्तस्मात् सर्वमवाप्यते ।
तदेव सर्गभूः सर्वमिदं तस्मिन् व्यवस्थितम् ॥२
अकृत्रिममनाद्यन्तमद्वितीयमखण्डितम् ।
अवेहि साधनासाध्यं सुखं तस्मादवाप्यते ॥३
चिन्मात्रमेव संसारसारः सकलसारताम् ।
गतः स देवः सर्वोऽहं तस्मात् सर्वमवाप्यवे ॥४
न स दूरे स्थितो ब्रह्मन्न दुष्प्रापः स कस्यचित् ।
संस्थितः स सदा देहे सर्वत्रैव च खे तथा ॥५
स करोति स चाऽश्नाति स बिभर्ति प्रयाति च ।
स निःश्वसिति संवेत्ता सोऽङ्गादङ्गानि वेत्ति च ॥६
प्रविस्मृतस्वभावत्वाज्जीवोऽयं जडतां गतः ।
मोहाद्विस्मृतभावत्वाच्छूद्रतामिव सद्द्विजः ॥७

भगवान् शंकर बोले—हे मुने ! इस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व ही एकमात्र परमात्मा ब्रह्मरूप है, वही परमाकाश और परम देव कहा जाता है ।१। उसी का पूजन परम कल्याणकारी है क्योंकि उसीके द्वारा सर्व प्राप्ति सम्भव है, वही सर्ग रूप आरोप का अधिष्ठान है, अतः यह सब कुछ उसी में व्यवस्थित है ।२। अकृत्रिम, अनादि अनन्त, अद्वितीय, अखंडित और बाह्य साधनों से जिसकी सिद्धि संभव नहीं,केवल उसी के पूजन से नित्य सुख की प्राप्ति सम्भव है ।३। चिन्मात्र ही संसार है, और सम्पूर्ण सार-भूत वस्तुओं के भार रूप वाला वाला ही मैं परिपूर्ण देव हूँ, अतः चिदात्मा से ही सभी कुछ प्राप्ति हो सकती है ।४। हे ब्रह्मन्, न वह दूर स्थित है और दुष्प्राप्य ही है, वह तो सदैव इस देह में और आकाश में विद्यमान रहता है।५। वही कर्म करता, वही भोजन करता, वही पालन करता, वही जाता, वही श्वाँस लेता और वही

अंग अंग का ज्ञाता है।४। अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को भूल जाने के कारण ही उसने वैसी जड़ता प्राप्त करली है, जैसे कि मोहवश अपने स्वाभाविक कर्म को भूल जाने पर सद् ब्राह्मण को शूद्रत्व की प्राप्ति होती है।७।

प्रविस्मृतस्वभुवा हि चिच्चित्तत्वमुपागता।
मोहापहतचित्तत्वात् सुमहानिव दीनताम् ॥८
शरीरशकटानां हि कर्षणे परमात्मना।
मनः प्राणोदयौ ब्रह्मन् कृतौ कर्मकृतौ दृढौ ॥९
चिच्चेत्यचेतनान्मोहात् स्पन्दमायान्ति वासनाः।
तदीरिता स्मरत्यन्तरन्यद्विस्मरति स्वयम् ॥१०
हृत्पद्मपत्रस्थुरणात् स्फुटं पुर्यष्टकं भवेत्।
हृत्पद्मयन्त्रे वहनाद्रुद्धे पुर्यष्टकं क्षयि ॥११
देहे पुर्यष्टकं यावदस्ति तावत्स जीवति।
शान्ते पुर्यष्टके देहो मृत इत्युच्यते द्विज ॥१२
संरुद्धे पद्मयन्त्रे हि प्राणे शान्तिमुपागते।
देहः पयत्यधैर्योऽयं काष्ठलोष्टसमः क्षितौ ॥१३
यथैव व्योमरुचि लीनं पुर्यष्टकं भवेत्।
तत्रेदं तत्रैव तदा लयमेति मनो मुने ॥१४

मोह में चित्त के विलीन होने से अपने स्वरूप को विस्मृत हुए महान् व्यक्तियों को जैसे दीनता की प्राप्ति हो जाती है, वैसे ही अपने चैतन्य स्वभाव के विस्मरण से चित्त को भी जड़त्व की प्राप्ति होती है।८। परमात्मा ने इस देह रूपी शकट को खींचने के लिए मन और प्राण रूपी दो सुदृढ़ कर्मचारी उत्पन्न किये हैं।९। मोहवश उत्पन्न उस चिति में विषयात्मक ज्ञान से वासनाओं का स्पन्दन होता है, जिनकी प्रेरणा से उसे अपने पूर्व भोक्तृत्वादि का स्मरण होता है और वह अपना दूसरा रूप स्वयंही भूल जाता है।१०। हृदय कमल का पत्र जब स्फुरित होता है, तब यह पुर्यष्टक प्रकट होता है और जब उस हृत्कमलपत्र का यन्त्र जब रुकनेको प्राप्त होता है, तब पुर्यष्टक का क्षय हो

जाता है। हे द्विज ! देह में पुर्यष्टक के अवस्थित रहने तक ही जीवन रहता है, जब पुर्यष्टक क्षीण हो जाता है तब देह को 'मृत' कहा जाता है। उस पद्मयन्त्र के स्पन्दहीन और प्राण के तेज में विलीन हो जाने पर धृति-रहित हुआ यह शरीर काठ या ढेले के समान पतित हो जाता है। हे मुने हृदयाकाश के प्राण में लीन हो जाने पर मन भी प्राण में ही विलीन हो जाता है।११-१४।

शरीरं शवतामेति मनोमारुतवर्जितम्।
भूते गृहजने दूरं गृहं संशून्यतामिव ॥१५
जीवशक्त्याऽपरामृष्टे निरुद्धे पद्मयन्त्रके।
प्राणे संशोधमायाते म्रियते मानवो मुने ॥१६
यथा जातानि जातानि चाऽन्यान्यन्यानि कालतः।
वृक्षात् पर्णानि शीर्यन्ते शरीराणि तथा नृणाम् ॥१७
जायन्ते च म्रियन्ते च शरीरिणाम् देहाःसर्वः।
पादपानां च पर्णानि तेभ्यः का परिदेवनाः ॥१८
चिदुम्बुधी स्फुरन्त्येता देहबुद्बुदपङ्क्तयः।
इतश्चाऽन्या ततश्चान्या एतास्वास्था न धीमतः ॥१९
सर्वगाऽपि चिदेतस्मिंश्चेतसि प्रतिबिम्बति।
पदार्थमन्तरादत्तो नाऽन्तो किं मुकुराद्दते ॥२०
चिदमलनभसि प्रयत्नरूपाः
परिवितते तदतन्मयाः स्फुरन्ति।
कलकलकमुखराः स्फुटाभिरामा
विधिशरीरविमोहतापनाय ॥२१

जैसे घर में रहने वाले मनुष्यों के चले जाने पर सूना हो जाता है, वैसे ही मन और प्राण विहीन हुआ यह देह 'शव' स्वरूप हो जाता है।१५। हे मुने ! जीव-विषयक स्मृति शक्ति की असम्बद्धता और पद्मयन्त्र के निरोध से प्राण अवरुद्ध हो जाते हैं तभी मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।१६। जैसे उत्पन्न होकर वृक्ष के पत्ते समय पाकर झड़-झड़ जाते है वैसे ही प्राणियों के यह देह गिर जाते हैं।१७। वृक्षों के

पत्तों के समान प्राणियों के यह देह भी उत्पन्न हो-होकर मरते रहते हैं तब तुमको उसके विषय में परिसंताप ही कैसा ?।१७। चैतन्यरूप सागर में शरीर रूपी बुदबुदों की पंक्तियाँ कहीं कैसी और कहीं कैसी विभिन्न प्रकार की स्फुरित होती हैं, मतिमान् पुरुष इनमें विश्वास नहीं रखते ।१६। सर्वव्याप्त वह चिति चित्त रूपी दर्पण में ही प्रतिबिम्बित होती है क्योंकि दपर्ण के अतिरिक्त अन्य कोई भी अपने अन्तरमे किसी पदार्थ को प्रविष्ट नहीं होने देता ।२०। निर्मल चिदाकाश में अपने शुभाशुभ प्रयत्नों के फल स्वरूप, सुख दुःख आदि के उपभोग काल में विभिन्न कोलाहलों से मुखारित और रमणीय होकर यह जगद्रूप कल्पनावें विविध देहों के द्वारा भ्रान्तिपूर्वक आत्मा को विमोहित और संतप्त करने के निमित्त प्रकट होती हैं ।२१।

२५—आत्म-पूजन से ब्रह्मरूप प्राप्ति

चन्द्रार्धशेखरधर चित्तत्वस्य महात्मनः।
अनन्तस्यैकरूपस्य द्वित्वं कथमुपागतम् ॥१
कथं च तन्महादेव रूढपर्यायसंकुलम्।
भवेद्दुःखोपघाताय प्रज्ञया विनिवारितम् ॥२
सर्वशक्ति हि तद्ब्रह्म सदेक विद्यते यदा।
तदा निर्मू ल एवाऽयं द्वित्वैकत्वकलोदयः ॥३
सति द्वित्वे किलैकस्मात् सत्येकत्वे द्विरूपता।
कले द्वे अपि चिद्रू पे चिद्रू पत्वात्तदध्यसत् ॥४
एकाभावादभावोऽत्र एकत्वद्द्वित्वयो र्द्वयोः।
एकं विना न द्वितीयं न द्वितीयं विनैकता ॥५
कार्यकारणयोरेकसारत्वादेकरूपता।
फलान्तस्याऽपि बीजादेर्विकारादिह कल्पना ॥६
चित्त्वं चेत्यविकल्पेन स्वयं स्फुरति तन्मयम्।
विकारादि तदेवाऽन्तस्तत्साररत्वान्न विद्यते ॥७

वसिष्ठजी बोले हे अर्द्धचन्द्रधर ! हे महामन् ! मुझे यह बताइए कि अनन्त और एकमात्र चैतन्य को द्वित्व की प्राप्ति किस प्रकार हुई? ।१। हे महादेव ! अनेक बन्धन में जकड़ा हुआ ओर चिरकालीन अनुवृत्ति पर स्थित उस द्विदल भेदका दुःख नाश करने के मार्गमें तत्वज्ञान से निवारण किस प्रकार होगा ? ।२। शिवजी बोले—वह सर्व शक्तिमान ब्रह्म सदा एक रूप से स्थित रहता है, इसलिए उसमें द्वित्व का आरोप निराधार ही है।३। सद्‌ब्रह्म में द्वित्व का आरोप होने पर उसके निषेध स्वरूप एकत्व का प्रतिपादन किया जाता है। वही एकत्व जब अन्य एकत्वसे द्वित्व में कल्पित होता है, तब दोनों की सापेक्षता से वे चिद्रूप ही हैं (अर्थात् चिद्रूप होने से द्वित्व की कल्पना अस्तित्व हीन है) ।४। एक वस्तु के अभाव से एकत्व और द्वित्व दोनों का अभाव हो जाता है, क्योंकि एक के बिना दूसरा अथवा दूसरे के बिना एकत्व नहीं होता ।५ कार्य और कारण दोनों में जो सार है वह उनका एक तत्व रूप होने से एक रूपसा नहीं है। जैसे बीज और फल के भेद से एक के विकार से ही दूसरे की कल्पना होती है ।६। जगद्रूप चैत्य के विकल्प से चितितत्व ही चैत्यमय होकर स्फुरित होता है। विकारादि सम्पूर्ण पदार्थ तत्स्वरूप से भिन्न नहीं है ।७।

देशकालविकारादि: कुतो भेदश्चितस्तु यः।
तच्चिदेतदसत्वोक्तं न प्रश्नोऽत्र तवोचितः ॥८
असंभक्त रङ्गस्य चिद्विलासमहाम्बुधेः।
तरत्तङ्गिवमिव यत्तत्तावच्चेत्यसंगिता ॥९
तदेतपरमं ब्रह्म सत्येश्वरशिवादिभिः।
शून्यैकपरमात्मादिनामभिः परिगीयते ॥१०
द्वित्वसंकल्पतो द्वित्वमेकस्यैय प्रवर्धते।
अद्वित्वसंविदा द्वित्वमनेकस्याऽपि नश्यति ॥११
परमात्मतया द्वित्वं न किलाऽऽत्मनि विद्यते।
अविकारादित्वेन सर्वत्र सर्वगत्वेन सर्वदा ॥१२

यत्स्वसंकल्परचितमसङ्कल्पक्षयं हि तत् ।
यथामुने मनोराज्यं गन्धर्वनगरंयथा ॥१३
पुष्टसङ्कल्पमात्रेण यदिदं दुःखमागतम् ।
तदसंकल्पमात्रेण क्षयि काऽत्र कदर्थना ॥१४

देश, काल और विकारादि स्वरूपसे चिति का जो भेद किया गया हैं, वह सब चिति स्वरूप ही है अभेद में भेद की स्थिति कैसे हो सकती है ? जिसे तुम असत् कहते हो, उसके विषय में प्रश्न करना अनुचित हैं ।८। जिसमें तरंगें हो ही नहीं सकतीं उस चिद विलासरूपी महा समुद्रमें तरंगित के समान जो व्यवहृत होता है, वह चैत्य से सुसम्बद्ध है ।८-६। वही चितितत्व परब्रह्म, सत्य ईश्वर एवं शिवादि स्वरूप हैं, वही शून्य एवं एकमात्र परमात्मा अनेक नामों से गाया जाता है ।१०। अद्वित्व पदार्थ में द्वित्व संकल्प से ही द्वित्व भाव की प्राप्ति होती है और अद्वित्व भाव से अनेकानेक द्वित्व ही अद्वैत हो जाते हैं ।११। आत्मा विकारादि से रहित, सर्वदा सर्वत्र गमनशील तथा परमात्मा का स्वरूप भूत ही है, अतः उसमें द्वित्व की विकृता कभी हो ही नहीं सकती ।१२। हे मुने ! यह मनोराज्य अपने संकल्प का अभाव होने पर उसका अस्तित्व नहीं रहता ।१३। इस सम्पूर्ण दुःख की प्राप्ति भी संकस्प से ही हुई जब संकल्प के अभाव से नष्ट हो जायगा तो यह संसार रूपी दुःख भी रहेगा, फिर इसमें चिन्ता ही क्या है ? ।१४।

मनसा मनसिच्छिन्ने स्वेन्द्रियावयवात्मनि ।
सत्यलोकाज्जगज्जाले प्रच्छन्ने विलयं गते ॥१५
छिद्यते शीर्णसंसारकलना कल्पनात्मिका ।
भृष्टबीजोपमा सत्ता जीवस्य इतिनामिका ॥१६
पश्यन्ती नाम कलितोन्मृञ्जती चेत्यचर्वणम् ।
मनोमोहाभ्रनिर्मुक्ता शरदाकाशकोशवत् ॥१७
शुद्धा चिद्भावमात्रस्था चेत्यचिच्चापलं गता ।
समस्तसामान्यवती सन्तरति भवतोऽर्णवात् ॥१८

बोधात् कलङ्कविमला चिदेव परमं शिवम् ।
विदुर्देवंतदाभासं सर्वसत्तार्थदं तथा ॥१६
स हरि: स शिव: सोऽज: स ब्रह्मा स सुरेश्वर: ।
अनिलानलचन्द्रार्कवपु: स परमेश्वर: ॥२०
स एष सर्वगो ह्यात्मा चित्खनिश्चेतना स्मृत: ।
देवेशो देवभृद्धाता देवदेवो दिव: पति: ॥२१

मन के द्वारा अपनी इंद्रियोंके व्यापारों के कारण भूतमन के छिन्न हो जाने पर प्रच्छन्न विश्व रूपी जाल विलय को प्राप्त हो जाता है फिर कल्पना रूपी इस जीर्ण जगत् की कल्पना क्षीण हो जाती हैं, तब धुने हुए बीजके समान जीव का अस्तित्व रह जाता हैं ।१५-१६। पश्यन्ती नाम वाली उक्त अवस्था चेत्य विषयक चर्वथा शरत्कालीन आकाश के समान मानसिक मोह रूपी मेघों से विहीन हुए योगियों द्वारा व्यवहार में लाई जाती है ।१७। चित्त के पूर्ण संकल्पों से सघलता को प्राप्त हुई चिति भी शुद्ध चिद्भाव में अवस्थित होकर सभी उपाधियों का त्याग करके भव सागर से पार हो जाती है ।१८। वही चिति ब्रह्मज्ञान से कलंक-रहित होकर परम कल्याण स्वरूप होती है, वही सब पदार्थों को अस्वित्व रूप स्थूर्ति देने वाली तथा देव स्वरूपिणी है ।१६। वही विष्णु है वही शिव और ब्रह्मा है वही इंद्र, अग्नि चन्द्रमा और सूर्य तथा वही परमेश्वर है ।२०। वही सर्वगामी आत्मा चैतन्य स्वरूप, देवेश्वर, देवभूत, धाता, देवाधिवेद, तथा दिव्यलोक का स्वामी है ।२१।

ततश्चिद्रूपनेवैकं सर्वमत्तान्तरास्थितम् ।
स्वानुभूतिमयं शुद्धं देवं रुद्रेश्वरं विदु: ॥२२
बीजं समस्तबीजानां सारं संसारसंसृते: ।
कर्मणां परमं कर्म विद्धि चिद्धातुं निर्मलम् ॥२३
कारणं कारणौघानामकारणमनाविलम् ।
भावनं भावनौघानामभाव्यमभवात्मकम् ॥२४

स्वसंविदात्मा देवोऽयं नोपहारेण पूज्यते ।
न दीपेन न धूपेन न पुष्पविभवार्पणैः ॥२५
नाऽन्नदानादिदन्नेन न चन्दनविलेपनैः ।
न च कुंकुमकर्पूरभोगैश्चित्रैर्नचेतरैः ॥२६
नित्यमक्लेशलभ्येन शीतलेनाऽविनाशिना ।
एकेनैवाऽमृतेनैष बोधेन स्वेन पूज्यते ॥२७
एतदेव पर ध्यानं पूजैषैव परा स्मृता ।
यदनारतमन्तःस्थं शुद्धचिन्मात्रवेदनम् ॥२८

इस चितिरूपी आत्मतत्व का साक्षात्कार होने पर जीव जन्म रहित हो जाता है, इसलिए ज्ञानीजन अपने द्वारा अनुभूत इसी शुद्ध तत्व को रुद्र ईश्वर एवं देवता स्वीकार करते हैं ।२२। तुम इस निर्मल चिति तत्व को ही सम्पूर्ण बीजों का बीज और जगतरूपी सृष्टिका परम सार तथा सभी कर्मों में परम कर्म जानो ।२३। वही सब कारणों का कारण और अपनी सत्ता से ही सबको अस्तित्व देने वाला है। यथार्थ में तो वह न कारण है, न कार्य, अपितु विकार रहित अभावात्मक है ।२४। स्वानुभूत इस आत्मा का गन्ध, दीप, फूल अथवा धन आदि भेंट करने से पूजन सम्बन्ध नहीं होता ।२५। अन्नादि के दान से चन्दन, कुंकुम, कर्पूर, नैवेद्य या इत्र आदि के समर्पण से भी इस देवका अर्चन सम्पन्न नहीं होता ।२६। इसका पूजन तो बिना क्लेश के प्राप्त हो सके ऐसे शीतल, अविनाशी, एकमात्र, अमृत स्वरूप के ज्ञान से ही सम्पन्न हो सकता है । अन्तर में स्थित जो शुद्ध चिन्मात्र तत्व है उसका अविच्छिन्न सँवेदन ही सव ध्यानों में उत्तम और पूजनों में श्रेष्ठ पूजन कहा जाता है ।२७-२८।

पश्यञ्छृण्वन्स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ।
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन् शुद्धसंविन्मयो भवेत् ॥२९
ध्यानामृतेन सम्पूज्य स्वयमात्मानमीश्वरम् ।
परमास्वादयुक्तेन मुक्तेन कुसुमैर्हितैः ॥३०

ध्यानेनाऽनेन सुमते निमेषांस्तु त्रयोदश ।
मूढोऽपि पूजयित्वेशं गोप्रदान फलं लभेत् ॥३१
पूजयित्वा निमेषण शतशेकमिति प्रभुम् ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३२
पूजयित्वा स्वमात्मानं घटिकार्धमिति प्रभुम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोति मानवः ॥३३
ध्यानबल्युपहारेण स्वयमात्मानमात्मना ।
घटिकां पूजयेद्यस्तु राजसूयं लभेत सः ॥३४
मध्याह्नपूजनादित्थं राजसूयायुतं लभेत् ।
दिवसं पूजयित्वैवं परे धाम्नि वसेन्नरः ॥३५
एषोऽसौ परमो योग एषा सा परमा क्रिया ।
बाह्यसंपूजनं प्रोक्तमेतदुक्तं ममात्मनः ॥३६
एतत् पवित्रमखिलाधिविघातहेतु
यस्त्वाचरिष्यति नरः क्षणमप्यखिन्नः ।
तं वन्दयिष्यति सुरासुरलोकपूर्णः
प्राप्तास्पदं जगति मामिव मुक्तमात्मन् ॥३७

देखते हुए, सुनते, स्पर्श करते, सूँघते भोजन करते, चलते, शयन करते, श्वांस लेते, बोलते मलादि का त्याग करते और इच्छित वस्तुका ग्रहण करते हुए, अर्थात् सभी समय शुद्ध संविदात्म रूपी आत्मा का ध्यान करता रहे ।२६। परम आस्वाद से युक्त पुष्प आदि के सम्पूर्ण प्रयत्न से रहित होकर ध्यान रूप अमृत के द्वारा आत्मा रूपी देवता का स्वयं पूजन करना चाहिए ।१०। हे सुबुद्धे ! यदि तत्व का न जानने वाला भी तेरह निमेष तक इस प्रकार के ध्यान से आत्मा देव का पूजन कर ले, तो उसे गौ दान का फल मिलता है ।३१। और एक सौ निमेष पर्यन्त ऐसा ध्यान करले तो उस पूजन से अश्वमेध यज्ञ से जो फल होता है, उसकी प्राप्ति हो जाती है ।३२। आधी घड़ी तक इस प्रकार ध्यान रूपी आत्मा का पूजन हो जाय, तो एक सहस्र अश्वमेध

यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है ।३३। उपहार भेंट करता हुआ एक घड़ी पर्यन्त आत्मा का पूजन करे तो उसे राजसूर्य यज्ञ का फल मिलता है ।३४। यदि मध्याह्न काल तक इस प्रकार ध्यान रूपी आत्मा का पूजन करे तो एक लाख राजसूय यज्ञों के फल की उपलब्धि होती है दिन भर ऐसा पूजन करे तो परम धाम निवास प्राप्त होता है ।३५।यह आत्मा का श्रेष्ठ बाह्य पूजन मैंने तुम्हारे प्रति कहा हैं, यही परम योग अथवा उत्तम कर्म है ।३६। इस सभी पापों के विनाशक एवं पावन आत्म पूजन को जो कोई विकार रहित होकर क्षण भर भी कर लेगा, वह सभी बन्धनोंसे छूट कर ब्रह्मरूप हो जायेगा और देवता दैत्य आदि जिस प्रकार मेरी बन्दना करते हैं उसी प्रकार उसकी करेंगे ।३६।

२६—सब देवों में चिदात्मा ही सार है

यथाकालं यथारम्भं न करोषि करोषि यत् ।
चिन्मात्रस्य शिवस्याऽन्तस्तदेवाऽर्चनमात्मनः ॥१
तेनैवाऽऽह्लादमायाति याति प्रकटतां तथा ।
तथा स्थितेन रूपेण स्वेनैव स्वयमीश्वरः ॥२
रागद्वेषादिशब्दार्था नाऽऽत्मन्यन्यतयाऽमले ।
संभवन्ति पथग्रपा वह्नो वह्निकणा इव ॥३
यद्यद्राजत्वदीनत्वं सुखदुःखादिवेदनम् ।
आत्मीयं परकोयंच तत्तदर्चनमात्मनः ॥४
विश्वसंवित्तिर्वाऽर्वा नित्यस्याऽऽत्मन एव वा ।
घटाद्यात्ममया ब्रह्म स्वयमात्मा तथैव च ॥५
अहो नु चित्रमात्मैव घटाद्यन्यद्व्यवस्थितम् ।
जीवादिस्वस्वभावऽन्तर्नूनं विस्मृतिमानवः ॥६

शंभु बोले–हे मुने ! तुम यथाकाल एवं यथाशक्ति जो कर्म करते हो या नहीं करते, वह सब चिन्मात्रात्मक शिव स्वरूप अन्तरात्मा का पूजन ही है ।१। ऐसे पूजन से ही आत्मा के अपने आनन्द स्वरूप की अभिव्यक्ति होतीहै, क्योंकि अपने रूपसे ही परमात्मा स्वरूप जीवात्मा

आवरणों से रहित होता है ।२। मल-रहित आत्मा में राग द्वेषादि शब्द तथा उनके अर्थ अग्नि में चिंगारी के समान, आत्मा से पृथक् नहीं रह सकते ।३। राजपद, दीनता, सुख, दुःखादि वेदना तथा यह आत्मीय है, यह परकीय हैं इस प्रकार का समर्पण भी आत्मार्चन ही है ।४। जो आकाशादि एवं जाग्रतादि स्वरूप जगत् का अध्यारोप है, वह आत्मा का पूजन है । जैसे ब्रह्म आकाशादि से घट स्वरूप से विभूषित होता है, वैसे ही आत्मा की स्थिति है ।५। अहो ! यह अद्भुत आत्मा ही अपने आन्तरिक स्वरूप को भूलकर जीवादि स्वभावोंसे अपना स्वभाव मानता हुआ घट आदि के रूप में अवस्थित है ।६।

सर्वात्मकस्याऽनन्तस्य शिवस्याऽन्तः किलाऽऽसने ।
पूज्यपूजकपुजाख्यो विभ्रमः प्रोदितः कुतः ॥७
नियताकारताशान्ते न च संभवतीश्वरे ।
यत्र सङ्कल्प्यते ब्रह्मन् पूज्यपूजामयः क्रमः ॥८
पश्यत्यात्मानमात्मैव विचारयति चाऽऽत्मना ।
आत्मैवेहास्ति नाऽविद्याइत्यविद्याक्षयं विदुः ॥९
यातत्किञ्चिदिदं वस्तु नाना नाऽऽत्माऽवगम्यताम् ।
क्रमा गुरूपदेशाद्या नाऽवज्ञानस्य कारणम् ॥१०
गुरुर्हीन्द्रियवृत्तात्मा ब्रह्म सर्वेन्द्रियक्षयात् ।
यद्वस्तु यत्क्षये प्राप्य तत्तस्मिन् सति नाऽऽप्यते ॥११
अकारणान्यपि प्राप्ता भृशं कारणतां द्विज ।
क्रमा गुरूपदेशाद्या आत्मज्ञानस्य सिद्धये ॥१२

सर्वात्मक, अनन्त, शिवात्मा के अन्तर में पूज्य-पूजक अथवा पूजा विषयक विभ्रम कहाँ से प्राप्त हो गया ।७। हे ब्रह्मन् ! जिसमें पूज्य एवं पूजामय क्रम का संकल्प किया जाता है, उन आकार-रहित में पूज्य, पूजादि का भाव नहीं हो सकता ।७। आत्मा ही आत्मा को देखता और स्वयं ही अपना विचार करता है । विश्व में आत्मा ही अवस्थित है, अविद्या का अभाव ही, अविद्या का क्षय होना कहा गया है ।६। जो जो विभिन्न वस्तुयें है, वह आत्मा नहीं है । गुरु का उप-

देश आदि जो क्रम है, वह आत्मज्ञान के ही कारण है।९-१०। क्योंकि गुरु तो इन्द्रियों के क्षय को प्राप्त होने पर ही प्राप्य है। अतः जो वस्तु किसी वस्तु का क्षय होने पर उपलब्ध होती है, उसकी प्राप्त क्षय होने वाली वस्तु से उपस्थित रहते हुए संभव नहीं है।११। हे द्विज ! जैसे कोई अपने पास वस्तु को भूल जाय और किसी दूसरे के द्वारा बताने पर (कि यह मेरे ही पास है) प्राप्त हुई के समान समझे, उसी प्रकार आत्मज्ञान की सिद्धि के निमित्त गुरुदेव आदि कारण-रहित होते हुए भी कारण बन गये हैं।१२।

शास्त्रार्थैर्बुध्यते नाऽऽत्मा गुरोर्वचनतो न च।
बुध्यते स्वयमेवैष स्वबोधशतैस्ततः ॥१३
गुरूपदेशशास्त्रार्थैर्विना चाऽऽत्मा न बुध्यते।
एतत्संयोगसत्त्वैव स्वात्मज्ञानप्रकाशिनी ॥१४
गुरुशास्त्रार्थशिष्याणां चिरसंयोगसत्तया।
अहनीव जनाचार आत्मज्ञानं प्रवर्तते ॥१५
कर्मबुद्धीन्द्रियात्ततेन्तसुखदुःखादिसंक्षये।
शिव आत्मेति कथितस्तत्सदित्यादिनामभिः ॥१६
शिव आत्मा परं ब्रह्मेत्यादिशब्दैस्तु भिन्नता।
पुरातनैर्विरचिता तस्य भेदो न वस्तुतः ॥१७
एवं देवार्चनं नित्यं ज्ञः कुर्वन् मुनिनायक।
यत्राऽस्मदादयो भृत्यास्तत्रयाति परं पदम् ॥१८

यह आत्मा शास्त्रों अथवा गुरु के वचनों से बोध को प्राप्त नहीं होता अपितु अपने ही बोध से स्वयं को जान लेना है।१३। परन्तु गुरु के उपदेशों और शास्त्रों के वचनों के बिना भी आत्मा के बोध की अभिव्यक्ति सुलभ है।१४। गुरु शास्त्रार्थ और शिष्यों का दीर्घ संयोग, दिन की प्राप्ति पर उत्पन्न अचार के समान आत्मज्ञान की प्रवृत्ति करता है।१५। कर्म और बुद्धि रूपी इन्द्रियों का अन्त होने

पर भी सुख दुःखादि क्षीण होते हैं और तभी यह शिव स्वरूप आत्मा 'तत्' 'स' आदि नामोंसे उच्चारित होता है ।१४। पुरातन काल में शिव आत्मा और पर ब्रह्म आदि शब्दों की भिन्नता हुई, यथार्थ रूप में तो उनमें कोई भेद नहीं हैं ।१७। हे मुनिनायक ! इस प्रकार देव-पूजन में लगा हुआ ज्ञानी उस परमपद को प्राप्त हो जाता है, जिसमें हम सभी भृत्यों से समान कर्म में नियुक्त किये गये हैं ।१८।

अविद्यमानमेवेदं विद्यमानमिव स्थितम् ।
यथा तन्मे समासेन भगवान् वक्तुमर्हसि ।।१९
योऽसौ ब्रह्मादिशब्दार्थः तं सं विद्धि केवलम् ।
स्वच्छमाकाशमप्यस्य स्थूलं मेरुमणोरिव ।।२०
अस्याहन्तादिरूपाया देशतां कालतां गताः ।
संपद्यन्ते ततः शून्यरूपिण्यः सख्य एव ताः ।।२१
ताभिः संवलिता सैव सत्ता जीवाभिधानिका ।
भवति स्पन्दविज्ञाना पवनस्येव लेखिका ।।२२
जीवशक्तिस्तथाभूता निश्चयैकविलासिनी ।
बुद्धितामनुयाता सा भवत्यज्ञपदे स्थिता ।।२३
शब्दशक्त्या क्रियाशक्त्या ज्ञानशक्त्याऽनुगम्यते ।
प्रत्येकं प्रस्फुरत्यन्तरप्रदर्शितरूपया ।।२४

वसिष्ठजी बोले—हे भगवान् ! यह अविद्यमान संसार विद्यमानके समान जैसे अवस्थित है, वह मुझे संक्षेप में बताइए ।१९। शिवजी ने कहा—यह जो ब्रह्म आदि के रूप में प्रतिपाद्य है इसे संवित् मात्र ही समझो । अणु अणु के योग से सुमेरु पर्वत बन जाने के समान ही इसके आकाशादि आरोप है ।२०। अहंकार स्वरूप को प्राप्त हुई इस चिति की देश-काल स्वरूप वाली कल्पनायें प्रकट होती है, फिर वे शून्य रूपिणी कल्पनायें ही स्वयं सख्य भाव को प्राप्त हो जाती हैं ।२१। वही कल्पनाओं से उदभूत चित्सत्ता संस्कारों के उद्बोधन द्वारा स्पन्द विज्ञान को प्राप्त होती हुई, 'जीव' नाम वाली होती है ।२२। वैसी वह जीव शक्ति ही निश्चय में बिलास एवं बुजि का अनुसरण करके अज्ञपद

(अज्ञान) में स्थित हो जाती है ।२३। फिर शब्द शक्ति क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति उसका अनुगमन करने वाली होती है जिसमें उनका स्फुरण होता रहता है ।२४।

मिलित्वैष गणः क्षिप्रं स्मृतिं समनुकूलयम् ।
मनो भवति भूतात्मा बीज सङ्कल्पशाखिनः ।।२५
अतिवाहिकदेहोत्तिर्भोजनं तद्विदुर्बुधाः ।
अन्तः स्थया ब्रह्मशक्त्या ज्ञरूपं स्वात्मनाऽऽत्मदृक् ।।२६
सम्पद्यमाना एवाऽस्मिश्चेतसी मा हि शक्तयः ।
पश्चादिह बहिष्ठास्ता उद्यत्यनुदिता अपि ।।२७
बातसत्ता स्पन्दसत्ता स्पर्शसत्ता तथैव च ।
त्वक्सत्ता तेजसां सत्ता तथा सत्ता प्रकाशिनी ।।२८
रूपसत्ता जलसत्तास्वादुसत्ता तथैव च ।
तथैव रससक्ता च गन्ध सत्ता तथैव च ।।२९
भूसत्ता हेमसत्ता च पिण्डसत्ता च पीवरी ।
देशसत्ता कालसत्ता सर्वाढ्याकारवर्जिता ।।३०

उन शक्ति आदि संगत एवं स्मरण शक्ति की अनुकूलता को प्राप्त हुए ।२५। 'यह अतिवाहक देह है, ज्ञानीजन उस मन के विषय में ही ऐसा कहते हैं । वही अन्तःस्थ ब्रह्मशक्ति से ज्ञान को प्राप्त होकर अपनी आत्मा के प्रकाश से ही आत्मा को देखता है ।२६। उपरोक्त कल्पनायें अनुदित होती हुई भी, दृश्य रूपी आकार मे बदल कर उदित जैसी हो जाती हैं ।२७। फिर वायु सत्ता, स्पन्द सत्ता, स्पर्शसत्ता, त्वक्सत्ता, तेज सत्ता और उन सभी सत्ताओं को दिखाने वाली चक्षु इन्द्रिय प्रकट हो जाती है ।२८। उसी प्रकार रूपसत्ता, जलसत्ता, स्वादसत्ता, रससत्ता और गन्धसत्ता की प्राप्ति होती है ।२९। फिर पृथिवी सुवर्ण, पिंड देश और सभी आकारों से रहित कालसत्ता उत्पन्न होती है ।३०।

सर्वसत्तागणं चैतत् क्रोडीकृत्य स्वरूपवत् ।
स्फुरत्याश्रित्य पत्रादि बीजं बीजादितां गतम् ॥३१
एतत्पुर्यष्टकं विद्धि देहोऽयं चाऽऽतिवाहिकः ।
अपारबोधमेतत्तु स्फुरत्यङ्गं विभागवत् ॥३२
वासनावशतो दुःखे विद्यमाने च सा भवेत् ।
अविद्यमानं च जगन्मृगतृष्णाम्बुभङ्गवत् ॥३३
अतः कि वास्यते केन कस्य वासना कुतः ।
कथं स्वप्ननरेणाऽङ्गमृगतृष्णाम्बु पीयते ॥३४
सद्रष्टरि तु साहन्ते समनोमननादिके ।
अविद्यमाने जगति यत्सत्तद् परिदृश्यते ॥३५

उपरोक्त सभी सत्ताओं को अपने स्वरूप में निहित कर अंकुर शाखा, पत्रादि के रूपमें स्फुरित होते हुए बीजके समान ही यह आत्मा स्फुरण को प्राप्त होता है। यह पुर्यष्टक वासना से युक्त होने के कारण अतिवाहक देह कहा गया है। परन्तु इस प्रकार विभक्त होकर वह अपरिच्छिन्न ब्रह्म ही स्फुरित हो रहा है।३१-३२। दुःख का कारण वासना है, विद्यमान वस्तु में ही वासना की उपलब्धि है अतः संसार मृगतृष्णा के जल के समान ही विद्यमान नहीं हैं।३३। अतः कौन किस के द्वारा वास्य होगा और वासना भी किसे, कहाँ से होगी ? स्वप्न में अवस्थित मनुष्य मृगतृष्णा के जल को किस प्रकार पी सकता है ?३४। द्रष्टा अहन्ता, मन तथा मनन आदि के सहित यह विश्व जब अविद्यमान होता है तब सद्वस्तु ही रह जाती है।३५।

यत्र नो वासना नैव वासको नैव वास्यता ।
केवलं केवलीभावः स शान्तकलनभ्रम ॥३६
शून्य एवं हि वेताल इवेत्थं चिद्मवासवा ।
उदितेय जगन्नाम्नी तच्छान्तौ शान्तिरक्षता ॥३७
अहन्तायां जगति च मृगतृष्णाजले च यः ।
संस्थितस्तं धिग्धतनरं नोपदेश्यस्त्वसाविति ॥३८

जीवं विवेकिनमिहोपदिशन्ति तज्ज्ञा
नो बालमुद्भ्रममसन्मयमार्ययुक्तम् ।
अज्ञं प्रशास्ति किल यः कनकावदातां
स स्वप्नद्रष्टपुरुषाय सुतां ददाति ॥३९

वहाँ वासना, वासक अथवा वास्य में से कोई भी नहीं रहता अपितु कलना-भ्रम से रहित केवल केवलीभाव ही रह जाता है।३६। जगत् के नाम से शून्यसे बेताल के समान इस चित्तवासना का ही उदय हुआ है, जब यह शान्त हो जाता है तब शान्ति ही रह जाती है।३७। अहन्ता, जगत् और मृगतृष्णाजलः इनमें जिस पुरुष की वृत्ति है, उसको धिक्कार है, वह इस प्रकार के उपदेश योग्य भी नहीं हैं ।३८। ज्ञानीजन योग्य पुरुष को ही उपदेश देते हैं, उसके (अबोध) पुत्र को नहीं। भ्रम में पड़े हुए, आर्यत्व से हीन, असद्रूप में आस्था से असन्मय एवं अज्ञानी अनधिकारी को जो उपदेश देता है वह उसी के समान मूर्ख है जो अपनी सुवर्ण जैसी कन्या को स्वप्न में देखे हुए पुरुष को देता हो।३९।

२७—संसार मायामात्र

परस्मात् परमे व्योम्नि पूर्वोक्तक्रमतो वपुः ।
जीवः पश्यति संपन्नं स च स्वप्ननरो यथा ॥१
सर्वगत्वाच्चिद्घनस्य कार्यं स्वप्ननरोऽपि हि ।
यथा करोत्याशु तथा जीवोऽद्यापि शरीरधृक् ॥२
सनातनोऽहमव्यक्तःपुमानित्यभिधां ततः ।
करोत्यात्मनि तेनाऽऽशु प्रथमः प्रथितः पुमान् ॥३
एवं स सर्गे कस्मिंश्चित् प्रथमोऽथ सदाशिवः ।
कस्मिंश्चिद्विष्णुरित्युक्तो नाभ्युत्पन्नः पितामहः ॥४
पितामहः स कस्मिंश्चिद् कस्मिंश्चिदपि चेतरः ।
स च सङ्कल्पपुरुषः सङ्कल्पान्मूर्तिमास्थितः ॥५

सर्गाः सर्गेण सर्वत्र सभवन्ति नते शिवे ।
भवन्ति परमे व्योम्नि व्योम पा इति स्वयम् ॥६
स्वयं च सदसद्रूपा लीयन्ते स्वप्नशैलवत् ।
सर्गैर्न देश आक्रान्तो न च कालो न कर्तृता ॥७

शिवजी बोले—स्वप्न में दिखाई पड़ने वाले पुरुष के समान ही यह जीव परमाकोश में पूर्वोक्त क्रम के अनुसार निर्मित देह को देखता है ।१। चैतन्यघन आत्मा की सर्व व्यापकता से जिस प्रकार स्वप्न में मनुष्य सब कार्य करता है उसी प्रकार यह देहधारी जीव करता है ।२। फिर अपने ही सनातन अव्यक्त पुरुष का भाव करता है, उसी के द्वारा प्रथम पुरुष रूप में प्रकट होता में ।३। इस प्रकार वह जीव किसी सृष्टि में सदाशिव रूपी प्रथम पुरुष होता है, फिर वही किसी सर्ग में विष्णु और किसी में विष्णु की नाभि से प्रकट ब्रह्मा हो जाता है ।४। कभी वह पितामह कहा जाने वाला जीव उस-उस में इतररूपधारी होता है। परन्तु वह जीव संकल्प रूप है तथा संकल्प से ही मूर्तिमान होता है।५। सर्ग स्वरूप स्थित हुए जीव द्वारा ही सर्गो की उत्पत्ति सम्भव है, अतः वे शिवरूप उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि वहाँ से स्वयं परम आकाश रूप में स्थित हैं ।६। स्वप्न के समय दिखाई पड़ने वाले पर्वत के समान ही यह सर्ग सद्रूप होते और विलीन हो जाते हैं । वैसे ही देशकाल सर्ग से पूर्व आक्रान्त नहीं थे और न सर्गो में कर्तृता ही थी ।७।

सम्पद्यते यथा योऽसौ पुरुषः सर्वकारकः ।
अनेनैव क्रमेणाह कीटः सम्पद्यते क्षणात् ॥८
तस्थुषामेव सम्पद्यन्ते जातयोः हि चतुर्विधाः ।
रुद्राद्यास्तृणपर्यन्ताः सम्पद्यन्ते क्षणं प्रति ॥९
परमाणूपमाः सन्ति तथा केचिदणूपमाः ।
एष एव क्रमस्तेषां सति वाऽसति सर्गके ॥१०
अस्याः संसारमायाया एवम्भूतार्थभावनात् ।
भेदोपशान्तावभ्यासाद्भवत्युपगतः शिवः ॥११

निमेषशतभागार्धमात्रमेवपरा चितिः ।
स्वरूपतश्चेल्लुठिता सैषोदेत्यनवस्थितिः ॥१२
सा ज्ञरुपा शिलाकाश इव चित् स्वात्मनि स्थिता ।
तदनाद्यवभासात्तु ब्रह्मशब्देन गीयते ॥१३
अस्मिन् प्रौढि गते महाचिद्द्योतनं न च ।
सङ्गतासत्यदिग्देशकालांशपरमाणुता ॥१४

जिस क्रम से सभी कर्म मे समर्थ इस मनुष्य की उत्पत्ति है उसी क्रम से कीट भी क्षण भर में उत्पन्न हो जाता है ।८। जैसे स्थावर प्राणियों की उत्पत्ति का क्रम है, जैसे ही अण्डज आदि चार विधि के जीव और रुद्र से तृण पर्यन्त सभी उत्पन्न होते है ।९। कोई सर्ग परमाणु के समान सूक्ष्म और कोई अणु के समाम बृहद् भूत-भविष्यत् सर्गो का क्रम भी इसी प्रकार जानो ।१०। परमार्थ चिन्तन से इस संसार रूपी माया के भेद का शमन हो जाता है और निरन्तर अभ्यास के द्वारा शिवत्व की प्राप्ति होती है ।११। निमेष के शतांश में से किसी एक अंश से आधे अंश मात्र समय तक भी यदि परा चिति अपने यथार्थ स्वरूप को छोड़ बैठे तो वही भीपण अनर्थ स्वरूप जाता है । ।१२। तत्वज्ञानियों द्वारा अनुभवमें लाई हुई शिलाकाश के समान अपने स्वरूप में स्थित चिति दीप-प्रकाश से रहित, जन्म से विहीन तथा चैतन्य है, उसका ही ब्रह्म शब्द कह कर गायन किया जाता है।१३। इस सर्ग के प्रौढ़त्व को प्राप्त हो जाने पर महाचित् का प्रकाश संभव नहीं है असत्य भूत दिशा, देश और काल के अद्भुत परिच्छेदों द्वारा आत्मा को परमाणुता आदि की प्राप्ति होती है ।१४।

जीवतामागता भूततन्मात्रवलनाक्रमात् ।
भवत्जङ्गमृगीवीरुत्कीटदेवासुरादिकम् ॥१५
यस्मिन्नित्ये ततेऽनन्ते द्दढे स्रगिव तिष्ठते
सदसद्ग्रथितं विश्वं विश्वगे विश्वकर्मणि ॥१६

न तद्दूरे न निकटे नोर्ध्वे नाऽयो न ते नमे ।
न पूर्वं नाऽद्य प्रातर्न सन्नाऽसन्न मध्यमम् ॥१७
अनुभवकलनादृतेऽस्य माता
भवति न सर्वविकल्पनेष्वसत्सु ।
फलदुरुविभवा प्रमाणमाला
स्थितिमुपयाति न वारिणीव वह्निः ॥१८
यथा पृष्टं मुने प्रोक्तं त्वयि कल्याणमस्तु ते ।
दिशं प्रयामोऽभिमतमागच्छोत्तिष्ठ पार्वति ॥१९
इत्युक्त्वा नीलकण्ठोऽसौ त्यक्तपुष्पाञ्जलौ मयि ।
ततार परिवारेण सममम्बरकोटरम् ॥२०
तस्मिन् गते त्रिभुवनाधिपताबुमेशे
स्थित्वा क्षणं तदनुसंस्मृतिपूर्वमेव ।
अङ्गीकृतं नवपवित्रधिया मयाऽऽत्म-
देवार्चनं शमदतैव जिहासितं तत् ॥२१

उपाधि स्वरूप जीवभाव को प्राप्त हुई ब्रह्मचिति ही भूत, तन्मात्रा बलन आदि क्रम से मृगी, वीरुत् कोई देवता, दैत्य आदि के रूप में प्रकट होती है ।१५। जिस नित्य, अनन्त, दृढ़ एवं विश्व में निवास करने वाले विश्व-रचयिता ब्रह्म में माला के समान सत् असत् से गुँथा हुआ यह विश्व अवस्थित हैं, वह विवेक के उत्पन्न होने पर दूर, निकट, ऊर्ध्व अध नहीं हैं । न वह भूतकाल में था, न वर्तमान में है, और न प्रातः आदि कालों में ही है तथा न वह सत्- असत् या उनके मध्य वाला ही है।१६-१७। इस प्रकार सब विकल्प के असद्रूप होने से, अनुभव करने वाले चैतन्य रूप से भिन्न कोई पदार्थ नहीं हो सकता । सर्व विकल्पों को माया के समान उत्पन्न करने वाली प्रमाण माला जल में अग्नि के न ठहरने के समान ही अवस्थित नहीं रह सकती ।१८। हे मुने ! आपके प्रश्न का उत्तार मैंने दे दिया है, तुम्हारा कल्याण हो, अब हम इच्छित दिशा की ओर चल रहे हैं। हे पार्वति ! उठो ! वसिष्ठ बोले कि भगवान् नीलकण्ठ इस प्रकार कहते उठें । मैंने उनको

पुष्पांजलि भेंट की और वे अपने परिवार सहित अम्बकोटरा की ओर उड़ उये ।२०। उन त्रिभुवनपति उमेश के चले जाने पर मैं क्षण भर उसी प्रकार बैठा रहा और उनके द्वारा उपदेश किए हुए आत्म देवता का अपनी पवित्र हुई बुद्धि के द्वारा अङ्गीकार किया तथा पहिले जो बड़ा देवार्चन करता था, उसका मैंने परित्याग कर दिया ।२१।

२८—राम की शिवार्चन में तत्धरता

एतदुक्त परं तेन स्वयमेव च वेद्म्यहम् ।
राम त्वमपि जातीषे यथेदं समवस्थितम् ॥१
यत्राऽलोकमलीकेन किलाऽलीके विलोक्यते ।
तस्यां ससारमायायां किं सत्यं किमसन्मयम् ॥२
दृष्ट्याऽनया रघुपते सङ्गमुक्तेन चेतसा ।
संसारविरलारण्ये विहराऽस्मिन्न खिद्यसे ॥३
दुःखे महाते संप्राप्ते धनबन्धुवियोगजे ।
एतां दृष्टिमवष्टभ्य विचारं कुरु सुव्रत ॥४
सुखदुःखे न कर्तव्ये धनबन्धूदयक्षये ।
एवंप्राया एव सर्वा नित्यं ससारदृष्टयः ॥५
जानास्येव गतिं चित्रां विषयाणां प्रमाथिनीम् ।
यथाऽऽयान्ति यथा यान्ति यथा परिभवन्ति च ॥६
एवमेव प्रवर्तन्ते प्रेमाणि च धनानि च ।
एवमेवाऽवहीयन्ते निमित्तै रविचातितैः ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! भगवान् शंकर द्वारा कहे हुए इस शिवार्चन को मैं स्वयं जानता हूँ । यह संसार जिस पर अवस्थित है, वह आप स्वयं भी जानते हैं ।१। असद्रूप माया के भ्रम में असद्रूप उपाधि से असत् जीव को यह जगत् ही दिखाई देता है, इस माया युक्त संसार में सत्य क्या है और असत्य क्या हैं ? ।२। हे रघुपते ! इस दृष्टि से, संग-विहीन चित्त के द्वारा इस विरल संसार वन में विहार करिये, इससे आपको कभी खेद नहीं होगा ।३। हे सुव्रत ! धन और

बाँधवों के वियोग से उत्पन्न घोर दुःख की प्राप्ति पर आप इसी दृष्टि से विचार कीजिए।४। धन अथवा बाँधवों के मिलने या क्षय होने पर सुख या दुःख नही मानना चाहिए क्योंकि संसार का यह सभी दृश्य नाशवान् है।५। जिस प्रकार विषयों की अद्भुत अवस्थाओं का आना, जाना, उनके द्वारा स्वासक्त पुरुष का जीत लेना होता है, उस सभी को आप जानते हैं।६। इसी प्रकार बिना बिचारे हुए कारणों से प्रेम अथवा धनों की प्राप्ति और हानि होती है (यह भी आप भले प्रकार जानते हैं)।७।

न तावत्तव न तासां त्वं निर्मलाऽन्तर्जगत्क्रियाः।
इदमित्थं जगात्किञ्चित् किं मुधा परिप्यसे ॥८
तता चिन्मात्ररूपोऽसि न ते भिन्नमिदं जगत्।
अतस्तव कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥९
इति चिच्चक्रचाञ्चल्ये चिन्मये जयदम्बुधौ।
तरंगजाले चाम्भोधौ कः क्रमो हर्षशोकयोः ॥१०
चिदेकतानतामेत्य सौषुप्तीमागतः स्थितिम्।
अद्य प्रभृति राम त्वं तुर्यावस्थात्मको भव ॥११
समः समसमाभासो भास्वद्वपुदारधी।
तिष्ठाऽऽत्माचारितो नित्यं परिपूर्ण इवाऽर्णवः ॥१२
एतत्त्वं श्रुतवान् सर्वं स्थितस्त्वं परिपूर्णधीः।
यदिच्छसीतरत्प्रष्टुं तत्पृच्छ रघुनन्दन।
यत्पृष्टं प्रथमे कल्पे तदद्य परिचोदय ॥१३

हे मल-रहित ! वे विश्व व्यापार आपके भीतर नहीं है और आप भी उनके भीतर नहीं हैं। यह जगत् तो अत्यन्त तुच्छ है, फिर आपको परिताप क्यों हैं ?।८। हे तात ! आप चिन्मात्र रूप हैं, यह विश्व आप से भिन्न नहीं है, अतः आपको हीन अथवा उच्च की भावना कहाँ से होगी ?।९। इस प्रकार चिन्मय संसार सागर में चित् चक्र चंचलता को प्राप्त हो जाय और तरंग उठने लगे तो उसमें हर्ष या शोक ही कैसा ?।१०। हे राम ! प्रथम चैतन्य रूपता को प्राप्त होओ, फिर

सुपुप्ति में अवस्थित होकर अभी से तुरीयावस्था स्वरूप हो जाओ। ।११। आप समान रूप से समाभास युक्त, तेजोमय देह और उदार बुद्धि वाले होकर आत्मार्चन से अवस्थित होकर समुद्र के समान परिपूर्ण हो जाइए ।१२। हे रघुनन्दन ! इन सबको सुनकर आप परिपूर्ण बुद्धि में अवस्थित हैं । यदि कोई अन्य प्रश्न हो तो उसे भी पूछ लीजिए । पहिले पूछे हुए प्रश्न का किसी प्रकार समाधान न हुआ है तो अब उसका समाधान कर लीजिए ।१३।

इदानीं संशयो ब्रह्मन् विनिवृत्तो विशेषतः ।
ज्ञातज्ञातव्यमखिलं जाता तृप्तिरकृत्रिमा ॥१४
न मुनेऽस्ति मलं द्वित्वं न चेत्यं न च कल्पनम् ।
तदा ममाऽभूदज्ञानं प्रशान्तमधुना तु तत् ॥१५
कलंक आत्मनोऽस्तीति तदज्ञानवशेन या ।
भ्रान्तिरासीदिदानी सा निवृता त्वत्प्रसादतः ॥१६
न जायते न म्रियते न चै ाऽऽत्मा कलंकितः ।
सर्वं च खल्विदं ब्रह्ममय मित्युदितोऽस्म्यलम् ॥१७
सम्पदामवधिर्ज्ञाता दृष्टः सीमान्त आपदाम् ।
सर्वसारेऽप्यदीनाः स्मः पूर्णाः स्मः परमेश्वर ॥१८
ययावभेद्यामपरैर्दलिताशामतंगजम् ।
संसारसगरे सम्यग्वीरतामागतं मनः ॥१९
प्रगलितविकल्पतामुपेतं
प्रगलितवांछमदीनसारसत्वम् ।
त्रिजगति यदतिप्रसन्नरूपं
प्रमुदिमन्तरनुत्तमं मनो मे ॥२०

श्रीराम बोले—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार से आज मेरे संशव की विशेष रूप से निवृत्ति हो चुकी है । सभी जानने योग्य तत्व को जान कर मैं स्वाभाविक तृप्ति को प्राप्त हो गया हूँ ।१४। हे मुने ! मुझ में अब भ्रम या द्वैत बुद्धि नहीं रही, चेत्य और मन का भी अभाव हो गया है तथा जो अज्ञान व्याप्त था वह भी शेष नहीं रहा है ।१५।

अज्ञान के कारण आत्म से कलंकित होने का जो भ्रम था, वह भी आपकी कृपा से दूर हो गया है ।१६। आत्मा न कभी जन्मता है, न मरता है, वह कभी कलंकित भी नहीं होता । इस सम्पूर्ण विश्व के ब्रह्ममय होने का ज्ञान प्राप्त होने से मैं पूर्णोदय को प्राप्त हो गया हूँ ।१७। हे परमेश्वर ! मुझे सम्पत्तियों की अवधि का ज्ञान हो गया है, आपदाओं की सीमायें भी जान ली है, अब सर्वसार भूत आनन्द को पाकर मैं दीन नही रहा, अपितु परिपूर्ण हो गया हूँ ।१८। अब मेरा भी मन संसाररूपी युद्ध-भूमि में आशा रूपी मत्तगज को दलता हुआ बैरियों भरा भेदन न की जा सकने वाली श्रेष्ठ वीरता में स्थित हो गया है ।१९। मेरे मन के सभी विकल्प गल गये, कामनायें समाप्त हो गई और अदीनता के सारसत्व की प्राप्ति हो गई । त्रिलोकी के सम्पूर्ण प्रसन्न पदार्थों का अतिक्रमण करके मेरा मन प्रमुदित होकर सर्वश्रेष्ठ रूप से स्थित हो गया है ।२०।

२९—बिल्वोपाख्यायिका

अत्रे मामवबोधाय विस्मयोल्लासकारिणीम् ।
अपूर्वां चैव सेक्षपाद्राम रम्यां कथांश्रृणु ॥१
योजनानां सहस्राणि विपुलं विमलं स्फुटम् ।
युगैरप्यजरद्रूपमस्ति बिल्वफलं महत् ॥२
अविनाशरसाधरं सुधामधुरसारवत् ।
पुराणमपि बालेन्दूदयमार्दवसुन्दरम् ॥३
व्यूहमध्यमहामेरु मन्दाद्रिरिवाऽचलम् ।
महाकल्पान्तवात्याया अतिवेगैरचालितम् ॥४
योजनायुतकोटीनां कोटिलक्षशतैरपि ।
वैपुल्येनाऽपरिच्छेद्यं मूलमाद्यं जगत्स्थितेः ॥५
यस्य बिल्वफलस्योच्चैर्ब्रह्माण्डानि समीपतः ।
हरन्ति लीलां शैलाधो राजिकाकणपद्धतेः ॥६

स्यन्दमानरसापुरं स्वाद्वीं रसचमत्कृतिम् ।
यस्याऽतिशेते नो कश्चिदपि राघव षड्रसः ॥७

वसिष्ठजी बोले-हे राम ! अब तत्व ज्ञान विषयक विस्मय ओर उल्लास के करने वाली एक अपूर्व और सुरम्य कथा को संक्षेप में सुनिये ।१। सहस्रों योजनों विस्तार वाला एक विमल, स्फुट एवं विशाल बिल्वफल है, जो युगों के व्यतीत होने पर भी जीर्ण नहीं हो सका है ।२। वह अविनाशी रस का आधार स्वरूप-अमृत के मधुर सार के समान और पुरातन होने पर भी बढ़ते हुए बाल चन्द्रमा के समान सुखमय एवं सुन्दर है ।३। वह व्यूह के मध्य मेरे समान महान्, मन्दराचल के समान दृढ़ और महा प्रलय की प्रचण्ड झंझाबात से भी चलाया मान होने वाला नहीं है ।४। सैकड़ों करोड़ लाख गुने दस सहस्र कोटि योजनों के विस्तार से भी जिसकी नाप सम्भव नहीं है, वह बिल्व फल इस विश्व की स्थिति का आदि मूल है ।५। इस बिल्वफल के निकटवर्ती-सभी ऊँचे ब्रह्माण्ड भी पर्वतों के नीचे सरसों के कणों की पंक्तियों के समान सुशोभित प्रतीत होते हैं ।६। हे राघव ! इस बिल्व फल से स्रवित होने वाले रस के समान अन्य कोई भी सुस्वादु एवं चमत्कारी षड्रस नहीं है ।७।

न कदाचन पाकेन पातं तेन समेति यत् ।
सदैव पक्वमप्यंग जरसा यन्न बाध्यते ॥८
ब्रह्मविष्णिवन्द्ररुद्राद्या जरठां केचिदेव न ।
यस्योत्पत्ति विजानन्ति मूलं वा वृन्तमेव च ॥९
समस्तफलसारस्य फलस्याऽस्य महाकृतेः ।
न मज्जा नाऽष्थि विततो निर्विकारो निरञ्जनः ॥१०
शिलान्तरिव नीरन्ध्रः स्यन्दमानेन्दुबिम्बवत् ।
रसं स्वसंविदाऽऽस्वाद्यं स्यन्दमान इवाऽमृतम् ॥११
कोशः सकलसौख्यानां शीतलालोककारकः ।
शैलाभोऽमृतपिण्डाभो मज्जा आत्मफलस्थितेः ॥१२

तस्मात् परममज्जा तु याऽसौ स्वात्मचमत्कृतिः ।
अनन्तरक्षितो नित्यमनन्यः श्रीफलं गतः ॥१३
अहङ्कलासमुद समनन्तरमेव सा ।
वलिताऽऽकाशशब्दांगत्रैलोक्यपरमाणुभिः ॥१४

ऐसे रस से भरपुर वह बिल्वफल पकने पर भी कभी पतित नहीं होता क्योंकि पकने पर भी वह जीर्णता को प्राप्त नही होता ।८। इस की उत्पत्ति के विषय में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र आदि कोई भी नहीं जानते। उन्हें इसके फल एवं शाखों का भी ज्ञान नहीं है ।६। सभी फलों में सार रूप एवं बृहद् आकार वाले इस फल में गूदा, गुठली आदि कुछ भी नहीं है, इस प्रकार वह निर्विकार और निरंजन ही है ।१०। शिला के अन्तः स्थल समान ही यह छिद्र से रहित है तथा अमृत-वर्षा करने वाले चन्द्रविम्ब के समान स्वानुभव से स्वाद के योग्य इस विल्व फल से आनन्दामृत की वर्षा होती है ।११। यम बिल्वफल सम्पूर्ण सुखों का कोश स्वरूप है, यह शीतल प्रकाश को करने वाला पर्वत के समान सुशोभित, अमृतपिंड के समान शोभा सम्पन्न तथा आत्म फल की मज्जा रूप से अवस्थित है ।१२। आत्मा की चमत्कृति ही इस परम पुष्प की मज्जा है यह फल सदैव सुरक्षित रहता है, वही अनन्य आत्मा श्रीफल स्वरूप को प्राप्त हुआ है ।१३। अहंकार उत्पत्ति होने पर वही आत्मा चमत्कृति आकाश और उसके गुण शब्द रूपी अङ्गों और देह के परमाणुओं से युक्त हो जाती है ।१४।

इत्यनुक्रमतो याता संविच्छक्तिस्वरूपताम् ।
मज्जासन्निवेशं स्वं तमेवाऽप्यसमुज्झती ॥१५
संविच्छित्तया तया तत्र ततस्तरलरूपया ।
निज एव समे रूपे हृगित्थं संप्रसारिता ॥१३
इदं व्योममहानन्तमियं कालमयी कला ।
इयं नियतिरित्युक्ता क्रियेयं स्पन्दरूपिणी ॥१७
अयं सङ्कल्पविस्तारस्त्वयमाशान्तरभ्रमः ।
रागद्वेषस्थितिरिय हेयोपादेयधीरियम् ॥१८

इयं त्वत्ता त्वियं मत्ता तत्तेयं संस्थिता स्वयम् ।
ब्रह्माण्डौघोऽयमूर्ध्वंय:स्वयमंगोर्ध्वमिप्यधः ॥१९
अनन्तकलनातत्वपरिपल्लविता हरेः ।
हृदब्जकर्णिका चेयं लोकपद्माक्षमालिका ॥२०
इयं कीर्णमहारुद्रगणापूरितकोटरा ।
दीर्घाभ्रान्तध्वंसनेभ्यः इयमेव प्रभाविनी ॥२१

अपनी पूर्व की चैतन्यात्मक स्वरूपता को न छोड़ती हुई यह चिति धीरे-धीरे करके व्यवहार कुशलता को प्राप्त हो जाती है ।१५। इस प्रकार व्यवहार कुशलता को प्राप्त हुई चञ्चल स्वरूप उस चिति शक्ति से ही इस जगदाकार दृष्टि का प्रसार किया है ।१६। यह चिति शक्ति महान् और अनन्त है, कालमयी कला भी नहीं है । इसी को नियति कहते हैं । यही स्पन्दन रूपिणी क्रिया कही गयी है ।१७। संकल्प का बिस्तार भी यही है दिशान्तर का भ्रम एवं राग-द्वेष विकार तथा हेय और उपादेय-बुद्धि भी यही है।१८। त्वत्ता (त्वद्रूप) मत्ता (अहरूप) और सत्ता (ब्रह्मरूप) यही है। ऊर्ध्व ब्रह्माण्डों का समूह एवं ऊपप नीचे भी यही स्थित है ।१९। यह चिति-शक्ति ही अनन्त कलना तत्वों से खिला हुआ, भगवान श्री हरि का हृदय-पद्म एवं लोक रूपी कमल गट्टों की मालिका है ।२०। इस चित्त शक्ति के कोटर महारुद्रगणों से परिपूर्ण हैं, यही आकाश स्वरूपी महती सरणि है तथा स्वर्ग सुख भोग ने वाले पुरुषों को वही से नीचे गिराने में यही कारण रूपा है ।२१।

इयं च ताराकिञ्जलिका ब्रह्मार्णवतटस्थिता ।
अपारापारर्यन्ता व्योमलीलासरोजिनी ॥२२
इयं क्रियापरिग्राह्या तरंगतरलावली ।
सर्गावर्तविधात्तस्थभूरिभूतपरम्परा ॥२३
इयत्तया प्रसारिणी क्षणकल्पादिपल्लवा ।
तेजः केसरिणी कालनलिनीं व्योमङ्कपजा ॥२४

इमा भावविकाराढ्या जरामृतिविषूचिकाः ।
विद्याविद्याविलासाढ्या इमाः शास्त्रार्थदृष्टयः ॥२५
शान्ता स्वस्था निरावाधासौम्या भावनयोज्झिता ।
कर्तृत्वमप्यकर्तृत्वं कृत्वाऽकृत्वेव संस्थिता ॥२६
एषैकैव विविधेव विभाव्यमाना
नैकात्मिका न विविधा ननु सैव सैव सा ।
सत्यास्थिता सकलशान्तिसमैकरूपः ।
सर्वात्मिकाऽतिमहती चितिरूपशक्तिः ॥२७

यही चिति-शक्ति तारागण रूपी केसर से युक्त ब्रह्माण्ड सागर के तट पर स्थित, ऊपर तथा सब ओर से अपार-सहित अर्थात् विशाल-व्योमाकार सरोजिनी ही है ।२२। जिसमें कर्म रूपी ग्राह गोते लगाते हैं, मांस, ऋतु आदि जिसमें चंचल तरङ्गों के समान हैं, जो उत्पत्ति-भ्रमरों और भूत परम्पराओं से समन्वित हैं, जो आयु परिणाम से बढ़ते हुए क्षण, कल्प आदि पुत्रों से युक्त हैं, तेजरूपी केसर से सुशोभित यह चिति-शक्ति रूपी कालनलिनी (पोखर) व्योम रूपी पद्मों से विभूषित है ।२३-२४। यह भाव विकारों से युक्त जो वृद्धावस्था और मृत्यु रूपी विषूचिकायें हैं, वे सब चिति-शक्ति ही तो है । विद्या और अविद्या के विलास से प्रेरित विविध शास्त्र-दृष्टियाँ भी यही चिति-शक्ति हैं ।२५। यह चिति-शक्ति सदैव शान्त, स्वस्थ, बाधा रहित सौम्य और भावनाओं से मुक्त रहती है । यह कुछ न करती हुई भी ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि रचना करती हुई अवस्थित हो ।२६। अद्वितीय स्वरूप वाली यह चिति-शक्ति (बुद्धि भ्रम से) विविध रूप वाली कल्पित की जाती है । परन्तु वह न एकात्मिका है और न विविधात्मिका ही हैं । यह चिति-शक्ति सत्य में स्थित, द्वैत बुद्धि के शमन होने पर सम एक रूप और सर्वात्मिका है ।२७।

— —

३०—तत्वज्ञान से ब्रह्म की उपलब्धि

न पुनर्भवतः पूर्वं सम्पन्नाश्चक्षुरादयः ।
यथा कमलजस्यैतत् सर्वमेव त्वया श्रुतम् ॥१
ब्रह्मपुर्यष्टकस्याऽऽदावर्थं सं विद्यथोदिता ।
पुर्यष्टकस्य सर्वस्य तथैवोदेति सर्वदा ॥२
विद्धि पुर्यष्टकं जीवो यो गर्भस्थेन्द्रियोदयः ।
यद्यथा भावयत्याशु तत्तथा परिपश्यति ॥३
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाख्यं यद्धिसंवेदनं स्वकम् ।
सम्पन्नं च यथा तत्ते प्रोक्तामाद्यमनःस्थितौ ॥४
शुद्धा सवित् संभवन्ती संवेदनमनिन्दितम् ।
ततोऽहवेदनानन्तजीवपुर्यष्टकान्विता ॥५
न त्वेकत्वादनन्वादवेद्यत्वादनामये ।
अभावत्वादनेकत्वादशून्यत्वात् परास्तिता ॥६
चेत्यादिबुद्ध्या तत्किञ्चिन्न मनस्तां च गच्छति ।
न च जीवत्वमायाति न च पुर्यष्टकात्मिका ॥७

वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! कमलोद्भव हिरण्यगर्भ के समान सृष्टि के पूर्व ब्रह्माण्डभाव में स्थित आपके नेत्रादि का भी उद्भव नही हुआ था, मेरे इस कथन को आपने समझ ही लिया है ।१। जैसे ब्रह्म विषयक पुर्यष्टक का अर्थ ज्ञान सर्ग के आदि में उदित होता है, वैसे ही समस्त पुर्यष्टकों का अर्थ ज्ञान उदय को प्राप्त होता है ।२। जीव गर्भ में ही नेत्रादि इन्द्रियों से सम्पन्न होकर पुर्यष्टकत्व को प्राप्त हो जाता है, वह तभी से जिस व्यवहार योग्य वस्तु को जैसी भावना करता है, उसी भावना के अनुरूप देखता है, यह जान लो ।३। इस प्रकार हिरण्यगर्भ के मनोव्यापार में जैसे निजी संवेदन विषय रूप हो जाता है वैसे ही व्यष्टि जीव स्वरूप आपका भी संवेदन होता है, यही मन की स्थिति समझिए ।४। व्यष्टि और समष्टि मयी संचित् सृष्टि से पूर्व आनन्दित थी । सृष्टि काल में भले ही वह अज्ञ, अभिमानी, अनन्त जीव पुर्यष्टकों

से युक्त हो जाय, फिर भी उसका संवेदन स्वरूप कर्मों से कलंकित नहीं होता ।५। इस अद्वतीय, अनन्त अवेद्य और अनामय चिति में पर पदार्थ का अस्तित्व है ही नहीं, क्योंकि अन्य पदार्थ तो देश, काल वस्तु के प्रभाव और स्थूलता से सम्पन्न हैं ।६। चिति के मन आदि रूप होने की बात केवल चिन्तन, गनन से सम्बद्ध बुद्धि बृत्ति के अभ्या रोपसे ही कही गयी है, अत: चिति मनोरूपत्व अथवा पुर्यष्टकत्व को कभी प्राप्त नहीं होती ।७।

न विद्यादिविलासोऽस्ति नाऽस्तीव य: सदा: ।
परमात्मेति कथितो मन: षष्ठोन्द्रिययातिग: ॥८
तस्मात् संपद्यते जीवश्चिन्मूर्तिर्मनात्मक: ।
भ्रम: केवलमित्याद्य उपदेशाय गीयते ॥९
यत: कुतश्चित् सम्पन्ने त्वविद्यामय आमये ।
उपदेश्योपदेशेन प्रविलीने विचारणात् ॥१०
प्रशान्तसकलाकारं ज्ञानं तत्राऽवशिष्यते ।
यत्राऽऽकाशमपि स्थूलेऽणाविव महाचल: ॥११
यत्रोद्यदाचारमपि सदप्यसदिव स्थितम् ।
जगज्जान्विषयांस्त्यक्त्वा काये त्वं तिष्ठ निर्मले ॥१२
असन्मयमविद्याया रूपमेव तदेव हि ।
यद्वीक्षिता सती नूनं नश्यत्येव न दृश्यते ॥१३
आलोकितं नाम कथमवस्तु किल लभ्यते ।
प्रयत्नेनाऽपि संप्राप्तं मृगेणाम्बुकणैरिव ॥१४

हे राम ! विधा-विलास का अपना कोई अस्तित्व नहीं हैं । अविज्ञजनों का इस विषयक जो तर्क है, वह सदैव स्थित रहता है। परमात्मा संज्ञक और मन सहित इन्द्रियों का विषय भी वही है ।८। उसी परमात्मा से इस चैतन्य मूर्ति जीव की उत्पत्ति है, यह मानसिक कल्पना केवल शिष्यों के उपदेश देने के उद्देश्य से ही गाई जाती है ।९। विचार पूर्वक उपदेश देते हुए मन युक्त विचार से जिस अविधा

रूपी रोग के शमन होने पर सर्व आकारों से ऐसा स्वरूप ज्ञान शेष रहता हैं जहाँ परमाणु में आकाश भी सुमेरु पर्वत के समान स्थूल जैसा स्थित रहता है ।१०-११। जब सत्यभूत पदार्थ भी क्रियाके आश्रय से शून्य के समान अवस्थित हैं तब उस अनामय ब्रह्माण्ड में सांसारिक विषयों को त्याग कर आप जीवन्मुक्त हो जाओ ।१२। यह भले प्रकार दिखाई पड़ने वाली अविद्या दृष्टि में नहीं आती, किन्तु नष्ट हो रही हैं, अतः उस अविद्या का स्वरूप वही प्रसिद्ध असद्रूप ही है ।१३। मृगतृष्णा का जल दिखाई देने पर भी किस ने प्राप्त कर लिया ? उसी मृगतृष्णा जल के समान भ्रान्तिवश देखे गये पदार्थ प्रयत्न पूर्वक भी पा लिए आते हैं क्या ? अर्थात् नहीं पाये जाते ।१४।

असदेव सदेवाऽसदज्ञानादस्य सत्यता ।
ज्ञानाद्यथास्थितं वस्तु दृश्यते नश्यति भ्रमः ॥१५
सत्यो भवत्वसत्यो वा बालेन यक्षो निशि ।
पञ्चतन्मात्रकयनां संभावयति सत्तया ॥१६
तत्राऽऽत्मनि तथा रन्ध्रान् प्रपश्यति तथोदितान् ॥१७
एभ्य एव समुत्पन्नं बहिःस्थं भूतपञ्चकम् ।
पश्यत्यनन्यदन्याभं शाखाशतमिवाऽङ्कुरः ॥१८
इदमन्तरिदं बाह्यमिति निश्चयवांस्ततः ।
जीवो भावं यथाऽऽदत्ते तत्तथा द्रढयत्यतः ॥१९
रश्मिजालमिवेन्दोर्यदात्मनः प्रतिभासनम् ।
बाह्यस्पर्शतया तेन तदेवाऽऽशूररीकृतम् ॥२०
आमनैवेदमखिलं सम्पन्नं द्वैतमद्वयम् ।
खण्डो मधुरसेनेव मृदेव च महाघटः ॥२१

असन् पदार्थ का सदाभास असद्रूप अविद्या से ही है । ज्ञान के द्वारा तो वस्तु का यथार्थ रूप ही दिखाई देता है, क्योंकि ज्ञान से भ्रम नष्ट हो जाता है ।१५। जैसे रात्रि के समय कोई बालक यक्ष की कल्पना करले फिर वह असत्य ही क्यों न हो । यह जीव चिति, पंचतन्मात्राओं

के देह रूपी कल्पना का सत्य होना ही सम्भव मानती है।१६। और देह स्थित आत्मा में उपरोक्त उदाहरण के समान उत्पन्न रन्ध्रों को भी वैसे ही देखता है।१७। इन पंचतन्मात्राओं से उत्पन्न बहिस्थित उन पंचमहाभूतों को चिति से भिन्न नहीं, उन रन्ध्रों से पराया सा उसी प्रकार देखती है, जैसे अंकुर सैकड़ों शाखाओं को देखे।१८। फिर बाह्य और आन्तरिक पदार्थों का निश्चय किया हुआ यह जीव जिस वासना को प्राप्त होता है उसे दृढ़ कर लेता है।१६। चन्द्रकिरणों के समान सुख रूप से जो आत्मज्ञान होता है, वही ब्रह्म विषयों के सुख के अनुभव स्वरूप स्वीकार किया जाता है।२०। द्वैत या अद्वैत दोनों भेदों से युक्त यह विश्व, आत्मा के द्वारा उसी प्रकार निर्मित हुआ है जिस प्रकार गन्ने के रस से शक्कर और मिट्टी से बड़े-बड़े बर्तन।२१।

सन्निवेशविकारादि देशकारादिसंभवात् ।
संभवत्यत्र न त्वीशो देशकालाद्यसंभवात् ॥२२
इतिभव्यमनेनेदमित्थं सर्वेश्वरे ततम् ।
क्रमं खण्डयितुं लोके कस्य नामाऽस्ति शक्तता ॥२३
आदर्शस्वच्छ आकाशे नैव स्वः प्रतिबिम्बति ।
व्यतिरेकासंभवतः कचत्येव हि केवलम् ॥२४
ब्रह्मणि त्वात्मनाऽऽत्मैव स्थितः कचति बिम्बति ।
द्वैतीभवत्यदेहोऽपि चिन्मयत्वात् स्वभावतः ॥२५
हेमत्वकटकत्वे द्वे सत्यासत्यस्वरूपिणी ।
हेम्नि भाण्डगते यद्वच्चित्वाचित्वे तथाऽऽत्मनि ॥२६
काले काले चिता जीवस्त्वन्यऽन्यो भवति स्वयम् ।
भाविताकारवानन्मर्त्यो वासनाकलिकोदयात् ॥२७
स्वप्ने दृष्टो यथा ग्रामो याति सत्ताऽन्यतेणक्षात् ।
देहाद्देहं तथा याति देहोऽयं प्रतिभात्मकः ॥२८

देश, काल आदि के परिच्छेद से शक्कर और बर्तन आदि में तो अवयव विन्यासादि अनेक प्रकार हो सकते हैं, परन्तु वे देश कालादि

जनित विकार आत्मा में सम्भव नहीं है ।२२। जिस वस्तु से जो कार्य सिद्ध होना है, वह उससे होगा ही, परब्रह्म द्वारा कल्पित इस क्रम में कौन व्यवधान उपस्थित कर सकता है ? ।२३। आकाश स्वच्छ होने पर भी वह दर्पण के समान प्रतिबिम्बित नहीं होता क्योंकि आकाश अथवा उनके कार्य भूत अन्य भूतों में आकाश का भेद ही नहीं होता ।२४। परन्तु अविद्या के संबल वाले ब्रह्म में आत्म स्वरूप से आत्मा ही स्थित रहता है, वही जीव रूप से प्रतिबिम्बित होता है। स्वभाव से चिन्मय होने के कारण अदेह होने पर भी उसमें भेद-बुद्धि प्रतीत होती है ।२५। जैसे आभूषण के स्वर्ण में सत्य रूप स्वर्णत्व और असत्य रूप कटकत्व दोनों ही रहते हैं, वैसे ही आत्मा में चित्व और अचित्व दोनो की प्रतीति है ।२६। चैतन्य में वासना रूपी कलिकाएँ विकसित होती हैं, तभी यह जीव विचित्र भावनाओं वाला होकर स्वयं ही भिन्न-भिन्न रूपवाला हो जाता है ।२७। जैसे स्वप्न में देखे हुए ग्राम में वन आदि के अवलोकन से वैसा ही दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार इस जीव का भी देह से दूसरे देह को प्राप्त होना स्वरूप के ही समान है ।२८।

वस्तु दृष्टमदृष्टं च स्वप्ने समनुभूयते ।
जीवस्बप्ने जगद्रूप विद्धि वेद्यविदां वर ॥२९
प्राक्तनी वासनाऽद्यापि पौरुषेणाऽवजीयते ।
ह्यः कुकर्माऽद्य यत्नेन प्रयाति हि सुकर्मताम् ॥३०
मोक्षाद्दतेन शाम्यन्ति जीवतां चक्षुरादयः ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्तिकेवलं देशकालतः ॥३१
मनोबुद्धिरहङ्कारस्तथा तन्मात्रपञ्चकम् ।
इति पुर्यष्टकं प्रोक्तं देहोऽयमातिवाहिक ॥३२
कदाचिद्ध सुषुप्तस्थः कदाचित् स्वप्नवत् स्थितः ।
अतिवाहिक देहोऽयं सर्वस्यैवाऽवतिष्ठते ॥३३
यदा सुषुप्तभावस्यो भाविदुः स्वप्नबेधितः ।
तदाकालानलसमस्तिष्ठत्यनुदिताकृति ॥३४

स्थावराद्यास्ववस्थासु कल्पवृक्षदशासु च।
भवत्येव सुषुप्तस्थो घनमोहशिलाघनः ॥३५

हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीराम ! यह जगद्रूप तो जीव का एक स्वप्न ही है। क्योंकि स्वप्न में दृष्ट और अदृष्ट वस्तुओं का ज्ञान होता है ।२९। जैसे पिछले अनुचित कर्म वर्तमान में किये गये श्रेष्ठ प्रयत्न से सुकर्म में बदल जाते हैं, वैसे ही पौरुष पूर्वक वासना को जीता जा सकता है ।३०। जीवों की नेत्रादि इन्द्रियाँ मोक्ष के बिना शान्त नहीं हो सकती, क्योंकि वे देश-काल आदि भेदों में भव-सिन्धु में डूबती उतराती हैं ।३१। मन, बुद्धि, अहंकार तथा पंचतन्मात्राएँ—यह आठों का समूह पुर्यष्टक है। इसी को 'आतिवाहिक' देह कहते हैं ।३२। यह आतिवाहिक देह ही कभी सुषुप्तावस्था में और कभी स्वप्नवस्था में स्थित रहती है ।३३। यह आतिवाहिक देह जब सुषुप्तावस्था में स्थित हुई वासनामय दुःस्वप्नों में विद्ध होकर स्मृति से रहित तथा अनुदित आकृति—वाली हो जाती है, तब चिति के प्रतिबिम्ब से प्रलयाग्नि जैसी प्रदीप्त होकर स्थित रहती है ।३४। स्थावरादि अवस्थाओं में कल्पवृक्ष की दिशाओं में पत्थर की शिला के समान घनीभूत मोहमयी यह आतिवाहिक देह सुषुप्ति में स्थित रही आती है ।३५।

सुषुप्तताऽस्य जडता स्वप्नोत्थेयं हि संसृतिः।
यः प्रबोधोऽस्य सा मुक्तिस्तज्जाग्रद्या तु तुर्यता ॥३६
जीवप्रबोधान्मुक्तिर्हि प्रबोधात्परमात्मताम्।
सोऽभ्येति क्षालितमलं ताम्रं कनकतामिव ॥३७
जीवन्मुक्तिर्हि तुर्यत्वं तुर्यातीतं पदं ततः।
बोधोजीव, प्रबोधोऽयं स च बुद्धिप्रयत्नतः ॥३८
बन्धोऽस्य वासनाबन्धो मोक्षः स्याद्वासनालयः।
वासनान्तस्य सौषुप्ती स्वप्ने विस्फुरति स्थितिः ॥३९
त्रिजगच्चिच्चमत्कारस्त्वत्र भेदविकल्पनैः।
शोभिताः स्मश्रिति चिरात् सबाह्यान्तर्न न विद्यते ॥४०

अब्धिर्यथा जलमपास्तसमस्तभेदः
खादच्छमेव सकलं द्रवमेकशुद्धम् ।
सर्वं तथेदमपहस्तितभेदजात-
माद्यं परं पदमनामयमेव बुद्धम् ॥४१

हे राम ! सुषुप्तावस्था की स्थिति ही तो देह की जड़ता है, चित्त का भ्रमण ही सर्ग है और उसका तत्व ज्ञान ही मुक्ति है तथा जाग्रति ही तुर्य, रूपता है ।३६। जीव को प्रबोध होने से ही मुक्ति सम्भव है। प्रबोध से ही परमात्मा रूपत्व प्राप्त होता है, जिस प्रकार कि मैल छूटने पर ताँबा सोने के समान चमकता है ।३७। जीवन्मुक्ति ही तुरीयावस्था है। फिर तुरीयातीत ब्रह्मपद है । तत्वज्ञान की प्राप्ति पर जीव स्वयं ही प्रबोध रूप हो जाता हैं, परन्तु तत्वज्ञान की प्राप्ति प्रयत्न से ही हो सकती है ।३८। वासनाओं का बन्धन ही जीवका बन्धन है और वासनाओं का नाश ही जीव का मोक्ष हैं और वासनाओं की अन्तावस्था ही जीव की सुषुप्ति है। वह वासना ही स्वप्न में अद्भुत रूप से स्फुरित होती है ।३९। यह तीनों लोक चैतन्यात्मक का चमत्कार हीं है, इसलिए भेद संकल्प कैसा ? हम चिरकाल में तत्वज्ञान के द्वारा अपने चैतन्य रूप में स्थित हैं। यह ब्रह्माभ्यन्तरिक संसार त्रिकाल में भी नहीं है ।४०। तत्व पूर्वक विचार किया गया यह जगत् जैसे तरंगादि भेदों से शून्य समुद्र और आकाश से भी निर्मल तथा विशुद्ध जल स्वरूप है। वैसे ही वासनात्मक विभेदों से रहित एवं विकार से रहित परम पद ब्रह्मरूप ही है ।१४।

३१—अर्जुनाख्यान

पुण्डरीकाक्षनिर्दिष्टामसंसक्तिगतिं शुभाम् ।
यामालिंग्य महाबाहो जीवन्मुक्तो महामुनिः ॥१
पाण्डोः पुत्रोऽर्जुनो नाम सुखं जीवितमात्मनः ।
क्षिपयिष्यति निर्दुःखं तथा क्षेपय जीवितम् ॥२

भविष्यति कदा ब्रह्मन् सोऽर्जुनः पाण्डुनन्दनः ।
कीदृशीं च हरिस्तस्य कथयिष्यत्यसक्तताम् ॥३
अस्ति सन्मात्रमात्मेति परिकल्पितनामकम् ।
स्थितमात्मन्यनाद्यन्ते नभसीव महानभः ॥४
दृश्यते विमले तस्थिमन्यः संसारविभ्रमः ।
कटकादि यथा हेम्नि तरङ्गादि यथाऽम्भसि ॥५
चतुर्दशविधा भूतजातयः प्रस्फुरन्त्यलम् ।
यस्मिन् संसारजालेऽस्मिन्जाले शकुनयो यथा ॥६
तत्रैते यमचन्द्रार्कशक्राद्याः शंसितक्रमाः ।
भूतपञ्चकसंसारलोकपालत्वमागताः ॥७

वसिष्ठजी बोले-हे पुण्डरीकाक्ष ! हे महाबाहो ! अब आप भगवान् श्री कृष्ण द्वारा उपदिष्ट, शुभ फल का देने वाला जो अनासक्ति योग है, उसे सुनिये जिसके अवलम्बन से जीव जीवन्मुक्त एवं महामुनि हो जाता हैं ।१। जिस प्रकार राजा पाण्डु का पुत्र अर्जुन जीवन्मुक्ति स्वरूप आनन्द से सम्पन्न होकर अपना जीवन यापन करेगा, उसी प्रकार दुःख रहित रूप से आप भी अपने जीवन को व्यतीत करिये ।२। श्रीराम ने कहा हे ब्रह्मन! वह पाण्डुनन्दन कब जन्म लेगा ? कब भगवान् श्रीकृष्ण उसे अनासक्ति योग का दर्शन देंगे ? ।२। वसिष्ठजी ने कहा परिकल्पित नामक यह आत्मा आकाशमें महाकाश के समान अन्त-रहित रहता हुआ अपनी महिमा में विद्यमान रहता है ।४। जैसे स्वर्ण में कटक और जलमें तरङ्गादि दिखाई देते हैं, वैसे ही विमल ब्रह्म में इस संसार-विभ्रम की प्रतीति होती है ।५। जाल में फँसा पक्षी जिस प्रकार पर फड़फड़ा कर रह जाता है, उसी प्रकार इस दृश्य भवजाल में फँसकर चौदह प्रकार के जीव अपने को मुक्त होने में असमर्थ पाकर उछल-कूद मचाते रह जाते हैं ।६। उन जीवों के मध्य पंच भौतिक जगत में यम चन्द्रमा, और इन्द्र आदि उन-उन लोकों के अधिपति बन चुके हैं ।७।

तस्याऽद्य यावदनघ प्रवाहपतिते निजे ।
कर्मण्यचलसंकाशस्थिर चित्तमवस्थितम् ॥८
भगवान् स यमः किश्चन्दते प्रतिचतुर्युगे ।
तपः प्रकुरुते भूतदलनात् पापशंकया ॥९
कदाचिदष्टौ वर्षाणि दश द्वादश वाऽपि च ।
कदाचित् पञ्च सप्तादि कदाचित् षोडशाऽपि च ॥१०
तेन नीरन्ध्रभूतौघनिः सञ्चारं महीतलम् ।
भवति प्रावृषि स्वेदो कुञ्जरो मशकैरिव ॥११
अथैतानि विचित्राणि भूतानि बहुयुक्तिभिः ।
क्षिपयन्ति सुरा रामभुवो भारनिवृत्तये ॥१२
एवं युगसहस्राणि व्यवहारशतानि च ।
समतीतान्यनन्तानि भूतानि च जगन्ति च ॥१३
वैवस्वतोऽद्य तु यमो य एष पितृनायकः ।
अनेन त्वधुना साधो परिक्षीणेषु केषुचित् ॥१४
युगेष्वघविघाताय वर्षाणि द्वादशात्मना ।
व्रतचर्येण कर्तव्या दूरास्तर्जनकर्षणा ॥१५

हे निष्पाप ! उन यमराज का चित्त सर्गकाल से आज पर्यन्त अपने अधिकृत कर्म में पर्वत के समान अटल, रूप से अवस्थित है ।८। वह यमराज प्रत्येक चतुर्युगी का कुछ समय व्यतीत हो जाने पर जीवों के नाश होने से उत्पन्न पाप की आशंका से कभी-कभी कुछ तप भी करते हैं । वे कभी आठ वर्ष, कभी दस, बारह, पाँच अथवा सात वर्ष और कभी सोलह वर्ष तपस्या करते हैं ।९-१०। उनके उस तपस्या काल में किसी भी जीव के हिंसित न होने से यज्ञ पृथिवी, जैसे वर्षाकाल में मच्छरों के प्रकोप से पीड़ित हाथी पसीने से लथपथ रहता है, वैसे ही पृथ्वी अनेक प्रकार के प्राणियों के संरक्षण के योग्य नहीं रहती ।११। फिर उस बोझिल हुई पृथिवी के भार की निवृत्ति के लिए श्री कृष्णादि सभी देवता अनेक युक्तियों से पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं ।१२। इस प्रकार सहस्रों युग, सैकड़ों व्यवहार (वश) तथा अनन्त जीव और जगत्

बीत चुके हैं ।१३। हे साधो ! यह वैवस्वत यम आज पितरों का नायक है, परन्तु अब कुछ युगों के बीतने पर पापों से निवृत होने के लिए इसे भी बारह वर्ष तक तप करना पड़ेगा, इस अवधि में दण्ड दूर खड़ा रहेगा ।१४-१५।

तेनेयमुर्वी नीरन्ध्रा भूतैर्मर्त्यैरमृत्युभिः ।
दीना प्रपन्नगुल्मेव भारभूतैर्भविष्यति ॥१६
भूतभाराभिभूताङ्गी हरिशरणमेष्यति ।
कान्ता दस्युपराभूतादीनापतिमिव प्रिया ॥१७
हरिदेहद्वयेनाऽथ महीमवतरिष्यति ।
देवांशैरखिलैः सार्धं नरनारायणं गतैः ॥१८
वसुदेवसुतस्त्वेको वासुदेव इति श्रुतः ।
देहो भविष्यति हरेर्द्वितीयः पांडवोऽर्जुनः ॥१९
युधिष्ठिर इति ख्यातो धर्मपुत्रो भविष्यति ।
अम्भोधिमेखलाभूपः पाण्डोः पुत्रः स धर्मवित् ॥२०
दुर्योधन इति ख्यातस्य भ्राता पितृव्यजः ।
भविष्यति दृढद्वन्द्वो भीमौबभ्रुरहेरिव ॥२१
अन्योऽन्यं हरतोरुर्वी तयोः संग्रामलोलयोः ।
अष्टादशाऽऽत्राक्षौषिण्यो घटिस्यन्त्यत्र भीषणा ॥२२

यमराज के तपस्या में लगने के कारण यह पृथिवी मृत्युलोक को प्राप्त हुए, मृत्यु-रहित होने से भार स्वरूप जीवों से व्याप्त एवं वन गुल्मों में अकीर्ण तथा दीन हो जायेगी ।१६। तब यह भार से पीड़ित पृथिवी उस प्रकार हरि की शरण में पहुँचेगी जिस प्रकार दस्युओं द्वारा लूटी हुई कातर स्त्री अपने स्वामी की शरण में आती है ।१७। तब भगवान् विष्णु दो देह होकर नर नारायण के सहायतार्थ सम्पूर्ण देवताओं के सहित पृथिवी पर अवतार लेंगे ।१८। उनमें एक देह वसु-देव-पुत्र, वासुदेव नाम से तथा दूसरा देह पाण्डु-'अर्जुन नाम से प्रसिद्ध होगा ।१९। सब ओर समुद्र रूपी करधनीधारिणी पृथिवी का अधीश्वर धर्मपुत्र युधिष्ठर धर्मज्ञ पाण्डु-पुत्र होगा ।२०। उस युधिष्ठिर के चाचा

का पुत्र दुर्योधन होगा। उस दुर्योधन का प्रतिद्वन्द्वी (उस के समान वीर) पाण्डु का दूसरा पुत्र भीम, होगा, जैसे कि सर्प का प्रतिद्वन्द्वी नकुल होता है।२१। परस्पर में एक दूसरे की पृथिवी का अपहरण करने के लिए युद्ध में तत्पर उन दोनों की भयंकर अठारह अक्षौहिणी सेना महाभारत युद्ध के लिए एकत्र होगी।२२।

तत्क्षयेण विभारत्वं भुवो विष्णुः करिष्यति।
राघवाऽर्जुनदेहेन वृहद्गाण्डीवधन्विना।
विष्णोरर्जुननामादौ प्राकृतं भावमास्थितः।
हर्षामर्षावितो देहो नरधर्मा भविष्यति ॥२३
सेनाद्वयगतान् दृष्ट्वा स्वजनान् मरणोन्मुखान्।
विषादमेत्यात्युद्योगं युद्धाय न करिष्यति ॥२४
तमर्जुनाभिधं देहं प्राप्तकार्यैकसिद्धये।
हरिर्बुद्धेन देहेन बोधयिष्यति राघव ॥२५
न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नाऽयं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२६
अनन्तस्यैकरूपस्य सतः सूक्ष्मस्य खादपि।
आत्मनः परमेशस्य किं कथं केन नश्यति ॥२८
अनन्तमव्यक्तमनादिमध्य-
मात्मानमालोकयसंविदामन्।
संविद्वपुःस्फारमलब्धदोष-
मजोऽसि नित्योऽसि निरामयोऽसि ॥२८

हे राघव ! वृहद् गांडीवधारी अर्जुन रूपी शरीर से उन विशाल सेनाओं का नाश करके भगवान् श्री हरि इस पृथिवी का भार दूर कर देंगे।२२। युग के प्रारम्भ में अर्जुन नामक वह विष्णु मानव शरीर के प्राकृत भाव से युक्त हर्ष शोकादि से समन्वित रहेगा।२३। और दोनों सेनाओं के मध्य जाकर अपने ही बन्धुओं को मरणोन्मुख देखकर अर्जुन

विषाद को प्राप्त होकर युद्ध न करेगा ।२४। तब हे राघव ! उस उपस्थित कार्य के सिद्ध होने के लिए अपनी ही उस अर्जुन नामक देह को भगवान् विष्णु अपने कृष्ण-शरीर से उपदेश देंगे ।२५। वे कहेंगे—यह आत्मा न कभी जन्म लेता है न मरता है, न जन्म लेकर पुनः अस्तित्व को प्राप्त होता है । यह अजन्मा नित्य शाश्वत और पुराण होने से कभी छेदा भी नहीं जा सकता ।२६। जो अनन्त, एक, सत्स्वरूप तथा आकाश से भी अत्यन्त सूक्ष्म है उस परब्रह्म स्वरूप आत्मा का नाश किससे, किस प्रकार हो सकता है ।२७। हे अर्जुन तुम अन्त-रहित, आदि मध्य से भी रहित तथा दिखाई पड़ने वाले अपने स्वरूप को देखो । तुम अपरिच्छिन्न आकृति वाले होने से किसी भी दोष से विहीन और चैतन्य रूप हो । इसीलिए तुम अजन्मा नित्य और निरामय हो । (अतः जन्म-मरण के हर्ष शोक से मुक्त रहना ही उचित है) ।२८-२९।

३२—उपास्य और ज्ञेय का स्वरूप

अर्जुनत्वेन हन्ता त्वमभिमानमले त्यज ।
जरामरणनिर्मुक्तः स्वयमात्माऽपि शाश्वतः ॥१
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वाऽपि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥२
यैव सञ्जायते संविदन्तः सेवाऽनुभूयते ।
अयं सोऽस्तीदंतम इत्यन्तः संविदं त्यज ॥३
बहुभिः समवायेन यत्कृतं तत्र भारत ।
एकोऽभिमानदुःखेन हासायैव हि गृह्यते ॥४
कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥५
न क्वचिद्राराजते कायो ममतामोहदूषितः ।
प्राज्ञोऽप्यतिबहुज्ञोऽपि दुःशील इव मानवः ॥६
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखःक्षमी ।
यः स कार्यमकार्यं वा कुर्वन्नपि लिप्यते ॥७

श्रीकृष्ण बोले-हे अर्जुन ! तुम जन्म और मरण से निर्मुक्त होने के कारण स्वयं साक्षात् आत्मरूप एवं शाश्वत हो। तुम मारने वाले नहीं हो इसलिए मैं मारता हूँ इस अभिमान का त्याग कर दो ।१। जिसे 'मैं मारता हूँ' ऐसा अभिमान नहीं होता और हर्ष शोकादि से जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती वह सम्पूर्ण लोकों का नाश करता हुआ भी किसी का नाश नहीं करता ।२। आत्मा में देहादि के अभिमान रूपी जो बुद्धि हैं वही अनुभूति है। इसलिए मैं मारने वाला हूँ अथवा यह मेरा है, ऐसी भ्रान्ति का त्याग ही कर देना चाहिये ।३। हे भारत ! अनेकों द्वारा किये गये कार्यों में कोई एक के प्रति यह मैंने किया है ऐसा अभिमान ही दुःख का कारण है, उससे हँसी ही होती है ।४। हे अर्जुन ! योगी-जन कार्यों, मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से भी परिणाम की आशा को छोड़कर जो कर्म करते हैं वह आत्मशुद्धि के लिए ही करते हैं ।५। जैसे प्राज्ञ अथवा बहुत ज्ञानी होनेपर दुःशील प्रवृत्ति वाला पुरुष कभी शोभा नहीं पाता वैसे ही ममता से दूषित देह भी कही शोभित नहीं होती ।६। ममता रहित अहंकार रहित, सुख दुःख को समान समझने वाला, क्षमा-वान् पुरुष कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य करता हुआ भी उन कर्मों में लिप्त नही होता ।७।

इदं च ते पाण्डुसुत स्वकर्म क्षात्रमुत्तमम् ।
अपिक्रूरमतिश्रेयः सुखायैवोदयाय च ॥८
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
निःसङ्कस्त्व यथा प्राप्तकर्मवान्न निबध्यते ॥९
ईश्वरायति सर्वायं ईश्वरात्मा निरामयः ।
ईश्वरः सर्वभूतात्मा भवभूषितभूतलः ॥१०
सन्यस्तसर्वसङ्कल्पः समः शान्तमना मुनिः ।
सन्यासयोगयुक्तात्मा कुर्वन् मुक्तमतिर्भव ॥११
मुक्ताफलशतोघानां तन्तुः प्रोतवपुर्यथा ।
तथाऽयं देहलक्षाणां स्थितं आत्माऽस्त्यलक्षितः ॥१२

ब्रह्मादौ तृणपर्यन्ते पदार्थनिकुरम्बके।
सत्तासामान्यमेतद्यत्तमात्मानमजं विदुः॥१३
तदीषत्स्फुरिताकारं ब्रह्मैव तिष्ठति।
अहन्तादि जगत्तादि क्रमेण भ्रमकारिणा॥१४

हे पाण्डव तुम्हारा यह श्रेष्ठ क्षात्र कर्महो स्वकर्म है वह बांधवोंके बध होने पर भी सुद्ध चित्त द्वारा वह सुख तथा अभ्युदय से ओत-प्रोत हैं।८। हे धनञ्जय ! इसलिए तुम योग में स्थित होकर कर्म करो आसक्ति को त्याग दो, क्योंकि अनासक्ति से कर्म करने पर उनके फलसे निबद्ध नहीं होना पड़ता।९। तुम अपने शुभ-अशुभ विषयों को ब्रह्म में समर्पित करके स्वच्छ हो जाओ। तथा सर्व भूतात्मक होकर पृथिवी विभूषित करते हुए ब्रह्म रूप से ही विचरण करो।१०। तुमने सभी सङ्कल्पों का त्याग कर दिया है, अतः अब सम स्वरूप एवं शान्त मन से युक्त मुनि के समान तथा सन्यास योग में युक्त होकर कर्म करो इस प्रकार तुम मुक्ति की बुद्धि से सम्पन्न हो जाओ।११। सैकड़ों मुक्ताओं के छिद्रों में स्थित प्रोताकार तन्तु जैसे दिखाई नहीं पड़ते वैसे ही लाखों देहों में अवस्थित रहता हुआ यहा आत्मा भी दिखाई नहीं देता।१२। ब्रह्मा से लेकर तृण तक जितने भी पदार्थ है, उनमें जो सत्ता सामान्यतया अवस्थित है, ज्ञानीजन उसे ही आत्मा कहते हैं।१३। अतः भ्रम को उत्पन्न करने वाले अज्ञान के द्वारा ही अहन्तादि एवं जगत्तादि के क्रम पूर्वक किंचित् स्फुरित आकार का आत्मा किसी अन्य रूप से स्थित न रहता हुआ केवल ब्रह्मरूप से ही अवस्थित रहता हैं।१४।

नानाकारविकारेषु तरङ्गेषु यथा पयः।
कटकादिषु वा हेम भूतेष्वात्मा तथाऽर्जुन॥१५
नानातरङ्गवृन्दानि यथा लीनानि वारिणि।
कटकादीनि वा हेम्नि भूतान्येवं परात्मनि॥१६
पदार्थजातं भूतानि वृहदब्रह्म च भारत।
एकमेवाऽखिलं विद्धि पृथक्त्वं न मनागपि॥१७

किं तद्भावविकाराणां गम्यमस्ति जगत्त्रये ।
क्व ते वाऽस्ति जगत्किंवा किं मुधा परिमुह्यसि ॥१८
इति श्रुत्वाऽभवं त्वन्तर्भावयित्वा सुनिश्चितम् ।
जीवन्मुक्ताश्चरन्तीह सन्तः समरसाशयाः ॥१९

निर्मानमोहाजितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥२०

विभिन्न प्रकार के आकारों और विकारों वाले तरङ्गों में जैसे जल और कटक आदि में स्वर्ण अनुगत है, वैसे ही नाना प्रकार के यह जो समस्त भूत हैं, उनमें आत्मा ही अनुगत हैं ।१५। जैसे जल में सभी चंचल तरङ्गों का निवास है अथवा स्वर्ण में कटक आदि हैं, वैसे ही यह समस्त भ्रम-समूह परब्रह्म में ही निवास करते हैं ।१६। हे भारत भूतादि सब पदार्थ और वृहद् उन सबको दर्पण और प्रतिबिम्ब के समान एक रूप समझो, इसमें किंचित् भी पृथक्त्व नहीं ।१७। त्रिलोकी में निर्विकार ब्रह्म ही एक है, तब जन्मादि बिकारों का आश्रय ही क्या है ? तब बान्धव वध आदि भाव विकार भी कहाँ रहेंगे ? अथवा ब्रह्म के अतिरिक्ति यह जग भी क्या है ? (जब कुछ नहीं तब) तुम इनमे मोह ही क्यों करते हो ? ।१८। इन उपदेशों का श्रवण कर और अन्तर में अभय ब्रह्म की निश्चित भावनाकर समानचित्त वाले सन्तजन जीवन्मुक्त होते हुए विचरते हैं ।१९। मान-रहित, मोह-रहित, बाह्य विषयों में निरासक्त, विषयों से निर्मुक्त आत्मज्ञान में अवस्थित, दुख सुखादि सभी द्वन्द्वों से विमुक्त तथा सभी भेद-प्रभेदों से रहित ज्ञानमति संतजन उस अव्ययपद को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं ।२०।

३३—कृष्ण द्वारा अर्जुन को ज्ञान प्रदान

भूय एवं महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१
मात्रास्पर्शा हि कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥२
संस्थिता स्पर्शमात्राख्या मात्रास्पर्शभ्रमात्मकः ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥३
मनागपि न विद्येते सुखदुःखे तु सर्वशः ।
सर्वत्वादात्मतत्त्वस्य सत्ता कथमनात्मनः ॥४
विष्वग्विश्वमजं ब्रह्म न नश्यति न जायते ।
इति सत्यं परं विद्धि बोधः परम एष सः ॥५
ब्रह्माम्बुधौ तरङ्गत्वं किञ्चिद्भूत्वा विलीयते ।
ब्रह्मावर्ते स्फुरस्यद्य ब्रह्मैवाऽसि निरामयम् ॥६
जहि मानं मदं शोकं भयमीहां सुखासुखे ।
द्वैतमेतद्सद्रूपमेकः सद्रूपवान् भव ॥७

श्री भगवान् बोले—हे महाबाहो ! मेरे श्रेष्ठ वचनों को सुनो ! क्योंकि तुम उन्हें सुनना चाहते हो, इसलिए तुम्हारे कल्याण की आकाक्षा से कह रहा हूँ ।२। हे कौन्तेय ! हे भारत ! इन्द्रिय–विषयक अनुभव ही सुख दुःख देने वाले हैं । इन्द्रियों के वे विषय सदा-उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होते रहते हैं, और शीतकाल में जो सुखदायक है वही विषय गर्मी में दुःखदायक हो जाता है, जो समान रूप से लाभ-दायक नही हैं उन विषयों का तुम त्याग कर दो ।२। जिस श्रेष्ठ बुद्धि वाले पुरुष की इन्द्रियाँ सत्य प्रतीत होने वाली भ्रान्ति से विरत हो जाती हैं वह जीव तत्वदर्शी होकर सुख-दुःख को समान मानता हुआ अमृतत्व को प्राप्त करने में समर्थ होता है ।३। सर्व प्रकार से सुख दुःखादि किंचित् भी अस्तित्व नहीं रखते । अब आत्मतत्व ही सर्वरूप है तब अनात्मा का अस्तित्व कैसे रह सकता है ? ।४। यह विश्व नित्य एवं

पूर्ण ब्रह्म ही है. वह उत्पन्न या नष्ट नहीं होता, यह परम सत्य है ऐसा जानना ही श्रेष्ठ ज्ञान है ।५। इस ब्रह्म रूपी महा समुद्र में तरङ्ग रूप से कुछ उत्पन्न और नष्ट हो जाता है आज बोध के इस उदय काल में तुम जो स्फुरण को प्राप्त हो रहे हो । वह तुम सभी प्रकार के विकारों से रहित ब्रह्म ही हो उससे भिन्न नहीं हो ।६। तुम मान मद शोक भय इच्छा और सुख दुख सभी का त्याग कर दो । यह सम्पूर्ण द्वैत प्रपंच असद्रूप हैं इसे त्याग कर एक मात्र सद्रूप हो जाओ ।७।

पुरुषाक्षौहिणीनां न क्षयेणाऽनुभवात्मना ।
ब्रह्मणा बृहितं शुद्धं ब्रह्म ब्रह्ममयं कुरु ॥८
असंविदन्सुखं दुखं लाभालाभौ जयाजयौ ।
शुद्धब्रह्मैकतां गच्छ ब्रह्माब्धिस्त्वं हि भारत ॥९
अनपेक्षफलं ब्रह्म भूत्वा ब्रह्मेतिबाधितम् ।
क्रियते केवलं कर्म ब्रह्मज्ञेन यथागतम् ॥१०
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ॥११
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः ॥१२
आसक्तिमाहुः कर्तृत्वमकर्तुरपि तद्भवेत ।
मौर्ख्ये स्थिते हि मनसि तस्मान्मौर्ख्यं परित्येजेत् ॥१३

हे अर्जुन ! तुम अक्षौहिणी सेना का विनाश करोगे तो वह भी ब्रह्मरूप ही होगा । इसलिए क्षयात्मक भी ब्रह्म ही बृहित है, अतः तुम शुद्ध ब्रह्म को ब्रह्मात्मक ही बनाओ ।८। हे भारत ! तुम सुख-दुःख, लाभ हानि, जय हार आदि पर ध्यान न देते हुए केवल ब्रह्म रूप ही होओ, क्योंकि तुम निश्चय ही ब्रह्मरूपी महासागर हो ।९। जो ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त कर चुका है वह सम्पूर्ण कामनाओं की परिसमाप्ति वाला पुरुष पुरुषार्थरूप फलत्व को प्राप्त होता हुआ ब्रह्म भाव से बाधित हुआ कर्म करता है ।१०। हे धनञ्जय ! तुम कर्मफल से सम्पन्न न होओ और कर्म न करने में भी आसक्त न बनो । तुम तो योग के अव-

लम्बन से सङ्ग का त्याग करते हुए ही कर्मों को करो ।११। जो पुरुष कर्म-फल की इच्छा न करता हुआ नित्य तृप्त और निराश्रय रूप से स्थित रहता है, वह कर्मों को करता हुआ भी कुछ नहीं करता ।१२। आसक्ति ही विद्वज्जनों द्वारा कर्त्तव्य कही जाती है, प्रसाद के अभाव में कर्म न करने वाला पुरुष आसक्ति मे रत रहता है, इसलिए मूर्खता को छोड़ देना चाहिए क्योंकि मूर्खता ही अनर्थ को उत्पन्न करने वाली है ।१३।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।१४

परिगलितसमस्तशोकभारा
परमुदयं भगवन् मतिर्गतेयम् ।
मम तव वचनेन लोकभर्तु-
र्दिनपतिना परिबोधिताऽब्जिनीव ।।१५

इत्युक्त्वोत्थाय गाण्डीवन्धवा स हरिसारथिः ।
अर्जुनो गतसन्देहो रणलीलां करिष्यति ।।१६

करिष्यति क्षतगजवाजिसारथि-
द्रुमक्षरद्रुधिरमहानदीं भुवम् ।
शरोत्करप्रसरमहारजः स्थली-
तिरोहितद्युमणिविलोचनं दिवम् ।।१७

अर्जुन बोला—हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा दासना रूपी अज्ञान नष्ट हो गया और आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति हो गई। सभी सन्देह बीजों के नष्ट होने से मैं भ्रान्ति रहित होकर स्थित हूँ, तत्व में अवस्थान और कर्त्तव्य विषयक जो आपका वचन है, अब उसका पूर्ण पालन करने में मैं तत्पर हूँ ।१४। हे प्रभो ! सभी लोकों का पालन करने वाले आपके वचन से, शोक-भार से विमुक्त हुई मेरी यह बुद्धि परम विकाश को उसी प्रकार प्राप्त हो गई है जिस प्रकार कि सूर्योदय होने पर कमलिनी विकसित होती जाती है ।१५। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! यह वचन कहता हुआ वह गांडीव धारी अर्जुन उठ खड़ा

होगा और सन्देह-रहित बुद्धि वाला होकर भगवान श्री हरि की सारथिता से सम्पन्न हुआ संग्राम में कूद पडेंगा ।१६। फिर वह वीर अर्जुन इस पृथिवी को रक्त की ऐसी महानदियों से भर देगा जिनमें आए हुए महान् गज, अश्व, सारथि आदि तुरन्त बहने लगेंगे। वह आकाश को भी ऐसा कर देगा कि उसका सूर्यरूपी लोचन बाणों और उड़ती हुई महान् धूलों से युक्त स्थलों से ढक जायेगा ।१७।

३४–वेताल और राजा का संवाद

जीवोऽजीवो भवत्याशु याति चित्तमचित्तताम् ।
विचारादित्यविद्यान्तो मोक्ष इत्यभिधीयते ॥१
मृगतृष्णाजलमिव मनोऽहन्तादि दृश्यते ।
असदेव मनागेव तद्विचारात् प्रलीयते ॥२
संसृतिस्वप्नविभ्रान्तौ वेतालोदाहृतानिमान् ।
प्रश्नानाकर्णयशुभान् प्रसङ्गात् स्मृतिमागतान् ॥३
अस्तिविन्ध्यमहाटव्यां वेतालो विपुलाकृतिः ।
स किञ्चिन्मण्डलं गर्गादाजगाम जिघांसया ॥४
स वेतालोऽवसत्पर्वं कस्मिश्चित् सज्जनास्पदे ।
बहुबल्युपहारेण नित्यतृप्ततया सुखी ॥५
निर्निमित्तं निरागस्कं पुरोऽप्यध्यागतं न सः ।
क्षुधितोऽपि नरं हन्ति सन्तो हि न्यायदर्शकाः ॥६
सकालेनाऽटवीगेहो जगाम नगरान्तरम् ।
न्याययुक्त्या जनं भोक्तुं क्षुधा समभिचोदितः ॥७

वसिष्ठजी बोले–तत्व का विचार कर लेने पर जीव अजीवत्व को प्राप्त हो जाता है तथा चित्तको भी अचित रूपत्व की प्राप्ति होती हैं। इस प्रकार विचार पूर्वक उत्पन्न कार्य कारण रूप वाली अविद्या नष्ट हो जाती है, तत्वज्ञानी जन ऐसा ही कहते हैं ।१। मृगतृष्णा के समान असद्रूप, क्षणात्मक मन एवं अहन्ता आदि प्रपंच सब कुछ तत्व विचार से विलीन हो जाते हैं ।२। इस संसार रूपी स्वप्न-भ्रान्ति विषयक जो

प्रश्न बेताल ने किए थे, उन्हें आप सुनिये, यह विषय प्रसङ्गवश मुझे याद आ गया ।३। एक समय की बात है विन्ध्य पर्वत की महाटवी में एक महाकाय बेताल रहता था। वह मारे जाने के योग्य अज्ञानियों में अनादर से उनका वध करने की इच्छा से किसी एक मंडल में जा पहुँचा ।३। यह बेताल पहिले एक सज्जन नामक राजा के राज्य में निवास करता था, उस किरात राज्यमें ककड़ी के समान राजा द्वारा मारे जाने वाले लोगों के बलि रूप उपहार से नित्य तृप्त होकर विक्षेपरहित सुख में मग्न रहता था ।५। सामने आये हुए अपराध रहित पुरुष का वह कभी भूखा होने पर भी अकारण वध नहीं करता था, क्योंकि साधु पुरुष सदा ही न्याय पक्ष को देखते है ।६। एक समय की बात है जब वन में विचरण करने पर भी मारने के लिए उसे कोई व्यक्ति नहीं मिला, उस समय वह अत्यन्त क्षुधित होकर न्याय से वध योग्य मनुष्य के भक्षणार्थ नगर में गया ।७।

तत्र प्राप स भूपालं रात्रिचर्याविनिर्गतम् ।
तमाह घनघोरेण शब्देनोग्रनिशाचरः ॥८
राजँल्लब्धोऽसि भीमेन बेतालेन मयाधुना ।
क्व गच्छसि विनष्टोऽसि भव भोजनमद्य मे ॥९
हे रात्रिचर निर्न्याय्यं मां चेदत्सि बलादिह ।
तत्ते सहस्रधा मूर्धा स्फुटिष्यति न संशयः ॥१०
न त्वामद्म्यहमन्याय्यं न्यायोऽयं हि मयोच्यते ।
राजाऽसि सकलाशाश्च पूरणीयास्त्वयार्थिनाम् ॥११
ममैतामर्थितां राजन् सम्भवार्थां प्रपूरय ।
प्रश्नानिमान् मयोक्तांस्त्वं सम्यगाख्यातुमर्हसि ॥१२
कस्य सूर्यस्य रश्मीनां ब्रह्माण्डान्यणवः कृशाः ।
कस्मिन्स्फुरन्ति पवने महागगनरेणवः ॥१३
स्वप्नात् स्वप्नान्तरं गच्छञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
त्यजन्न त्यजति स्वच्छं कः स्वरूपं प्रभास्वरम् ॥१४

उस समत मध्य रात्रि थी। दुष्टों के प्रबन्ध और दण्ड आदि के लिए राजा नगर में विचरण कर रहे थे, तभी यह विकराल निशाचर उससे मेघ जैसी कर्कश वाणी में बोला ।५। बेताल ने कहा—हे राजन् ! मैं भीमकाय वेताल हूँ, तुम्हें मैंने पकड़ लिया है। तुम किधर जाते हो अब तुम अपने को मरा समझो, तुम्हें मेरा भोजन बनना है।६। राजा बोला हे निशाचर ! तुम यदि बलात् मेरा अन्याय पूर्वक भक्षण करोगे तो निश्चय ही तुम्हारा मस्तक सहस्र खण्डों में फट जायगा। बेताल बोला-मैं अन्याय से तुम्हारा भक्षण नहीं करूँगा, परन्तु तुमसे मैं न्याय की बात कहता हूँ—तुम राजा हो, तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम्हें अर्थियों की कामना पूरी करनी चाहिए ।१०-११। हे राजन् ! मेरी भी उस इच्छा को भले प्रकार पूरी कीजिए। मैं जो प्रश्न कर रहा हूँ आप भले प्रकार उसका समाधान कीजिए ।१२। यह ब्रह्माण्ड रूपी किरणों के अणु किस सूर्य के हैं ? तथा महागगनरूपी रेणु किस वायु में स्फुरण को प्राप्त होते है ।१३। स्वप्न से स्वप्नान्तर (एक स्वप्न देखता हुआ अन्य स्वप्न देखने लगे) को प्राप्त पुरुष पहिले देखे हुए सैकड़ों और हजारों स्वप्नों की सत्यता का त्याग करता हुआ भी किस प्रभावित एवं निर्मल सत्य-स्वरूप को नहीं छोड़ता ! ।१४।

रम्भास्तम्भो यथा पत्रमात्रमेवं पुनः पुनः ।
अन्तरन्तस्तथान्तश्च तथा कोऽणुः स एव हि ॥१५
ब्रह्माण्डाकाशभूतौघसूर्यमण्डलमेरवः ।
अपरित्यजतोऽणुत्वं कस्याऽणोः परमाणवः ॥१६
कस्याऽनवयवयैव परमाणुमहागिरेः ।
शिलान्तर्निविडैकान्तरूपमज्जा जगत्त्रयी ॥१७
इति कथयसि चेन्न मे दुरात्म-
स्तदिह निगीर्यं भवन्तमात्मघातिन् ।
फलमिव तव मण्डलं ग्रसेयं
प्रसभमुपेत्य जगद्यथा कृतान्तः ॥१८

जिस प्रकार केले के खम्भे की परत दर परत छीलने पर भी वल्कल मात्र ही निकलता है, वैसेही सबके भीतर और भीतरके भीतर प्रकाश करने वाला, स्वच्छ आत्मारूप अणु कौन सा है।१५। ब्रह्माण्ड, नभ-मण्डल भूतों के आश्रय रूप भुव सूर्यमण्डल और सुमेरु यह जितने भी बड़े-बड़े प्रसिद्ध पदार्थ हैं, ऐसे कौन से अणु धर्म विहीन अणु की अपेक्षा भी अत्यन्त क्षुद्र हैं।१६। कौन से परमाणुरूप महान् पर्वत की निरव्यय शिलामय यह त्रिलोकी है, जिसका सार घनीभूत अव्यभि-चारात्मक अस्तित्व है ?।१७। हे दुरात्मन ! हे आत्मघातिन् ! यदि तुम मेरे इन छः प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकोगे तो तुम्हारे मध्यस्थ लोगों को बल पूर्वक पकड़कर तुम्हारे सहित, फल के समान उस प्रकार निगल लूँगा, जैसे यमराज भक्षण कर लेता है।१८।

३५—वेताल के प्रथम प्रश्न का समाधान

इत्युक्तवति वेताले वक्तुं प्रश्नान्विहस्य सः।
उवाच वचनं राजा दन्तांशुधवलाम्बरः ॥१
आस्तां कदाचिच्चेदं हि ब्रह्माण्डमजरं फलम्।
उत्तरोत्तरं दशगुणभूतत्वक्परिवेष्टितम् ॥२
तादृशानां सहस्राणि फलानि यत्र सन्ति हि।
अत्युच्चैस्तादृशी शाखा विपुलाचलपल्लवा ॥३
तादृशानां सहस्राणि शाखानां यत्र सन्त्यथ।
तादृशोऽतिमहावृक्षो दुर्लक्ष्यो विपुलाकृतिः ॥४
तादृशानां सहस्राणि यत्र सन्ति महीरुहाम्।
तादृशं वनमत्युच्चैरनन्ततरुगुल्मकम् ॥५
तादृशानां सहस्राणि वनानां यत्र सन्त्यथ।
तादृगस्ति वृहच्छृङ्गमत्युच्चैर्भरिताकृति ॥६
तादृशानां सहस्राणि शृङ्गिणां यत्र सन्त्यथ।
तादृशोऽस्त्यतिविस्तीर्णो देशो विपुलकोटरः ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! यह कहकर वेताल के चुप होने पर दन्त रश्मियों जैसे श्वेत वस्त्रों वाले राजा ने हँसकर कहा ।१। राजा बोला—हे वेताल ! यह जीर्णता-रहित ब्रह्माण्ड रूपी फल किसी समय उत्तरोत्तर दस गुण भूमि, जल आदि आवरणों से युक्त था ।२। उस प्रकार के सहस्रों फल यहाँ अवस्थित हैं उनके अनुरूप हिलते हुए पत्तों के समान भुवनों से सम्पन्न यहाँ एक उन्नत शाखा है जहाँ सहस्रों शाखायें अवस्थित हैं, ऐसा पामरों को दिखाई न पड़ने वाला एक महा-तरु है ।३-४। हजारों वृक्षों वाले वन में ऊँचे-ऊँचे असीम वृक्ष और गुल्म अवस्थित हैं ऐसे हजारों वन जहाँ हैं, ऐसा उन्नतशिखरों वाला परिपूर्णाकार एक विशाल गिरि है ।५-६। उस प्रकार के जहाँ हजारों गिरि हैं ऐसा अत्यन्त विस्तार वाला, विपुल कोटरों से सम्पन्न एक देश है ।७।

तादृशानां सहस्राणि देशानां यत्र सन्त्यथ ।
तादृगस्ति वृहद्द्वीपं महाह्लदनदीयुतम् ॥८
तादृशानां सहस्राणि द्वीपानां यत्र सन्त्यथ ।
तादृगस्ति महोपीठं विचित्ररचानान्वितम् ॥९
तादृशानां सहस्राणि पृथिवीनामत्र सन्त्यथ ।
तादृगस्ति महाधारं महाभुवनडम्वरम् ॥१०
तादृशानां सहस्राणि जगतां यत्र सन्त्यथ ।
तादृगस्ति महच्चाऽण्डं चण्डमम्वरपीठवत् ॥११
तादृशानां सहस्राणि यत्राऽण्डानि करण्डकाः ।
तादृशोऽस्ति गतस्पन्दो विपुलाब्धिश्च सागरः ॥१२
तादृक्सागरलक्षाणि तरङ्गो यत्रपेलवः ।
तादृशः स्वविलासात्मा निर्मलोऽस्ति महार्णवः ॥१३
तादृगब्धिसहस्राणि यस्योदरजलान्यथ ।
तादृशोऽस्ति पुमान्कश्चिदत्युच्चैर्भरिताकृतिः ॥१४

वैसे सहस्रों देश जहाँ अवस्थित हैं ऐसा वृहद् सरोवर और नदियों से सम्पन्न एक विशाल द्वीप है ।८। उस प्रकार के अनन्त द्वीपों वाला

एक महीपीठ हैं जिसमें नाम आदिक विविध अद्‌भुत रचनाएँ हैं ।६। वैसे सहस्रों महीपीठ वाला एक वृहद्‌महान्‌ भुवन रूपी प्रपंच स्थित है। ।१०। उस प्रकार के असंख्य भुवनों वाले विस्तृत आकाश पीठ के समान एक घोर अण्ड है ।११। वैसे असंख्य अण्ड रूपी करण्डक वाला एक गम्भीर निश्चल तथा असीम सिन्धु है ।१२। वैसे लाखों समुद्र जिसमें कोमल तरङ्ग के समान स्थित हैं, ऐसा निज स्वरूप विलासी एक स्वच्छ महार्णव है ।१३। जिसके उदर में वैसे सहस्रों महार्णव स्थित हैं ऐसा कोई एक परिपूर्णाकृति पुरुष है ।१४।

तादृशानां नृणां लक्षैर्यस्य मालोरसि स्थिता ।
प्रधानं सर्वसत्तानां तादृशोऽस्ति परः पुमान्‌ ॥१५
तादृशानां सहस्राणि पुरुषाणां महात्मन्‌ ।
स्फुरन्ति मण्डले यस्य स्वतनूरुहजालवत्‌ ॥१६
तादृशोऽस्ति महादित्यः शतमन्यासु दृष्टिषु ।
या एताः कलनः सर्वास्ता एतास्तस्य दीप्तयः ॥१७
अस्याऽऽदित्यस्य दीप्तीनां ब्रह्माण्डत्रसरेणवः ।
मया चित्सूर्य इत्युक्तः सर्वमेतत्तपत्यसौ ॥१८
विज्ञानात्मैव परमो भास्करो भाविताशयः ।
इमे ये भुवनाभोगास्तस्यैव त्रसरेणवः ॥१९
विज्ञानपरमार्कस्य भासा भान्ति भवन्ति च ।
इमा जगदहर्लक्ष्म्यः क्वचिल्लक्ष्म्या रवेरिव ॥२०
विज्ञानमात्रैकचित्तात्मनि जन्तुजाते
त्रैलोक्यमण्डलमणेरविकासभाजि ।
चिज्जन्मनोर्भवनसम्भ्रमतावलेखाः
सन्तीह रे नहि मनागपि शान्तिमास्स्म ॥२१

वैसे लाखों पुरुषों की माला वाला एक परम पुरुष है जो सभी सत्ताओं का प्रधान है ।१५। वैसे सहस्रों महात्मा पुरुष रोमावलि के समान जिसके मण्डल में स्फुरित हैं ऐसा एक आदित्य है। पराग दृष्टि वाले जीवों में रुद्र से ब्रह्माण्ड तक जितने भी करोड़ों प्रतिभास है वह

सब जीवों को दिखाई पड़ने वाले इस सूर्य की किरणें हैं ।१६-१७। इस सूर्य की दीप्तियों के जो ब्राह्माण्ड हैं वही त्रसरेणु है, मैंने तुमसे जिन आदित्यों की बात कही है वही चित्सूर्य है और सम्पूर्ण विश्व इसी की ज्योति से प्रकाशित है ।१८। जिससे उपरोक्त असंख्य पदार्थ प्रकाशित हैं, ऐसा विज्ञान रूप परमादित्य अवस्थित है। सभी विस्तृत ब्रह्माण्ड उसी आदित्य के त्रसरेणु हैं ।१६। श्रेष्ठ विज्ञान रूपी आदित्य की दीप्ति से ही, सामान्य सूर्य की दिव लक्ष्मियों के समान यह जगत् रूपी दिवस-लक्ष्मियों स्फूर्ति और अस्तित्व को पा लेती हैं ।२०। इस प्रकार मैंने जिस विज्ञान-मात्रात्मक ब्रह्म का वर्णन किया है, उस त्रिलोकी स्वरूप मण्डल मणि के अप्रकाशित इस प्रयागात्मा में, अग्नि की चिंगारियों के समान काल्पनिक जीव जगत् के पृथक् अस्तित्व कर्म और भोगादि भ्रान्तियों का उल्लेख है, यथार्थ में तो परब्रह्म में भ्रान्ति स्थान नहीं है, इसलिए निरर्थक प्रश्नों के आडम्बर का त्याग ही श्रेयस्कर है ।२१।

३६—बेताल के शेष प्रश्नों का समाधान

कालसत्ता नभःसत्ता स्पन्दसत्ता च चिन्मयी ।
शुद्धचेतनसत्ता च सर्वमित्यादि पावनम् ।१
परमात्ममहावायो रजः स्फुरति चञ्चलम् ।
कुसुमाङ्ग इवाऽऽमोदस्तदतद्रूपकः स्वतः ।२
जगदाख्ये महास्वप्नात्स्वप्नान्तरं व्रजेत् ।
रूपं त्यजति नो शान्तं ब्रह्म शान्तत्वबृंहणम् ।३
रम्भास्तम्भो यथा पत्रमात्रमेवान्तरान्तरम् ।
अन्मरन्तस्तथेदं हि विश्वं ब्रह्म निवर्त्यपि ।४
सद्ब्रह्मादिभिः शब्दैर्यदेताभिर्विगिर्यते ।
शून्यमव्यपदेश्यं न तत्कञ्चिच्च किञ्चन ।५
अस्य वैज्ञप्तिमात्रैच मज्जामात्रं जगत्रयी ।
विज्ञानमात्रमध्यं हि साधो विद्धि जगत्रयम् ।६

विज्ञानमात्रकलनाकलितं जगन्ति
शान्तस्वभावसुकुमारमनन्तरूपम् ।
वेतालबालकपदं तदलङ्घनीय-
मेवं स्वयं समनुभावय शान्तमात्स्व ।७

राजा बोला—हे बेताल ! कालसत्ता, नभसत्ता, स्पन्दसत्ता, चिन्मयी सत्ता, शुद्ध चैतन्यसत्ता इत्यादि यह सभी पवित्र निर्दोष रज के समान परमात्मा रूपी महावायु में अनेक विषय विकार से चलायमान होकर स्फुरित होती हैं, जिस प्रकार कि पुष्प अपने ही अङ्ग की सुगन्ध द्वारा अमोद-भेद से अवस्थित है, वैसे ही परमात्म-सत्ता अपने में कालादि भेद की कल्पना से अपने में ही विद्यमान है, ।१-२। जगत् संज्ञात्मक महा-स्वप्न में एक स्वप्न से अन्य स्वप्न को प्राप्त, दोषों से रहित ब्रह्म शांत-तत्व की वृद्धि वाले स्वरूप का त्याग नहीं करता ।३। जैसे कदली स्तम्भ की परत छीलते-छीलते उसमें केवल परत ही निकलती हैं, वैसे ही ब्रह्म में अवान्तर कारणों में, विश्व भीतर से भीतर देखे जाने पर ब्रह्ममात्र अणु ही मिलता जाता है ।४। वह परमात्मा सद् ब्रह्म आत्मा आदि शब्दों से कहा जाता है । सर्व धर्मों से पूरे होने से शून्य, अव्यपदेश्य आदि कहा है, इसलिये करने के लिये वह कुछ नहीं भी है ।५। हे साधो ! यह त्रिलोकी उस ज्ञानमात्रात्मक ब्रह्म की मज्जा है क्योंकि श्रुतियों में हृदयाकाश स्व-रूप विज्ञानमात्र की मध्य मज्जा के समान प्रख्यात है ।६। हे बेताल ! यह विश्व विज्ञानात्मा के अनेक कौशलों का विलास मात्र है । तुम उस शान्त सुकुमार और अनन्त आत्मविज्ञान के खण्डन में समर्थ नहीं हो । अतः मेरी बात मानकर उक्त स्वभावात्मा को तुम अपने अनुभव पर तौलकर अभिमान का त्याग करते हुए शान्ति को प्राप्त होओ ।७।

३७. भगीरथ की कथा

इति राजमुखाच्छ्रुत्वा वेतालः शान्तिमाययौ ।
भावितात्मतया तत्र विचारोचितया धिया ।१

उपशान्तमना भूत्वा मत्वैकान्तमनिन्दितम्।
बभूवाऽविलध्यानी विस्मृत्य विषमां क्षुधाम् ।२
एतद्राम मयोक्तं ते वेतालप्रश्नजालकम्
एवं क्रमेण चिदणौ तेनेदं सस्थितं जगत् ।३
स्थिरंबुद्धिसंमूढो यथाप्राप्तानुवर्तिनः ।
राज्ञोभगीरथस्येव दुःसाध्यमपि सिद्धयति ।४
यथा चित्तचमत्कृत्या राज्ञो गंगावतारणम् ।
भगीरथस्य सम्पन्नं तन्मे कथय भो प्रभो ।५
आसीद् भगीरथो नाम राजा परमधार्मिकः ।
भवः समुद्रवृन्तया मण्डलो तिलकोपमः ।६
किरन्नग्नि कणन्सारमभितः स्वप्रतापजम् ।
मध्याह्नसूर्यकान्ताग्निरिव ज्वलति योऽरिषु ।७

वशिष्ठ बोले—हे राम ! राजा द्वारा अपने प्रश्नों का समाधान पाकर बेताल शान्ति को प्राप्त हुआ, उसे विचारमयी बुद्धि से यह ज्ञात हो गया कि राजा तत्वज्ञ है ।१। तब वह मनोविकारों को त्याग कर निन्दित आत्मा के मनपूर्वक विषय-भूख को भूलता हुआ अविचल समाधि में लीन हो गया ।२। हे राम ! मैंने आपके प्रति वेताल के प्रश्न और समाधान का वर्णन किया है। राजा ने जिस क्रम से चिद्रूपी अणु में इस जगत् की विद्यमानता बताई है वह यथार्थ है ।३। आप भी अचंचल बुद्धि और अज्ञान-रहित रूप से अवस्थित हो जाइये। देह की यात्रा के लिए प्रारब्ध बश प्राप्त विषय से सन्तुष्ट एवं प्रयत्न में तत्पर पुरुष के लिये राजा भगीरथ के समान, दुसाध्य विषय भी साध्य हो जाते है ।४। श्रीराम ने पूछा—हे प्रभो ! जिस प्रकार राजा भगीरथ ने चित्त की पूर्णता के चमत्कार से जिस गङ्गावतरण रूपी दुःसाध्य कार्य को सिद्ध कर लिया, वह मेरे प्रति कहिए ।५। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! चारों ओर समुद्र से घिरी पृथ्वी पर एक परम धार्मिक राजा हुआ जिसका नाम भगीरथ था। वह अपनी सभा में तिलक के समान विभूषित था ।६। वह अपने प्रताप रूपी रश्मियों की घोर वर्षा करता हुआ,

सूर्यकान्त मणि जैसे मध्याह्न में तृणादि को जलाने वाली हो जाती है, वैसे ही अपने शत्रुओं को प्रज्वलित करता रहता था ।७।

एकान्ते चिन्तयामास मही पतिरसावपि ।
जगद्यात्रामिमां नित्यमसमञ्जसमाकुलम् ।८
पुनर्दिन: पुन: श्यामा दानादानशतं पुन: ।
तदेव भुक्तविरसं लक्ष्यते कर्म कुर्वताम् ।९
अथैकदोद्विग्नमना: कदाचित्त्रतलं गुरुम् ।
एकान्ते संसृतेर्भीत: समपृच्छद्भगीरथ: ।१०
अन्त: शून्यासु सुचिर भ्रमत्संसारवृत्तिषु ।
अरण्यानीषु चैतासु भृशं खिन्ना वयं विभो ।११
जरामरणमोहादिरूपाणां भवकारिणाम् ।
भगवन् सर्वदु:खाना कथमन्त: प्रजायते ।१२
चिरसाम्यात्मनोत्थेन निर्विभागविलासिना ।
राजन् ज्ञैयाववबोधन पूर्णेन भरितात्मन: ।१३
क्षीयन्ते सर्वदु:खानि त्रुट्यन्ति ग्रन्थयोऽभित: ।
संशया समतां यान्ति सर्वकर्माणि चाऽनघ ।१४

वह राजा जब कभी एकान्त चिन्तन में लीन होता, तब अपनी विश्वयात्रा के विषय में नित्यप्रति इस प्रकार विचार किया करता था कि ।८। दिन और रात्रि की बार-बार प्राप्ति, दान देना और लेना तथा भुक्त अथवा रस-हीन कर्म जितने भी दृष्टिगोचर होते हैं । इनमें कोई भी ऐसा अद्‌भुत कर्म नहीं होता, जिसका फल श्रेय रूप से उपलब्ध हो सके ।९। इस प्रकार चिन्तन-रत एवं जगत् के भय से भीत होने के कारण उद्विग्न मन वाले राजा भगीरथ ने अपने गुरु त्रितल से प्रश्न किया ।१०। भगीरथ बोले—हे विभो ! संसार में भ्रमते हुये प्राणियों के नि:सार रागद्वेष आदि आदि से युक्त व्यवहारों और उनके फलस्वरूप स्वर्ग—नरकादि सुख-दु:ख में पड़कर हम सब अत्यन्त खेद को प्राप्त हो रहे हैं ।११। हे भगवान् ! भवजाल में फँसाने वाले जरा मरण मोहादि रूपी इन घोर दु:खों का अन्त किस प्रकार हो सकता है ? ।१२। त्रिसल

बोले—हे राजन् ! हे अनघ ! श्रवण-मनन आदि प्रयत्नों से चिरकाल में विक्षेप और वैषम्य-रहित समाधि के द्वारा तथा ब्रह्मा का वृत्ति से आविर्भाव को प्राप्त स्फुरण वाले प्रत्येक तत्व से ज्ञान से सभी दुःखों का नाश हो जाता है। जब सब ओर की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं तब संशय और सभी कर्म समत्व को प्राप्त हो जाते हैं।१३—१४।

शरीरेऽस्मिश्चिरारूढौ गिरौ तरूरिव स्वके।
अहंभावो महाभाग वद मे त्यज्यतेकथम्।१५
पौरुषेण प्रयत्येन त्यक्त्वा भोगौघभावनाम्।
गत्वा विकसतां सत्तामहङ्कारो विलीयते।१६
यन्त्रणापञ्जरं यावद्भग्नं लज्जादि नाऽखिलम्।
अकिञ्चन त्वमशषेण स्फुटा तावदहंङ्कृतिः।१७
सर्वमेतद्धिया त्यक्त्वा यदि तिष्ठसि निश्चलः।
तदहङ्कारविलये त्वमेव परम् पद्म।१८
शान्ताशेषविशेषणो विगतमीः संत्यक्तसर्वेषणो
गत्वा नूनमकिञ्चनत्वमरिषु त्यक्तवा समग्रांश्रियम्।
शान्ताहंकृतिरस्तदेहकलनस्तेष्वेव भिक्षामटन्।
मामप्युज्झितवानलँ यदि भवस्युच्चैस्त्वमुच्चैरसि।१९

राजा भगीरथ ने कहा—हे महाभाग ! पर्वत पर दृढ़ता से खड़े हुए वृक्ष के समान अपने देह के प्रति दीर्घकाल से सुदृढ़ हुए अहंभाव का त्याग करने में मैं किस प्रकार समर्थ हो सकता हूँ, यह मेरे प्रति कहिए।५। त्रितल ने कहा—ज्ञानाभ्यास रूपी पुरुष के द्वारा सांसारिक विविध विषयों की लालसा त्याग कर आत्मा का साक्षात्कार का प्रयत्न करता हुआ पुरुष अहंभाव को विलीन कर लेता है।१३। विविध प्रकार की निन्दा का भय, राज्य-परित्याग और भिक्षादि याचना की लज्जा एवं अहं आदि से निर्मित दुःख रूपी पिंजड़े को जब तक नष्ट भ्रष्टी नहीं कर देता, तब तक अहंकृति रूपिणी नदी बढ़ती हुई नृत्य करती रहती है।१७। यदि विचार पूर्वक तुम उन सबको छोड़कर सुदृढ़ हो जाओ तो अहंकार विलीन हो जायेगा और तुम स्वयं ही परमपद रूप हो जाओगे।१८। हे

राजन् ! यदि तुम्हारे राज—चिह्न तुमसे पृथक हो गए हैं और तुम लज्जा-भय से मुक्त हो गए हो, यदि तुम्हारी धनादान की लालसा समाप्त होकर अकिंचन भाव को प्राप्त हो गई है, यदि तुम शत्रुओं के प्रति भी द्वेष अहं से निवृत्त हो गये हो, यदि देहाभिमान से मुक्त होकर शत्रुओं में भी भिक्षाटन करने में तुम्हें संकोच नहीं है, और परिपूर्ण भाव को प्राप्त होने पर गुरु से प्रश्न करने के लिए तुम्हारी शंकाएं निःशेष, हो गई है तो समझ लो कि तुम सभी मुमुक्षजनों में सर्वोपरि ब्रह्मरूप एवं मुक्त ही हो, ऐसा होने पर भवजाल में पुनः पड़ने की सम्भावना नहीं रहती ।१६।

३८. भूतल पर गङ्गावतरण

अथ तस्य गुरोर्वक्त्रादित्याकर्ण्य भगीरथः ।
नमस्याहितकर्तव्यः स्वव्यापापरोऽभवत् ।१
ततः कतिपयेष्वेव वासरेषु गतेषु सः ।
अग्निष्टोमतखं चक्रे सर्वत्यागैकसिद्धये ।२
गोभूम्यश्वहिरण्यादि ददौ धनमशेषतः ।
द्विजेभ्यो निजबन्धुभ्यो गुण्यगुण्यविचारयन् ।३
दिवसत्रयमात्रेण सर्वमेव परित्यजन् ।
असुमात्रावशेषोऽसावासीद्राजा भगीरथ ।४:
अथ सर्वार्थरिक्तं तखिक्क्रतिपौरकम् ।
सीमान्तिने तृणमिव राज्यं स्वमरयेददौ ।५
आक्रान्ते द्विषतां राज्ये मुनिः सद्मनि मण्डले ।
अधोवासो निर्जगाम स्वमण्डलात् ।६
यत्र न ज्ञायते नाम्ना यत्र न ज्ञायते मुखात् ।
तत्राग मेष्वरण्येषु दूरेषूवास धैर्यवान् ।७

वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! गुरु मुख से यह उपदेश श्रवण कर राजा भगीरथ अपने मन में निश्चय पूर्वक कर्त्तव्य व्यापार में तत्पर हुए ।१। कुछ दिन व्यतीत होने पर सर्वस्व त्याग की सिद्धि के अर्थ भगीरथ ने अग्निष्टोम यज्ञ का आयोजन किया ।२। उन समय उस राजा ने गुणी

या अगुणी का विचार न करते हुए अपने बान्धवों और ब्राह्मणों को गौ पृथ्वी, अश्व तथा सुवर्ण आदि समस्त धन दान कर डाला ।३। केवल तीन दिन में ही उस राजा ने सब कुछ दान कर दिया, और अब उसके पास केवल प्राण ही शेष रह गया ।४। फिर सभी धनादि से रहित को तृण के समान दे डाला ।५। जब भागीरथ के राजभवन मण्डल तथा सम्पूर्ण राज्य पर शत्रु का अधिकार हो गया तब मननशील वह राजा कौपीन मात्र धारण कर अपने मण्डल से निकल पड़ा ।६। तब उस धैर्यवान राजा ने दूरस्थ बन की वार्ता में जाकर निवास किया जहाँ उसे देख कर भी लोग वह नहीं जानते थे कि यह कोई राजा है । उसे किसी के भी मुख से अपना नाम नहीं सुनाई पड़ता था ।७।

इत्यल्पेनैव कालेन प्रशान्तसकलैषणः ।
परमेण शमेनाऽसावाप विश्रान्तिमात्मनि ।८
अथैकदा पुरे श्रेष्ठे कस्मिश्चिन्मण्डलान्तरे ।
अनपत्यं नृपं मृत्युरहरन् मत्स्य इवाऽमिषम् ।९
तत्र प्रकृतयः खिन्ना नष्टदेशक्रमा नृपम् ।
अन्विष्यन्ति स्म संयुक्तं गुणलक्ष्म्या विशालया ।१०
तं भगीरथमासाद्य स्थिरं भिक्षाचरं मुनिम् ।
परिज्ञाय समानीय सैन्ये चक्रुर्महीपतिम् ।११
भगीरथो जगन्नाथो जयतीति जनारवैः ।
नोरन्ध्रतामुपाक्रं सुगिरीन्द्राणां महागुहाः ।१२
पातालतलनष्टां सागराकरकारिणाम् ।
पितामहानां गङ्गाम्बु शुश्रु वे तारणक्षमम् ।१३
तदा किल स्वर्गनदी वहतिस्म न भूतले ।
पितृणां मूलविख्योऽभूत्ते न गङ्गाजलाञ्जलिः ।१४

इस प्रकार वह राजा सभी एषणाओं से मुक्त होकर सब प्रकार के शमन को प्राप्त होकर आत्म-विश्रान्ति में मग्न रहने लगा ।८। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! एक दिन की बात है जब किसी अन्य मण्डल में

स्थित, एक नगर के पुत्र हीन राजा को मृत्यु ने इस प्रकार निगल लिया जिस प्रकार महामत्स्य किसी छोटे मत्स्य को, निगल ले ।६। अपने देश की पालन-शक्ति से हीन अमात्यजन किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में लगे जो राज-लक्ष्मी से युक्त एवं प्रजा-पालन में समर्थ दिखाई दे ।१०। वे अमात्यजन भिक्षा के आचरण में तत्पर मुनि भगीरथ के पास आये और उन्हें प्रजापालन के सभी गुणों से युक्त देखकर सेना के शिविर में ले आये और उन्हें राजा बना दिया ।११। जगदीश्वर भगीरथ की जय हो, इस प्रकार प्रजा-कण्ठों से निकले हुए जय घोषों से बृहद् पर्वतों की गुफाएँ भी व्याप्त हो गयीं ।१२। तब उस राजा ने जन परम्परा द्वारा सुना कि अपने अश्व को खोजते हुए पृथ्वी को खोद कर समुद्र के समान आकार को बनाने के स्वभाव वाले एवं महर्षि कपिल के घोर क्रोधानल से पाताल तल में भस्मीभूत होने वाले सागर पुत्रों—अपने पितामहों—का उद्धार करने में गंगा—स्नान और जलांजलि देना ही एक मात्र उपाय है ।१३। उस समय गंगाजी पृथ्वी पर नहीं बहती थीं इसलिए भगीरथ द्वारा ही पितरों को गंगाजल की अञ्जलि देना विख्यात हो गया ।१४।

भगीरथेन च महीमवतारयितुं दिवः ।
गगां गृहीतो नियमस्ततः प्रभृति भूभृता ।१५
ततो राज्यं परित्यज्य मन्त्रिणां भूपतिः शमी ।
तपसे कार्यकार्येहो जगाम विजनं वनम् ।१६
तत्र वर्षसहस्रैश्च समाराध्य पुनः पुनः ।
ब्रह्माणं शङ्करं ह्नुं भुवि गंगामयोजयत् ।१७
ततः प्रभृत्यमलतरंगभंगिनो
जगत्पतेः शशिविभृदंगसगिनी ।
नभस्तलान्निपतति गां त्रिमार्गगा
महात्मनामिव वहुपुण्यसन्ततिः ।१८

स्फुरत्तरंगभाङ्गनी स्वफेनपुञ्जहासिनी
प्रसन्नपुण्यमञ्जरीयुतेव धर्मसन्ततिः
भगीरथे महीपतौ यशः प्रसारवीथिका
तदा हि सा त्रिमार्गगा महीतले बभूव ह ।१९

उक्त जनश्रुति को सुनते ही मुनि महाराज भागीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाने का संकल्प कर नियम धारण किया ।१५। फिर वह अपने संकल्प के अनुसार कठोर से कठोर उपाय में प्रयत्नशील हुए तथा मन्त्रियों को राज्य-भार सौंपकर तप करने के लिए निर्जन वन का आश्रय लिया ।१६। उस निर्जन वन में उन्होंने एक सहस्र वर्ष तक ब्रह्मा, शिव और जह्नु का बारम्बार आराधन किया और गङ्गाजी को भूतल पर उतारा ।१७। तब से यह पुण्यजल वाली त्रिपथगा अपनी स्वच्छ तरंगों में चन्द्र-शेखर शिव के शीश को सुशोभित करती हैं। यह पुण्य संतति स्वरूप गङ्गा नभमण्डल से धरती पर आती हैं।१८। स्फुरित तरंगों से विभूषित स्व फेनपुंजों के कारण हँसती-सी प्रतीत होती, प्रसन्न, पुष्पमञ्जरियों से समन्वित, धर्म की सन्तति स्वरूप यह त्रिपथगा गङ्गा तभी से इस भूतल पर राजा भगीरथ के लिए समुद्र तक उनके यश का प्रसार करने वाली एक वीथिका स्वरूप हो गई है ।१९।

३९—चूडाला का आख्यान

एतामबष्टभ्य दृशं भगीरथधिया धृताम् ।
समः स्वस्थो यथाप्राप्तं कार्यमाहर शान्तधीः ।१
इदं पूर्वं परित्यज्य क्रोडीकृत्य मनः खगम् ।
शांतमात्मनि तिष्ठ त्वं शिखिध्वज इवाऽचलः ।२
कोऽसौ शिखिध्वजो नाम कथं वा लब्धवान् पदम् ।
एतन्मे कथय ब्रह्मन् भूयो बोधविवृद्धये ।३
द्वापरेऽभवतां पूर्वमिदानीं च भविष्यतः ।
तेनैव संनिवेशेन दम्पती स्निग्धतां गतौ ।४

यत्पूर्वमासीद्भगवंस्तदिदानीं तथैव हि।
भविष्यति किमकश्रं वै वद मे वदतां वर।५
जगन्निर्माणनियतेरस्या ब्रह्मादिसंविदः।
ईदृश्यवस्थितिर्नित्यमनिवार्यस्वभावजा।६
यदन्यद्बहुशो भूत्वा पुनर्भवति भुरिशः।
अभूत्वैव भवत्यन्यः पुनश्च न भवत्यलम्।
अन्यत्श्रावसनिशेशाढ्य सादृश्येन विवल्गति।७

वसिष्ठजी बोले—हे राम! राजा भगीरथ ने जिस प्रकार की विचारमयी बुद्धि धारण की थी, आप भी वैसी ही दृष्टि के अवलम्बन पूर्वक शान्त एवं स्वस्थ बुद्धि वाले होकर कार्य निर्वाह में लगे रहिये।१। प्रथम अपने वैभव का त्याग और मन रूपी पक्षी का निरोध कीजिये तथा राजा शिखिध्वज के समान शान्ति पूर्वक स्व-स्वरूप में अवस्थित रहिये।२। राम बोले—हे ब्रह्मन्! यह शिखिध्वज कौन हुआ है? उसे परमपद की प्राप्ति किस प्रकार से हुई? मेरे ज्ञान की वृद्धि के लिये आप उसका चरित्र मेरे प्रति वर्णन कीजिये।३। वसिष्ठ बोले—द्वापर के पूर्व कल्प में एक पति-पत्नी युगल हुये थे। अब इस अट्ठाईसवी चतुर्युगी के पूर्व द्वापर में उसी प्रकार का परस्पर परम स्नेह रखने वाला एक युगल उत्पन्न होगा।४। राम ने कहा—जो पहले जिस रूप का था वह पुनः उसी रूप का कैसे होगा? हे कहने वालों में श्रेष्ठ! आप उसके रूप की सादृश्यता कारण मुझसे कहिये।५। वसिष्ठजी बोले—इस विश्व के रचने में ब्रह्मादि की जो निमित्त रूप सत्यसंकल्परूपा शक्ति है उसकी अनिवार्य स्वभावजनित ऐसी ही निरन्तर स्थिति है यानी नियति का अनिवार्य स्वभाव ही उनके सादृश्य में कारण है।६। क्योंकि आम के पेड़ में जैसे प्रथम बार अनेक फल उत्पन्न होते हैं कालान्तर में उत्पन्न होने वाले भी वैसे ही उसी आम के कन्धे पर जो अभूतपूर्व वट उत्पन्न होता है, वह काट दिये जाने पर नहीं होता।७।

सदृशा विषमाश्चैव यथा सरसि वीचयः।
ता एवान्याश्च दृश्यन्ते व्यवस्थाः संसृतेस्तथा।८

तस्माद्राजेव भूयोऽपि वक्ष्यमाणकथेश्वरः ।
भविष्यति महातेजास्तद्वृत्तान्तमिमं शृणु ।९
द्वापरे पूर्वमभवदतीते सप्तमे मनौ ।
चतुर्युगे चतुर्थे तु सर्गेऽस्मिन्कुरुणां कुले ।१०
जम्बुद्वीपे प्रसिद्धस्य विन्ध्यस्याऽदूरसंस्थिते ।
मालवानां पुरे श्रीमाञ्चिखिध्वज इतीश्वरः ।११
धैर्यौदार्यदयायुक्तः क्षमाशमदमान्वितः ।
शूरः शुभसमाचारो मौनी गुणगुणाकरः ।१२
आहर्ता सर्वयज्ञानां जेता सर्वधनुष्मताम् ।
कर्ता सकलकार्याणां भर्ता पूर्ववपुर्भुवः ।१३
देवाऽसौ माननाशून्यः स्त्रैणं तृणवदस्पृशन् ।
पितरि स्वर्गमापन्ने बाल एवोत्तमौजसा ।१४
कृत्वा षोडशवर्षाणि स्वयं दिग्विजयं वशी ।
नूनं साम्राज्यसम्पत्या भूमण्डलमयोयित् ।१५

इस प्रकार जैसे सरोवर में तरंगों के समान या असमान पूर्वक जैसी उठती हैं वैसी ही शिखिध्वज आदि की जगत् में स्थिति है ।८। अतः पहले राजा शिखिध्वज के समान महातेजस्वी नरेश फिर भी होता है, कथाञ्चामक उस राजा का वृत्तान्त सुनो ।९। विगत काल में सातवें, मन्वन्तर की चौथी चतुर्युगी के द्वापर युग में, इस सृष्टि के कुरुवंश में शिखिध्वज नामक वह राजा हुआ ।१०। वह भूतल पर जम्बूद्वीप नाम से विख्यात विंध्य पर्वत के निकटस्थ मालवदेश की उज्जैन नामक नगरी में शिखिध्वज नाम से प्रसिद्ध हुआ । वह सम्पूर्ण देश का नियामक था ।११। वह धैर्य, उदारता, दया आदि धर्मों से समन्वित था । क्षमा, शम, दम, वीरता तथा शुभ कर्म के अनुष्ठान में रत रहता था । आत्म श्लाघा आदि दोष उसमें नहीं थे और सभी गुण उसमें विद्यमान थे ।१२। वह यज्ञानुष्ठानों में सदा लगा रहता था । बड़े-बड़े धनुर्धारियों का उसने दर्प खण्डित कर दिया था । वापी कूप तडाग आदि जनोपयोगी अनेक शुभ कार्यों का निर्माण करता हुआ पृथ्वी के पालन में रत

रहता था ।१३। उसके पिता बाल्यकाल में ही स्वर्गगामी हो गये । उसके पश्चात् ही उसने अपने भुजबल से सोलह वर्ष तक जितेन्द्रिय रह कर सम्पूर्ण पृथ्वी की दिग्विजय करके अपने साम्राज्य रूप में कर लिया । ।१४—१५।

कान्तां प्रति बभूवाऽस्य वसच्चेत: समुत्सुकम् ।
क्षीणं कुसुमसम्भारसौगन्ध्यमधुरासवैः ।१६
एतन्मन्ये विदुर्धन्या मन्त्रिणो नृपनिश्चयम् ।
इङ्गिताकारवेदित्वमेव मन्त्रिपदं परम् ।१७
अथ तस्य विवाहाय मन्त्रिवर्गो व्यचारयन् ।
सुराष्ट्राधिपतेः कन्यां ययाचे यौवनान्विताम् ।१८
नवयौवनसम्पन्नां भार्यात्वेविधिनोत्तमाम् ।
उपयेमे स तामात्मसदृशीं प्रतिमामिव ।१९
चूडालेति भुवि ख्याता नाम्ना नृपतिसुन्दरी ।
सा तु भर्तारमासात्त रेजे फुल्लेव पद्मिनी ।२०
नीलनीरजनेत्रान्तां चूडालां स शिखिध्वजः ।
स्नेहाद्विकासयामास सूर्यो देवो यथाऽब्जिनीम् ।२१

इसके पश्चात् उसका चित्त एक कामिनी में अनुरक्त होने लगा बसन्त युक्त वन के समान पुष्पों के मधुर आसवों से मत्त हुआ उसका मन अन्य किसी विषय में नहीं लगता । राजा का यह अभिप्राय चतुर अमात्यों से छिप नहीं सका, क्योंकि सफल मन्त्रीपद उसी का है जो चेष्टा और आकृति से सब बात जान ले ।१६-१७। तब उन मन्त्रियों ने राजा के विवाह का विचार किया और सौराष्ट्र-नरेश से यौवन-सम्पन्न कन्या माँगी ।१८। तब उस राजा शिखिध्वज ने नवीन आयु वाली, सुन्दर प्रतिमा के समान अपने अनुरूप कन्या को विधि पूर्वक अपनी भार्या बना लिया ।१९। वह सुन्दरी भूतल पर चूडाला नाम से प्रसिद्ध थी । अपने अनुरूप पति पाकर वह विकसित कमलिनी के समान सुशोभित हो रही थी ।२०। राजा शिखिध्वज अपनी नीलपद्म जैसे सुन्दर नयन वाली

चूडाला को अपने स्नेह से उसी प्रकार प्रसन्नता रखता था, जैसे भास्कर कमलनी को विकसित करते हुये प्रसन्न रखते हैं ।२१।

नित्यमेवाऽवियुक्तत्वात्प्रियत्वाच्चेष्टितस्य च ।
मिथा कलकलापस्य कोबदौ तौ बभुवतुः ।२२
नृत्यवाद्यादि यावच्च चूडालावदनादसौ ।
अशिक्षत बभूवाऽय कलानामतिकोविदः ।२३
कलाकलापसम्पन्नौ लसद्रसरसायनौ ।
शीतलस्निधमुग्धाङ्गौ शशाङ्कौ द्वाविवोदितौ ।२४
एवं बहूनि बर्षाणि मिथुनं निर्भरस्पृहम् ।
रेमे यौवनलीलाभिरमन्दाभिर्दिनेदिने ।२५
अथ यातेषु बहुषु वर्षेष्वावृत्तिशालिषु ।
शनैर्गलिततारुण्ये भिन्नकुम्भादिवाऽम्भसि ।२६
तरंगनिकराराभभंगुरव्यवहारिणि ।
पातः पक्वफलस्येव मरणँ दुर्निवारणम् ।२७
हिमाशानिरिवाऽम्भोजे जरा निपतनोन्मुखी ।
आयुर्गलत्यविरतँ जलं करतलादिव ।२८

राजा शिखिध्वज और रानी चूडाला दोनों ही परस्पर मिल गये और एक दूसरे की चेष्टाओं से सुख मानने लगे । समार्थी होने के कारण दोनों ही परस्पर शिक्षा ग्रहण करते हुए कलाओं से सम्पन्न हो गये ।२२। इस प्रकार राजा शिखिध्वज ने नृत्य, वाद्यादि कला कौशल की चूडाला से शिक्षा ग्रहण की और उन विषयों में पारंगत हो गया ।२३। वे संपूर्ण कलाओं से परिपूर्ण हो गये थे । शृङ्गारादि नवरस रूपी रसायनों से विभूषित हो गये थे । वे अपने शीतल स्निग्ध और मोहक अंगों के कारण दो नवोदित चन्द्रमाओं के समान प्रतीत होते थे ।२४। इस प्रकार बहुत वर्षों तक दृढ़ प्रेम में निमग्न उन दोनों ने प्रतिदिन होने वाली यौवन-लीलाओं में अत्यन्त रमण किया ।२५। फिर एक-एक करके बहुत से वर्ष व्यतीत होते चले गये । अकस्मात् अपनी युवास्था को फूटते हुये घड़े के

देखकर एक दिन वे दोनों विचार करने लगे ।२६। तरङ्गों के समान अति चंचल आकार वाले क्षण भंगुर देह से आचरण करते हुये जीव का, पके हुये फल के गिरने के समान अपने शरीर से वियोग होना किसी प्रकार भी रोका नहीं जा सकता ।२७। पद्म पर हिम रूपी वज्र के समान यह जरावस्था इस शरीर पर गिरने के लिये तत्पर हो रही है । जैसे कर-तल से जल गिरता जाता है, वैसे ही यह आयु निरन्तर गलती जा रही है ।२८।

इति निर्णीय युग्मं तत्सं सारव्याधिभेषजम् ।
चिरं विचारयामास शास्त्रमध्यात्मसम्मतम् ।२९
तच्चित्तौ तदगतप्राणौ तन्निष्ठौ तद्विदाश्रयौ ।
तदा तदर्चनपरौ तदोहौं तौ विरेजतुः ।३०
इति सञ्चिन्त्य चूडाला केनैषा चित्प्रचेतनी ।
इति सञ्चिन्तयामास चिरायेत्थं व्यबुद्धयत ।३१
अहो नु चिरकालेन ज्ञातं ज्ञेयमानयम् ।
यद्धै विज्ञेयतां कृत्वा न कश्चिद्धीयते पुनः ।३२
इत्थं विचारणपरा परप्रबोधा
द्बुद्ध्व अयथास्थितमिदं परमात्मतन्त्वम् ।
स शान्तरागभयमोह तमोविलासा ।३३

उन दोनों ने इस प्रकार विचार किया और निर्णय किया कि भव रूपी व्याधी की सर्वोत्तम औषधि अध्यात्म शास्त्र है तब वे बहुत समय तक इसी पर बिचार करने लगे ।२९। तब उन्होंने अपना चित्त अध्यात्म में लगाया । अब उनके प्राण उसी में रमण करते थे वे उसके प्रति निष्ठावान हो गये । उन्होंने अध्यात्मास्त्र के ज्ञान का आश्रय लेकर उसका पूजन करने लगे । अध्यात्म शास्त्र में मन लगाने से अब दोनों ही इस जगत् से बिरक्त हो गये ।३०। इस प्रकार आध्यात्मिक चिन्तन करती हुई चूडाला ने सोचा कि मूल विद्या के आबरण से हीन चिति दृश्य स्बप्न को छोड़कर किस उपाय में प्रबोध को प्राप्त करे । तदन्तर दीर्घ-

काल तक चिन्तन करके उसने आत्मतत्व को जान लिया ।३१। वह अत्यन्त आनन्दित होकर कहने लगी कि 'अहा' इतने लम्बे समय के पश्चात् मुझे सर्व उपद्रव रहित ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो पाया है। इस ज्ञान को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य अपने पुरुषार्थ से गिरता नहीं और उसके किसी भी इच्छित में बाधा नहीं आती। उसकी आत्म-ज्ञान में निमग्न होने के कारण उसे आनन्दघन ब्रह्म रूपत्व की प्राप्ति हो जाती है ।३२। इस प्रकार आत्म विचार में तत्पर वह चूडाला मोह निद्रा के अत्यन्त नष्ट होने से परमात्म तत्व का भले प्रकार ज्ञान पाकर राग, भय मोहादि अज्ञान विषयों के शमन पर शरत्कालीन लेखा के समान शान्त हो गई ।३३।

४०—चूडाला द्वारा आत्मज्ञान वर्णन

दिनानुदिनमित्येषा त्वात्मारामतया तथा ।
नित्यमन्तर्मुखतया बभूव प्रकृतिस्थिता ।१
अथ तामनवद्याङ्गीं कदाचित् स शिखिध्वजः ।
अपूर्वशोभामालोक्य स्मयमान उवाच ह ।२
भूयो यौवनयुक्तेव मण्डितेव पुनः पुनः ।
अधिकं राजसे तन्वि जगद्राजवती यथा ।३
अभोगकृपणं शान्तमूर्जितं समतां गतम् ।
गम्भीरं च प्रशान्तं च चेतः पश्यामि ते प्रिये ।४
न केनचिन्महाभागे विभवानन्दवस्तुना ।
चेतस्तव तुलामेति स्रुक्षीराब्धिसुन्दरम् ।५
किं त्वया पीतममृतं प्रप्तंसाम्राज्यमेव वा ।
अमृत्युमेव सम्प्राप्ता प्रयोगायोगयुक्तितः ।६
राज्याच्चिन्तामणेर्वापि त्रैलोक्याद्वात्वयाऽधिकम् ।
अप्राप्तं किमनुप्रप्तं नीलोत्पलविलोचने ।७

वसिष्ठजी बोले—वह चूडाला दिनों—दिन अभ्यास करने से अपने स्वाभाविक रूप में स्थित हो गई क्योंकि वह अन्तर्मुख वृत्ति और स्व

आत्माराम से समन्वित हो चुकी थी ।१। इसके पश्चात् एक दिन उस पवित्र अंग वाली, अपूर्व शोभा से युक्त चूडाला को विस्मय पूर्वक देखते हुये राजा शिखिध्वज बोला ।२। राजा ने कहा हे तन्वंगि ! इस समय तुम पुनः यौवन एवं श्रेष्ठ भूषणों से विभूषित-सी अधिक शोभा को प्राप्त हो रही हो जैसे पृथ्वी पूर्ण चन्द्र को प्राप्त कर अत्यन्त शोभित होती है ।३। हे प्रिये ! तुम्हारे भोग की कृपणता से रहित, शान्त विवेक से बलिष्ठ समता को प्राप्त गम्भीर और चन्चलता रहित तुम्हारा चिन्तन मैं देख रहा हूँ ।४। हे महाभागे ! मरु प्रदेश और सागर के समान तुम्हारे बृहत सौंदर्य को किसी प्रकार के ऐश्वर्यानन्दन की उपमा भी तो नहीं दी जा सकती ।५। हे सुन्दरी ! तुमने कहीं अमृत का पान तो नहीं कर लिया है ? अथवा किसी साम्राज्य को तो नहीं पा गई हो ? या रसायन प्रयोग तथा मन्त्रादि की सिद्धि तो तुम्हें नहीं हो गई हैं ? जिनके कारण तुम्हें अमृत्यु की प्राप्ति हो गई हो ।६। हे नीलोत्पल जैसे नयन वाली ! कहीं तुम्हें कोई अलभ्य राज्य, चिन्तामणि अथवा त्रिलोकी से उच्च कोई अप्राप्य वस्तु तो प्राप्त नहीं हो गई ? ।७।

नाकिञ्चिदिकाममिदं त्यक्त्वाऽहमाता ।
न किञ्चदाकारं तेनाऽस्मि श्रीमती स्थिता ।८
भोगैरधुक्तैस्तुष्यामि भक्तैरिवसद्द्रगैः ।
न हृष्यामि न कुप्यामि तेनाऽस्मि श्रीमती स्थिता ।९
एकैवाऽऽकाशसंकाशे केवले हृदये रमे ।
न रमे राजलीलासु तेनाऽस्मि श्रीमती स्थिता ।१०
जगतां प्रभुरेवाऽस्मि न किञ्चिन्मात्ररूपिणी ।
इत्यात्मान्येव तुष्यामि तेनाऽहं श्रीमती स्थिता ।११
न सुखँ प्रार्थये नाऽर्थं नाऽनर्थं नेतरां स्थितिम् ।
यथाप्राप्तेन हृष्यामि तेनाऽहं श्रीमती स्थिता ।१२
तनुविद्वेषरागाभिः प्रज्ञाभिः शास्त्रदृष्टिभिः ।
रमे सह वयस्याभिस्तेनाऽहं श्रीमती स्थिता ।१३

पश्यामि यन्नयनरश्मिभिरिन्द्रियैर्वा
चित्तेन चेह हि तदंग न किञ्चिदेव ।
पश्यामि तद्विरहितं तु न किञ्चदन्तः
पश्यामि सम्यगिति नाथ चिरोदयाऽस्मि ।१४

चूडाला बोली—हे स्वामिन् ! मैंने मूर्खों में प्रशस्ति प्राप्त देहात्म-रूपता को छोड़कर तत्वज्ञान से अशेष और नाम रूप, आकार आदि से शून्य परमब्रह्म मात्र को पा लिया है। मैने मन्त्र, रसायन आदि तुच्छ साधनों वाली सिद्धि को पाने का प्रयत्न कभी नहीं किया, इसीलिये मैं दिव्य से भी दिव्य श्री से सम्पन्न हो गई हूँ ।८। भुक्त भोगों के समान दूरस्थ अभुक्त भोगों से भी मुझे असन्तोष नहीं है। मैं न क्रोध करती हूँ न हर्षित होती हूँ इसीलिए श्री से सम्पन्न हो गई हूँ ।९। मैं आकाश के समान निर्मल उस अद्वितीय, एकमात्र ब्रह्म में ही अकेली रमण करती हूँ। राजलीलाओं में रमण न करने के कारण अब मैं श्रीमती होकर अवस्थित हूँ ।१०। मैं सब भुवनों की नियामिका हूँ, अपने को तुच्छ विषयों से परे विचार कर अपनी आत्मा में ही संतुष्ट रहती हूँ। इसी लिए श्रीमती होकर अवस्थित हूँ ।११। मैं सुख या अर्थ की कामना नहीं करती और न अनर्थ का परिहार ही करती हूँ। मैं किसी अन्य स्थिति की भी इच्छा नहीं करती। प्रारब्ध वश जो मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहती हूँ, इसीलिए श्रीमती रूप से अवस्थित हूँ ।१२। राग-द्वेष का क्षय करने वाली आत्मबुद्धि और शास्त्र-दृष्टि यह दोनों मेरी सखियाँ हैं। इन्हीं के साथ मैं क्रीड़ा रत रहती हूँ, इसीलिये श्रीमती होकर अवस्थित हूँ ।१३। हे नाथ ! मैं इस जगत् में नेत्र-रश्मियों, अन्य इन्द्रियों या चित्त से जो कुछ अवलोकन करती हूँ, वह कभी असत्य नहीं होता। उन दृश्य पदार्थों से भिन्न जो प्रपञ्च रहित वस्तु हैं उसे मैं अपने अन्तर से देखती हूँ। इस प्रकार ही बाह्याभ्यन्तर में अबाधित वस्तु रूप को निरन्तर देखते रहने से मैं परम अभ्युदय रूपी अपूर्व शोभा को प्राप्त हो गई हूँ ।१४।

४१—प्राणायाम द्वारा श्रेष्ठ सिद्धि

एवमात्मनि विश्रान्ता वदतीं तां वराननाम्।
अबुध्द्वा तद्गिरामर्थं विहस्योवाच भूपतिः ।१
असम्बद्धप्रलापाऽसि बालाऽसि वरवर्णिनि।
रमसे राजलीलाभी रमस्वाऽवनिपात्मजे ।२
तस्माद्बालाऽसि मुग्धाऽसि चपलाऽसि विलासिन।
नानालापविलासेन क्रीडामि क्रीड सुन्दरि ।३
प्रविहस्याऽट्टहासेन शिखिध्वज इति प्रियाम्।
मध्याह्ने स्नातुमुत्थाय निर्जगामाङ्गनागृहात् ।४
चष्टं नाऽऽत्मनि विश्रान्तो मद्वचांसि न बुद्धवान्।
राजेति खिन्ना चूडाला स्वव्यापारपराऽभवत् ।५
तदातपांग तत्राऽथ तादृगाशययोस्तयोः।
ताभिः पार्थिवलोलाभिः कालो बहुतिथो ययौ ।६
कस्य स्पन्दविलासस्य घनाभ्यासस्य मे वद।
ब्रह्मन् खगमनाद्ये तत्पलयत्नकशालिनः ।७
आत्मज्ञो वाऽप्यनात्मज्ञः सिद्ध्यर्थं लीलायाऽथवा।
कथं संसाधयत्येतद्यथा तद्वदमे प्रभो ।८

वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! उस प्रकार अपनी सौन्दर्य वृद्धि का कारण बताती हुई चूडाला के वचनों का भाव न समझ कर राजा शिखिध्वज कहने लगा ।१। हे नृपात्मजे, हे वरवर्णिनी ! अभी तो तुम युवती ही हो, फिर यह असम्बद्ध प्रलाप क्यों करती हो ? जैसे अब तक राजलीलाओं में रमण करती रही हो, वैसे ही अब भी करो ।२। हे विलासनी ! तुम बाला मुग्धा और चपल हो, अतः विभिन्न प्रकार के जिस विलास आलाप में मैं क्रीड़ा करता हूँ उस प्रकार तुम भी क्रीड़ा करती रहो ।३। इस प्रकार अट्टाहास पूर्वक वचन कहता हुआ राजा शिखध्वज मध्याह्न कालीन स्नान के लिये उठकर चूडाला के भवन से चला गया ।४। चूडाला खिन्न मन से सोचने लगी कि अभी तक राजा

अपने स्वरूप में अवस्थित नहीं हुए हैं, मेरे कथन को ठीक प्रकार से नहीं समझ सके। इस प्रकार विचार करती हुई वह अपने कार्य में लग गई।५। हे राम ! इस प्रकार उन दोनों का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होते हुए भी पहले के समान ही बहुत सा समय पार्थिव लीलाओं में व्यतीत हो गया।६। श्री राम बोले—हे ब्रह्मन् ! यह नभ मण्डल में गमन करने प्रभृति जो सिद्धियाँ हैं, वे घनाभ्यास रूपी जिस प्रयत्नमय स्पन्द विलाप के फल हैं, वह मुझे बताइये।७। हे प्रभो ! अनात्मज्ञ पुरुष निज सिद्धि के निमित्त और आत्मज्ञ लीलामात्र के लिये इन सिद्धियों को किस क्रम से प्राप्त करते हैं उसे यथावत् मुझसे कहिये।८।

त्रिविधं सम्भवत्यङ्ग साध्यं वस्त्विति सर्वतः।
उपादेयं च हेयं च तथोपेक्ष्यं च राघव।९
आत्मभूतं प्रयत्नेन उपेदेयं च साध्यते।
हेयं सन्त्यज्यते ज्ञात्वा उतेक्ष्य मध्यमेतयो.।१०
यद्यदाह्लादनकरमादेयं यच्च सन्मते।
तद्विरुद्धमनादेयमुपेक्ष्यं मध्यमं विदुः।११
सन्मतेर्विदुषो ज्ञस्य सर्वमात्ममयं यदा।
त्रय एते तदा पक्षाः सम्भवन्ति न केचन।१२
ज्ञस्योपेक्षात्मकं नाम मूढ़स्याऽऽदेयतां गमम्।
हेयं स्फरविरागस्य शृणु सिद्धिक्रमः कथम्।१३
देशकालक्रियाद्रव्यसाधनाः सर्वसिद्धयः।
जीवमाह्लादयन्तीह वसन्त इव भूतलम्।१४
मध्ये चतुर्णामिवैषां क्रियाप्राधान्यकल्पना।
सिद्धयादिसाधने साधो तन्मयास्ते यतः क्रमाः।१५

वसिष्ठजी बोले—हे राघव ! संसार में साध्य वस्तु सर्वत्र तीन प्रकार की होती है—(१) उपादेय, (२) हेय और (३) उपेक्ष्य।९। अपने अनुकूल अर्थ का निष्पादन करते हैं और प्रतिकूल जानकर हेय अर्थ का त्याग किया जाता है। हेय और उपादेय दोनों के मध्य का अर्थ उपेक्ष्य होता है।१०। हे सन्मते ! साक्षात् या परम्परा से प्राप्त सुख

से अनुकूल जो वस्तु है, वह उपादेय है तथा सुख का विधातन करने वाली हेय होती है, तथा इन दोनों के मध्य की वस्तु उपेक्ष्य है, विद्व-ज्जन ऐसा ही करते हैं ।११। शुभमति वाले तत्वज्ञानी की दृष्टि में इस सब के आत्मरूप हो जाने पर तीनों में से कोई एक भी पक्ष विद्यमान नहीं रहता ।१२। एक ही वस्तु तीन रूप में दृष्टिगत होती है–ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में अपेक्षात्मक, अज्ञानी की दृष्टि में उपादेशात्मक और श्रेष्ठ वैरागी की दृष्टि में हेयात्मक हो जाती है। अब आकाश गमन सिद्धि का क्रम सुनो।१३। देश, काल क्रिया तथा द्रव्य से साध्य होने वाली सब प्रकार की सिद्धियाँ वसन्त द्वारा पृथ्वी को शोभित करने के समान ही जीवको मोहित कर लेती हैं ।१४। हे राम ! सिद्धि आदि साधन के चार हेतुओं में भी शैल आदि में अनुष्ठित योगादि क्रिया में उत्कर्ष कल्पित किया जाता है, क्योंकि सभी फलोत्कर्ष-क्रम क्रियाओं के उत्कर्ष के अनुरूप ही हो सकते हैं ।१५।

गुटिकाञ्जनखगादिक्रियाक्रमनिरूपणम् ।
तत्राऽसतां च दोषोऽत्र विस्तारः प्रकृताथहा ।१६
रत्नौषधितपोमन्त्रक्रियाक्रमनिरूपणम्
आस्तामेव किलैषोऽपि विस्तारः प्रकृतार्थहा ।१७
श्री शैले सिद्धदेशे च मेर्वादौ वा निवासतः ।
सिद्धिरित्यपि विस्तारः कृतार्थः प्रकृतार्थहा ।१८
तस्माच्छिखिध्वजकथाप्रसङ्गपतितामिमाम् ।
प्राणादिपवनाभ्यासक्रियां सिद्धिफलां शृणु १९
अन्तस्था हा खिलास्त्यक्त्वा साध्यार्थेतरवासनाः ।
गुदादिद्वारसङ्कोचान् स्थानकादिक्रियाक्रमैः ।२०

आकाश गमन के अनेक साधन सिद्ध गुटिका, सिद्ध अंजन, सिद्ध खड्ग आदि का क्रिया कर्म रूप से निरूपण किया गया है परन्तु इसके विस्तार पूर्वक कथन में अत्यन्त दोष है, क्योंकि इससे बहुत अनर्थ हो सकता है ।१६। इसी प्रकार रत्न, औषधि, तप, मन्त्र आदि के क्रिया, कर्म का निरूपण भी आत्म–तत्व का विधायक हो है, इसलिए प्रकृति में

उसका निरूपण अनुचित है ।१७। हे राम ! श्री शैल और मेरु पर्वत आदि सिद्ध देश में निवास करने पर भी सिद्धि हो जाती है। इसका भी विस्तार पूर्वक वर्णन करना आत्म चिन्तन में बाधक ही होगा ।१८। अतः हे राम ! राजा शिखिध्वज के कथा प्रसंग में उपलब्ध सिद्धि रूपी फल से समन्वित प्राणादि वायु के अभ्यास से जो सिद्धि होती है, उसे श्रवण करो ।१६। साध्य और साधन के हेतु अन्तर में स्थित सम्पूर्ण वासनाओं को छोड़कर गुदा आदि द्वारों के सकोच आदि क्रियाओं का अभ्यास करे ।२०।

भोजनासनशुद्धचा च साधुशास्त्रार्थभावनात् ।
स्वाचारत्तु सुजनासङ्गात् सर्वत्यागात् सुखासनात् ।२१
प्राणायामघनाभ्यासाद्राम कालेन केनचित् ।
कोपलोभादिसंत्यागाद्भोगत्यागांच्च सुव्रत ।२२
त्यागादाननिरोधेषु भृशं यान्ति विधेयताम् ।
प्राणाः प्रमुत्वात्तज्जस्य पुंसो भृत्या इवाऽखिलाः ।२३
राज्यादिमोक्षपर्यन्ताः समस्या एव सम्पदः ।
देहानिलविधेत्यवात् साध्याः सर्वस्य राधव ।२४

भोजन और आसन की शुद्धि पर ध्यान दे तथा साधु और शास्त्रों में भावना करे, अपने आचरण को ठीक रखने, श्रेष्ठजनों का संग करने सर्व त्यागने और सुख आसन का प्रयोग करने, क्रोध लोभ और भोगादि का परित्याग करते हुए प्राणायाम का दृढ़ अभ्यास करने से इस सिद्धि की उपलब्धि होती है ।२१-२२। त्याग और दान से तथा प्राण वायुओं के निरोध से प्राणों का स्वामी होने पर योगीजनों के प्राण इसी प्रकार वश में होते है जैसे भृत्यगण राजा के वश में हो जाते हैं।२३। हे रावण ! जब देह वायु के वश में हो जाता है अर्थात् देह के स्थित वायु पर नियन्त्रण हो जाने से राज्य और मोक्ष सभी ऐश्वर्य सरलता से साध्य हो जाते हैं ।२४।

४२—चूडाला की सिद्धि का उपाख्यान

अणिमादिगुणैश्वर्ययुक्ता सा नृपभामिनी ।
एवं बभूव चूडाला घनाभ्यासवती सती ।१
जगामाऽऽकाशमार्गेण विवेशाऽम्बुधिकोटरम् :
चचार वसुधापीठं गङ्गेवाऽमलशीतला ।२
क्षणमप्यगबा भर्तुर्वक्षसश्चेतसस्तथा ।
सर्वेषूयस्स राजयेषु लक्ष्मीरिव जगत्सु च ।३
आकाशमामिनी शयामा विद्युत्प्रारंभभूषणा ।
बभ्राम मेघमालेव गिरिमालमहीतले ।४
काष्ठं तृणोपलं भूतं खं वातमनलं जलम् ।
निर्विघ्नमविशत्सर्वं तन्तुर्मुक्ताफलं यथा ।५
तिर्यग्भूतपिचाशद्यैस्तथा नागामरासुरैः ।
विद्याधराप्सरःसिद्धैर्व्यवहार चकार सा ।६
यत्नेन तं च भर्तारमात्मज्ञानामृतं प्रति ।
बहुशो गोधयामास चूडाला न विवेद सः ।७

वशिष्ठजी बोले—हे राम ! वह नृप पत्नी चूडाला घनभ्यास से सम्पन्न होकर अणिमादि सिद्धियों से युक्त हो गई ।१। त्रितापों का क्षय होने से गङ्गाजी के समान शीतल एवं पवित्र हुई वह चूडाला कभी आकाश मार्ग में गमन करती और कभी सागर के कोठरो में प्रविष्ट हो जाती । इस प्रकार वह स्वेच्छा से सर्वत्र गमन करती रहती ।२। वह अपने स्वामी के वक्षःस्थल से कभी पृथक् नहीं होती तथा सम्पूर्ण राज्यों और लोकों में लक्ष्मी के सामन सुशोभित होती थी ।३। विद्युत् उन्मेषों के समान दमकते हुये भूषणों से विभूषित वह श्यामा गिरिमालाओं से समन्वित पृथ्वी पर श्यामा मेघमाला के विचरण करने के समान ही आकाश में विचरण करती थी ।४। वह काष्ठ तृण, पाषाण, भूत, नभ, मण्डल पवन, अग्नि और जल सभी में बाधा-रहित रूप से उसी प्रकार प्रवेश करती थी जिस प्रकार मुक्ताओं में सूत प्रविष्ट हो जाता है ।५।

पशु-पक्षी, भूत, पिशाच, नाग, देवता, राक्षस, विद्याधर अप्सरा और सिद्धों के साथ भी उसके सम्भाषण आदि व्यवहार होते थे।१६। उसने अत्यन्त यत्नपूर्वक अनेक बार ही अपने पति राजा शिखिध्वज को ज्ञान सुधा का पान कराया, परन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।७।

कलाविदग्धा मुग्धा च बालेयं गृहिणी मम।
इत्येवं केवलं राजा स चूडालां विवेद ताम्।८
एतावतापि कालेन तामेव गुणशालिनीम्।
बालो विद्यामिव नृपश्चूडालां न विवेद सः॥९
ततः शिखिध्वजो राजा तत्वज्ञानपदं विना।
आजगाम परं मोहं तमोन्धत्वमिवाऽप्रजः॥१०
रात्रिंदिवं महानेष शुष्यत्येव कृशानुना।
चिन्तया चिन्तयामस संसारव्याधिभेषजम्॥११
अथैकदैकान्तगतां चूडालामङ्कमागताम्।
इदं मधुरया वाचा समुवाच शिखिध्वजः॥१२
भुक्तं राज्यं चिरं कान्त भुक्ता विभवभूतयः।
अधुनाऽस्मि विरागेण युक्तो गच्छामि काननम्॥१३
अस्मिन्सन्मन्त्रे तन्वि न विघ्नं कर्तुमर्हसि।
भर्तुर्विघटवन्तीच्छां न स्वप्नेऽपि कुतस्त्रियः॥१३

वह राजा उसके विषय में केवल इतना ही समझता था कि वह कलाओं में विदग्धा एवं मुग्धा मेरी ही पत्नी ही है।८। वह इतने दीर्घ-काल में भी उस अणिमादि सिद्धि युक्ता चूडाला को अच्छे प्रकार जान नहीं पाया, उसी प्रकार जैसे वेदाध्यायन करता हुआ बालक वेद विद्या को सर्वगुणों से विभूषित नहीं जान पाता।९। हे राम! राजा शिखिध्वज तत्वज्ञान प्राप्ति के स्थान पर उसी प्रकार परम मोह में पड़ गया, जिस प्रकार सन्तान हीन पुरुष शोकादि में पड़कर अन्धत्व को प्राप्त हो जाता है।१०। तब वह राजा दिन रात चिन्ताग्नि में पड़ कर सूखने लगा और संसार व्याधि की औषधि की चिन्ता करने लगा

।११। तदनन्तर एक समय एकान्त में अवस्थित चूडाला से राजा शिखिध्वज मधुर शब्दों में इस प्रकार बोला ।१२। शिखिध्वज ने कहा—मैंने दीर्घकाल तक राज्योपभोग और ऐश्वर्यों का भोग किया है। अब मैं वैराग्य से परिपूर्ण होकर वन की ओर जाना चाहता हूँ।१३। हे प्रिये ! मेरे इस शुभ विचार में तुम किसी प्रकार से बाधक न बनो, क्योंकि कुलीन नारियाँ अपने स्वामी की इच्छा को नष्ट नहीं करती ।१४।

प्राप्तकाले कृतं कार्यं राजते नाथ नेतरत् ।
बसन्ते राजते पुष्पं फलं शरदि राजते ।१५
जराजरठदेहानां यक्तो वनसमाश्रयः ।
न यूनां त्वादृशामेव तेनैतन्मे न रोचते ।१६
अलमुत्पलपत्राक्षि विघ्नेनाऽभिमतस्य मे ।
विद्धि मां गतमेवेतो दूरमेकान्तकाननम् ।१७
इत्युक्त्वा दयितां राजा तामिन्दुवदनां वशी ।
उत्तस्थो स्नातुमखिलं दिनकार्यं चकार च ।१८
कृतसन्ध्यासमाचारः सस चूडालयेष्टया ।
सुष्वाप शयने भूयो मैनाक इव सागरे ।१९
अथाऽर्धरात्रिसमये देशे निःशब्दतां गते ।
घननिद्राशिलाकोशनिलीने सकले जने ।
उत्तस्थौ शयनाल्लीनवधूकार्धाञ्चलांशु कात् ।
सलक्ष्मीकानिलोलोर्मेर्हरिः क्षीरार्णवादिव ।२०
चौरक्रमार्थयामोति तत्रैवाऽनुचरव्रजम ।
योजयित्वा जगामाऽसौ पुरान्निर्गत्य पूर्णधीः ।२१

चूडाला बोली—हे नाथ ! समय आने पर ही कार्य की शोभा होती है। पुष्प की शोभा बसन्त में है और फल की शोभा शरद्काल में है। ।१५। बुढ़ापे से ठिठुरी हुई देह वालों के लिये ही वन का आश्रय लेना चाहिए आप जैसे युवकों को नहीं, इसलिये आपका विचार मुझे अच्छा नहीं लगता है ।१६। राजा बोला—हे कमल पत्र जैसे नेत्र वाली ! मेरे

इच्छित कार्य में बाधा न डालो। तुम मुझे दूरस्थ एकान्त वन में गया ही समझो ।१७। हे राम ! अपनी उस भार्या से ऐसा कह कर राजा शिखिध्वज ने स्नान करने के लिए उठ कर सभी दैनिक कार्यों को संपन्न किया ।१८। सन्ध्याकालीन सभी कार्यों का सम्पादन करने के पश्चात् वह अपनी प्रिया चूडाला के शयनागार में वैसे ही जा सोया, जैसे मैनाक पर्वत समुद्र में सो जाता है ।१९। फिर अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने पर जब सम्पूर्ण देश निस्तब्ध हो गया और लोग पाषाण निर्मित घरों में घोर निद्रा में निमग्न थे, राजा शिखिध्वज, जिसके पलंग के अर्द्ध बिछौने पर प्रिय पत्नी चूडाला प्रगाढ़ निद्रा में सो रही थी, उस प्रकार उठ बैठा, जिस प्रकार लक्ष्मी की कान्ति से जगमगाती चञ्चल तरङ्गों वाले क्षीर सागर से भगवान् विष्णु उठते हैं ।२०। चोर आदि को पकड़ने के बहाने चलते हुये उस राजा ने अपने अनुचर को उस कार्य में नियुक्त करके नगर से बाहर प्रस्थान किया ।२१।

राज्यलक्ष्मि नमस्तुभ्यमित्युक्त्वा मण्डलाद्गतः ।
विवेश ग्राममरण्यानीमेको नद इवाऽर्णवम् ।२२
ततो मन्दरशैलस्य तटस्य जकदुर्गमम् ।
प्राप काननमत्यन्तदूरस्थजनता पूरणम् ।२३
तत्रैकस्मिन् समे शुद्धे स्थले सलिलमायिते ।
शीतले शाद्वयश्यामे स्निग्धे सफलपादपे ।२४
स मञ्जरीभिर्वल्लीभिः स चकारोटजालयम् ।
प्रावृट् कालः सविद्युद्भिर्नीलाभ्रैरिव पंजरम् ।२५
एवं शिखिध्वजः पूर्णमठिकायां वने स्थितः ।
इदानीं शृणु चूडाला सा किं कृतवती गृहे ।२६
तत्राऽर्द्धरात्रसमये दूरं याते शिखिध्वजे ।
हरिणोग्रामसुप्तेव चूडाला बुबुधे भयात् ।२७
अपश्यत्पतिनिर्हीना शयनं शून्यतां गतम् ।
अभास्करमनूर्णेन्दु शान्तं शोफमिवाऽम्बरम् ।२८

'हे राजश्री ! तुम्हें नमस्कार है' कहता हुआ वह राजा अपने मण्डल से निकल कर एक विशाल वन में उस प्रकार से प्रविष्ट हो गया, जिस प्रकार महासागर में नद प्रविष्ट होता है।२२। इस प्रकार वह मन्दराचल के तट पर अवस्थित मनुष्यों के लिए दुर्गम, जन समूह और नगरों से बहुत दूरस्थ एक वन में जा पहुँचा।२३। वहाँ उसने एक समतल, शुद्ध जल से युक्त, शीतल, हरे पुष्पों से समन्वित, श्याम, स्निग्ध और फल-दार वृक्षों वाले स्थान में मँजरीमय लताओं से पूर्ण एक कुटी उस प्रकार बनाई जिस प्रकार विद्युत युक्त मेघों में वर्षा काल पंजर बनाता है। ।२४-२५। इस प्रकार एक तापस के लिए आवश्यक वस्तुओं को एकत्र करके वह राजा अपनी पर्णशाला में रहने लगा, उधर घर में चूडाला ने जो किया, वह सुनो।२६। अर्द्धरात्रि के समय जब राजा बहुत दूर चला गया, तब वह ग्राम में शयन करती हुई हरिणी के समान भय से जाग उठी।२७। पति के द्वारा त्यागी हुई चूडाला ने अपने सूने पर्यंक को, जैसे सूर्य-हीन तथा अपूर्ण चन्द्रमा वाला आकाश शोभा-रहित दिखाई देता हैं, वैसा देखा।२८।

उत्तस्थौ किञ्चिदाम्लानवदना खेदशालिनी।
कुसिक्तेव महावल्ली निरुत्साहाऽङ्गपल्लवा ॥२९
क्षणं शय्योपविष्टेव चिन्तयामास चिन्तया।
कष्टं राज्यं प्रभुस्त्यक्त्वा वन यातो गृहादिति ॥३०
तन्मयेहाऽद्य किं कार्यं तत्सपीपं व्रजाम्यहम्।
भर्तैव गतिरुद्दिष्टा विधिना प्रकृता स्त्रियः ॥३१
इति सञ्चिन्त्य भर्तारमनुगन्तुं समुत्थिता।
चूडाला वातरंध्रेण निर्गत्याऽम्बरमाययौ ॥३२
बभ्रमाऽम्बरमार्गेण वातस्कन्धेन योगिनी।
कुर्वंती सिद्धसार्थस्य मुखेनाऽन्येन्दुविभ्रममः ॥३३
ददर्शाऽय यथायातं रात्रौ खड्गधरं पतिम्।
प्रवसन्तमेकान्ते बेतालसमयोदितम् ॥३४

ताद्दशं पतिमालोक्य स्थित्वागगनकोटरे।
भविष्यच्चिन्तयमास सर्वं भर्तुरखण्डितम् ॥३५

वह मलिन मुख, खेदमयी, उत्साहहीना, अङ्ग-पल्लवों से सम्पन्न रानी क्षार और कीचड़ से खींची हुई महावेल के समान उठी।२६। वह अपने पर्यंक पर बैठी हुई ही व्याकुल मन से सोचने लगी कि मेरे पति राज्य को त्याग कर चले गये, यह कैसे खेद का विषय है।३०। अब मैं वहाँ क्या करूँगा ? अपने पति के पास चलूँ क्यों कि स्त्रियों का शरण स्थान पति ही कहा गया है।३१। ऐसा निश्चय कर, वह रानी पति के पास जाने के लिए उठी और जरोखे के मार्ग से होकर आकाश में जा पहुँची।३२। सिद्धों को भी द्वितीय चन्द्रमा की भ्रान्ति में डालने वाले मुख वाली वह योगिनी वायु के सहारे आकाश मार्ग में विचरण करने लगी।३३। रात्रि में बेतालों के विचरण काल में खड्ग हाथ में लिए अकेले जाते हुए अपने स्वामी को उसने देखा।३४। तब आकाश कोटर में अवस्थित होकर उस एकान्त निर्जन वन में भटकते हुए अपने पति को देख कर वह उसके भविष्य पर विचार करने लगी।३५।

यथा येन यदा यत्र यावत्कार्यं यथोदयम्।
यथा च निर्वतिःस्फारा गन्तव्या तेन राघव ॥३३
अवश्यं भवितव्यं तद्भर्तुर्दृष्ट्वा पुरः स्थितम्।
तदेव संवादयितुं गमनात्सा न्यवर्तत ॥३७
आस्तां ममाऽद्य गमनं कालेनाऽतिचिरेण हि।
मयाऽस्य पार्श्वे गन्तव्यं नियतेरेव निश्चयः ॥३८
इति सञ्चिन्त्य चूडाला प्रविश्याऽन्तःपुरं पुनः।
सुष्वाप शयने शम्भोः शिरसीवैन्दवी कला ॥३९
केनचित्कारणेनाऽसौ गतः सम्प्रति भूपतिः।
इति पौरं जनं सर्वमाश्वास्याऽतिष्ठदङ्गना ॥४०
राज्यं ररक्ष भर्तुस्तत्क्रमेण समदर्शनात्।
यथा कालेन रक्षन्ति केदारं कलमगोपिका ॥४१

अथ यातेषु बहुषु वषषु जरसाऽऽवृते ।
शिखिध्वजे महाशैलतटकोटरवासिन ।४२

वसिष्ठजी कहते रहे—हे राघव ! जब जिस प्रकार जिस देश में जिस कारण, जिसका कार्य जब होना है तथा जब विश्रान्ति होनी है, आदि जो उसके पति का भवितव्य थी, उस सबको अपने योग-बल से प्रत्यक्ष देख कर वह सुन्दरी उसी के अनुकूल चलने का निश्चय करके आकाश से लौट पड़ी ।३६-३७। अब आगे नहीं चलूँगी, क्योंकि चिरकाल के पश्चात् मुझे अपने स्वामी के पास जाने का योग है, यही नियत काल निश्चय है ।३८। यह सोचती हुई चूडाला अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई और शिव के मस्तक पर विभूषित चन्द्रमा के समान अपनी शय्या पर जा सोयी ।३९। फिर उसने सब नागरिकों को आश्वासन दिया कि 'महाराज किसी कार्यवश कहीं बाहर गये हैं,' और स्वयं राज्य की रक्षा में समदृष्टि से तत्पर हो गई, जिस प्रकार धान की रक्षा में तत्पर नारी अपने कार्य को करती हैं ।४०-४१। इस प्रकार वर्ष पर वर्ष व्यतीत होते चले गये और महाशैल तट पर रहता हुआ राजा शिखिध्वज वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया ।४२।

तदा तस्यात्मकार्यस्य भवितव्यतया तथा ।
भर्तुः समीपगमने मम कालोऽयमित्यथ ।४३
सञ्चिन्तय मन्दरोपान्तं गन्तुं वुद्धिं चकार सा ।
चचारान्तःपुराद्रात्रौ ततार नभसः पथम् ।४४
इद रूपं परित्यज्य रूपेणाऽन्येन केन चित् ।
सकाशमस्य गच्छामि बोध दातुमनुत्तमम् ।४५
बालेयं मम कान्तेति मदुक्तं न करोत्यलम् ।
तस्मात्तापसरूपेण बोधयामि पतिं क्षणात् ।४६
भर्ता कषायपाकेन परिक्वमतिः स्थितः ।
चेतस्याऽद्य विमले स्वं तत्वं प्रतिविम्बति ।
इति सञ्चिन्त्य चूडाला बभूव द्विजदारकः ।४७

भर्तु रध्याजगामाऽग्रं मन्दस्मितलसन्मुखी ।
ददर्शद्विजपुत्रं तु पुरो यातं शिखिध्वजः ।४८
देवपुत्रागामधिया सम्परित्यक्तपादुकः ।
देवपुत्र नमस्कार इदमासनमास्यताम् ।४९

तब अपने पति के बोध स्वरूप आत्म कार्य रूपी भवितव्य को विचार करती हुई चूडाला ने समझा कि अब स्वामी के पास मेरे पहुँचने का समय आ गया है ।४३। यह निश्चय कर वह मन्दराचल के वन में जाने के लिये तत्पर हुई और अन्तःपुर से निकल कर आकाश मार्ग में चलने लगी ।४४। उसने सोचा—मैं अपने इस रूप को छोड़कर किसी अन्य रूप को धारण कर इनके समीप चलूँ, तभी सर्वोत्तम ज्ञान इन्हें होगा ।४५। यदि मैं इसी रूप में इनके पास जाऊँगी तो यह सोचेंगे कि यह मेरी पत्नी हैं, और तब मेरा कहना नहीं मानेंगे इसलिये तपस्वी के वेष में इनको बोध दूँगी ।४६। अब मेरे पति वासनाओं के परिपाक से परिपक्व बुद्धि वाले हो चुके हैं, इनके निर्मल चित्त में आत्म तत्त्व का प्रतिबिम्ब अच्छा पड़ेगा, ऐसा बिचार करती हुई उसने तुरन्त ब्राह्मण पुत्र का वेश बना लिया ।४७। मन्द मुसकान से शोभित मुख वाली चूडाला अपने पति के सम्मुख पहुँची और राजा ने ब्राह्मण पुत्र के रूप में उसे सामने देखा ।४८। उसने देवपुत्र का आगमन हुआ जानकर अपनी खड़ाऊँ उतार कर कहा—देव पुत्र ! आपको नमस्कार है कृपया इस आसन पर बैठिये ।४९

इत्युक्त्वा पाद्यमर्घ्यं च मालां पुष्पाणि चाऽनघ ।
शिखिध्वजस्तदिष्टायै ददौ देव्यै यथाखिलम् ।५०
सुवहूनि परिभ्रान्तो भूतलायतनान्यहम् ।
त्वत्तः पूजा यथा प्राप्ता मयेयं न तथाऽन्यत ।५१
पेशलेनाऽनुरूपेण प्रश्रयेणाऽमुनाऽनघ ।
मन्येऽह नूनमत्यन्तचिरं जीवी भविष्यसि ।५२
असिधारासमं सौम्यं शान्तव्रतमिदं तव ।
स्फीतं यद्राज्यमुत्सृज्य महावननिषेवणम् ।५३

जानासि भगवन् सर्वं देवस्त्वं कोऽत्र विस्मय ।
श्रियैव लोकोत्तरया ज्ञायसे चिह्नरूपया ॥५४
अस्ति मे दयिता कान्ता पाति मद्राज्यमद्य तत् ।
तवेव तस्या दृष्टानि तान्यङ्गानीह सुन्दर ॥५५
तत्कस्त्वं कस्य किमायातोऽस्यनुग्रहात् ।
एतन्मे संशयं छिन्धि विमलेन्दुसमानन ॥५६

यह कहकर ब्राह्मण पुत्र के वेश वाली अपनी प्रिया को राजा ने अर्घ्य पौद्य, माला, पुष्पादि समर्पित किये ।५०। चूडाला बोली—हे राजर्षे ! इस पृथ्वी पर मैं अनेक स्थानों पर घूमा हूँ परन्तु आपने जैसा पूजन किया है वैसा किसी अन्य ने नहीं किया ।५१। हे निष्पाप ! तुम्हारे विनम्र विनय से मैं अनुमान करता हूँ कि तुम अत्यन्त चिरजीवी होंगे ।५२। हे सौम्य ! तुमने विशाल राज्य का त्याग करके इस घोर वन का सेवन किया है वह क्रोध रहित, बनवासियों के व्रत और तलवार के धार जैसा ही है ।५३। शिखिध्वज ने कहा—हे भगवन् ! आप देवता हैं, सब कुछ जानते हैं तो इसमें विस्मय क्या है ? अपने निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए सौन्दर्य चिह्न से आप अत्यन्त प्रभावशाली प्रतीत होते हैं ।५४। हे सुन्दर ! मेरी प्रिय भार्या इस समय मेरे राज्य कीं रक्षा में संलग्न है आपके अङ्ग उसी के समान दिखाई दे रहे हैं ।५५। हे स्वच्छ चन्द्रमा के समान आनन वाले ! मेरे द्वारा समर्पित अर्चन को स्वीकार करके आप मेरे संशय को दूर कीजिये कि आप हैं कौन ? किसके पुत्र हैं ? और मुझ दीन पर दया करने यहाँ किस हेतु से पधारे हैं ? ।५६।

राजन्मे श्रृणु वक्ष्यामि यथापृष्टमखण्डितम् ।
को नाम परिपृच्छतं विनीतं वञ्चयेत्पुमान् ॥५७
अस्त्यस्मिञ्जगतीकोशे शुद्धात्मा नारदो मुनिः ।
पुण्यलक्ष्म्या मुखे कान्ते कर्पूरतिलकोपमः ॥५८
स कदाचिन्मुनिर्देवो गुहायां ध्यानमास्थितः ।
तत्र हेमतटे गङ्गा वहत्युरुतरङ्गिणी ॥५९

मेरुलक्ष्म्या स्फुद्रूपा भाति हारलता यथा।
एकदा नार मुनिर्ध्यानान्ते स सरित्तटे ॥६०
ध्वनद्वलयमश्रौषीश्लीलाकलकलारवम्।
किमेतदित्यसौ किंचिज्जातप्रायकुतूहलः ॥६१
हेलयाऽऽलोक्यन्नद्यामपश्यंल्लनागणम्।
रम्भातिलोत्तमाप्रायं निर्यातं जललीलया ॥६२
आनन्दवलिते चित्ते क्षुब्धे प्राणामिले स्थिते।
बभूव तस्य हृष्टस्य मदनस्खलितं तदा ॥६३
फलं सातर्णमिव पूर्णं ग्रीष्मान्त इव तोयदः।
प्रत्यग्रापादपच्छिन्नलतावृन्त इवोत्तमः ॥३४

ब्राह्मण बोला—हे राजन् आपने जो कुछ पूछा है उस सबका उत्तर मैं आपको देता हूँ, सुनो। भला ऐसा कौन होगा जो विनम्रता से पूछने वाले का वंचन करे।५७। इस जगती कोश में पुण्यश्री के कमनीय मुख पर लगे कपूरमय तिलक से श्वेत अङ्ग वाले एक मुनि नारद अवस्थित हैं।५८। यह देवर्षि नारद एक समय मेरु पर्वत की गुफा में ध्यान कर रहे थे, वही उस सुमेरु तट में बृहत कल्लोलिनी गंगाजी पर हित हैं।५६। जो गंगा मेरु के सौन्दर्य से प्रकाशमयी होकर हार के समान लगती हैं, उसी के तट पर जब नारदजी का ध्यान टूटा तब उन्हें कंकणों की ध्वनि से युक्त जल क्रीड़ा का आभास हुआ। जिसे सुनकर देवर्षि कौतूहल पूर्वक विचारने लगे कि क्या सुनाई पड़ रहा है? ।६०–६१। जब उन्होंने कौतूक से गंगा की ओर देखा तो उन्हें जल सेचनादि क्रीड़ा करके निकलती हुई रम्भा, तिलोत्तमा प्रभृति अप्सराओं का झुण्ड दिखाई दिया।६२। यह देखकर मुनि का चित्त आनन्द-विभोर हो गया और चित्त विकृति से प्राणवायु के क्षुब्ध होने पर उनका वीर्य ऐसे स्खलित हो गया, जैसे ग्रीष्म के अन्त में मेघ या रस से परिपूर्ण फल अथवा नवीन वृक्ष अपने स्थान से स्खलित हो जाते हैं।६३–६४।

तादृशोऽपि बहुज्ञोऽपि जीवन्मुक्तोऽप्यसौ मुनिः।
निरिच्छोऽपि निरागोऽपि न किञ्चिदुपमोऽप्यलम् ॥६५

स बाह्याभ्यन्तरं नित्यमाकाशविशदोऽपि च ।
नारदोऽपि कथं ब्रह्मन् मदनस्खलितोऽभवत् ।६६
सर्वस्य। एव राजर्षे भूतजातेर्जगत्त्रये ।
देवादेरपि देहोऽयं द्वयात्मैव स्वभावत् :६७
अज्ञमस्त्वथ तज्ज्ञं वा यावत्स्वान्तं शरीरकम् ।
सर्वमेव जगत्यङ्ग सुखदु खमय स्मृतम् ।६८
मज्ज्ञस्य त्वङ्ग जगता मनागपि न तद्वशात् ।
यथा शुभाशुभौ रागादिनाऽऽक्रान्ततरौ मणेः ।६९
गतेऽपि कुकुमे वस्त्रे तदीयमनुरञ्जनम् ।
न जहाति यथा मूढस्तथा विषयरंजनम् ।७०

राजा बोला—हे ब्रह्मन् ! नारदजी तो सर्वलोक प्रसिद्ध, सर्वज्ञ, जीवन्मुक्त, निरीह और निराग है, उनके समान श्रेष्ठ तो कोई अन्य मुनि है ही नहीं, वे बाह्याभ्यन्तर आकाश के समान विशाल हैं, फिर वे देखने मात्र से चित्त विकृति स्खलित वीर्य कैसे हो गये।६५-६६। ब्राह्मण ने कहा—हे राजर्षे ! त्रिलोकी में सभी भूतों का, देवता आदि सभी का देह स्वभाव से ही दो रूप का है।६७। इस संसार में ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी हों वे देह विनिष्ट होने तक सुख-दुःख से अभिभूत ही कहे गये हैं।६८। परन्तु यह सुखः दुःख आत्मज्ञान के प्रभाव से तत्व ज्ञानी को नहीं व्यापते जैसे कि स्फटिक मणि आदि पर केसर का रङ्ग लगाने पर केसर आदि स्थाई नहीं होते।६९। किन्तु जिस प्रकार केसर से सम्बन्ध न रहने पर वस्त्र उसके रङ्ग में रङ्गा रहता है, वैसे ही अज्ञानी पुरुष वस्तु का सम्बन्ध विच्छिन्न होने पर भी विषयानुराग का त्याग नहीं करता।७०।

अनेनैव क्रमेणैतौ बन्धमोक्षौ व्यवस्थितौ ।
भावनातानवं मोक्षो बन्धो हि दृढभावना ।७१
देवपुत्र महाज्ञोऽसि वेत्सि पूर्वां जगत्स्थितिम् ।
ज्ञायसे बचनादेव स्वभावो हि किमुच्यते ।७२

आद्यसर्गे यथा सद्यः स्फुरितं ब्रह्म ब्रह्मणि ।
घटावटपटाद्यात्मा तथैवाऽद्य व्यवस्थितम् ।७३
काकतालीयवद्वारिबुद्बुदोत्पत्तिनाशवत् ।
घुणाक्षरवदुच्छननं तं स्वभावं विदुर्बुधा ।७४
अस्मिन्स्वभाववशतो जगति प्ररूढे ।
देहा भ्रमन्ति परितो विविधा विकाराः ।
प्रक्षीणवासनतया न भवन्ति केचिद्
भूयो भवन्ति च पुनस्त्वितरे घनास्थाः ।७५

हे राजन् ! बन्धन और मोक्ष दोनों ही इस क्रम से स्थित हैं विषय-भावना का क्षय ही मोक्ष और विषयों की दृढ़ता ही बन्धन है ।७१। राजा बोला–हे देवपुत्र ! आपकी बात सुनने से ज्ञात होता है कि आप पूर्ण तत्वज्ञानी हैं और आत्मज्ञान से पूर्व जो जगत् की स्थिति थी, उसके भी आप तर्कादि से सिद्ध ज्ञाता हैं अत: स्वभाव शब्द से क्या कहा जाता है ? यह बताइये ।७२। ब्राह्मण ने कहा–सृष्टि के आरम्भ काल में सर्गोत्पादन में प्रवृत हुआ ब्रह्म जिस, घट, कुण्ड पट आदि रूप में स्फुरित हुआ था, बह आज भी यथावत् अवस्थित हैं ।७३। काकतालीय न्याय के समान जल में बुद्बुदों की उत्पत्ति विनाश के समान ही है। घुणाक्षर के समान सर्ग के आरम्भ में वह ब्रह्म जिस किसी घट पट आदि अद्भुत पदार्थ रूप वस्तु विशेष से स्फुरित हुआ, विद्वज्जन उसी को स्वभाव कहते हैं ।७४। उक्त अनिर्वचनीय स्वभाव के प्रभाव से प्रकट हुए उसके जगत् में चार प्रकार के जो शरीर इधर-उधर विचरते हैं उनमें कोई ज्ञानी शरीर सभी बासनाओं का क्षय होने पर पुन: जन्म नहीं लेते और अज्ञानीजन पुन: देह धारण करते हैं, क्योंकि वे भोगों में लगे रहते हैं।७५

४३ कुम्भ से कुम्भ की उत्पत्ति का वर्णन

अत्युदारं महार्थं च वक्षि त्वं वदताम्वर ।
अनुभूतिमुपारूढं गूढं च परमार्थवत् ।१

तत्समासेन तां तावदात्मोत्पत्तिं वदाऽऽशु मे ।
ततः श्रोष्यामि यत्नेन ज्ञानगर्भां गिरं तव ।२
तेन पद्मजपुत्रेण मुनिना नारदेन तत ।
क्व कृतं वीर्यमार्येण कथयाऽद्य यथास्थितम् ।३
ततो निबध्नता तेन मनो मत्तमतंगजम् ।
विवेकविपुलालाने शृङ्खला धीवरत्रया ।४
तद्वीर्यं कल्पकालाग्निगलितेन्दुद्रवोपमम् ।
रसानां पारदादीनां दिव्यानामनुरञ्जनम् ।५
मुनिना पार्श्वगे कुम्भे स्फाटिके विलसद्रुचौ ।
अद्भुते विद्रुताकारं चद्रे चन्द्र इवाऽर्पितम् ।६
तत्र मासाद्गतो वृद्धिं मुनिमन्दाहुतिक्रमः ।
अमृताब्धौ शुभौ गर्भं इन्दोरिन्दुरिवाऽनुजः ।७

शिखिध्वज बोला—हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आपके वचन अत्यन्त उदार, अर्थ पूर्ण गूढ़ अनुभव युक्त और पारमार्थिक हैं ।१। इसलिए आप अपनी उत्पत्ति के विषय में कुछ बताइये । आपकी ज्ञानमयी वाणी को मैं सुनना चाहता हूँ ।२। मुझे यह भी बताइये कि ब्रह्मापुत्र नारदजी ने अपने उस निर्गत वीर्य को कहाँ रखा ? ।३। ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! नारदजी ने अपने मन रूपी मत्त मज को पवित्र बुद्धि रूपी दृढ़ चर्म-रस्सी से विवेक रूपी आलान में बाँधा और कल्पकालाग्नि से गलित हुए सोमद्रव के समान और पारद, स्वर्ण तथा शिवजी के दिव्य वीर्य जैसे अपने द्रवीभूत शुक्र को निकट ही पड़े विचित्र कुम्भ में उन्होंने चन्द्रमा में अन्य चन्द्रमा स्थापित करने के समान ही स्थापित किया ।४-६। कुछ महीने व्यतीत होते होते उस घड़े में स्थित हवनादि क्रियाओं में नारदजी को क्षीण कर देने वाला वह गर्भ, अमृत-सागर में बढ़ते हुए चन्द्र बिम्ब के समान बढ़ने लगा ।७।

इन्दु मास इवाऽपूर्णः कालेन सुषुवे घटः ।
गर्भं कमलपत्राक्षं प्रसूनमिव माधवः ।८

परिपूर्णसमस्तांगकुम्भाद्गर्भो विनिर्ययौ ।
इन्दुः सूक्ष्मादिवाऽम्भोदेरपरः श्रयवर्जितः ।९
दिनै कतिपयैरेव वृद्धिमभ्याजगाम सः ।
अप्रमेयांगसौन्दर्यः शुक्लपक्षे शशी यथा ।१०
दिनैः कतिपयैरेव विज्ञाताशेषवाङ्मयम् ।
चकारैनं मुनिवर्यः प्रतिविम्बमिवाऽऽत्मनः ।११
अथैनं पुत्रमादाय ब्रह्मलोकं स नारदः ।
जगमाऽथ स्वपितरं ब्रह्माणं चाऽभ्यवादयत् ।१२
कृताभिवन्दनं ब्रह्मा पौत्रमादाय तं तदा ।
अभिवादितवेदादि स्वयमङ्के न्यवेशयत् ।१३
अथाऽऽशीर्वादमात्रेण सर्वज्ञं ज्ञानपारगम् ।
पौत्रं तं कुम्भनामानं चकार कमलोद्भव: ।१४

समय आने पर कमल पत्र जैसे नेत्रों वाले उस गर्भ का उस घड़े ने उस प्रकार प्रसव किया जैसे मास पूर्ण चन्द्र का और बन्सत पुष्पों का प्रसव करता है ।८। घड़े से निकला हुआ परिपूर्ण अंगों वाला वह गर्भ घटादि से परिच्छिन्न क्षीर सिन्धु से निकलते हुए अक्षय चन्द्र के समान था ।९। वह शुलकपक्ष के चन्द्रमा ही के समान कुछ ही दिनों में बहुत बढ़ गया । उसके अंग-प्रत्यंग इतने सुन्दर थे जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ।१०। उसने अल्पकाल में ही सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञान पा लिया । कुछ दिन में ही नारदजी ने उस बालक को अपने समान ही बना लिया ।११। फिर नारदजी अपने उस पुत्र को साथ लेकर ब्रह्म-लोक गये और अपने पिता ब्रह्माजी के लिए उससे अभिवादन कराया ।१२। अभिवादन के पश्चात् ब्रह्माजी ने सब वेद शास्त्रादि विषयक प्रश्न उससे पूछे । उनका यथार्थ उत्तर सुन कर उसे अपने अङ्क में बैठा लिया ।१३। तब ब्रह्माजी ने अपने उस कुम्भ नामक पौत्र को अपने अशीर्वाद मात्र से ही सर्वज्ञानी और तत्वज्ञान में परिपूर्ण बना दिया ।१४।

साधो सोऽहमयं कुम्भः पौत्रोऽहं पद्मजन्मनः ।
पुत्रोऽहं नारदमुनेःकुम्भनामाऽस्मि कुम्भजः ।१५
निवसाम्यब्जजपुरे पित्रा सह यथासुखम् ।
चत्वारः सुहृदो वेदा मम लीलाबिलासिनः ।१६
धरां पतिते मे पादौ पततो न महीतले ।
रजः स्पृशन्ति नांऽगानि ग्लानिं नाऽऽयाति मे वपुः ।१७
अद्याऽऽकाशमथाऽऽगच्छन् दृष्टवांस्तथामहं पुरः ।
इह तेनाऽऽगतोऽस्म्यंग सर्वं कथितवानिति ।१८
अद्य तिष्ठाम्यहं साधो धन्यानां मुनिनामतः ।
अमृतस्यन्दिवचसा यत्त्वयाऽस्मि समागतः ।१९
एवं वादिनि सैवाऽस्य वाक्यमाक्षिप्य भूपतेः ।
भूयः प्रोवाच चूडाला मुनिदारकरूपिणी ।२०
आस्तामेषा कथा तावत् सर्वंते वर्णितं मया ।
त्वं मे कथय हे साधो कस्त्वदौ करोषि किम् ।२१

हे साधो ! मैं वही ब्रह्माजी का पौत्र कुम्भ तुम्हारे समक्ष हूँ। कुम्भ से उत्पन्न हुआ नारद पुत्र कुम्भ मैं ही हूँ ।१५। ब्रह्मलोक में मैं अपने पिता नारदजी के साथ सुख पूर्वक रहता हूँ । क्रीड़ा करते समय चारों वेद मेरे मित्र होते हैं ।१६। जब मैं पृथिवी पर विचरण करता हूँ तब मेरे पाँव पृथिवी पर नहीं टिकते, धूलिकण मेरे अंगों का स्पर्श नहीं कर सकते और मेरे शरीर को कभी ग्लानि नहीं होती ।१७। आज, जब मैं गगन मार्ग से विचरण कर रहा था, तब मैंने आपको देखा तो यहाँ आ गया । यह मेरा पूर्व वृत्तान्त है, जो आपसे कहा है ।१८। राजा ने कहा—हे साधो ! आप पीयूषमयी वाणी वाले के साथ मेरा जो समागम हुआ है, उसके कारण मैं महान् अनुष्ठाताओं में भी श्रेष्ठ पुरुषों के स्थान को पा गया हूँ ।१९। वसिष्ठ जी बोले-हे राम ! इस प्रकार कहते हुए राजा शिखिध्वज को बीच में रोकती हुई नारद पुत्र रूपिणी चूड़ाला

कहने लगी ।२०। हे साधो ! मेरी प्रशंसा में आप जो कह रहे हो, उसे रहने दो । आपके प्रश्नों का समाधान मैंने कर दिया है अब मुझे बताओ कि आप कौन हैं और इस पर्वत पर क्यों रहते हैं ?

कियत्पर्वतसानेयं भवतो वनवासिता ।
सत्यं कार्यंच नोऽसत्यं वक्तुं जानन्ति तापसाः ।२२
देवपुत्रोऽसि जानासि सर्वमेव यथास्थितम् ।
लोकवृत्तान्ततज्ञोसि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।२३
संसारभयभीतत्वान्निवसामि वनान्तरे ।
जानतोऽपि हि मामार्य कथयाम्येव ते मनाक् ।२४
शिखिध्वजोऽहं भूपालस्त्यक्त्वा राज्यमिहाऽस्थितः ।
भृशं भीतोऽस्मि तत्वज्ञ संसृतौ जन्वयः पुनः ।२५
भ्रमन्नपि दिगन्तेषु चरन्नपि परं तपः ।
नासादयामि विश्रान्तिमेकां निधिमिवाऽधनः ।२६
पितामहमहं पूर्वं कदाचित्पृष्टवानिदम् ।
यत्क्रियाज्ञानयेरेकं श्रेयस्तद् ब्रूहि मे प्रभौ ।२७
ज्ञानं हि परमं श्रैयः कंवल्वं तेन बेत्यलम् ।
कलातिवाहनायैव विनीदायोदिता क्रिया ।२८

इस पर्वत पर रहते हुए आपको कितना समय हो गया ? बनवास के द्वारा किस कार्य की सिद्धि की कामना है ? आप मुझे सत्य बताइये क्योंकि तपस्वी कभी असत्य नहीं बोलते ।२२। राजा ने कहा—आप तो देवपुत्र हैं, सब कुछ स्वयं जानते हैं । लोकवृत्त और परमार्थ सबका आपको ज्ञान है तो अन्य कौन बात आपने जानके योग्य रह गई ? ।२३। हे आर्य ! संसार-भय से भीत होकर ही मैं इस वन में बास करता हूँ यद्यपि आप इसे जानते हैं, फिर भी संक्षेप में आपको बता रहा हूँ ।२४। हे तत्वज्ञ ! मैं राजा शिखिध्वज हूँ अपना राज्य त्याग कर वनवासी हो गया हूँ और पुनर्जन्म से भयभीत हूँ ।२५। सब दिशाओं में घूमने और कठोर तप करने पर भी मुझे, निर्धन के पास धन न होने के समान, शान्ति प्राप्त नहीं होती ।२६। चूडाला ने कहा, किसी एक समय, मैंने पितामह ब्रह्माजी से पूछाथा कि हे प्रभो ! ज्ञान और कर्म में से

कौन सा साधन मुक्ति के लिये श्रेयस्कर है, वह मुझे बताइये ।२७। ब्रह्माजी ने कहा ज्ञान ही परम श्रेष्ठ है । केवल उसी से आत्मज्ञान हो सकता है । श्रुतियों में उल्लखित क्रिया-कलाप तो विनोदमात्र ही हैं ।२८।

वासनामात्रसारत्वादज्ञस्य सफलाः क्रियाः ।
सर्वा एवाऽफला ज्ञस्य वासनामात्र संक्षयात् ।२९
वासनामात्रसंत्यागाज्जराममरणवर्जितम् ।
पदं भवति जीवोऽगतभूयोजन्मविवर्जितम् ।३०
सवासनं मनोज्ञेय ज्ञानं निवसिनं मनः ।
ज्ञानेन ज्ञेयमभ्येत्य पुनर्जीवो न जायते ।३१
कथं वन्धः कथं मोक्ष इति प्रश्नानुदाहरन् ।
पारावारविदां पादान् कस्माद्राजन्न सेवसे ।३२
साधुनैव समं ग्रासं भुञ्जानो वनकोटरे ।
तिष्ठाऽत्रनष्टदुश्चेष्टो धरा विवरकीटवत् ।३३
कान्तया देवरूपिण्या तयैवं प्रतिबोधितः ।
अश्रुपूर्णमुखो वाक्यं शिखिध्वज उवाच ह ।३
अहो नु बोधितोऽस्म्यद्य चिरात्सुरसुत त्वया ।
मौर्ख्यादार्यसमासंग त्यक्त्वाऽहमवसं वने ।३५

हे पौत्र ! ज्ञानी कर्म तो करता है, परन्तु उसकी क्रियाएँ सभी वासनाओं के नष्ट होने से फलवती नहीं होती । परन्तु अज्ञानी के कर्म वासनाओं के विद्यमान रहने से भी कभी फलीभूत नहीं होते ।२९। अपने हृदय से वासनाओं का त्याग कर देने से प्राणी जरा-मरण रहित और पुनर्जन्म रहित वस्तु स्वरूप हो जाता है ।३०। यह ज्ञातव्य है कि वासनामय मन ज्ञेय और वासना-रहित मन ही ज्ञान है । जब ज्ञान के द्वारा जानने योग्य ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है तब प्राणी पुनर्जन्म के चक्र में नहीं पड़ता ।३१। जन्म कैसे हुआ और मोक्ष कैसे होगा ? इत्यादि प्रश्नों का समाधान तत्पदार्थ और अपर तत्पदार्थ के ज्ञाता गुरु के पास जाकर, उनकी सेवा करके क्यों नहीं करते ? ।३२। हे राजन्

आप तपस्या आदि बहिर्मुखी कष्टप्रद चेष्टाओं को त्यागकर गुरुजी के साथ भोजन करते हुए इस वन कोटर में पृथिवी के छेद में रहने वाले कीड़े के समान निश्चलता से अवस्थित होइए ।३३। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! देवरूप धारिणी उस नारी द्वारा समझाया हुआ वह राजा अश्रुपूर्ण मुख से कहने लगा ।३४। शिखिध्वज बोला–हे देवगुरु, बहुत समय पश्चात् आपके द्वारा जगाया जाने से मैं इस समय विस्मय को प्राप्त हो रहा हूँ। मैं मूर्खतावश साधु संग को त्याग कर इतने समय वनवास करता रहा ।३५।

अहो नु मे क्षयं यात्तं मन्ये पापमशेषतः ।
वत्त्वमेव समागत्य सम्प्रोबोधयसीह माम् ।३६
गुरुस्त्वं मे पिता त्वं मे मित्रं त्वं मे वरानन ।
शिष्यो नमस्करोम्यद्य पादौ तव कृपां कुरु ।३७
यदुदारतमं वेत्सि यस्मिन् ज्ञाते न शोच्यते ।
भवामि निर्वृतो येन तद्ब्रह्मोपदिशाऽऽशु मे ।३८
यथा बालः पितुर्वाक्यं मुक्तहेतूपपादनम् ।
आदत्ते हि तथैव त्वं गृहाणैतद्वचो मम ।३९
स्वचरितसदृशं तथोदयन्त्या-
श्चिरसमयैकविबोधनं च बुद्धेः ।
भवभयसुतरं महामतीनां
शृणु कथयामि कथामेकां मनोज्ञाम् ।४०

अहो ! मैं समझता हूँ कि अब मेरा सभी पाप नष्ट हो चुका है, क्योंकि आपने मुझे जगा दिया है ।३६। अब आप ही मेरे गुरु, पिता एवं मित्र हैं। मैं शिष्यरूप से आपको प्रणाम करता हूं मुझ पर कृपा करिए ।३७। आपको जिस उदारतम वस्तु का ज्ञान है और जिसके जान लेने पर प्राणी को शोक नहीं रहता, जिससे सब प्रकार की शान्ति मिलती है उस ब्रह्म का मुझे उपदेश कीजिए ।३८। चूडाला ने कहा–हे राजन्, जिस प्रकार संज्ञा शून्य बालक अपने पिता का उपदेश प्रणाम बुद्धि से ग्रहण करता है उसी प्रकार आप मेरे इन

वचनों को हृदयंगम कीजिए ।३६। अब मैं, आपके चरित्र के समान ही मनोहर कथानक कहूँगा, जो कि मन्द बुद्धि वालों को भी चिर-काल पश्चात् प्रबोध करने वाला है और महान् बुद्धि वालों को ती भवसागर के भय से शीघ्र ही पार कर देता है, आप उसका श्रवण कीजिए ।४०।

४४ काँच में मणि की भ्रान्ति

अस्ति कश्चित्पुमान् श्रीमान् स्थानं नित्यविरुद्धयोः
गुणलक्ष्मीरशेषेण यथाऽब्धिवडिवाम्बुधौ ।१
कलावानस्त्रकुशलो व्यवहाविचक्षणः ।
सर्वसङ्कल्पसीमान्तो न तु जानाति तत्पदम् ।२
अनन्तयत्नसंसाध्ये स चिन्तामणिसाधने ।
प्रवृत्तो वाडवो वह्निरब्धिसंशोषणे यथा ।३
तस्य यत्नेन महता कालेनाऽध्यवसायिनः ।
सिद्धचिन्तामणिः किं वा न सिध्यत्युद्यतात्मनाम् ।४
मणिमग्रोस्थितप्रायं हस्तप्राप्यं ददश सः ।
मेरावुदयशृंगास्तो मुनिरिन्दुमिवोदितम् ।५
इदं सञ्चिन्तयामास मनसा स्मयशालिना ।
सम्प्राप्तोपेक्षया दीर्घदुःसम्भ्रमशालिना ।६

चूड़ाला बोली—कोई एक श्रीमान् व्यक्ति अनादि काल से ही परस्पर गुणों से समन्वित अर्थात् वैराग्य और लक्ष्मी का आश्रय स्थान था, उसी प्रकार, जिस प्रकार कि वड़वाग्नि और जल परस्पर विपरीत गुण वाले होकर भी समुद्र के आश्रय में रहते हैं ।१। वह सभी कलाओं में निपुण, अस्त्र-विद्या में कुशल, व्यवहार में पटु और सभी इच्छित कार्यों में सफलता पाने वाला था । उसके लिए कोई कार्य असाध्य नहीं था । परन्तु उसे परमपद का ज्ञान नहीं था ।२। फिर वह समुद्र के शोषण में तत्पर बड़वानल के समान ही वह पुरुष तप आदि बहुत से उपाय से सिद्ध होने वाली चिन्तामणि की इच्छा से तपस्या

करने लगा।३। उस दृढ़ निश्चयी पुरुष के लिए चिन्तामणि अल्प काल में ही प्राप्त हो गयी, क्योंकि उद्योगी पुरुष के लिए किस वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती ?।४। उसे हाथ में लेने योग्य सामने आए हुए चिन्तामणि को उसने उसी प्रकार देखा, जिस प्रकार कि मेरु पर्वत के शिखर पर अवस्थित मुनि उदय होते हुए चन्द्र को देखता है।५। दीर्घकालीन दुःख भ्रान्ति की प्राप्त एवं आश्चर्यान्वित मन से उसने प्राप्त चिन्तामणि की उपेक्षा करते हुए सोचा।६।

अयं मणिर्मणिर्नाऽयं मणिश्चेतद्भवेन्न सः।
स्पृशामि न स्पृशाम्येन कदाचित्स्पर्शतो व्रजेत्।७
एवं विकल्पसङ्कल्पैश्चिरममूः परामृशन्।
न मणिग्रहणे यत्नमकार्षीन्मौर्ख्यमोहितः।८
न यदा येन लब्धव्यै न तत्प्राप्नोत्यसौ तदा।
चिन्तामणिरवाप्नोऽपि दुर्धिया हेलयोज्झितः।९
इति तस्मिन्स्थिते यातो माणेरुड्डीय सिद्धयः।
त्यजन्ति ह्यवमन्तारं शरो गुणमिवोज्झितः।१०
पुमान् भूयः क्रियायत्नं चक्रे रत्नेन्द्रसाधने।
नोद्विजन्ते स्वकार्येषु जना अध्यवसायिनः।११
ददर्शाऽथ चकद्रूपं काचखण्डमखण्डितम्।
हसद्भिर्वञ्चकैः सिद्धैः पुरस्कृतमलक्षितैः।१२

यह चिन्तामणि है अथवा नहीं ? यदि चिन्तामणि होती तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकती थी, मैं इसका स्पर्श करूँगा या नहीं ? स्पर्श करने पर ही कहीं मुझ भाग्यहीन के दर्शन करने से अदृश्य न होजाय।७। इस प्रकार बहुत समय तक संकल्प विकल्प करते हुए अज्ञानी पुरुष ने अपनी मूर्खतावश मणि को ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं किया।८। जो वस्तु जिस समय जिसे नही मिलनी होती वह उस समय उसे ले ही नहीं सकता। इसलिये प्राप्त हुई चिन्तामणि भी दुर्बुद्धि के कारण उसे नहीं मिल सकी।९। जब वह पुरुष इस प्रकार अज्ञान पूर्वक संकल्प-विकल्प करता रहा तब तो यह चिन्तामणि उसके पास से उड़ गई। जिस प्रकार

धनुष से छूटा हुआ बाण डोरी से अलग हो जाता है उसी प्रकार सिद्धियाँ भी उपेक्षा करने वाले से पृथक् हो जाती हैं।१०। फिर भी वह पुरुष चिन्तामणि के लिए उद्योग करता रहा, क्योंकि अटल निश्चय वाले पुरुष कार्य सिद्धि न होने पर उद्वेग को प्राप्त नहीं होते ।११। तब उसे एक चमकदार अखण्डित काँच का एक टुकड़ा दिखाई दिया। दिखाई न देने वाले सिद्धों ने परिहास पूर्वक वह टुकड़ा उसके समक्ष रख दिया ।१२।

अयं चिन्तामणिरिति मूढ़स्तस्मिन् सवस्तुताम्
बुबुधे मोहितो ह्यज्ञो मृदं हेमेति पश्यति ।१३
तं दग्धमणिमादाय प्राक्तनी च श्रियं जहौ।
सर्वं चिन्तायणेरस्मात् प्राप्यते किं धनैरिह ।१४
दूरं गत्वा यथाकामं सुखं तिष्ठामि सम्पदा।
इत्यादाय मणिं मूढः शून्यकाननमाययौ ।१५
तत्र काचकणेनाऽसौ तेन तामापदं ययौ ।
कज्जलाद्रेरिव निभा मौर्ख्यस्यैवाऽपि या समा ।१६
दुःखानि मौर्ख्यविभवेन भवन्ति यानि
नैवाऽऽपदो न च जरामरणेन तानि।
सर्वापदां शिरसि तिष्ठति मौर्ख्यमेकं।
कृष्णं जनस्य वपुषामिव केशजालम् ।१७

उसने उसी को चिन्तामणि समझ लिया क्योंकि मोह में पड़े हुए अज्ञानी जन भ्रमवश मिट्टी को ही स्वर्ण रूप में देखने लगते हैं ।१३। उस काँचरूपी मणि को लेकर उसने अपनी पहली सभी सम्पत्ति का त्याग कर दिया। उसने समझा कि इस चिन्तामणि से ही सब कुछ मिल सकता है तो अन्य से क्या लाभ है।१४। वह मूर्ख यह सोचता हुआ कि अब कहीं दूर जाकर मैं सब ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर सुख पूर्वक रहूँगा और तब वह मूढ़ उस कांच को लेकर निर्जन वन में जा पहुँचा ।१५। वन में जाकर वह मूढ़ उस कांच के टुकड़े से ऐसी घोर विपत्ति में आ पड़ा जो काजल के पर्वत के समान नीलिमा से समन्वित

और मूर्खता के समान थी ।१६। मूर्खतावश जिन दुःखों की उत्पत्ति होती है वह सब नाश आदि विपत्तियों के जन्म-मरण से भी नहीं होती, क्योंकि तत्ववेत्ता तो शतशः आपत्तियों में भी दुःख, नहीं देखते परन्तु स्वर्ण पर्यङ्कों पर शयन करने वाले धनिक अज्ञानवश सैकड़ों दुःख देखते हैं। सिर पर अवस्थित काले केश-जाल के समान सभी आपत्तियों के शीश पर मौर्ख्य अवस्थित रहता है ।१७।

४५–विन्ध्यगज का उपाख्यान

अथेममपरं रम्यां वृत्तान्तं शृणु भूमिप ।
परं प्रबोधनं बुद्धेः साधोः सदृशमात्मनः ।१
अस्ति विन्ध्यवने हस्ती महायूथपयूथपः ।
आगस्त्या शुद्धया वृदध्या विन्ध्यनेवोदितः स्वतः ।२
वज्रार्चिर्विषमौ दीर्घो तस्याऽऽस्तु दशनौ सितौ ।
कल्पानलशिखातुल्यौ सुमेरून्मूलनक्षमौ ।३
स बद्धो लोहजालेन हस्तिपेन किलाऽभितः ।
मुनीन्द्रेणेव विन्ध्याद्रिरूपेस्द्रैणैव वा बलिः ।४
दत्ताभ्यां यत्नतस्ताभ्यां मुहूर्तद्वितयेन सः ।
वभञ्ज शृङ्खलाजालं स्वर्णागंलमिवाऽसुरः ।५
तं तस्य निगडच्छेदमपश्यद् दूरतो रिपु ः ।
बलेः स्वर्गावदलनं हरिर्मेरुतलादिव ।६
तस्य विच्छिन्नपाशस्य मूध्नि तालतरो रिपुः ।
पपात क्रमशः स्वर्गं हरिर्मेरोबलेरिप ।७

चूडाला बोली—हे भूपाल ! अब आप एक अन्य उपाख्यान श्रवण कीजिए। वह आपके अनुरूप एवं मति को उत्तम प्रबोध देने वाला है ।१। विन्ध्माचल के वन में एक यूथपति गजराज था। वह दीर्घ काल तक मुनिवर अगस्त्यकी आज्ञा-परिपालन से अनुग्रह के कारण इतने उन्नत रूपमें प्रकट हुआ कि साक्षात् विन्ध्य पर्वतके ही समान प्रतीतहोता था।२

वज्राग्नि के समान उनके दो श्वेत दाँत अत्यन्त तीक्ष्ण थे, वे पर्वत राज सुमेरु को भी महाप्रलय की अग्निशिखा के समान उन्मूलन करने में समर्थ थे ।३। उस गजराज को महावतों ने जाल में उसी प्रकार बाँध रखा था जिस प्रकार कि अगस्त्य मुनि ने विन्ध्यादि को और उपेन्द्रने बलि को बाँध लिया था ।४। उस गजराज ने दो मुहूर्तों के घोर प्रयत्न से अपने दो दाँतों से उस जाल को वैसे ही काट डाला, जैसे बलि ने स्वर्ण नगरी अमरावती के कपाटों को तोड़ डाला था ।५। उसके जाल काटने के कर्म को उसके शत्रु (महावत) ने दूर से ही देखा जैसा कि भगवान् विष्णु ने मेरु के तल से बलि का स्वर्ण तोड़ना देखा था ।६। तब विच्छिन्द फन्दा वाले उस गजराज के शीश पर वह शत्रु ताल वृक्ष पर चढ़कर वैसे ही गिरा, जैसे क्रमशः सुमेरु से वामन भगवान् बलि के शीश पर गिरे थे ।७।

स पतन्पादपद्माभ्यामप्राप्य करिणः शिरः ।
पपातोर्व्यां फलं पक्वं वाताहतमिवाऽऽकुलः ।८
तं पुरः पतितं दृष्ट्वा महेभः करुणां ययौ ।
स्फुरत्स्फारगुणाः सन्तः सन्ति तिर्यग्गतावपि ।९
पतितं वलयामीति किंनाम मम पौरुषम् ।
वारणोऽपीति कलयन्त जघान स तंरिपुम् ।१०
केवलं निगडव्यूहं विदार्याऽभिजगाम ह ।
विततं सेतुमुत्सार्य विपुलौघ इवाऽम्भसः ।११
वारणारिरसिद्धांगो गतेभो दुःखमाययौ ।
आगत्योपगतेऽन्तर्धिनिधान इव वर्धनः ।१२
चिरेणाऽऽभतेभेन्द्रं कस्मिंश्चित् कानने स्थितम् ।
विश्रान्तं तं तरुतले समरादिव निर्गतम् ।१३
अथ यत्र स्थितो नागस्तत्र तद्बन्धनक्षमम् ।
पराया राजसामग्र्या गजलम्पटभूमया ।१४
स खातवलयं चक्रे हस्तिपः काननेऽभितः ।
सर्वादिक्कं विधिर्भूमौ समुद्रवलयं यथा ।१५

उसके पांव हाथी के मस्तक पर न टिक कर पृथिवी पर गिरे जैसे वायु के थपेड़े से पका हुआ फल गिर जाता है ।८। अपने समक्ष गिरे उस व्याकुल शत्रु को देखकर गजराज का हृदय करुणा से परिपूर्ण हो गया क्योंकि तिर्यक् योनि को प्राप्त करके भी सन्त आत्मा अपने प्रकाशमय गुण से सदा समन्वित रहते हैं ।९। सोचने लगा कि यदि गिरे हुये को मैं मार दूँ तो इसमें मेरा क्या पुरुषार्थ होगा ? अतः हाथी ने अपने उस शत्रु का वध नहीं किया ।१०। वह केवल लोहमय जाल को तोड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार जल का भारी प्रवाह किसी बड़े पुल को तोड़ता हुआ चला जाय ।११। आज उस गज-राज का शत्रु वह महावत अपने उपाय में सफल नहीं हुआ । हाथी उसके हाथ से निकल गया । हाथ में आये हुये धन के चले जाने पर दुःखित हुए धनिक के समान ही महावत अत्यन्त दुःखित हुआ ।१२।कुछ समय के पश्चात् किसी एक वन में किसी एक वृक्ष के नीचे विश्राम करता हुआ गजराज पुनः उसे मिला । जैसे कि वह युद्ध क्षेत्र के निकल कर आया हो ।१३। तब जहाँ हाथी था, उसके पास ही उस महावत ने हाथियों को वशीभूत करने में चतुर अपने सहायक और साधनों से युक्त होकर हाथी को बन्धन में डालने वाला एक बड़ा गोल गड्ढा खुववाया, मानो पृथिवी पर किसी सर्वादिग्व्यापी गोल समुद्र को ब्रह्मा जी ने बनाया हो ।१४-१५।

उपर्यंस्थमगमद्‌ललतौ घेनसं तं वनं शठ ।
शून्यतान्तन्तुजालेन शरत्काल इवाम्बरम् ।१६
दिनैः कतिपयैरेव वारणो विहरन् वने ।
तस्मिन्निपतितः खाते शुष्काब्धाविव पर्वतः ।१७
अहनिष्यत्पुरैवाऽसौ यद्यग्रे पतितं रिपुम् ।
तन्नाऽलप्स्यत्ततो दुःखं गजः खातनिबन्धनम् ।१८
मुक्तोऽस्मि शस्त्रनिगडादिति तुष्टो हि वारणः ।
दूरस्थोऽपि पुनर्बद्धो मौर्ख्यं क्व च न बाधते ।१९

मौर्ख्यं हि बन्धनमवेहि परं महात्मन् ।
बद्धो न बद्ध इति चेतसि तद्विमुक्त्यै ।
आत्मोदयं त्रिजगदात्ममयं समस्तं
मौर्ख्ये स्थितस्य सहसा ननु सर्वभूमिः ।२०

महावत ने गड्ढे को कोमल तृण-लताओं से वैसे ही ढंक दिया जैसे शरत्काल शुभ्र बादलों से आकाश को आच्छादित कर देता है ।१६। कुछ दिन बाद ही वन विहार में मत्त वह गजराज उस गढ़े में वैसे ही गिर गया, जैसे सूखे हुए समुद्र में कोई पर्वत ।१७। यदि यह हाथी अपने सामने गिरे हुये शत्रु को तभी मार देता तो इसे कूप बन्धनरूपी कष्ट कभी प्राप्त न होता ।१८। मैं बन्धन से छूट गया । अपनी इस मति से सन्तुष्ट होकर दूर भागा हुआ हाथी अज्ञान बन्धन में पड़ गया । अहो ! मूर्खता बाधा कहाँ नहीं डालती ? ।१९। हे महात्मन् ! 'बन्धन रहित मैं बद्ध हूँ' ऐसा मूर्खता ही सबसे बड़ी ही समझनी चाहिये । इस प्रकार आत्मा से अन्य किसी वस्तु के न रहने से ही नित्य मुक्त होता है इस प्रकार के ज्ञानाभाव और मौर्ख्य में अवस्थित रहने पर स्वयं आत्मा ही सब बन्धनों के बीजों की भूमि ही हो जाती है ।२०।

४६ चिन्तामणि और कांच का आख्यान

मणिसाधकविन्ध्येभवबन्धनाद्यमरात्मज ।
सूचितं यत्कथाजालं पुनर्मे प्रकटीकुरु ।१
वाक्गाथोद्दृष्टनिष्पत्या हृद्गृहे चित्तभित्तिषु ।
शृणु स्वयं कथा चित्रा चित्रमुन्मीलयामि ते ।२
योऽसौ शास्त्रार्थकुशलस्तत्वज्ञाने त्वपण्डितः ।
रत्नसंसाधकः प्रोक्तः सत्यमेव महीपते ।३
तज्ज्ञो भवसि शास्त्रेषु रविमरुतटेष्विव ।
तत्वज्ञाने तु विश्रान्तो न त्वं दृषदिवाम्भसि ।४

विद्धि चिन्तामणिं साधो सार्वत्यागमकृत्रिमम् ।
तमन्तं सर्वदुःखानां साधयसि शुद्धधीः ।५
सर्वत्यागेन शुद्धेन सर्वमासाद्यतेऽनघ ।
सर्वत्यागो हि साम्राज्यं किं चिन्तामणितो भवेत् ।६
केवलं सर्वसन्त्यागे शेषिताऽहं मतिस्तत्वया ।
मृष्टाखिलकलङ्केन स्वसत्तेवाऽनिलेन खे ।७

राजा ने कहा हे देव पुत्र ! चिन्तामणि के लिए साधना करने वाले और विन्ध्य पर्वत के गज-बन्धन आदि का जो कथा-जाल आपने कहा है उसको पुनः कहिए । यह सब मेरे जीवन-वृत्त से मेल खाता है और इस प्रकार आपने बताया कि मेरे ज्ञान का उपाय रूप ही है ।१। चूडाला बोली—हे राजन् ! आपके हृदय गृह में जो चित्तरूपी भित्तियाँ उन पर कथा रूपी चित्र रेखा मैंने ही खींची है । अब उसे व्याख्या रूपी अद्भुत वर्णों से रंगता हूँ । आप श्रवण कीजिए ।२। हे महीपते ! शास्त्रार्थ में कुशल परन्तु तत्व ज्ञान-रहित जिस चिन्तामणि साधक के विषय में आप जानते हैं वैसे ही आप शास्त्रार्थ विषय में ज्ञानी हैं, परन्तु आत्म तत्व में उसी प्रकार स्थिर नहीं, जिस प्रकार जल में पत्थर स्थिर नहीं रहता ।३-४। साधो ! आप अपने अकृत्रिम त्याग को ही चितामणि समझो । आप उसीं सर्व कष्टनाशक चिन्तामणि की सिद्धि में लगे हैं ।५। हे अनघ ! शुद्ध त्याग से ही सर्वस्व की सिद्धि होती है, क्योंकि सर्व त्याग में ही साम्राज्य है चिन्तामणि की उपलब्धि से क्या होता है ।६। हे राजन् ! आपने सर्वत्याग से अभिमान रूपी अविद्या को ही सुरक्षित रखा है जैसे बादल और सर्वकला को धोने वाला शरत्कालीन पवन अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखता है ।७।

त्यागिता स्यात्कुतस्तस्य चिन्तामप्य वृणोति यः ।
पवनस्पन्दयुक्तस्य निःस्पनदित्वं कुतस्तरोः ।८
राज्यबन्धाद्विनिष्क्रयम्य प्रसरद्दुःखपूरितात् ।
वनवासाभिधैः साधो बद्धोऽसि दृढबन्धनैः ।९

इदानीं राजशार्दूल यस्तु सम्प्रतिपत्तये।
शृणु विन्ध्येभवृत्तांतवृति स्मयकारिणीम् ।१०
योऽसौ विन्ध्यवने हस्ती सोऽस्मिन् भूमितले भवान् ।
यौ वैराग्यविवेके तौ द्वौ तस्य दशनौ सितौ ।११
यश्चाऽसौ वारणाक्रान्तिस्तत्परो हस्तिपः स्थितः ।
तदज्ञानं तवाऽऽक्रान्तिस्तत्परं तव दुःखदम् ।१२
अतिशक्तोऽप्यशक्तेन दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम् ।
हस्ती हस्तिपकेनेव राजन् मौर्ख्येण नीयसे ।१३
यद्बभञ्जः गजः शत्रोः शृंखलाजालबन्धनम् ।
तत्तत्याज भवान् भोगभूमिं राज्यमकण्टकम् ।१४

उस व्यक्ति का त्याग सिद्धि को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, जो किंचित् चिन्ता को भी हृदय में स्थान देता है। क्या पवनके झोकों से युक्त वृक्ष स्थिर रह सकते हैं ? ।८। हे साधो ! आप नित्यप्रति वृद्धि को प्राप्त होते हुए दुःख से युक्त राज्य रूपी बन्धन से निकल कर भी वनवास रूपी दृढ़ बन्धन में पड़ रहे हैं ।९। हे राज शार्दूल ! अब पूर्ण तत्वज्ञान के निमित्त आप विन्ध्य पर्वत वाले हाथी की आश्चर्यमयी निवृत्ति को श्रवण कीजिए ।१०। विन्ध्याचल के जिस हाथी की कथा मैंने आप से कही है, वह इस भूमल पर आप ही है । उस हाथी के सफेद दांत ही आपके वैराग्य और विवेक हैं ।११। उस हाथी को पकड़ने वाले जिस महावत का वर्णन किया गया है वह आपको आक्रांत करने वाला दुःखदायी अज्ञान ही है ।१२। हे राजन् ! आप अत्यन्त बलवान् हाथी के समान होते हुए भी मूर्खता रूपी निर्बल महावत के द्वारा एक दुःख से अन्य दुःख में और एक भय से अन्य भय में डाले जा रहे है ।१३। जिस हाथ ने लौह रूपी शृखला को तोड़ा था वहीं आपने अपने भोग भूमि में निष्कंटक राज्य रूपी बन्धन का भेदन किया था।१४

कदाचित्सुकरं शस्त्रशृंलाबन्धभेदनम् ।
नत्वस्य मनसः साधो भोगाशाविनिवारणम् ।१५

यदिमे पाटयत्युच्चैर्बन्धं हस्तिपकोऽपतत् ।
त्वयि त्यजति तद्राज्यमज्ञातपतितं कृतम् ॥१६
यदा विरक्तः पुरुषो भोगाशां त्यक्तुमिच्छति ।
तदा प्रकम्पतेऽज्ञानं छेद्ये वृक्षे पिशाचवत् ॥१७
यदा वनं प्रयातस्त्वं तदा ज्ञानं क्षतं त्वया ।
पतितं सन्न निहतं मनस्त्यागमहासिना ॥१८
तेन भूयः समुत्थाय स्मृत्वा परिभवं कृतम् ।
तपः प्रपञ्चखातेऽस्मिन् गहने त्वं नियोजितः ॥१९
इत्यद्याऽपि तपःखाते दुःखे ह्यस्मिन् सुदारुणे ।
स्थितोऽसि च पाताले नृप बद्धो यथा बलिः ॥२०
गजस्त्वमाशा निगडानि बैरी
मोहो निखातः पुनरुग्रबन्धः ।
महीतलं विन्ध्य उदन्त इत्थं
त्वदीय उक्तः कुरु यत्करोषि ॥२१

शास्त्र और शृँखला का भेदन तो हो सकता हैं, किन्तु इस मन से भोग रूपी आशा का भेदन सरलता से नहीं हो सकता।१५। हाथी द्वारा वन्धनों को तोड़ देने से पश्चात् जो महावत गिरा था, वह आप के राज्य बन्धनों के काट देने पर अज्ञान ही गिर पड़ा था।१६। विरक्त पुरुष के भोगाशा का त्याग कर देने पर अज्ञान वैसे ही काँपने लगता है, जैसे कटते हुए वृक्ष पर पिशाच।१७। जब आप वन को चले, तब आपने अज्ञान को आहत कर दिया, परन्तु आपने उसी समय उसे तत्व ज्ञान द्वारा मन के त्याग रूपी खड्ग से मारा नहीं १८। इसलिए वह अज्ञान पुनः उठ खड़ा हुआ। आपके द्वारा दी गई पराजय का स्मरण करके उसने आपको तप रूपी प्रपंच के गहरे गड्ढे में डाल दिया।१९। हे राजन् ! आप भी इस प्रकार से अत्यन्त घोर दुःखदायी तपस्या रूपी गड्ढे में पड़कर-बन्धन में अवस्थित हो, जैसे पाताल में राजा बलि स्थित है।२०। आप हाथी हैं, आशायें शृंखला, महावत मोह, घोर तपाग्रह रूपी गड्ढा और विन्ध्य पर्वत है यह पृथ्वी, इस प्रकार हाथी

के आख्यान द्वारा आपका ही वृत्तान्त मैंने कहा है इसे भले प्रकार समझ कर इस तप रूपी गड्ढे से निकल कर शत्रुनाश का शीघ्र प्रयत्न कीजिए ।२१।

४७–सर्व त्याग से पापों का नाश

यदुक्तं नयशालिन्या तया विदितवेद्यया ।
तदा चूडालया ज्ञानं तत्कस्मान्नोररीकृतम् ॥१
अथ चेद्वचनं तस्यास्त्वया नाऽनुष्ठितं नृप ।
तत्सर्वम्परित्यज्य कस्मान्न निपुणीकृतः ॥२
राज्यं त्यक्तं गृहं त्यक्तं देशस्त्यक्तस्तथाविधः ।
दारास्त्यक्तास्तथाप्यंग सर्वत्यागो न किं कृतः ॥३
धनं दारा गृहं राज्यं भूमिश्छत्रं च बान्धवाः ।
इति सर्वं न ते राजन् सर्वत्यागो हि कस्तव ॥४
तवाऽस्त्येवाऽपरित्यक्तः सर्वस्माद्भाग उत्तमः ।
तं परित्यज्य निःशेशमायास्यसि विशोकताम् ॥५
राज्यं चेन्मम न यत्सर्वं तत्सर्वं वनमेव मे ।
शैलवृक्षादिगुल्माढ्यं तदद्ये तत्त्यजाम्यहम् ॥६
अद्रेस्तटं वनं श्वभ्रं सलिलं पादपस्थलम् ।
इत्यादि तव नो सर्वं सर्वत्यागः कथं तव ॥७

देवपुत्र रूपिणी चूडाला ने कहा—हे राजन् ! आपकी पत्नी चूडाला ने ज्ञेय वस्तु का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था, आपने उसके ज्ञानोपदेश को क्यों नहीं माना ? ।१। यदि उसका कथन नहीं ही माना तो आपने सर्वत्याग का पूर्ण आश्रय क्यों नहीं लिया ? ।२। राजा बोला—मैंने राज्य, घरबार, सम्पूर्ण देश और यहाँ तक कि अपनी भार्या तक का त्याग कर दिया, फिर भी आप कहते हैं कि सर्वत्याग नहीं किया । ।३। चूडाला ने कहा—धन, दारा घर, राज्य भूमि, छत्र और बन्धुजन यह सब आपके तो हैं नहीं, फिर इनके त्याग से सर्व त्याग कहाँ हुआ ? ।४। आपका सर्व श्रेष्ठ भाग मन है, उसका तो अभी तक परित्याग

नहीं हुआ। उसके त्याग से ही आप शोक-रहित हो सकोगे ।५। राजा ने कहा——आप राज्य आदि को मेरा सर्वस्व नहीं मानते तो यह शैल, वृक्ष गुल्मादि से परिपूर्ण वन ही इस समय मेरा सर्वस्व है, मैं इसका त्याग किए देता हूँ ।६। चूडाला बोली—यह पर्वत, तट, वन, श्वभ्र, जल और तरुओं वाली भूमि, ये जब आपकी हैं ही नहीं, तो इनके त्याग में सर्व त्याग कैसा ! ।७।

एतच्चेन्मम नो सर्वं तत्सर्वं स्वाश्रमो मम।
वापीस्थलोटजायुतस्तमे सुवाऽऽशु त्यजाम्यहम् ॥८
अथोत्थाय ददाहाऽसौ शुष्कं तत्तृणमन्दिरम्।
अज्ञेन स्वेन मनसा वृथा सङ्कल्पकल्पितम् ॥९
सर्वमेव न सन्त्यक्तं त्वया राजन् शिखिध्वज।
सर्वत्यागपरानन्दे मा मुधाऽभिनयं कुरु ॥१०
तवाऽस्त्येवाऽपरित्यक्तः सर्वस्माद्भाग उत्तमः।
य परित्यज्य निः शेषं परमायास्यशोकताम् ॥११
इति श्रुतवता तेन किञ्चित्सञ्चिन्त्य भूभृता।
इदमुक्तं महाबाहो राम राजीवलोचन ॥१२
इन्द्रियव्यालसंघातो शक्तमांसमयाकृतिः।
शिष्यते सर्वसंत्यागे देहो मे देवतात्मज ॥१३
तदुत्याय पुनर्देह भृगुपातादविघ्नतः।
विनाशात्मकतां नीत्वा सर्वत्यागी भवाम्यहम् ॥१४

राजा ने कहा——यदि यह वन आदि मेरे सर्व त्याग के हेतु नहीं हैं तो यह वापी, स्थल, उटज आदि से समन्वित यह आश्रम तो मेरा अपना है, इसका मैं अभी त्याग किए देता हूँ ।८। वसिष्ठजी बोले—राम ! यह कहकर राजा शिखिध्वज ने ज्ञान-रहित मिथ्या संकल्प से समर्थित उस कुटी रूपी तृणमन्दिर जो भस्म कर दिया ।९। चूड़ाला बोली—हे राजन् ! अभी आप सर्वस्व त्याग नहीं कर सके हैं,सर्वत्याग से उत्पन्न होने वाले परमानन्द की प्राप्ति में आप मिथ्या अभिनय न करिए ।१०। अभी तक आपने उस श्रेष्ठ मार्ग का त्याग नहीं किया

है जिसका परित्याग करने पर ही आप शोक-रहित हो सकेंगे ।११। वसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो ! हे राम ! देवपुत्र की यह बात सुनकर राजा कुछ देर विचार कर कहने लगा ।१२। हे देवपुत्र ! इन्द्रिय रूपी दृढ़ सर्पो से युक्त तथा रस-मांसमय आकृति वाला यह देह ही सर्वत्याग में शेष रहा है, अतः मैं इस देह को ही अब निर्विघ्न रूप से विनाश रूपता देकर सर्वत्यागी हुआ जा रहा हूँ ।१३-१४।

इत्युक्त्वा देहमग्रस्थे श्वभ्रे त्यक्तुमसौ जवात् ।
करोति यावदुत्थानं तावत्कुम्भोऽप्युवाच ह ॥१५
राजन्किमिति देहं त्वं निरागस्कं महावटे ।
त्यजस्यज्ञो हि वृषभः कुपितो हन्ति तर्णकम् ॥१६
जडो वराको मूकात्मा ध्यानवानवतिष्ठते ।
न कश्चन तवैतस्मिन्मा मुधैव तनुं त्यज ॥१७
क्षोभयत्यन्य एवैनं निग्रहार्हो मुहुर्बलात् ।
तपस्विनं यथैकान्तं संस्थित मत्ततस्करः ॥१८
त्यक्तेनाऽपि शरीरेण किल तामरसेक्षण ।
सर्वत्यागो न ते याति निष्पत्ति विषमो हि सः ॥१९
साधो न देहत्यागेन न राज्यत्यजनेन च ।
न चोटजादिशोषेण सर्वत्यागो भवेन्नृप ॥२०
यत्सर्वं सर्वतो यच्च तस्मिन्सर्वैवकारणे ।
सर्वस्मिन्सम्पपरित्ययने सर्वत्यागः कृतो भवेत् ॥२१

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! यह कहकर ज्योंही अपनी देह त्यागने के उद्देश्य से राजा सामने स्थित खन्दक में कूदने के लिए बढ़े त्यों ही कुम्भ ऋषि रूपिणी चूडाला ने कहा ।१५। वह बोली—हे राजन् ! इस निर्दोष शरीर को इतने भयंकर खंदक में क्यों डाले दे रहे हैं ? आप तो उस मुर्ख बैल के समान हो गये हैं जो अपने ही बछड़े को मारनेके लिए दौड़ता है ।१६। हे राजन् ! यह शरीर तो ध्यानवान तपस्वी और मूकहै, इसने आपका कोई अपराध नहीं किया, आप व्यर्थ ही इसका परित्याग मत करो ।१७। जिस प्रकार एकान्त में बैठे तप-

स्त्री को कोई उन्मत्त तस्कर वल पूर्वक बारम्बार क्षुब्ध करता है, उसी प्रकार इस आत्मा को कोई अन्य ही बलपूर्वक क्षोभ पहुंचाता है, वही उन्मत्त चोर दण्डनीय है ।१८। देह त्याग से भी तुम्हारा सर्व त्याग नहीं होता, क्योंकि देह-त्याग से देह बन्धन काटने वाले ज्ञान की सम्भावना नहीं है, अतः इसका त्याग श्रेयस्कर नहीं है ।१६। हे साधो ! देह, राज्य और कुटिया के त्यागसे सर्वत्याग की सिद्धि संभव नहीं है । किन्तु जो सर्वनाश भावनाओं का आश्रय होने से सर्वात्मक और सब विषयोंमें पहुँच होने से सर्वव्यापी है, उस कारण भूत सर्वात्मा का मन से परित्याग कर देने पर ही सर्वत्याग की सिद्धि होगी ।२०-२१।

सर्व सर्वगतं सर्वहेयं त्याज्यं च सर्वदा ।
सर्वं किमुच्यते ब्रूहि सर्वतत्वविदां वर ॥२२
साधो सर्वगिताकारं जीवप्राणादिनामकम् ।
न जडं नाऽजडं भ्रान्तं चित्तं सर्वमिति स्मृतम् ॥२३
चित्तमेव भ्रमं विद्धि विद्धि चेतो नरं नृप ।
चित्तं विद्धि जगज्जालं चित्तं सर्वमिति स्मृतम् ॥२४
राज्यादेरथ देहादेराश्रमादेर्महीपते ।
सर्वस्यैव मनो बीजं तरुवीजं तरोरिव ॥२५
सर्वस्य वीजे सन्त्यक्ते सर्वं त्यक्तं भवत्यलम् ।
सम्भवासम्भवाद्भूप सर्वत्यागो भवेदिति ॥२६
सर्व धर्मा अधर्मा वा राज्यादि विपिनादि वा ।
सचित्तस्य परं दुःखं निश्चित्तस्य परं सुखम् ॥२७
चित्तं सर्वमिति प्राहुस्तस्मिंस्त्यक्ते महीपते ।
सर्वाभिव्याभिसीमान्तः सर्वत्यागः कृतो भवेत् ॥२८

राजा ने कहा—हे सर्व तत्व ज्ञानियों में श्रेष्ठ ऋषि ! वह सर्वत्र सर्व गत और सर्वदा त्याग योग्य सर्वात्मक वस्तु कौन सी है, उसे मुझे बताइए ।२२। कुम्भ वेषधारी चूडाला बोली—हे साधो ! सर्वगत आकार वाला तथा जीव प्राण आदि संज्ञा वाला जो चित्त है, वह सर्व गत आकार वाला तथा जीव प्राण आदि संज्ञा वाला जो चित्त है, वह

सर्वं संज्ञक कहा गया है। यह न जड़ है, न अजड़, अपितु अनेक प्रकार से भ्रान्त है।२३। चित्त ही भ्रम है, यही व्यवहार करने वाला पुरुष एवं जगज्जाल हैं इसी को सर्वात्मक कहा गया।२४। हे राजन ! जैसे वृक्ष का बीज वृक्ष होता है वैसे ही यह मन, राज्यादि, देहादि तथा आश्रमादि सभी का बीज है।२५। सबके बीज भूत इस मन के त्याग से ही सर्वत्याग सिद्ध होता है तथा उसके न त्यागने से सर्व त्याग नहीं हो पाता।२६। हे राजन् ! सभी धर्म, अधर्म, राज्य अथवा वन आदि यह सभी, चित्तवान् पुरुष के लिए दुःख रूप हैं, परन्तु चितहीन पुरुषके लिए यह सभी सुख रूप होते हैं।२७। हे राजन् ! जबकि चित्तही सब कूछ कहा है, तब उसके परित्याग से सम्पूर्ण आधिव्याधि की सीमा के विनाश रूप सर्वत्याग की सिद्धि होती है।२८।

अस्याश्चित्तं विदुः क्षेत्र संसृतेः सस्यसन्यतेः ।
क्षेत्रे त्वक्षेत्रतां याते शालेःक इव उम्भवः ॥२९
एवं वदति वै कुम्भे चित्तन्यागं मुहुर्मुहः ।
अन्तर्विचारयन् सौम्यो राजा वचनमब्रवीत् ॥३०
हृदयाकाशविहगो हृदयद्रुममर्कटः ।
भूयो भूयो निरस्तं हि समभ्येत्येव मे मनः ॥३१
चित्तस्याऽऽदो स्वरूपं मे यथावद्भगवन् वद ।
ततश्चित्तपतित्यागं यथावद्वद मे प्रभो ॥३२
वासनैव महाराज स्वरूपं विद्धि चेतसः ।
चित्तशब्दस्तु पर्यायो वासनाया उदाहृतः ॥३३
त्यागस्तस्याऽतिसुकरः सुसाध्यः स्पन्दनादपि ।
राज्यादप्यधिकानन्दः कुसुमादपि सुन्दरः ॥३४
सर्वनाशोऽस्य यः साधो चेतसः संसृतिक्षय ।
स एव चितसंत्याग इत्युक्तं दीर्घदर्शिभिः ॥३५

चित्त को ही अनाज उत्पन्न करने वाला खेत कहा है, यदि खेतही अखेत स्वरूप हो जाय तो फिर अनाज कहाँ से उत्पन्न होगा ?।२९। इस प्रकार कुम्भ ऋषि द्वारा चित्त के परित्याग का उपाय बतलाया जानेपर राजा शिखिध्वज अपने अन्तःकरण में बारम्बार बिचार करता

हुआ कहने लगा ।३०। वह बोला हे देवपुत्र ! हृदयाकाश के पक्षी और अन्तःकरण रूपी तरु के बन्दर के समान यह मन बार-बार दूर खदेड़ा जाने पर भी पास आ जाता है ।३१। हे प्रभो ! आप सर्व प्रथम तो मुझे चित्त का स्वरूप बतलाइए और फिर उसके परित्याग की समुचित विधि कहिए ।३२। कुम्भ ने कहा—हे राजन् ! चित्त का स्वरूप वासना ही है क्योंकि चित्तका शब्द वासना पर्याय कहा है ।३३। उसका त्याग सरल है, उदासीनता के अवलम्बन मात्र से वह सिद्ध हो जाता है । इसलिए स्पन्दनकी अपेक्षा वह अधिक सुखसाध्य राज्य, की अपेक्षा अधिक आनन्दमय और पुष्पकी अपेक्षा अधिक सुन्दर है ।३४। हैसाधो! अंकुर, शाखा, पत्र और मूल आदि के सहित इस चित्त का नाश ही संसार का भी नाश है वही चित्तके सम्यक् त्याग समझो । अपरिच्छिन्न आत्मदर्शियों का कथन है कि बाह्य पदार्थों के समान केवल समता का न रहना ही चित्त का सम्यक त्याग नहीं है ।३५।

असमर्थोदयो योऽयं स चित्तावेदनात्मकः ।
एतच्चित्तद्रु मस्याऽस्य विद्धि बीजं महामते ॥३६
परमात्मपदं क्षेत्रं मायामयस्य तत् ।
एयस्मात्प्रथमोद्भिन्नादङ्कुरोऽनुभवाकृतिः ॥३७
वासना विविधाः शाखाः फलस्पन्दादिनाऽन्विताः ।
अभाविता भवन्त्यन्तर्लू नाः संविद्बलेन ते ॥३८
गौणं शाखाविलयनं मुख्यं मूलविकर्तनम् ।
चित्तवृक्षस्य तेन त्वं मूयकाषपो भव ॥३९
मुख्यत्वेन महाबुद्धे मूलदाहमलं कुरु ।
चित्तरण्टकखण्डस्य भवत्येवमचिता ॥४०
राजन् स्वात्मविचारोऽयं कोऽहं स्यामिति रूपधृक् ।
चित्तदुर्द्रुमबीजस्यदहने दहनः स्मृतः ॥४१
अप्रबृद्धै रवगतं चित्तं दृश्यामिदं जगत् ।
असच्चित्तं निराकारं पूर्वमुत्पन्नमेव नो ॥४२

ब्रह्मैवेदमत: सर्वं क्वचिन्न जगदादिधीः।
क्वाऽचित्तादि क्व चित्तादि क्व द्वैतैक्यादिकल्पना ॥४३
सर्वं निरालम्वमज प्रणान्त
मनादिरित्यात्म यथास्थितं सत्।
इदं तु नानेव न चाप्यनाना
यथास्थितं तिष्ठ सुकाष्ठमौनम् ॥४४

हे महामते! अहं-अर्थ से या अज्ञात आत्मा से उदित जो यह चित्त वेदनात्मक है, उसी को चित्तरूपी वृत का मूल समझो।३६। इस माया मय प्रपञ्च का खेत मालामय ही है, इसलिए इस चित्तका खेतभी वही है। इस प्रथम उत्पन्न मूल से मैं का आभास ही इसका अंकुर है।३७। फल और स्पन्दताति से युक्त विविध वासनायें ही इस चित्त रूपी वृक्ष की शाखाये हैं आसक्ति-त्याग से अनुद्‌बुद्ध हुई वे शाखायें सत्-असत् विचारों से उत्पन्न संवित्ति के बलसे विच्छिन्न होती हैं।३८। हे राजन् चित्त की शाखाओं का छेदन गोंण और मूल का छेदन प्रधान है, इस-लिए आप मूल के उच्छेद में ही प्रसन्नता पूर्वक तत्पर हो गई।३९। हे महामते ! आप इस चित रूपी वन का अशेष रूप से मूल ही जला डालिए इस प्रकार अचित्तता की सिद्धि होगी।४०। हे राजन् ! आरम्भ से आत्म साक्षात्कार होने तक मैं कौन हूँ इस प्रकार विचार ही चित्त रूपी निकृष्ट वृक्ष के वीज को भस्म करने वाली अग्नि कही है।४१। जिन्हें तत्वज्ञान नहींहै, वे ही चित्त और इसदृश्य जगत्‌को सद्रूप जानते हैं। यथार्थमें तो चित्त असत् है, न उसका कोई आकारहै, और न वह पहले कभी उत्पन्न हुआ है।४२। शास्त्रीयज्ञान से तो ब्रह्म ही सब कुछ है, न कहीं जगत् आदि का ज्ञान है, न चित्त का अभाव है, कहीं चित्त आदि हैं, और न कहीं द्वैत-अद्वैत की कल्पना ही है।४३। उस प्रकार से ज्ञात सम्पूर्ण जगत् उपद्रव रहित होकर निरालम्ब, अज अनादि, स्वात्म रूप एवं यथा स्थित सद्‌ब्रह्म स्वरूप ही होता है। अज्ञानियों की दृष्टि से देखा गया जो जग है, वह न नाना हैं न एक है, इस

लिए यथा स्थिति में व्यवहृत आप श्रेष्ठ काष्ठ के समान वाणी आदि के व्यापारों से निर्मुक्त होकर अवस्थित रहिए ।४४।

४८-कुम्भ ऋषि का अन्तर्हित होना

इति ते कथितं सर्वं शिखिध्वज महीपते ।
यथेदमुत्थितं सर्वं यथा च प्रविलीयते ॥१
एतच्छ्रुत्वा च बुद्ध्वा च मत्वा च मुनिनायक ।
यथेच्छसि तथा तिष्ठ दृष्टे स्पष्टे परे पदे ॥२
स्वर्गं गच्छाम्यहं पर्वकालेऽस्मिन्नारदो मुनिः ।
ब्रह्मलोकात् समायातो भवत्यमरसंसदि ॥३
न मां पश्यति चेत्तत्र तत्कोपमुपगच्छति ।
नोदेजनीया भव्येन गुरवो हि कदाचन ॥४
इति यावत्प्रतिवचः पुष्पहस्तः शिखिध्वजः ।
प्रणामाय ददात्येष तावदन्तर्धिमाययौ ॥५
प्रतिभानगतं वस्तु यथैवाऽन्ते न दृश्यते ।
न पृष्टवांस्तथा कुम्भमग्रे राजशिखिध्वजः ॥६
गते कुम्भे महीपालः परं विस्मयमाययौ ।
तमेव चिन्तयंश्चित्रं चित्रार्पित दवाऽभवत् ॥७
अहोपरिणतः साधुः स्वपदे भगवानयम् ।

कुम्भऋषि रूपिणी चूडाला बोली—हे राजन् ! जैसे यह संसार उत्पन्न होता है, वैसे ही लीन हो जाता है । यह सब ब्रह्मतत्व ही मैंने आपको बताया है ।१। हे मुनीन्द्र ! इसे सुनकर और मननकप साक्षात् दृष्ट और आवरण के नष्ट होनेसे प्रत्यक्ष हुए परम पदमें कभी समाधि की प्रमुखता से और कभी व्यवहारसे जैसी आपको इच्छाही व्यवस्थित रही।२। अब मैं स्वर्गलोक को जा रहा हूँ । इस समय मुनिवर नारदजी ब्रह्मलोक से यहाँ आ गये होंगे ।३। मुझे वहाँ न देखकर वे रुष्ट होंगे ।४। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! यह कहकर कुम्भरूपिणी चूडाला

उठो और ज्योंही राजा कुछ बोलना चाहते थे वह अन्तर्हित हो गई। ।४५। कुम्भ ऋषि के इस प्रकार जाने पर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह चित्रलिखित के समान खड़ा हुआ सोचता रहा ।६। राजा सोचने लगा कि अहो विधाता की यह विचित्र लीला ही है जो कुम्भ ऋषि के बहाने से अभ्युदय रूपी ब्रह्म का मुझे ज्ञान दिया ।७।

शाम्यामि परिनिर्वामि सुखमासे च केवलम् ।
तृणाग्रमपि नेच्छामि संस्थितोऽस्मि यथास्थितम् ॥८
एवं संचिन्तयन् राजा नूनं निर्वासनाशयः ।
शैलादिव समुत्कीर्णो मौनमेवाऽवतस्थिवान् ॥९
तस्मिन्नेव ततो मौने निःसंकल्पे निराश्रये ।
प्रतिष्ठां निश्चलां प्राप्य स तस्थौ गिरिशृंगवत् ॥१०
निर्विकल्पसमाधानात् काण्ठकुडयोपमस्थितिः ।
एवं शिखिध्वजो राजा चूडालामधुना शृणु ॥११
शिखिध्वजं तं भर्तारं कुम्भवेषेण तेन सा ।
प्रबोध्याऽन्तर्धिमागत्य ततार तरसा नभः ॥१२
देवपुत्राकृतिं व्योम्नि जहो मायाविनिर्मिताम् ।
विदग्धमुग्धमाकारं स्त्रैणं जग्राह सुन्दरम् ॥१३
नभसा स्वपुरं प्राप विवेशाऽन्तःपुरं क्षणात् ।
दृश्या बभूव लोकस्य नृपकर्म चकार च ॥१४

अब मैं शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ-मैं अत्यन्त तृप्त एवं सुख में अवस्थित हूँ। मैं अब तृण के अग्रभाग की कामना नहीं रखता। मैं यथावत अपने रूप में अवस्थित हूँ ।८। इस प्रकार सोचता हुआ राजा वासना रहित अन्तःकरण से युक्त हुआ, पाषाण प्रतिमा के समान वागादि चेष्ठाओं को छोड़कर अवस्थित हो गया ।९। फिर निर्विकल्प और समाधि में अचल प्रतिष्ठा वाला होकर वह राजा पर्वत-शिखर के समान अवस्थित था ।१०। वसिष्ठजी बोले-हे राम ! राजा शिखिध्वज तो इस प्रकार निर्विकल्प समाधि में काष्ठ और भीत के समान अचल रूप से अवस्थित हो गया। अब चूडाला की दशा सुनो ।११। कुम्भ

रूपिणी चूडाला अपने पति को उपदेश देकर स्वयं अन्तर्हित होकर वेग पूर्वक आकाश में उड़ गई ।१२। माया रचित उस देव पुत्र वाले रूप का आकाश में त्याग करके उसने विदग्ध सुन्दर नारी बेष धारण कर लिया ।१३। आकाश मार्ग से उतरकर अपने नगरस्थ अन्तःपुर में चली गई । फिर सबके समक्ष उपस्थित होकर प्रजा पालन रूप राजकार्य में तत्पर हो गई ।१४।

वासरत्रियेनाऽथ पुनरम्बरमेत्य सा ।
अभूव कुम्भो योगेन शिखिध्वजनं ययौ ।।१५
तथा तत्रैवतं भूपमश्यष्टनभूमिगा ।
निर्विकल्पसमाधिस्थं समुत्कीर्णमिवद्रुमम् ।।१६
अहो नु खलु भो दिष्टया विश्रान्तोऽयमिहाऽऽत्मनि ।
स्थित स्वस्थः समः शान्त इत्युवाच पुनः पुनः ।।१७
तदेनं तावदेतस्माद्बोधियामि परात्पदात् ।
इदानीमेव किं देहत्यागमेष करोति वै ।।१८
इति सञ्चिन्त्य चूडाला सिहनादं चकार सा ।
भूयो भूपः प्रभोरग्रे वनेचरभयप्रदम् ।।१९
न चचाल शिलेवाऽद्रौ यदा नादेन तेन सः ।
भूयो भूयः कृतेनाऽपि तदा सा तं व्यचालयत् ।।२०
चालितः पतितोऽप्येष यदा न बुबुधे नृपः ।
तदा सचिन्त्यामास चूडाला कुम्भरूपिणी ।।२१

तीन दिन के पश्चात् उसने पुनः आकाश में कुम्भ ऋषि का रूप धारण किया और राजा शिखिध्वज वाले वन में जा पहुँची ।१५। वहीं जाकर उसने राजा को यथा स्थान निर्विकल्प समाधि में निर्मित काष्ठ प्रतिमा के समान निश्चल अवस्थित देखा ।१६। तब उसने बारम्बार कहा कि अहो, अत्यन्त सौभाग्य का विषय है कि राजा शान्त, सम एवं स्वस्थ रूप से आत्मलाभ करता हुआ अवस्थित है ।१७। अतः अब मैं इसे परम पद का बोध कराऊँ, क्योंकि प्रारब्ध कर्म से अवशिष्ट रहते

हुए वह अभी अपने शरीर को क्यों छोड़े ? ।१८। यह सोचकर वह चूडाला वनचरों को भी भयभीत करने वाला सिंहनाद वारम्बार करने लगी ।१९। इससे राजा पर्वत में शिला के समान ही अविचलित रहा तब चूडाला ने उसे अपने हाथों से वहुत झकझोरा ।२०। जब बहुत झकझोरने पर भी वह न जागा तो कुम्भरूपिणी चूडाला विचार करने लगी ।२१।

तदेनं हि कथा युक्त्या साम्प्रतं बोधयाम्यहम् ॥२२
अथवैनं महात्मानं किमर्थं बोधयाम्यहम् ॥२३
अहमप्यंगनादेहमिमं त्यक्त्वा परं पदम् ।
अपुनर्जन्मनायैव गच्छामीह हि किं समम् ॥२४
इति संचिन्त्य देहं स्वं त्यक्तुमध्युद्यवा सती ।
पुनः सञ्चिन्तयामास चूडाला मा महामतिः ॥२५
तं तथाभूतमालोक्य भर्तुर्देहं वरांगना ।
अनुज्जितवती देहं चिन्तयामास सत्वरम् ॥२६
चित्तत्वं सर्वगं शुद्धं प्रविश्याबोधयाम्यहम् ।
भविष्यद्बोधनं भान्तमभ तत्र हि संस्थिता ॥२७
इति सचिन्त्य चूडाला देह कारणपञ्चरम् ।
संत्यज्य प्राप चित्तत्वे स्थितिमाद्यन्तवर्जिते ॥२८

उसने सोचा–अहो यह साधु अपने स्वरूप में अवस्थित हो चुका है, तब मैं इसे किस प्रकार जगाऊँ ।२२। अथवा अब इस महात्मा को जगाऊँ ही क्यों ? यह विदेह रूपसे मोक्ष मैं ही अवस्थित क्यों न रहे ? ।२३। मैं भी अब इस नारी देह को त्याग कर पुनर्जन्म से निवृत्त होने के साथही चली जाऊँ, क्योंकि इस जीवन में ही जब कौनसा सुख है ? ।२४। ऐसे सोचकर वह अपनी देह त्यागके लिए तत्पर हुई, परन्तु वह बुद्धिमती नारी पुनः विचार करने लगी ।२५। अपने पतिको उस प्रकार अवस्थित देखकर वह अपने देह को न छोड़ती हुई सुन्दर अङ्गों वाली रानी इस प्रकार विचार करने लगी ।२६। मैं सर्व व्याप्त चितितत्व में

प्रवेश कर वहाँ अवस्थित होकर अपने पति को जगाऊँगी ।२७। इस प्रकार विचार कर अपने शरीर से निकल कर वह राजा के शरीर में प्रविष्ट हुई और आदि अन्तरहित उसके हृदयस्थ ब्रह्मरूप चितितत्व में अवस्थित हो गई ।२८।

तत्र सा चेतनास्पन्दं कृत्वा सत्ववतः प्रभोः ।
स्व विवेश पुनर्देहं स्वं नीडमिव पक्षिणी ॥२९
कुम्भाकृतिरथोत्थाय निविष्टा कुसुमस्थले ।
साम गातुं प्रवृत्ता सा भ्रमरीवृन्दनिःस्वना ॥३०
तं सामस्वनमाकर्ण्य चित्सत्वगुणशालिनी ।
बुबुधे भूपतेर्देहे बसन्त इव पद्मिनी ॥३१
दृशं विकासयामस तां तदार्क इवाऽब्जिनीम् ।
गहीतसत्वसम्पत्तिः शिखिध्वजमहीपतिः ॥३२
अपश्यत्कुम्भामग्रस्थं सामगायनतत्परम् ।
परेण वपुषा युक्तं सामवेदमिवाऽपरम् ॥३३
अहो बत वयं धन्याः पुनः प्राप्तो मुनिः स्वतः ।
इत्येवोदाहरन् राजा कुम्भाय कुसुमं ददौ ॥३४
त्वत्प्रसादेन भगवन् पृष्टा दृश्यातिगा गतिः ।
प्राप्तः संसारसीमान्तोलब्धोलब्धव्यनिश्चयः ॥३५

यहाँ उसने जल और दूभ के समान एकपस बनी हुई अपने पतिकी चेतना का स्पन्दन किया और फिर अपने देह में उसी प्रकार प्रविष्ट हो गई, जिस प्रकार अपने नीडमें पक्षिणी ।२९। फिर कुम्भ की आकृति वाली वह चूडाला पुष्पों से समन्वित सुन्दर स्थान पर अवस्थित होकर भ्रमरियों के गुञ्जार को तिरस्कृत करने वाले अपने स्वर से सामगान करने लगीं ।३०। उस गानको सुनकर सत्वगुण युक्त चिदाभास से युक्त राजा की बुद्धि नखके अग्रभाग से मस्तक पर्यन्त अहं की व्याप्ति वाली होकर बसन्त में पदमिनी के समान अवबुद्ध हो गई ।३१। जैसे सूर्य से कमलिनी विकास को प्राप्त होती है, वैसे सत्व से समन्वित राजा ने अपने समाधि के झुके हुए नेत्रों को खोला ।३२। तब उसने अपने समक्ष

सामगान करते हुए कुम्भ ऋषि को स्थित देखा जैसे कोई द्वितीय साम वेद ही दिव्य रूप में अवस्थित हो।३३। राजा शिखिध्वज ने कहा अहो, मैं धन्य हूँ जो मुनि यहाँ पुनः मिल रहे हैं, यह कह कर उसने पुष्पांजलि समर्पित की।३४। उसने कहा—हे प्रभो! आपकी कृपा से मैं उस गति को देख चुका हूँ जो सम्पूर्ण दृश्यों का अति क्रान्त कर चुकी है। संसार की सीमा और लाभ योग्य वस्तु को प्राप्त कर चुका हूँ।३५।

चिरादतिचिरेणैव विश्रान्तोऽस्मि निरामयः।
लब्धं लब्धय्यमुपखिलं तृप्तः संश्चिरसंस्थितः॥३६
नोपदेष्टव्यमस्माकं किंचिदप्युपयुज्यते।
सर्वत्र वातितृप्तोऽस्मिः संस्थितोऽस्मि गतज्वरः॥३७
ज्ञातमज्ञातमप्राप्तं त्यक्तं त्यक्तव्वमाश्रितम्।
तत्वं परत्वं सत्वं मे त्वस्यं वाऽति न किंचनः॥३८
निः संसुतिर्विगतमोहमयो निरागो।
नित्योदितिः समसंशय सर्व सौम्यः।
सर्वात्मकः सकलंकलनावियुक्त
आकाशोशविशदः समास्थितेस्मि॥३९

चिरकाल के पश्चात् कुछ समय ही निरामय रूप से मैंने विश्राम किया और सम्पूर्ण प्राप्तव्य को प्राप्त कर लिया। अब मैं चूर्ण तृप्त रूप से चिरकाल के लिए अवस्थित हूँ।३६। अब मुझे किसी प्रकार के उपदेश की आवश्यकता नहीं है। मैं सर्वत्र सब प्रकार से अत्यन्त तृप्त हूँ और सन्ताप आदि जगज्वर से रहित रूप में अवस्थित हूँ।३७। मैं अज्ञात को जान गया हूँ, अप्राप्त को प्राप्त कर चुका हूँ, त्याज्य का त्याग करके मेरा मन वासना रहित हो गया है मैं आत्मतत्व के परत्व में आश्रय ले चुका हूँ अब और कुछ मेरे लिए शेष नहीं है।३८। मैं संसार से शून्य, मोह, भय तथा रागादि दोषों से मुक्त, नित्य प्रकाश स्वरूप सर्वत्र सम भावनामय, सर्व प्रकार सौम्य स्वरूप, सभी कल्प-

नाओं से रहित तथा आकाश कोष के समान निर्मल एवं एकरूप में अवस्थित हूँ ।३६।

४९-समाधि से चित्त समता की प्राप्ति

इत्याध्यात्मविचित्राभिः कथाभिस्तौ परस्परम् ।
आसाते वेद्यवेत्तारौ मुहूर्तत्रितयं वने ॥१
तत उत्थाय कस्मिंश्चित्सानौ समसारसे ।
सरोवरे वने चैव विहृतौ तन्दतेऽवनै ॥२
तेनाऽऽचारेण तामिश्वकथाभिस्तौ वने ततः ।
नीतवन्तौ दिनान्वष्टौ तासु कामनवीथिषु ॥३
अनर्चतुः पितृन्देवान्वृजाते च राघव ।
समंतप्ते च सिक्ते च समबुद्धौ वभ्रवतुः ॥४
दिनैः कतिपयैरेव समचिततया तया ।
सत्वोदात्तया चैव राजा कुम्भवदावुभौ ॥५
अथ तं सुरगर्भाभं चूडाला सा शिखिध्वजम् ।
दृष्ट्वाशोभामुपगतं चिन्तयामास मानिनी ॥६
अयँ पातरदीनात्मा रम्याश्च वनभूमयः ।
इयं स्थितिरनायासा या न कामेन वञ्चिता ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! इस प्रकार अध्यात्म विषय की कथाओं को परस्पर कहते हुए वे दोनों तत्वज्ञानी तीन मुहूर्त तक वन में वैसे ही स्थित रहे ।१। फिर वहाँ से उठे और फल-फूलादि से युक्त एवं आनन्द एवं पर्वत शिखर पर जाकर उसी प्रकार विहार करने लगे, जिस प्रकार कि सरोवर मैं सरस कमल और सारस विहार करते हैं ।२। तदनन्तर उस महावन की बीथियोंमें जीवन्मुक्तों के आचार का पालन करते हुए अद्भुत आध्यात्मिक कथाओं को परस्पर कहते हुए देवताओं का एक साथ पूजन करते साथ-साथ भोजन करते तथा तप्त

वाले शीतल प्रदेश विषय में भीं समान मति थे ।४। कुछ दिन व्यतीत होते२ समान चित्त होने से अपने मनके उत्कृष्ट हो जानेसे राजा शिखिध्वज कुम्भ के समान ही शोभा पाने लगे ।५। तब देव पुत्र के समान कान्ति और अद्भुत शोभा वाले राजा को देखती हुई मानिनी चूडाला सोचने लगी ।६। एक ओर तो उदारात्मा यह मेरे पति और दूसरी ओर यह मनोहर अरण्य इस अनायास प्राप्त स्थितके कारण हम काम सुख से वंचित नहीं रह सकते ।७।

जीवन्मुक्तधियां भोगं यथाप्राप्तमतिष्ठताम् ।
एकाग्रहात्मिका तुच्छा मूढतैवोदिता भवेत् ॥८
समुज्झता यथाप्राप्तमपि वेद्यविद्या सदा ।
अनिन्द्य स्वमुदारर्थं किं तज्ज्ञेन कृत भवेत् ॥९
तत्किञ्चिञ्चद्रचयाम्याशु प्रपञ्चं प्रक्षयावने ।
येनाऽयं भूपतिर्भर्ता रमते मयि -ानदः ॥१०
इति सञ्चिन्त्य चूडाला कुम्भवेषधरा पतिम् ।
प्रास काननगुल्मस्था कोकिलं कोकिला यथा ॥११
चैत्रमासस्य शुक्लोऽहं प्रतिपद्दिवसो महान् ।
अद्याऽऽस्थानं महारम्भं स्वर्गे भवति वै हरेः ॥१२
प्रतिपालयितव्यं मे त्वयेह च वनावनौ ।
क्रीड़ता नवपुष्पायां समुद्रेगमगच्छता ॥१३
आगच्छामि दिनान्तेऽद्य निर्विकल्प नभस्तलात् ।
स्वर्गादतितरामैव ध्वत्संगो मम तुष्टये ॥१४

प्रारब्ध से उपलब्ध भोगों के प्रति अप्रतिष्ठा अथवा एक भोग निवृत्ति का आग्रह जीवन्मुक्त पुरुष के लिए उसकी मूर्खता ही तो होगी ।८। यथा प्राप्त उदार विषय वाले अपने अनिन्द्य भोग का त्याग करके ज्ञातव्य के ज्ञानी पुरुष ने कौन सा अधिक फल प्राप्त कर लिया ।९। अतः मैं अपनी मतिसे वन में शीघ्रही ऐसा प्रपंच रचूं जिससे मेरा यह कामप्रद पति मुझसे रति सुख का लाभ कर सके ।१०। ऐसा विचार कर कला कुंजमें स्थित कुम्भ रूपिणी चूडाला ने किसी कोमल

द्वारा अपने पति से कुछ कहने के समान प्रिय वचन कहे।११। वह बोली-हे प्रिय ! यह चैत शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा है, आज स्वर्ग में एक वृहत् समारोह होगा, जिसमें सभी देवर्षिगण भाग लेंगे।१२। हे राजन् ! नवीन कुसुमों से समन्वित इस अरण्य भूमि में आप उद्वेग—रहित रूप से विहार करते हुये सायंकाल तक मेरी प्रतीक्षा करें।१३। आज ही सायंकाल तक मैं अवश्य लौट आऊँगा क्योंकि आपका समागम मेरे आत्म संतोष के निमित्त स्वर्ग से भी अधिक प्रिय है।१४।

आगन्तव्यं त्वया शीघ्रमेव वदति भूपतौ।
पुप्लुवेऽथ यनाद्वयोम शरन्मुखपयोदवत् ॥१५
शिखिध्वजदृशामन्ते व्योम्नि कुम्भवपुर्जहौ।
शान्तावर्तेव वासिश्रीर्मुग्धा स्वं रूपमाययौ ॥१६
प्राप मञ्जरितायारकल्पवृक्षोपमं पुरम्।
स्फुरत्पताचमात्मीयं स्वर्गस्य्य दिवः पथा ॥१७
राजकार्याणि सर्पाणि तत्र सम्पाद्य सत्वरम्।
शिखिध्वजस्य पुरतः पपातः फलपुष्पवत् ॥१८
तत्र कालद्युति मुखं चकाराऽऽखिन्नमानसा।
इन्दुं सनीहारमिव श्यामा खिन्नमिवाऽम्बुजम् ॥१९
तं दृष्टवा यादृशाकारं समुत्तस्थौ शिखिध्वजः।
वभूव खिन्नचेताश्च समुवाचेदमादृतः ॥२०
देवपुत्रो नमस्तेऽस्तु विमना इव लक्ष्यसे।
कुम्भस्त्वं त्यज संरम्भदमिमासनमास्यताम् ॥२१

राजा शिखध्वज ने कहा—हे प्रिय ! शीघ्र ही लौटना। तब चूडाला शरत्कालीन निर्मल मेघ के समान, उस वन से तुरन्त ही आकाश में जा पहुँची।१५। शिखिध्वज की दृष्टि से दूर आकाश में पहुँचकर उसने अपना कुम्भ रूप त्याग दिया और आवर्त की शान्ति होने पर जल श्री के अपने पूर्व रूप में आने के समान ही वह मुग्धा अपने उसी रूप में आ गई।१६। आकाश मार्ग द्वारा वह अपने स्वर्गोपम रमणीक नगर में पहुँच गई जहाँ मंजरी युक्त आकृति वाले कल्पवृक्ष के समान पताका फहरा रही थी।१७।

वहाँ राज्य-कार्यो का शीघ्रता से सम्पादन करके लौटी और वृक्ष से फल गिरने के समान राजा के सामने आ गिरी ।१८। हिमयुक्त चन्द्र से खिन्न हुए कमल के समान खिन्न मन वाली यह श्यामा पति के निकट अपने मुख को खिन्न ही वनाये रही ।१६। उनकी ऐसी आकृति देखकर उठ खड़ा हुआ, इनका चित्त खिन्न हो गया । वह आदर सहित बोला ।२०। हे देव पुत्र ! आपको नमस्कार है । आपके मुख का म्लान होना यह सिद्ध करता है कि आपका चित्त खिन्न है । आप कुम्भ ऋषि हैं । मानसिक सन्ताप को छांड़कर आप इस आसन पर बैठिये ।२१।

तेन क्ष्मापतिनेत्युक्ते कुम्भ आहाऽऽसने विशन् ।
गिरा विषण्णया शीर्णवंशस्वनसमानया ॥२२
यावद्देहमवस्थासु समचितयैव ये ।
कर्मोन्द्रियैर्न तिष्ठन्ति नते तत्वविदः शठाः ॥२३
ये ह्यतत्वविदो मूढ़ा राजन् बालतयैव ते ।
अवस्थाभ्यः पलायन्ते गृहीताभ्यः स्वभावतः ॥२४
एष देहदशादुःखपरित्यागो ह्यनुत्तमः ।
यत्साम्यं चेतसो योगान्न तु कर्मेन्द्रियस्थितेः ॥२५
परमेष्ठिप्रभृतयः सर्व एवो दिताशयाः ।
देहावस्थासु तिष्ठन्ति नियतेरेष निश्चयः ॥२६
अज्ञतत्वभूतानि दृश्यजातमिदं हि यत् ।
तत्सर्वमेव नियतिं धावत्यम्बु यधाऽम्बुधिम् ॥२७
इत्थं सुखेषु ननु दुःखदशासु चेत्थं
स्थावव्यमित्यधिगतं यदिहांग जीवैः ।
अज्ञज्ञभूतनिवहस्फुरितस्तदेवं
दुर्लङ्घ्य एष नियतो नियतेर्विलासः ॥२८

वसिष्ठ बोले—हे राम ! राजा शिखिध्वज के इस प्रकार कहने पर कुम्भ ऋषि ने आसन पर बैठते-बैठते फटे बांस जैसे स्वर में विषादमयी

वाणी से कहा ।२२। जब देह स्थित है तब तक भविष्य की हर्ष-शोक आदि अवस्थाओं में ज्ञान से प्राप्त समान चित्तता में कर्मेन्द्रियों की चेष्टाओं में जो तत्व ज्ञानी स्थित नहीं रहते प्रारब्ध से प्राप्त कर्मेन्द्रियों की चेष्टाओं में उद्भव होने के मात्र से वे शठ नहीं हो सकते ।२३। हे राजन् ! जो तत्वज्ञानी नहीं हैं, वे मूर्ख समचितता के अभाव से हठात् गृहीत उन-उन कर्मेन्द्रियों की निग्रह अवस्थाओं से, स्वभाव से ही गिर जाते हैं ।२४। समाधि द्वारा जो चित्त समता प्राप्त होती है, वही शरीरस्थ प्राप्त दुःखों का श्रेष्ठ त्याग है । कर्मेन्द्रियों के बलात् निग्रह से उसको सहन करना परित्याग नहीं हो सकता ।२६। ब्रह्मादि सभी उदित आशंय वाले ज्ञानीजन देहावस्था में ही अवस्थित रहते हैं । प्रारब्ध कर्मरूपी नियति का निश्चय यही है ।२६। अज्ञानी या तत्वज्ञानी सब प्रकार के प्राणियों से युक्त दृश्य समूह जल के समुद्र की ओर भागने के समान नियति की ओर भागते हैं ।२४। हे राजन् ! इस जन्म में इस जीव को सब प्रकार से सुखों और दुःखों की अवस्थाओं से अवस्थित रहना चाहिये । निज-निज कर्मानुसार जिसे जो-जो ललाटाक्षर प्राप्त हैं, उस-उस विषय में अज्ञानी अथवा ज्ञानी सभी भूतों में यह नियति का नियत विकास पूर्वोक्त प्रकार से लंघनीय नहीं है ।२८।

५०—कुम्भ द्वारा दुर्वासा शाप वर्णन

एवं स्थिते महाभाग कणमुद्वेगमीदृशम् ।
लब्धवानसि देवोऽपि वद वेदविदां वर ॥१
शृणु कार्यमिदं चित्तं मदीयं वसुधाधिप ।
कथायामि तवाऽशेषं सर्गं यदद्वृत्तमद्य मे ॥२
अहं तावदितो यातो भवते पुष्पमञ्जरीम् ।
दत्वा गगनमुल्ङ्घ्यसम्प्राप्तश्च त्रिविष्टपम् ॥३
ततः पित्रा महेन्द्रस्य सभास्थाने यथाक्रमम् ।
स्थित्वात्थाय तथोत्थानकालेपित्रा विविर्जितः ॥४

इहाऽऽगन्तुमहं तयक्त्वा स्वर्गं सम्प्राप्तवान्नभः ।
दिवाकरहयैः सार्धं वहाम्यनिलवर्त्मनि ।
अपश्यं मुनिमायान्तमहं दुर्वासियं जवात् ॥६
तस्य कृत्वा नमस्कारमुक्तं खे वहतामया ।
मुने नीलाभ्रवस्त्रस्त्वमभिसारिकया समः ॥७

राजा शिखिध्वज बोले—हे महाभाग ! हे वेदज्ञाताओं में श्रेष्ठ ! अपने-अपने भाग्य चक्र के अनुसार अवस्थित प्राणियों में आप देवता हैं, परन्तु आप विषाद के कारण रूप उद्वेग से आक्रान्त क्यों हैं, यह मुझे बताइये ।१। कुम्भ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! मेरे चित्त को विकृत करने वाली जो घटना आज घटी है इसका पूर्ण वर्चन करता हूँ उसे सुनो ।२। मैं जब पुष्पांजलि समर्पण के पश्चात् यहाँ से चला तब आकाश मार्ग से स्वर्ग जा पहुँचा ।३। वहाँ जाकर पिताजी के साथ इन्द्र सभा में यथा स्थान जाकर बैठ गया, फिर उठकर यहाँ आने के लिये स्वर्ग को छोड़ कर गगन मण्डल में आ पहुँचा सूर्य के अश्वों के साथ चलता हुआ मैं प्रवाह नामक वायु के मार्ग से अभिमत देश को प्राप्त हुआ ।४-५। फिर जल से परिपूर्ण मेघों के बीच से वेग पूर्वक चले आते महात्मा दुर्वासा को मैंने देखा ।६। आकाश में विचरते हुये उन मुनिवर को मैंने प्रणाम करके कहा कि आप आज नील मेघ जैसे वस्त्र पहने हुये होने के कारण तमोलयी रात्रि में अभिसाररिका जैसे प्रतीत हो रहे हैं ।७।

इत्याकर्ण्य मुमोचाऽसौ मयि मानद शापकम् ।
स्तनकेशवती कान्ता हावभावविलासिनो ।
गच्छाऽनेन दुरुक्तेन रात्रौ योषा भवष्यसि ॥८
इत्तयुद्वेगमनाः साधो सम्प्राप्तोऽहं नभस्तलात् ।
एतत्तें कथितं सर्वं सम्पन्नोऽस्मि निशांगना ॥९
अतिवाह्यं दिनान्तेषु स्त्रीत्वमेतन्मया कथम् ।
योषित् स्तनवती रात्रौ वक्तव्यं किं मया पितुः ॥१०

इत्युक्त्वा क्षणमेकं सा तूष्णीं स्थित्वा मुनिस्थितौ ।
धैर्यं साश्रित्य कुम्भोऽत्र पुनराह रघूद्वह ॥११
किमज्ञ इव शोचामि किं ममु क्षतमात्मनः ।
यथागतमयं देहो मत्तोऽन्यो नु भविष्यति ॥१२
परिदेवनया कोऽर्थोदेवपुत्र तथैतया ।
यदायाति तदायातु देहस्याऽऽत्मा न लिप्यते ॥१३
कानिचिद्यानि दुःखानि सुखानि विहितानि च ।
तानि सर्वाणि देहस्य देहिनो न तु कानिचित् ॥१४

हे मानद ! मेरे उस वचन को सुनते ही महर्षि दुर्वासा ने मुझे शाप दे डाला कि जो, तू अपने इस दुर्वाक्य के कारण हाव भाव और स्तनकेश वाली कमनीय नारी रात्रि काल में नित्य प्रति हो जाया करेगी ।८। हे साधो ! इस प्रकार मैं आकाश से उद्विग्न मन होकर ही वहाँ उतरा हूँ । मैंने अपने नारीत्व प्राप्ति की पूरी बात आपको सुना दी है ।९। इस स्त्री-भाग का निर्वाह मैं किस प्रकार कर पाऊँगा । नित्य प्रति रात्रि के समान स्तनधारिणी नारी होने के कारण अपने पिताजी के समक्ष क्या कह सकूँगा ? ।१०। वसिष्ठजी बोले—राम ! यह कहकर कुम्भ ऋषि एक क्षण भर चित्त को एकाग्र करते हुये मौन रहे फिर धैर्य पूर्वक कहने लगे ।११। परन्तु यह सब मैं अज्ञानी के समान ही सोच रहा हूँ । इससे मेरी आत्मा को क्या हानि हुई ? प्रारब्धवश प्राप्त स्त्रीत्व को आत्मा से भिन्न यह देह ही तो अनुभव करेगा । इसके द्वारा मेरे संग रहित चिन्मात्र स्वरूप का क्या बिगड़ा ? ।१२। राजा बोले—हे देवपुत्र ! इस प्रकार दुःखित होने से क्या लाभ होगा ? प्रारब्ध से जो प्राप्त होता है उसे होने दो, उसने आत्मा तो लिप्त नहीं हो सकती ।१३। जो सुख या दुःख की प्राप्ति होती है, बस सब देह को ही होती है उनमें से किसी भी देही की प्राप्ति आत्मा को नहीं होती ।१४।

तावेवमादिभिर्वाक्यै रन्योन्याश्वासनं स्वयम् ।
कृत्वा स्थितौ वनस्निग्धौ सुहृदौ खेदिनौ मिथः ॥१५

अथाऽर्कोप्यस्व कुम्भस्य स्त्रीत्वमुत्पादयण्निव ।
जगामाऽस्तं यगद्दीपो दीपः स्नेहक्षयादिव ॥१६
व्यवहारभरैः साधँः पद्माः संकोचमाययुः ।
मार्गाश्च पथिकैः सार्धं पान्थस्त्री हृदयानि च ॥१७
ततः कुम्भ शनैस्तत्र स्त्रैणमभ्याहरन्वपुः ।
शिखिध्वजं पुरःसंस्थं प्रोवोच गलदक्षरन् ॥१८
पतामीव स्फुरामीव द्रवामीबाऽङ्गयष्टिभिः ।
लज्ययैव च ते राजनु मन्ये स्त्रीत्वं ब्रजाम्यहम् ॥१९
पश्येमे परिवर्धन्ते राजन् मम शिरोरुहाः ।
प्रस्फुरत्तारकामाला दिनान्ततिमिरा इव ॥२०
पश्येमे मम जायेते प्रोन्मुखावुरसि स्तनौ ।
कोरकाविव पद्मिन्या बसन्ते गगनोन्मुखौ ॥२१

वसिष्ठजी बोले—हे राघव ! इस प्रकार के अनेक आश्वासन वाक्यों के द्वारा वे परस्पर आश्वासित हुये । उन दोनों को वन से अत्यन्त प्रीति थी, वे दोनों अभिन्न मित्र और एक दूसरे के दुःख के साथी थे ।१५। परस्पर के आश्वासन के पश्चात् जगत् के दीपक रूप सूर्य भी मानों कुम्भ का स्त्री रूपत्व की प्राप्ति के उद्देश्य से तैल रहित दीपक के समान अस्ताचलगामी हुये ।१६। लोक व्यवहार के साथ कमल मुँदने लगे पथिकों से रहित होते हुये मार्ग अन्धकार से छिपने लगे । पथिक स्त्री पुरुषों के अन्तःकरण वियोगी दुःख के अन्धकार से परिपूर्ण होने लगे ।१७। फिर शनैः-शनैः अङ्गों में स्त्रीत्व रूपी परिवर्तन को प्राप्त होते हुए कुम्भ ऋषि अपने समक्ष बैठे हुये राजा से गद्-गद् स्वर में कहने लगे ।१८। कुम्भ ने कहा—हे राजन् ! अब मैं अनुभव करता हूँ कि अपने देह की अंग लताओं के साथ में पृथ्वी पर गिरता हुआ स्फुरण को प्राप्त हो रहा हूँ । मैं समझता हूँ कि अब मैं लज्जा के सह स्त्रीत्व को प्राप्त हो रहा हूँ ।१९। देखो, मेरे यह केश दिन के अवसान पर बढ़ते हुये अन्धकार के समान स्फुरणीय तारमाला से मालित समन्वित होते हुये वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।२०।

यह देखो अनन्त काल आकाशोन्मुख कमलिनी की कलियों के समान मेरे वक्ष पर ऊर्ध्वमुख स्तन निकलते आ रहे हैं ।२१।

हां धिक्कष्टमहो साधो स्थित एवाऽमंगना ।
संविदानुभवाम्यन्तर्नितम्बजघने त्विमे ॥२२
विपिने कुम्भ इत्युक्त्वा तुष्णीं खिन्नो वभूव ह ।
राजाऽपि च तमालोक्य तथैवाऽऽसोद्विषण्णधीः ॥२३
मुहूर्तमात्रेणोवाच शिखिध्वज इदं वचः ।
कष्टं सोऽयं महासत्वः सम्पन्न वरवर्णिनी ॥२४
साधो विदितवेद्यस्त्वं जानासितियतेर्गतिम् ।
अवश्यभाविन्यर्थेऽस्मिन् मा खिन्नहृदयो भव ॥२५
एव मस्त्वनुष्ठानि यामिनोस्त्रीत्वमात्मनः ।
न खेदमनुगच्छामि नियतिः केन लङ्घ्यते ॥२६
इति निर्ष्णीय तौ खेदं नीत्वा तनुतामिव ।
एकतल्पे निशां तूष्णी तीतवन्तौ चिरेण ताम् ॥२७
विजहार वनान्तेषु कुमारीधर्मिणी निशि ।
कुम्भरूपधरा चाऽह्नि भर्ता मित्रेण संयुता ॥२८
कैलासमन्दरमहेन्द्र सुमेगसह्य-
सानुष्वविस्खलितयोगगभागमास
सकं प्रियेण सुहृदा भवता यथैच्छं
स्रग्दामहारवलिता विजहारनारी ॥२९

हे साधो ! मुझे विश्वास है कि अब पूर्ण स्त्री को पाकर मैं कैसी कष्ट पूर्ण स्थिति में पड़ गया हूँ । मैं अब नितम्ब और इस मांसल जङ्घाओं का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ ।२२। इस प्रकार कहकर चित्त से खिन्न कुम्भ उस वन में मौन अवस्थित हो गया । शिखिध्वज भी उसे विषादयुक्त देख कर उस अवस्था में स्थित थे ।२३। मुहूर्त भर विचार करने के पश्चात् राजा ने कहा—वास्तव में यह कष्ट का ही विषय है कि यह स्वच्छ चित्त वाले महर्षि कुम्भ स्त्री हो गये ।२४। हे साधो ! आप तो सभी ज्ञातव्य विषय के ज्ञाता हैं और भावी को भी

पूर्णतया जानते हैं। इसलिये इस अवश्यंभावी नारीत्व की प्राप्ति पर खिन्न मत होओ।२५। कुम्भ बोला—हे राजन्! आप ठीक कहते हैं। अवश्यंभावी प्राप्त स्त्रीत्व का अब तो खेद छोड़कर निर्वाह करूँगा ही। क्योंकि भाग्य चक्र के उलङ्घन में कोई समर्थ नहीं हैं।२६। कुम्भ ने ऐसा निर्णय किया और खिन्नता को त्याग कर एक शय्या पर ही दोनों ने शयन किया।२७। इस प्रकार रात्रि में कुमारी धर्म का आचरण करती हुई चूडाला, दिन में कूम्भ रूप धारण किये पति के साथ वन में विचरण करती थी।२८। कैलाश, मन्दराचल, महेन्द्राचल, मेरु एवं सह्याद्रि आदि पर्वत-शिखरों पर योगबल से अस्खलित रूप से गमनागमन-रत अपने प्रिय मित्र रूपी पति के साथ पुष्पमालादि से अलंकृत होकर वह इच्छानुसार बिहार करने लगी।२९।

५१—चूडाला और शिखिध्वज का पुनर्बिबाह

ततः कतिपयेश्वेव दिवसेषु गतेषु तम्।
इदं प्रोवाच भर्तारं कुम्भरूपधरा सती ॥१
राजन् राजीवपत्राक्ष ममेदं वचन भृणु।
निशाया प्रत्यहं तावत् स्थत एवाऽहमंगना ॥२
तदिच्छाम्यंगनाधर्मं निपुणीकतुमीदृशम्।
भत्रे कस्मेचिदात्मानं विवाहेन ददाम्यहम् ॥३
तद्भवानेव मे भर्त्ता रोचते भुवनत्रये।
गृहाण मां विवाहेन भार्यात्वे निशि सर्वदा ॥४
इच्छानिच्छे फले त्यक्त्वा समन्तात्सर्ववस्तुषु।
वयं न सेच्छा नाऽनिच्छाः कुर्मस्तेनेदमीप्सितम्।
कृतेनाऽनेन कार्येण न शुभं नाऽशुभं सखे।
पश्यामि तन्महाबुद्धे यथेच्छसि तथा कुरु ॥६
यद्यै वं तन्महीपाल लग्नमद्यै व शोभनम्।
राकेयं श्रावणस्याऽस्य ह्यः सर्वं गणितं मया ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! इसके कुछ दिनों पश्चात् कुम्भरूपिणी चूडाला ने अपने पति शिखिध्वज से कहा ।१। हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाले राजन् ! मेरे वचनों को सुनो । मैं नित्य रात्रिकाल में स्त्री होकर ही अवस्थित रहता हूँ ।२। तब मैं यह इच्छा करता हूँ कि इस स्त्रीत्व को सफल ही बनाया जाय और इस उद्देश्य से अपने स्त्री देह को किसी पुरुष से विवाह करके उसे सौंप दूँ ।३। तीनों लोकों में मुझे आप ही ऐसे रुचिकर लग रहे हैं, जिन्हें पति रूप में वरण कर सकूँ। इसलिए आप रात्रि में विवाह द्वारा मुझे अपनी पत्नी बना लीजिये ।४। हमने सब वस्तु के प्रति इच्छा, अनिच्छा और उससे उत्पन्न होने वाले फलों का भी परित्याग कर दिया, इसलिये इस अभीष्ट कार्य के करने से हमारी कुछ हानि नहीं होगी ।५। राजा बोला—ठीक है, इस विवाह के होने से मैं शुभ अशुभ फल नहीं देखता । अतः हे महामते ! आपकी जो इच्छा हो वही करें ।६। कुम्भ ने कहा—हे राजन् ! यदि ऐसा है तो आज श्रावण की पूर्णिमा और शुभ लग्न है । मैं गणित द्वारा विवाह लग्न आदि को जान चुका हूँ ।७।

रात्रावद्योदिते चन्द्रे परिपूर्णकलामले ।
जन्यत्रो नौ महाबाहो द्वयोरेव भविष्यति ॥८
इत्युक्त्वा कुम्भ उत्थाय सहतेन महीभृता ।
कुसुमावचयं चक्रे तथा रत्नादिसञ्चयम् ॥९
कल्पवृक्षदुकूलानि परिधाय सितानि तौ ।
फलानि भुक्त्वा जन्यत्रस्थाममाययतुः क्रमात् ॥१०
एतावताऽथ कालेन वधुत्वं कुम्भ आययौ ।
घनस्तनभराक्रान्तो वभूवाऽऽशु विलासवान् ॥११
अहं मदनिका नाम भार्याऽस्मि तव मानद ।
पादयोस्ते प्रणामोऽयं सस्नेह क्रियते मया ॥१२
तत्र पुष्पलताजालैः काण्डं प्रति शिलाङ्कितैः ।
मुक्ताकुसुमजालानां प्रकरैः स्तवकोपमैः ॥१३

चतुर्दिक्कं चतुर्भिश्च नालिकेरमहाफलैः ।
पूर्णकुम्भैस्तया गंगावारिपूर्णैः प्रकल्पितैः ॥१४

हे महा बाहो ! आज रात्रि में सभी कलाओं से युक्त स्वच्छ चन्द्रमा के उदय होने पर हम दोनों का विवाह होगा ।८। यह कहकर उठता हुआ कुम्भ राजा के साथ पुष्प चयन और रत्नादि एकत्र करने लगा ।९। फिर कल्पवृक्ष से बने श्वेत सुन्दर वस्त्रों को धारण कर और कल्प-वृक्ष के ही फल खाकर वे दोनों शास्त्रोक्त से विवाह वेदी की ओर बढ़े ।१०। इसी अवधि में मुनिवर कुम्भ वधु बन गये, घने स्तनमण्डल के भार से परिपूर्ण वह विलासमय हो गये ।११। तब वह रूपधारिणी बोली—हे मानद ! अब मैं मकनिका नाम वाली आपकी पत्नी हूँ और आपके चरणी में परम स्नेह पूर्वक प्रणाम करती हूँ ।१२। वसिष्ठजी बोले हे राघव ! उसके पश्चात् उन दोनों ने वेदी के स्तम्भों को पुष्प लताओं से सुसज्जित किया । उन लताओं में हीरे, मानक आदि नवरत्नों के फल गुच्छ भी लटकाये गये थे । उसकी चारों दिशाओं में नारियल और गङ्गाजल से युक्त चार कुम्भ रखे हुये थे ।१३–१४।

ज्वालयामासतुस्तस्या मज्ये चन्दनदारुभिः ।
ज्वनं ज्वालितज्वालं दक्षिणस्थं प्रदक्षिणम् ॥१५
पूर्वाभिमुखमेवाऽग्नेरग्रे पल्लवविष्टरे ।
नियोज्य दम्पती कान्तौ तयोर्विविशतुः स्वयम् ॥१६
स हुत्वा तिललाजानि पावकाय शिखिध्वजः ।
उत्थायोत्थाय कान्तां स पाणिभ्यां क्वायमाददे ॥१७
अन्योन्यं शोभमानौ तौ भवाविवि वने शिवौ ।
चक्रतुर्दम्पती तस्य पावकस्य प्रदक्षिणम् ॥१८
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा लाजांस्त्यक्तवाऽथ वह्नये ।
भार्यावरौ समं तुष्टौ करौ तत्यजतुः क्रमात् ॥१९
स्मयमानमुखौकान्तौ चन्द्राविव नवोदितौ ।
पूर्वोपरचिते पुष्पल्तपे विवशतुर्नवे ॥२०

तैस्तैर्मिथः प्रणयपेशलवाग्विलासै-
स्तत्कालकार्यसुभगैः प्रणयोपचारैः ।
सत्कान्तयोर्नवनवेन तयोः सुखेन
दीर्घामुहुर्त इव सा रजनी जगाम ॥१२

फिर उन्होंने वेदी के मध्य अग्नि-स्थान कर चन्दन काष्ठ से उसे प्रज्वलित किया और उसे दाहिनी ओर लेकर प्रदक्षिणा की। फिर वे कमनीय दम्पत्ति पल्लवों के आसन दक्षिण की ओर मुख करके बैठ गये ।१४।१६। तब राजा शिखिध्वज ने उस अग्नि में तिल और लाजा का होम करते हुये बारम्बार उटकर अपने हाथों से उस रमणीया का पाणिग्रहण किया ।१७। फिर बन में शिव-पार्वती के समान सुशोभित मङ्गल रूप दम्पति ने उठकर अग्नि की प्रदक्षिणा की ।१७। अग्नि की तीन प्रदिक्षणाएँ करके उन्होंने लाजा का होम किया । फिर इस विवाह क्रम से परम तुष्ट हुये वर-वधु ने परस्पर पकड़े हुये हाथ पृथक् कर लिये ।१८ उस समय दोनों के मुख ऐसे कान्तिमय लग रहे थे जैसे दो नव चन्द्रमा उदित हुये हों । इसके बाद वे दोनों, पुष्पों की पूर्व निर्मित शैय्या पर शयन करने के लिये चले गये ।२०। फिर परस्पर में अनिर्वचनीय प्रेममयी वाणी के विविध विलासों और विभिन्न प्रणयोपचारों तथा नवीन समागमादि सुख से परिपूर्ण वह दीर्घ रात्री एक मुहुर्त्त के समान व्यतीत हो गई ।२१।

५२—माया द्वारा इन्द्र दर्शन

अथ सूर्याख्यरंगेण रञ्जिते भुवनोदरे ।
शिखिध्वजांगना प्रातर्मदनी कुम्भतां ययौ ॥१
एवं महेन्द्रदर्या तावु भौ कुम्भशिखध्वजौ ।
स्वयं विवाहिताविष्टौ सम्मन्नौ देव्रदम्पती ॥२
ततो यातेषु मासेषु शनैः कतिपयेषु सा ।
चूडाला चिन्तयामाम देवपुत्रकरूपिणी ॥३

सुरूपभोगभारेण परोक्षेऽहं शिखिध्वजम् ।
मा कदाचन चेतोऽस्य भोगेषु रतिमेष्यति ।४
इति सञ्चिन्त्य चूडाला मायया विपिनावनौ ।
आगतं दर्शयामास ससुराप्सरसं हरिम् ॥५
इन्द्रमभ्यागतं दृष्ट्वा परिवारसमन्वितम् ।
यथावत् पूजयामास वनसंस्थः शिखिध्वजः ॥६
आत्मना किं कृता दूराभ्यागमकदर्थना ।
देवराज यथा तन्मे प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! इस प्रकार रात्रि के व्यतीत होने पर जब भास्कर के उदय होने की लाली ने सम्पूर्ण लोकों को रंजित कर दिया, तब राजा शिखिध्वज की वह पत्नी पुनः कुम्भ रूप हो गई ।१। इस प्रकार कुम्भ ऋषि और राजा शिखिध्वज ने स्वयं ही विवाह कर लिया और देवताओं जैसे ऐश्वर्यों से परिपूर्ण होकर देवदम्पत्ति हो गए ।२। इसके पश्चात् शनैः-शनैः कुछ मास बीतने पर देवपुत्र रूपिणी चूडाला इस प्रकार विचार करने लगी ।३। अब मैं नाना प्रकार के सुरम्य उपभोगों को प्रस्तुत करके शिखिध्वज की परीक्षा लूँगी । इस प्रकार जब इसकी अवासक्ति दृढ़ हो जायगी तब यह भोगों को नितान्त छोड़ देगा ।४। ऐसा विचार कर उसने उस अरण्यभूमि में अपनी माया के द्वारा देवताओं और अप्सराओं सहित आते हुए इन्द्र का दिग्दर्शन कराया ।५। सपरिवार आये हुये इन्द्र को देखते ही उस वनबासी राजा ने यथाविधि अर्घ्य, पाद्य आदि से उनका पूजन किया ।६। फिर राजा बोला हे देवराज ! आपने स्वयं इतनी दूर से यहाँ आने का कष्ट क्यों किया है ? आप अपने यहाँ आने का कारण प्रसन्नता पूर्वक बताइये ।७।

इमे वयमिहाऽऽयातास्त्वद्गुणातिशयेन खात् ।
हृदि नग्नेन सूत्रेण खगा वनगता इव ॥८
उत्तिष्ठ स्वर्गमागच्छ तत्र सर्वे त्वदुन्मुखाः ।
त्वद्गुण श्रवणाश्चर्याः स्थिता देवागणागणाः ॥९

सर्वं स्वर्गसमाचारं वेदिम् देवाधिनायक ।
किन्तु सर्वत्र मे स्वर्गो नितती न तु कुत्रचित् ॥१०
साधो विदितमेद्यानां परिपूर्णधियां समम् ।
सज्जनाचरितं युक्तं मन्ये भोगोपसेवनम् ॥११
देवेशे प्रोक्तवत्येवं तूष्णीमेव स्थिते नृपे ।
किमितो नापयाम्येषत्व मिति प्रोक्तवान् हरिः ॥१२
नाऽहमद्य व कालेन वदतीति शिखिध्वजे ।
कल्याण तेऽस्तु कुम्भेति वदन्नन्तर्धिमययौ ॥१३
तद्देववृन्दमखिलं त्रिदशयुक्तं
तत्र क्षणादलमदृश्यमभूदद्वितीयम् ।
कल्लोलराशिरिव वारिनिधौ प्रशान्ते
वासे स्फुरन्मकरछेनफणीन्द्रवृन्द्रः ॥१४

इन्द्र ने उत्तर दिया—हे राजन् ! आपके हृदयस्थ सद्गुणों के आकर्षण से ही हम वशीभूत हुये वन पक्षियों के समान यहाँ चले आये हैं ।८। अब आप उठकर स्वर्ग चलिये । वहाँ आपके गुणों की प्रशंसा सुनकर विस्मय को प्राप्त सब देवगण और देवांगनाऐं आपकी प्रतीक्षा में तत्पर हैं ।९। राजा बोला—हे देवाधिनायक ! मैं तो सभी स्थानों को स्वर्ग के समान ही सुखप्रद मानता हूँ । क्योंकि जो भूमानन्दात्मज परम आत्मा है, वही सर्व है उसकी सत्ता सर्वत्र है, अन्यत्र कहीं भी मेरे लिये स्वर्ग नहीं ।१०। इन्द्र बोले—हे साथी ! जिन्हें ज्ञातव्य तत्व का ज्ञान हो गया है और जो परिपूर्ण बुद्धि वाले हो गये हैं उनके द्वारा भोगों का उपभोग करना या न करना समान ही है । ऐसा होने पर भी अपने प्रारब्ध का क्षय करने के लिए सज्जनों ने विषयों का उपभोग किया ही है, मैं भी इसे उचित मानता हूँ ।११। यद्यपि इन्द्र ने पुनः राजा से उसी प्रकार कहा परन्तु स्वर्गगमन में अनिच्छुक राजा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया तब उसे मौन बैठा देखकर इन्द्र ने खेद सहित कहा—हे राजन् ! जब आप स्वर्ग-गमन में निरपेक्ष ही हैं, तो मुझे यहाँ से चला क्यों नहीं जाना

चाहिये। क्योंकि मेरे आगमन का प्रयोजन तो आपसे सिद्ध हो नहीं रहा है।१२। तदनन्तर राजा शिखिध्वज कह ही रहे थे कि मैं आज तो स्वर्ग नहीं चल सकता, तभी हे राजन् ! आपका शीघ्र कल्याण हो, कहते हुये इन्द्र अन्तर्हित हो गये।१३। इन्द्र के अन्तर्द्धान होते ही उनके साथ आये हुये देवतागण भी इस प्रकार अन्तर्हित हो गए जैसे कि वायु के रुकने पर समुद्रस्थ मगर, सर्प, फेन आदि को व्याकुल करने वाली तरंगें अन्तर्हित हो जाती है।१४।

५३—माया द्वारा विचित्र दृश्यों का प्राकट्य

तां मायां शममानीय चूडाला समचिन्ययत् ।
दिष्टया मोगेच्छया नाऽयं हृगते वसुधाधिपः ॥१
भूय एव प्रपञ्चेन विमृशास्येव सादरम् ।
रागद्वेषप्रधानेन केनचिद्बुद्धिहारिणा ॥२
इति सञ्चिन्त्य सा रात्राविन्दावभ्युदिते वने ।
ग्रहीतमंगनारूपं कान्ता मदनिका सति ॥३
वाते वहति फुल्लाढ्ये मधुरामोदमांसले ।
सन्ध्याजप्यपरे नद्यास्तीपसंस्थे शिखिध्वजे ॥४
सन्तानकलतागेहं नीरन्ध्रैः पुष्पगुद्याछकैः ।
शुद्धान्तं वनदेवीनां प्रविवेश मदान्विता ॥५
तत्र सङ्कलिपते पुष्पशयने माल्यमालिता ।
कण्ठे सङ्कलिपतं कान्तं खिगमादय संस्थिता ॥६
अगत्याऽन्विण्य कुञ्जत्स प्रददर्श शिखिध्वजः ।
लतागेह मदनिकां कण्ठे खिगं मनोहरम् ॥७

वसिष्ठजी बोले—राम ! इन्द्रागमन की माया का गमन करने के पश्चात् चूडाला ने सोचा कि यह राजा विषय-भोग की ओर आकृष्ट नहीं है।१। अब पुनः मैं राग द्वेष-प्रधान एवं बुद्धि को क्षुब्ध करने वाली अन्य माया प्रपंच की रचना द्वारा सादर परीक्षा लेती हूँ।२। यह निश्चय कर वह रात्रिकाल में चन्द्रोदय के पश्चात् जब अपने मदनिका

रूप में परिवर्तित हुई ।३। तब विकसित अरण्य-पुष्पों के स्पर्श से सुगन्धित हुई पर्वतीय वायु प्रवाहमान न हुई । उस समय शिखिध्वज सान्ध्य जप में भागीरथी के तट पर स्थित थे । तभी सघन पुष्प गुच्छों से समन्वित देवताओं से निर्मित सघन कुंज में मालाओं से अलंकृत वह काममयी मदनिका प्रविष्ट हुई और अपने सङ्कल्प से प्रकट की हुई पुष्पशय्या पर माया-रचित एक युवक को जो कि दाढ़ी मूँछ विहीन तथा शिखिध्वज से अधिक मनोहर प्रतीत होता था, अपने वक्ष से उसे लगाकर लेट गई ।४-६। इधर जप पूर्ण होने पर सन्ध्या स्थान से उठकर राजा शिखिध्वज मदनकिा को खोजता हुआ उस कुंज लता में पहुँचा, जहाँ उसे जार पुरुष के कण्ठ से लगे हुए देखा ।७।

तदालोऽयाऽविकारेण चेतसाऽलं तुतोष सः ।
अहो सुखं स्थितौ खिगांवित्या स शिखिध्वजः ॥८
तिष्ठतांऽग यथाकामं सुखंखिगौ यथास्थितम् ।
विघ्नंमाकपवं भीतावित्युक्त्वा निर्जगाम सः ॥९
ततो मुहूर्तमात्रेण प्रपंच तमुपेक्ष्य सा ।
निर्ययौ दर्शयन्ती स्वं रतिफुल्लाकुलं वपुः ॥१०
उपविष्टं ददर्शैनं नृप हेम शिलातले ।
समाधिसंल्थमेकान्ते मनाग्विकसितेक्षणम् ॥११
तं प्रदेशपुपागम्यि लज्जावनमितानना ।
तूष्णीमासीत् क्षणं खिन्ना म्लाना मदनिकांऽगना ॥१२
क्षणाच्छिखिध्वजो ध्यानाद्विरतस्तामुवाच ह ।
अत्यन्तमधुरं वाक्यमिदमक्षुब्धया धिया ॥१३

उसे इस प्रकार देख कर क्रोध रूपी विचार से शून्य अन्तःकरण वाले राजा ने सन्तोष पूर्वक यही सोचा कि अहो यह दोनों इस तरह कैसे सुख में निमग्न है ।८। अकस्मात अपने आने के कारण उन दोनों को भयभीत हुए देख कर राजा बोला—तुम दोनों जिस प्रकार सुख पर्वक अवस्थित हो, वैसे ही रहो, मैं कोई विघ्न नहीं डालता । यह कहकर राजा वहाँ से चला गया ।९। फिर मुहूर्त्त मात्र में उस माया दृश्य

का शमन कर चूडाला रति कर्म से प्रफुल्लित हुये अपने शरीर को दिखलाती हुई लता कुञ्ज से निकली ।१०। तब उसने राजा को एक एकान्त हेमशिला पर अधमुदे नेत्रों से समाधि लगाये बैठे हुये देखा ।११। यहाँ जाकर वह लज्जा से नीचा मुख किये हुये क्षण भर मौन खड़ी रही । उसका मुख अपने कर्म से म्लान और खिन्न हो रहा था ।१२। क्षण भर बाद ही राजा शिखिध्वज ध्यान छोड़कर उठा और क्षोभ रहित अन्तःकरण से मदनिका से मधुर वचन कहने लगा ।१३।

तान्विं किं शीघ्रमेव त्वं विघ्नतानन्दमागता ।
आनन्दायैव भूतानि यतन्ते यानि कानिचित् ॥१४
अहमेतेन चार्थेन नोद्वेगं यामि मानिनि ।
यद्यदिष्टतमं लोके तत्तदेवं विजानता ॥१५
अबला स्त्री तथा बाला मूढाऽहमपराधिनी ।
क्षन्तुमर्हसि नाथ त्वं क्षमवन्तो हि साधवः ॥१६
मन्युर्मम न बालेऽन्तर्विद्यते ख इव द्रुतः ।
केवल साधुनिन्द्यत्वान्नेच्छामि त्वामहं वधूम ॥१७
सुहृत्वेन वनास्तेषु पूर्ववत् सुखमंगने ।
वीतरागतया नित्यं सममेव रमावहे ॥१८

हे तन्वि ! क्या तुम्हारे आनन्द में शीघ्र ही कोई बाधक हुआ है तुम उस पर आनन्द का पूर्ण उपभोग तो कर सकी न ? क्योंकि आनन्द के लिये ही सब जीव विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों में यत्नशील रहते हैं ।१४। हे मानिनी ! तुम्हारे इस कार्य से मैं किसी प्रकार भी उद्वेलित नहीं हूँ । क्योंकि संसार की वस्तुस्थिति के ज्ञाता यह मानते हैं कि संसार में सभी इष्टतम वस्तुयें तुम्हारे समान पर (उपभोग्य) ही हैं ।१५। चूडाला बोली—हे नाथ ! मैं मूर्ख बाला अबला एवं घोर अपराधिनी हूँ, आप मुझे क्षमा कीजिये, क्योंकि साधुजन तो क्षमावान् ही होते हैं ।१६। राजा ने कहा—हे बाले ! मेरे हृदय में तुम्हारे इस कार्य से आकाश वृक्ष के समान किंचित् भी क्रोध नहीं है । परन्तु साधुजनों की निन्दा के भय से मैं तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में नहीं रखना चाहता ।१७। हे

अङ्गने ! अब हम दोनों पर मित्र रूप से पूर्ववत् राग रहित होकर इन वन प्रान्तों में सुख पूर्वक विहार करेंगे ।१८।

एवं समतया तत्र स्थिते तस्मिञ्छिखिध्वजे ।
चूडाला चिन्तयामास सत्सत्वेनोदिताशया ॥१९
अहो वतपरं साम्यं भगवानयमागतः ।
वीतरागतयाऽक्रोधो जीवन्मुक्तोऽवतिष्ठते ॥२०
आत्मवृत्तान्तमखिलं तमेनं स्मारयाम्यहम् ।
कुम्भरूपमिदंत्यक्त्वा चूडालेव भवाम्यहम् ॥२१
इति सञ्चिन्त्य चूडालावपुरक्षता ।
इति सञ्चिन्त्य चूडालावपुरक्षता ।
दर्शयामास तत्राऽऽशु त्यक्त्वा मदनिकावपुः ॥२२
समुदितामिव माधवपद्मिनी-
मुपतां व भूमितलाच्छ्रियम् ।
प्रकटितामिव रत्नसमुद्गका-
त्परिददर्श निजां दयितां नृपः ॥२३

वसिष्ठ बोले—हे राम ! राजा शिखिध्वज को इस प्रकार अविकारी रूप में देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई चूडाला विचार करने लगी ।१९। अहो, मेरे स्वामी राजा शिखिध्वज को समभाव की प्राप्ति हो चुकी है । वीत-राग होने के कारण इनके हृदय में किंचित् भी क्रोध नहीं रहा । अब वह जीवन्मुक्त रूप में अवस्थित हैं ।२०। यही समय है कि इन्हें अब अपने पूर्व वृत्तान्त का स्मरण कराऊँ । इसलिए अपने कुम्भ रूप त्यागकर मैं चूडाला रूप में स्थित होती हूँ ।२१। यह निश्चित कर चूडाला ने अपने मदनिका रूपी देह का त्यागकर तुरन्त ही राजा को अपना चूडाला रूप प्रदर्शित किया ।२२। वसन्तकालीन विकसित कमलिनी के समान और सीता रूप से भी गर्भ में प्रविष्ट होकर पुनः निकली हुई लक्ष्मी के समान एवं पिटारी से निकली हुई रत्नप्रभा के समान उस प्रकट हुई अपनी भार्या चूडाला को राजा शिखिध्वज ने देखा ।२३।

५४–अवशिष्ट भोगों का उपभोग

अथ तां दयितां दृष्टवा विस्मयोत्फुल्ल लोचनः।
शिखध्वज उवाचेदमाश्चर्याकुलया गिरा ॥१
का त्वमुत्पलपत्राक्षि कुतः प्राप्ताऽसि सुन्दर ।
किमिहासि कियत्कालं किमर्थमिह तिष्ठसि ॥२
अंगैन व्यवहारेण स्मितेनाऽनुयेन च ।
मम जायाविलासेन तत्कलेवोपलक्ष्यसे ॥३
एवमेव प्रभो विद्धि चूडालाऽस्मि न संशयः।
अकृतिमेढ देहेन लब्धोऽस्यद्य मया स्वयम् ॥४
कुम्भादिदेहनिर्माणैस्त्वां बोधयितुमेव मे ।
प्रपञ्चः शतशाखत्वमिह यातो वनान्तरे ॥५
अथो विदितवेद्यस्त्वं ध्यानेनैतदखण्डितम् ।
सर्वं पश्यसि तत्वज्ञ ध्यानेनाऽऽश्वलोनयः ।:६
अथ चूडालयेत्युक्तो बद्ध्वा पारिकरं नृपः ।
आत्मोदन्तं विशेषेण ध्यानेनाऽमलमैक्षत ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! अपनी पूर्व पत्नी को देखकर विस्मित हुये राजा शिखिध्वज अपने विस्फारित नेत्रों से देखते हुए कहने लगे। हे कमलपत्राक्षी ! हे सुन्दरी ! तुम कौन हो, कहाँ से आई हो ? क्या तुम ही कुम्भादि रूपों से यहाँ रहती हो ? यहाँ कब तक और किस कार्य से रुकी हुई हो ? ।२। अङ्ग संकलनादि व्यवहार से स्मितों से तथा अनुनय पूर्ण वाणी से ऐसी प्रतीत होती हो जसे मेरी पत्नी चूडाला है। ।३। चूडाला बोली—हे प्रभो ! आप इसी प्रकार जानिए निःसन्देह मैं चूडाला ही हूँ। मैंने अकृत्रिम देह से ही आज आपको प्राप्त कर लिया है ।४। इस वन भूमि में कुम्भ आदि के रूप में जो सैंकड़ों शाखा—प्रशाखाओं वाले प्रपञ्च रूप में मैंने माया प्रकट की वेह सब आपके प्रबोध के लिए ही रची थी ।५। हे राजन् ! अब तो आप ज्ञातव्य को जान चुके हैं, अतः पूर्वोक्त योग धारण से देखने में पूर्ण समर्थ हैं। हे

तत्वज्ञ ! आप ध्यान लगाकर यह सब देख लीजिये ।६। चूडाला के उस प्रकार कहने पर योग धारण के विशिष्ट ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण बातें जान लीं ।७।

धनानन्दक्षणं स्थित्वा तूष्णी प्रणयतेशलम् ।
कान्तां चिबुकसंलग्नकरः प्रोवाच भूपतिः ॥८
कियत्प्रमाणस्तन्वङ्ग्या त्वया वालेन्दुमुग्धया ।
अनुभूतश्चिरं क्लेशो भर्तुर्स्येन दारुणः ॥९
सखा भ्राता सुहृद्भृत्यो गुरुर्मित्रं धनं सुखम् ।
शास्त्रमायतनं दासः सर्वं भर्तु कुलांगनाः ॥१०
सर्वदा सर्व यत्नेन पूजनीयः कुलांगनाः ।
लोकद्वयसुखं सम्यक्सर्वं यासु प्रतिष्ठितम् ॥११
भूयो भूयो भूशमहं त्वदर्थं दुःखिताऽभवम् ॥१२
तेन त्वदवबोधात्मा स्वार्थ एवोपपादितः ।
मया तदत्र किं देव करोषि मम गौरवम् ॥१३
वुध्यसे कान्त विश्रान्तो जगज्जालतटे विभो
अद्य प्रोक्तनं किञ्चिन्मोहं समनुपश्यसि ॥१४
इदं करोमि नेदं तु प्राप्नोमीदमिति स्थितम् ।
अन्तर्हंससि तां कृच्चिदृशापेलवतां धियः ॥१५

फिर अधिक आनन्द में डूबे हुए राजा चूडाला की ठोड़ी पर हाथ लगाकर प्रेम से मृदु वाणी में बोले ।८। हे सूक्ष्म अङ्ग वाली तुम शिखर चन्द्र के समान अत्यन्त मुग्ध हो तुम्हें अपने पति के कारण चिरकाल तक कितना घोर कष्ट सहन करना पड़ा ।९। पति के लिए ऐसी नारियाँ ही सखा, भ्राता, सुहृद, भृत्य, गुरु मित्र, धन, सुख, शास्त्र, गृह, दास आदि सभी कुछ होती हैं ।१०। ऐसी कुलांगनाऐं सदैव सभी प्रकार के प्रयत्नों से निरन्तर पूजनीया होती हैं । क्योंकि दोनों लोकों का सम्पूर्ण सुख इन स्त्रियों में ही प्रतिष्ठत है । ११ । चूडाला बोली—हे देव ! शुष्क क्रिया के जाल में फँसे हुए और

व्याकुल आत्मा वाले आपको वारम्बार देखती हुई मैं अत्यन्त दुःखित हो रही थी ।१२। इसलिए हे देव ! आपको तत्वबोध देकर मैंने ही अपने स्वार्थ की सिद्धि की है । इसमें मेरे गौरव की वृद्धि तो आप व्यर्थ ही कर रहे हैं ।१३। हे विभो ! अब आप इस जगज्जाल के तट पर पहुँचकर विश्रान्ति को प्राप्त हो गये हैं । आज आप अपना व्रत, उपवास आदि मोह क्या देखते हैं ? ।१४। इसे करूँ, इसे न करूँ, इसे प्राप्त करूँ— इस प्रकार की बुद्धि को अस्थिरता वाली स्थिति पर आज आप मन में हँसते हैं या नहीं ? ।१५।

सर्वत्रैक्यावबोधेन मौर्ख्यक्षयभुवान्विताः ।
निरिच्छास्तावदाकाशविशदाः संस्थिता वयम् ॥१६
राज्येन साम्प्रतेनेमं कालं नीत्वा क्रमेण वै ।
विदेहतां प्रयास्यामः प्रभो कालेन केनचित् ॥१७
युक्तमुक्तं विशालाक्षि त्वयैतत्समया धिया ।
को वार्थः किल राज्यस्य ग्रहे त्यागेऽपि वा भवेत् ॥१८
सुखदुःखदशाचिन्तां त्यक्त्वा विगतमत्सरम् ।
यथासंस्थानमेवेमौ तिष्ठावः स्वस्थतां गतौ ॥१९
इति तत्र कथालापकथनेन तयोर्द्वतोः ।
कामयोश्चिरदम्पत्योर्वासरस्तनुतां ययौ ॥२०
अथोत्थाय दिनाचारं यथाप्राप्तमनिन्दितौ ।
सोत्कण्ठावप्यनुत्कण्ठौ चक्रतुः कार्यकोविदौ ॥२१
स्वर्गसिद्धिमनादृत्य तस्थतुः पूर्णचेतसौ ।
एकस्मिन्नेव शयने तैस्तैः प्रणयचेष्टितै ।
सा व्यतीयाय रजनी तयोर्जीवद्विमुक्तयोः ॥२२
तद्भोगमोक्षसुखमुत्तमयोः स्वयं स-
माशंसतोः प्रणयवाक्यविलासगर्भम् ।
उत्कण्ठतां प्रणयिनोर्धियमानयन्ती
दीर्घा मुहूर्तवदसौ रजनी जगाम ॥२३

हे प्रभो ! अब अज्ञान-नाशक सर्वत्र ऐक्य बोध से युक्त हम सब प्रकार की इच्छाओं से विमुक्त और आकाश के समान विशद रूप में अवस्थित हैं ।१६। हे प्रभो ! अब हमारी जो अवशिष्ट आयु हैं, उसे राज्य के उपभोग द्वारा व्यतीत करके, समय आने पर हम विदेहत्व को प्राप्त होंगे ।१७। शिखिध्वज बोले—हे विशाल नयन वाली ! तुमने सम बुद्धि द्वारा जो कुछ कहा, यह यथार्थ है, क्योंकि राज्य ग्रहण करने अथवा त्याग देने में भी आत्मा का क्या उपकार होता है ? ।१८। सुख दुःख प्राप्ति विषयक चिन्ता और मात्सर्य से विहीन होकर हम जिस प्रकार अवस्थित हैं, उसी प्रकार अपने रूप में निष्ठावान हो जांय ।१९। इस प्रकार से वार्तालाप में ही उन दोनों का दिन प्रायः व्यतीत हो चला तब उन राग-रहित दोनों ने उठकर सांध्य कर्म किया। अभीष्ट भोग के लिए उत्कण्ठित होते हुए भी वे वासना रहित होने के कारण उत्कण्ठा से निर्मुक्त और कब क्या करता है, इसके ज्ञाता थे। फिर स्वर्ग की प्राप्ति का आदर न करने वाले उन दम्पत्ति ने एक साथ शयन किया। उनको वह रात्रि प्रणय चेष्टाओं में सुखपूर्वक व्यतीत हुई। पारस्परिक अनुभव से सिद्ध भोग और मोक्षरूपी सुख की प्रणयात्मक वाणी-विलास से युक्त प्रशंसा करते हुए उस प्रेमी दम्पत्ति में उत्कण्ठा जगाने वाली यह दीर्घ रात्रि एक मुहूर्त के समान ही बीत गई ।२०—२३।

५५—भोगोपभोग के पश्चात् ही मुक्ति

ततः समुदिते सूर्ये वितमस्यम्बरे स्थिते ।
समुद्गकादिब जगन्मणौ तस्मिन् विनिर्गते ॥१
विकसत्यरुणोपान्ते चक्षुषीवाऽम्बुजाकरे ।
आचारेष्विव लोकेषु प्रसृतेष्वर्करश्मिषु ॥२
दम्पति तौ समुत्थाय कृतसन्ध्याक्रमौ स्थिद्धतौ ।
पत्रासनै मृदुस्निग्धे कान्तौ काञ्चनकन्दरे ॥३
अथोत्थायाऽत्र चूडाला रत्नकुम्भंपूरः स्थितम् ।
कान्ता सङ्कल्पयामासपूर्णं सप्ताब्धिवारिभिः ॥४

तेन मंगलकुम्भेन तं पूर्वाभिमुखं स्थितम् ।
भार्या भर्तारमेकान्ते स्वराच्येऽभिषिषेव सा ॥५
संकल्पोप गते हैमे स्वभिक्तं स्वविष्टरे ।
स्थितं प्रोवाच तन्वी सा चूडाला देवरूपिणी ॥६
केवलं मौनमुत्सृज्य तेजः शान्तमिद प्रभो ।
अष्ढानां लोकपालानां तेजस्त्वभतुं महसि ॥७

वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! रात्रि के बीतने पर अन्धकार रहित आकाश में पिटारी से निकले हुए जगत्प्रकाशक मणि के समान भगवान भास्कर के उदित होने पर लाल लोचनों के समान कमल वन खिल उठा और लोकों में प्रसारित आचारों के समान सूर्य रश्मियों के फैलने पर शिखिध्वज और चूडाला सन्ध्या कर्म करने के पश्चात् स्वर्ण गुहा से मृदु पर्णासन पर जाकर बैठ गये ।१-३। फिर चूडाला ने अपने सामने रखे हुए सात समुद्रों के जल से भरे हुए रत्नमय कलश को राज्याभिषेक के लिए निश्चित किया ।४। चूडाला ने उस पूर्वाभिमुख बैठे हुए अपने पति का जल से परिपूर्ण उस मङ्गल कलश से अपने राज्य पर अभिषिक्त किया ।५।सङ्कल्पमात्र से वहाँ उपस्थित हुये स्वर्ण सिंहासन पर अभिषिक्त हुए अपने पति से वह देवरूपिणी तन्वंगी चूडाला बोली ।६। हे प्रभो ! यह तेज तो केवल मुनियों के योग्य ही है, अब इसका परित्याग करके आठों लोकपालों के तेज को आप धारण करो ।७।

चूडालयेति सम्प्रोक्तोवने राजा शिखिध्वजः ।
वदन्नेवं करामीति महाराजत्वमाययौ ॥८
अथ प्रतीहार पदे विष्ठन्तीमह मानिनीम ।
अद्य देवीपदे राज्ञी त्वां करोम्यभिषेकिनीम् ॥९
अभिषिक्तां नृपः कृत्वा स तामाह निजां प्रियाम् ॥१०
प्रिये कमलपत्राक्षि क्षणात्सङ्कल्पसम्भव ।
महाविभवमृद्दामसैन्यमाहतु मर्हसि ॥११

इति कान्तवचःश्रुत्वा चूडाला वरवर्णिनी
सैन्यं सङ्कल्पयामास प्रावृड्घनमिवोद्भटम् ॥१२
सैन्यं ददृशतुस्तत्तौ वाजिवारसंकुलम् ।
पताकापूरिताकाशं नीरन्ध्रीकृतकाननम् ॥१३
तूर्यारध्वनच्छैलगुहागहनकोटरम् ।
मौलिरत्नमोद्योतविचूर्णितमः पटम् ॥१४

वन में इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने वह कहते हुए कि अच्छा यही करता हूँ महाराज स्वरूप को धारण किया ।८। फिर जो प्रतीहार का कार्य था उसके अभाव में राज्य ने उसकी स्वयं पूर्ति करते हुये उस मानिनी ने कहा हे देव ! मैं तुम्हें महारानी के पद पर अभिषक्त करता हूँ ।९। यह कहकर राजा ने उस सरोवर में स्नान कराया और महारानी के पद पर अभिषक्त किया । फिर वह अपनी प्रिया से बोला—हे कम-लाक्षि ! तुम योग-सिद्धि के द्वारा सत्य सङ्कल्प से विविध अलङ्कारों शस्त्रास्त्रों और सम्पूर्ण साज-सज्जा से सम्पन्न विशाल सेना उत्पन्न करने में समर्थ हो ।११। अपने कान्त का यह वचन सुनकर उस वरवर्णिन चूडाला ने वर्षा कालीन मेघ के समान युद्धोदभट सेना का सङ्कल्प किया ।१२। तब गज और अश्वों से परिपूर्ण आकाश पाताल को एक कर देने वाला सम्पूर्ण वन उपवन को शून्य कर देने वाली विशाल सेना दोनों को दिखाई दी ।१३। उस सेना के तूर्य आदि शब्दों से गिरि गुफाएँ और गहन कोटर प्रतिध्वनित हो रहे थे । जिसकी मस्तक मणियों के प्रकाश से अन्धकार समूह भी विचूर्ण हो गया था ।१४।

तत्र गन्धद्विपवरे कृतपार्थिवमण्डले ।
रक्षिते हृष्टसामन्तैरारूडो नृपदम्पती ॥१५
तस्मान्महेन्द्र शैलेन्द्रच्चलितः स महीपतिः ।
पति पश्यान्गरीन्देशान्नदीग्रामान्सांजंगलान ॥१६
दर्शयन् स्वप्रियायास्तमात्मवृत्तानुतसञ्चयम् ।
प्रागल्पेनैव कालेन स्वां पुरीं स्वगंशोभनाम् ॥१७

तत्र ते तस्य सामन्तास्त्वदागमनमादृताः ।
विविदुर्जयशब्देन निर्जग्मुश्चोदिताशयाः ॥१८
परोत्सवं भृंश कृत्वा दिनिसप्तकमुत्तमम् ।
अकरोद्राजकार्याणि स्वानि स्वान्तःपुरे नृपः ॥१९
दशवर्षसहस्राणि राज्य कृत्वा महीतले ।
सह चूडालया राम विरतो देहधारणात् ॥२०
भुक्त्वा भोगाननेकान् भुवि सकलमहीपालचूड़ामणित्वे ।
स्थित्वा वै दीर्घकालं परममृतपदं प्राप्तवान् सत्वशेषः ।
एवं रामाऽऽगतं त्वं प्रकृतमनुसरन् कार्यजातं विशोक-
स्तिष्ठोत्तिष्ठ स्वयं वा प्रसभनुभवम् भोगमोक्षदिलक्ष्मीः ॥२१

राजाओं के मण्डलों से युक्त उस सेना में जिसके मन्दगन्ध को अन्य गजराज भी सहन करने में समर्थ नहीं थे, ऐसे गजराज पर वह राज दम्पति आरूढ़ हुए ।१५। तब उस महेन्द्र पर्वत से वह महीपति चल दिया। मार्ग में पर्वतों, प्रान्तों, नदियों, वनों और ग्रामों को देखते हुये तथा राज्य छोड़कर आने पर जो घटनायें घटीं उन्हें अपनी प्रिय भार्या को दिखाते हुये उस राजा ने अपनी स्वर्गोपम सुन्दर नगरी में शीघ्र ही प्रवेश किया ।१६-१७। ज्योंही उसके सम्मानित सामन्तों को उस घोष से उनके आगमन का ज्ञान हुआ, त्योंही वे उत्कण्ठा पूर्वक उसके स्वागतार्थ बाहर निकले ।१८। फिर सात दिनों तक नगर में महोत्सव मनवाता हुआ राजा शिखिध्वज अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर राज्य कार्य करने लगा ।१९। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! राजा शिखिध्वज ने चूडाला के साथ इस भूतल पर दस सहस्र वर्ष तक राज्य किया और तदनन्तर देह मुक्त हो गया ।२०। हे राघव ! सभी राजाओं के मस्तक के चूड़ामणि रूप से विभूषित हुआ राजा शिखिध्वज चिरकाल तक अनेक भोगों का उपभोग करता हुआ, अन्त में परम पद में विलीन हुआ। उसी के समान प्रकृत कार्यों का अनुसरण करते हुये आप भी शोक रहित रूप से समाधि में अवस्थित हो जाइये या भोग मोक्ष आदि रूपिणी लक्ष्मी के सम्पूर्ण अनुगत हो व्यवहारों में तत्पर रहिए ।२१।

५६—कच को आत्मज्ञान की प्राप्ति

एतते सर्वमाख्यातं शिखिध्वजकथानकम् ।
अनेन गच्छन् मार्गेण न कदाचन खिद्यसे ॥१
शिखिध्वजक्रमेणैव यथा बोधमवाप्तवान् ।
कचो बृहस्पतेः पुत्रस्तथा बुध्यस्व राघव ॥२
बृहस्पतेर्भगवतः पुत्रौऽसौ भगवान् कचः ।
यथाप्रबुद्धो भगवन् समासेन तथा वद ॥३
शृणु राजन् कथा श्रीमाञ्छिखिध्वजदेव सः ।
प्रबोधं परमं यातो देवदेशिकजः कचः ॥४
बालभावात् समुत्तीर्णः संसारोत्तरणोन्मुखः ।
कचः पदपदार्थज्ञो बृहस्पतिमभाषत ॥५
भगवन् सर्व धर्मज्ञ कथं संसृतिपञ्जरात् ।
अस्मानिर्गम्यते ब्रूहि जन्तुना जीवतन्तुना ॥८
अनथं मकरागारादस्मात् संसारसागरात् ।
उड्डीयते निरुद्वेगं सर्वत्यागेन पुत्रकः ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! इस प्रकार यह राजा शिखिध्वज का कथानक मैंने आपके प्रति कहा है । इस मार्ग पर चलते हुए आप कभी खेद को प्राप्त नहीं होंगे ।१। हे राघव ! राजा शिखिध्वज के समान ही बृहस्पति पुत्र कच को ज्ञान की प्राप्ति की हुई थी उसी प्रकार आप भी ज्ञान प्राप्त करिये ।२। राम बोले—हे भगवन् ! बृहस्पति का वैभवशाली पुत्र कच जिस प्रकार ज्ञानी हो गया, वह मुझे संक्षिप्त रूप से बताइये ।३। वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! राजा शिखिध्वज के समान ही उस ऐश्वर्य शाली कच ने जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त किया था उसे आप श्रवण कीजिए ।४। कच अपनी बाल्यावस्था, समाप्त होने पर यौवनावस्था में प्रविष्ट होने पर ही भवसागर से तरने के लिये प्रयत्नशील हो गया । वह पद-पदार्थ का श्रेष्ठ ज्ञाता कच अपने पिता बृहस्पति से बोला ।५। उसने कहा—हे भगवान् ! हे सर्व धर्म के ज्ञाता तन्तु के समान बन्धनदायक

जीव माला मेरे समान जन्तु इस जगज्जाल से कैसे छूट सकता है।६। बृहस्पति ने कहा—हे पुत्र ! अनर्थ रूपी मकरों से सागर रूपी इस भव सागर से निरुद्वेग निकलने के लिये सर्व त्याग आवश्यक है।७।

इत्याकर्ण्य कचो वाक्यं पितुः परमपावनम् ।
सर्वमेव परित्यज्य जगाभैकान्तकानम् ॥८
वृहस्पतेस्तद्गमनं नोद्वेगाय वभूव ह ।
संयोगे च वियोगे च महान्तो हि महाशयाः ॥९
अथ वर्षेषु जांतेषु त्रिषु पञ्चसु सोऽनघ ।
पुनः प्राप महारण्ये कस्मिंश्चित् पितरं कचः ॥१०
परिपूज्याऽभिवाद्यै नं समालिंगितपुत्रकम् ।
अपृच्छद्वाक्पतिं भूयः स कचः कान्तया गिरा ॥११॥
अद्येदमष्टमं वर्षं सर्वत्यागः कृतो मया ।
तथापि तात विश्रान्ति नाऽधिगच्छाम्यनिन्दिताम्॥१२
एवमार्तवचस्तस्मिन्कचे वदति कानने ।
सर्वमेव त्यजेत्युक्त्वा वाक्पतिर्दिवमुद्ययौ॥१३
गते तस्मिन् कचो देहाद्वल्कलाद्यप्यथाऽत्यजत् ।
गते न्द्वभ्रार्कतारेण शरद्व योम्ना समोऽभवत् ॥१४

वसिष्ठजी बोले—उसने पिता के यह परम पवित्र वचन सुनकर कच ने सर्वस्व परित्याग किया और निर्जन वन में चला गया।८। उसके चले जाने पर वृहस्पति उद्विग्न नहीं हुए क्योंकि महान् पुरुष संयोग और वियोग दोनों में समान मति रखते हैं।९। हे अनघ ! कच को वनवास करते हुए आठ वर्ष व्यतीत हो गए तब किसी महावन में कच के पास उसके पिता पुनः पहुँचे।१०। कच ने उनका पूजन और अभिवादन किया तब बृहस्पति ने उसको हृदय से लगा लिया। तब कच ने मधुर वाणी से उनसे पूछा।११। हे तात ! मुझे सर्वत्याग किये हुये आठवाँ वर्ष चल रहा है तो भी मैं अनिन्दित विश्रान्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ।१२। उस वन में कच ने इस प्रकार के आर्त वचन कहे ही थे कि बृहस्पतिजी

'सर्वस्व त्याग' का उपदेश देकर आकाश में अन्तर्हित हो गये।१३। उनके जाते ही कच ने अपने वल्कल वस्त्र आदि भी उतार दिये और चन्द्र, मेघ, तारे और सूर्य से निर्मुक्त शरत्कालीन आकाश के समान नग्न हो गया।१४

पुनर्वर्षत्रयेणैष कस्मिंश्चित् काननान्तरे।
तत्याजाऽम्बुदवर्षादि शरदीव नभस्तलम् ।१५
उवासैको दिगन्तेषु शान्तशून्यवषः श्वसन् ।
दूयमानमनाः प्राप तमैव पितरं गुरुम् ॥ १६
कृतपजाक्रामो भक्तया समालिंगितपुत्रकम् ।
अपृच्छत्स कचो भूयः खेदगद्गदया गिरा ॥१७
तता सर्व परित्यक्त कन्थावेणुलताद्यपि।
तथापि नास्ति विश्रान्तिः स्वपदे किं करोम्यहम् ॥१८
चित्त सर्वमिति प्राहुस्तत्यक्त्वा पुत्र राजसे ।
चित्तत्यागं विदुः सर्वत्यागं सर्वविदो जनाः ॥१९
इत्युक्त्वा वाक्पतिः पुत्रं पुप्लुवे तरसा नभः ।
अन्वियेष कचश्चित्त परित्यक्तुमखिन्नधोः।
चिन्तयन्नप्यसौ चित्त न यदा वेद कानने।
तदा सञ्चिन्तयामास धियैव पितरं ययौ ॥२१

शरत्कालीन आकाश के समान उसने वर्षा ऋतु में गुफा आदि का आश्रय लेकर वर्षा का त्याग किया और शरदादि ऋतुओं में गुहा आदि को छोड़ कर बाहर रहने लगा। उसकी देह शान्त शून्य और श्वांस मात्र लेने के योग्य रह गयी थी। तब तीन वर्ष व्यतीत होने पर खिन्न चित्त से उसने अपने पिता बृहस्पति को पुनः वहाँ पाया।१५-१६। भक्ति पूर्वक पूजादि कर, पिता आलिङ्गन प्राप्त करता हुआ, खेद से गद्गद वाणी से वह उनसे प्रश्न करने लगा।१७। कच ने कहा—हे तात ! मैंने सर्वस्व त्याग कर दिया। कन्था, वेणु, लता आदि कुछ भी तो पास नहीं रखा, फिर भी मैं अपने आत्मपद में अवस्थित कहीं हो सका। मैं इस अहङ्कार की उत्पत्ति शुद्ध साक्षी के अपरिचय रूपी मोह से हुई

तब मुझे क्या करना उचित है ? ।१८। बृहस्पति बोले—हे पुत्र ! चित्त ही सर्वस्व है, उसी का परित्याग करने पर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो सकोगे । क्योंकि ज्ञानियों ने चित्त के त्याग को ही सर्वत्याग कहा है ।१६। यह सुनकर वागीश तुरन्त ही आकाश में चले गये । तब अपने अन्तःकरण को खेद रहित करता हुआ कच परित्याग करने के लिए चित्त का अन्वेषण करने लगा ।२०। उसे ढूँढ़ने पर भी चित्त कहीं नहीं मिला, तब वह सोचता हुआ अपने पिता का स्मरण करने लगा ।२१।

पितुःसकाशं गच्छामि ज्ञातुं चित्तं महारिपुम् ।
ज्ञात्वा तत्सन्त्यजाम्याशुततस्तिष्ठामि विज्वरः ॥२२
इतिसञ्चिन्त्य स कच उज्जगाम त्रिविष्टपम् ।
वाक्पतिं प्राप्य सस्नेह ववन्दे प्रणना च ॥२३
अपृच्छच्चैनमेकान्ते किं चित्तं भगवन् वद ।
स्वरूपं ब्रूहि चित्तस्य येन तत्सन्त्यजाम्यहम् ॥२४
चित्तं निजमहंकार विदुश्चित्तविदो जनाः ।
अन्तर्योऽयहम्भावो जन्तौस्तच्चित्तमुच्यते ॥२५
त्रयस्त्रिं शन्महाकोटिप्रमाणस्य महामते ।
गुरो गीर्वाणवृन्दस्य कथमेयद्वदेति मे ॥२६
मन्येऽस्य दुष्करत्यागो न सिद्धिमुपगच्छति ।
कथमेष किल त्यक्तुं शक्यते योगिनां वर ॥२७
अपि पुष्पावदलनादपि लोचनमीलनात् ।
सुकरोऽहंकृतेस्त्यागी न क्लेशोऽत्र मनागपि ॥२८

इस महाशत्रु चित्त को जीतने के लिए पिताजी के पास ही चलना चाहिये । उसे जान कर ही तो परित्याग करूँगा और सब शोकों से छूट सकूँगा ।२२। यह निश्चय कर वह कच स्वर्ग में पहुँचा और अपने पिता के पास जाकर उनको प्रणाम किया ।२३। फिर एकान्त पाकर

उसने पूछा—हे प्रभो ! मुझे यह तो बताइये कि चित्त है क्या ? उसका स्वरूप मुझसे कहिए, जिससे कि मैं उसका परित्याग कर सकूँ ।२४। वृहस्पति बोले—हे पुत्र ! चित्त के ज्ञाताजन अहङ्कार को ही चित्त जानते हैं। जन्तु का अहंभाव ही चित्त कहा है ।२५। कच ने कहा-हे महामते ! आप तेतीस करोड़ देवताओं के गुरु हैं। मुझे बताइये कि अहंकार चित्त किस प्रकार हो सकता है ? ।२६। हे योगिश्रेष्ठ ! मैं तो समझता हूँ कि इसका परित्याग संभव नहीं है। किस प्रकार इसमें सामर्थता प्राप्त हो सकती है ? ।२७। वृहस्पति बोले—हे पुत्र ! यह कार्य तो पुण्य-मर्दन अथवा नेत्रोन्मीलन से भी अत्यन्त सरल है। किंचित् भी क्लेश नहीं होगा।२८।

यथैतदेवं तनय तथा श्रृणु वदामि ते ।
अज्ञानमात्रं संसिद्धं वस्तु ज्ञानेन नश्यति ॥२६
वस्तुतो नास्त्यहंकारः पुत्र मिथ्याभ्रमो यथा ।
असन्सन्निव सम्पन्नो वालवेतालवत्स्थित ॥३०
असदेव यथा द्वित्वं मोहादिन्दौ विलोक्यते ।
तथा स्फुरत्यहङ्कारी न सत्यो वाऽप्यसन्न च ॥३१
एकमाद्यत्तरहितं चिन्मात्रममलान्तरम् ।
खादप्यतितरामच्छं विद्यते सर्व वेदनम् ॥३२
अयं सोऽहमिति व्यर्थ प्रत्ययं त्यज पुत्रक ।
तुच्छं परिमिताकारं दिक्कालबिबशीकृतम् ॥३३
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम् ।
सर्वार्थमयमेकार्थं चिन्मात्रमलं भवान् ॥३४
धवलकुसुमदलानां सर्वदिक्संस्थितानां
रस इव जगतां त्वं संस्थितः सर्वदेव ।
विमलतरचिदात्मा नित्तमेवाऽस्यनन्तुः
क इव कच तवाऽहंनिश्चयो भवाभूतः ॥३५

हे पुत्र ! चित्त के परित्याग का एक सुलभ उपाय तुमसे कहता हूँ, उसका श्रवण करो। अज्ञान से उत्पन्न हुई वस्तु ज्ञान से नष्ट हो जाती

है, इसलिये साक्षी परिचय होते ही यह नष्ट हो जायगा ।२९। हे पुत्र ! मिथ्या भ्रम कोई वस्तु नहीं है, वैसे ही अहङ्कार भी कुछ नहीं है। बालक की दृष्टि से जैसे बेताल उन्पन्न हो जाता है, वैसे ही अज्ञानियों की दृष्टि से यह असत्य उत्पन्न हुआ है ।३०। जैसे चन्द्रमा के एक होते हुये भी मोह से उसमें द्वैत भाव दिखाई देता है, वैसे ही मोह से अहंकार दिखा देना समझो। वह न सत्य है, न असत्य है तथा सत्यासत्य (मिश्रित) भी नहीं है ।३१। एक अनादि, अनन्त, चिन्मात्र, निर्मल, आकाश से भी अधिक स्वच्छ जो सर्वानुभव रूप आत्मा है, वही सत्य है ।३२। हे पुत्र ! पिता आदि से उत्पन्न मैं हूँ, देह के प्रति इस अहं बुद्धि को परित्याग कर दो। क्योंकि यह तुच्छ सीमित आकार वाली और देश-कालादि के दोष से वृद्धि को प्राप्ति हुई है ।३३। तुम ही देश, काल आदि परिच्छेदों से रहित, निर्मल नित्य उदित रूप, सर्वार्थमय, एक चिन्मात्रस्वरूप हो ।२२। जैसे सर्वत्र स्थित फल, फूल और पत्रादि का कारण भूत और सार भूत जो वृक्षों में विद्यमान रस है, गैसे ही तुम सम्पूर्ण विश्व के कारण भूत, सारभूत और अन्तर में अवस्थित निर्मल अन्त रहित नित्य एवं चिदात्म हो। हे कच ! अखण्ड अद्वितीय और सन्मात्र स्वरूप तुम्हारे लिये यह परिच्छन्न अहंभाव क्या वस्तु है ।३५।

५७—तुर्य पद का अभ्यास

इति प्राप्य परं योगमुपदुशमनुत्तमम् ।
जीवन्मुक्तो वभूवाऽसौ ततो देवगुरोः सुतः ॥१
निर्मसो निर्हंकारश्छिन्नग्रन्थिः प्रशान्तधीः ।
कचो यथास्थितो राम तथा तिष्ठाऽविकारवान् ॥२
अथेमं श्रृणु दृष्टान्तं कथ्यमानं मयाऽधुना ।
प्रवुद्धोऽपि यथा बोधमुपैपि विवुधोपमः ॥३

कश्चित्काननाभोगे महामौनं व्यवस्थितम् ।
दृष्ट् वाऽद्भुतमिदं किञ्चिन्मुनिं पप्रच्छलुब्धकः ।
पश्चादुपगतो बाणभिन्नन्नं मृगमभिद्रुतम् ॥४
नुने मदीयवाशेन विद्धो मृग इहाऽऽगतः ।
क्व प्रयातो मृग इति प्रत्युवाच सतं मुनिः ॥५
समशीला वतं साधो मुनयो वनवासिनः ।
नाऽस्माकमस्त्यहङ्कारो व्यवहारेषु क्षमः ॥६
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि करोति हि सखे मनः ।
अहंकारमयं तन्मे नूनं प्रगलितं चिरम् ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! आत्मा-परमात्मा के एकत्व का ज्ञान अपने पिता, देवगुरु, बृहस्पति से प्राप्त करके, उनका पुत्र कच जीवन्मुक्त हो गया ।१। हे राम ! जैसे बृहस्पति पुत्र कच ममता से शून्य, अहंकार से रहित और मोह-ग्रन्थि से विमुक्त होकर शान्त बुद्धि में अवस्थित हो गया, वैसे ही आप भी विकार रहित रूप से अवस्थित रहिए ।२। हे देवोपम ! हे राम ! अब आप मेरे इस दृष्टान्त का श्रवण कीजिये उससे प्रबुद्ध होकर आपके ज्ञान की और भी बृद्धि होगी ।३। किसी एक घोर वन में एक अद्भुत मुनि नितान्त मौन धारण किये बैठे थे । उन्हें देख कर, बाण से बिंधे हुए मृग के पीछे-पीछे भागता हुए व्याध्र उनसे पूछने लगा ।४। हे मुने ! मेरे वाण से आहत एक मृग यहाँ भागता हुआ आया था, वह किधर गया ? यह सुनकर मुनि ने उसे उत्तर दिया ।५। हे साधो ! हम वनबासी मुनि समान शील वाले होते हैं । व्यवहार समक्ष जो अहङ्कार है वह हम में नहीं होता ।६। हे सखे ! सभी इन्द्रियों का कर्म करने वाला वह अहंकार रूपी मन हैं और चिरकाल से मेरा मन मलिन हो चुका है ।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्ता दशा वेद्मि न काश्चन ।
तुर्यं एव हि तिष्ठेऽहं तत्रदृश्यं न विद्यते ॥८

इति तस्य वचः श्रुत्वा मुनिनाथस्य रावघ ।
लुब्धकोऽर्थम विज्ञाय जगामाऽभिमतां दिशम् ॥९
अतो वच्मि महाबाहो नास्ति तुर्येतरा दशा ।
निर्विकल्पा हिचित्तुर्यं तदेवाऽस्तीह नेतरम् ॥१०
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्यं त्रयं रूपं हि चेतसः ।
घोरं शान्तं च मूढं च आत्मचित्तमिहाऽऽस्थितम् ॥११
घोरं जाग्रदन्मयं चित्तं शान्तं स्वप्नमयं स्थितम् ।
मूढं सुषुप्तभावस्थं निमिर्हीनं मृतं भवेत् ॥१२
यच्च चित्तं मृतंतत्र सत्वमेकं स्थितसमम् ।
तदेव योगिनः सर्वे यलात्सम्पादयन्ति हि ॥१३
समस्तसंकल्पविलासमुक्ते
तुर्ये पदेतिष्ठनिरामयात्मा ।
यत्र स्थिता साधु सदैव मुक्ताः
प्रशान्तभेदा मुनयो महान्तः ।१४

मैं जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों में से किसी भी अवस्था का ज्ञान नहीं रखता, मैं तो उसी तुरीयावस्था में अवस्थित हूँ जहाँ दृश्य का नितान्त अभाव रहता है ।८। हे राघव ! यह सुनकर, उनके अर्थ को न समझता हुआ वह व्याध, अपनी अभीष्ट दिशा में चला गया ।९। अतः मेरा कथन है कि तुरीयावस्था से बढ़कर कोई अवस्था नहीं है, निर्विकल्प चित्त ही तुर्य है, यहाँ उसी की स्थिति है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है ।१०। जाग्रत स्वरूप और सुषुप्ति यह तीनों चित्त के ही रूप हैं । यहाँ पर चित्त की स्थिति घोर, शान्त एवं मूढ़ इन तीनों रूपों में होती है ।११। जाग्रतावस्था वाला चित्त घोर, स्वप्नावस्था वाला शान्त और सुषुप्तावस्था वाला मूढ़ है । रजादि त्रिगुणात्मिका माया के उच्छेद होने पर चित्त मृत हो जाता है ।१२। मृत चित्त में सत्व मात्र ही भस्म में श्वेतता के समान, समरूप से रहता है । सभी योगीजन समाधि के अभ्यास से इसी का यत्नपूर्वक सम्पादन करते हैं ।१३। सभी सङ्कल्प

विलासों से रहित उस तुर्यपद में अपनी आत्मा को स्वच्छ बना कर ही आप अवस्थित रहिए। क्योंकि इसमें भली प्रकार अवस्थित रहकर महान् मुनिजन भी भेद-रहित रहते हुए सदैव मुक्त हो चुके हैं। । १४ ।

योग वासिष्ठ

द्वितीय खण्ड

निर्वाण प्रकरण (उत्तरार्द्ध)

५८—विद्याधर कथा वर्णन

स्वभावं स्वं विजित्यादान्द्रियाणां स चेतसाम् ।
प्रवर्तते विवेके यः सर्वं तस्याऽऽशु सिध्यति ॥१
स्वभावमात्रं येनान्तर्न जितं दग्धबुद्धिना ।
तस्योत्तमपदप्राप्तिः सिकतातैलदुर्लभाः ॥२
शुद्धेऽल्पोऽऽप्युपदेशो हि निर्मले तैलबिन्दुवत् ।
लगत्युत्तानचिषु नादर्श इव मौक्तिकम् ॥३
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मम पूर्वं भुशुण्डेनकथितं मेरुमूर्द्धनि ॥४
पुरा भुशुण्डः कस्मिश्चित्पृष्ट आसीत्कथान्तरे ।
मया कदाचिदेकान्ते मेरोः शिखरकोटरे ॥५
मुग्धबुद्धिमनात्मज्ञं कंत्वं सुचिरजीवितम् ।
स्मरसीति मया पृष्टेनोक्तं तेनेदमंग मे ॥६
असीद्विद्याधरः पूर्वं मनात्मज्ञः सुखेदितः ।
लोकालोकान्तर शृङ्गे शुष्क आर्यो विचारवान् ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! मन के सहित इन्द्रियों के स्वभाव पर विजय प्राप्त करके नित्य अनित्य वस्तुके ज्ञान-साधनमें प्रवृत्त हुए मनुष्य

के लिए ही सभी उपदेशों का फल सिद्ध हो सकता है ।१। जिस दग्ध-मति पुरुष द्वारा विषयोन्मुख इन्द्रियों के स्वभाव को नहीं जीता गया, उसे बालू में से तैल निकालने के समान ही परमपद की प्राप्ति सम्भव नहीं हैं ।२। जैसे शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र में तेल की बूदें शीघ्र प्रविष्ट हो जाती हैं वैसे ही निर्मल चित्त वाले पुरुष में उपदेश सरलता से प्रवेश कर लेता है । दर्पण में मोती के प्रविष्ट होनेके समान ही साधन चतुष्टय से रिक्त चित्त वालों में प्रविष्ट होता ।३। विद्वज्जन इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहते हैं । एक बार मेरु पर्वतपर स्थित काक-भुशुण्डजी ने मुझसे यह कहा था । पुराने काल की बात है, सुमेरु पर्वत के शिखर के एकान्त कोटर में एक आध्यात्मिक प्रसङ्ग के सन्दर्भ में मैंने भुशुण्ड से यह प्रश्न किया ।५। हे काकश्रेष्ठ ! इस जगत में मुग्ध-मति और आत्मज्ञान से रहित ऐसा कौन है, जिसका तुम्हें स्मरण है ? मेरे प्रश्न का उन्होंने यह उत्तर दिया ।६। भुशुण्ड ने कहा—हे मुने ! पहले कभी लोकलौकान्त, पर्वत के शिखर पर एक विद्याधर निवास करता था । वह न जीती हुई इन्द्रियों से अत्यन्त खिन्न,विश्रान्ति रहित आत्मज्ञानशून्य परन्तु आयुवृद्धि के कारणभूत सदाचार से युक्त और विचारवान् था ।७।

तपसा बहुरूपेण यमेन नियमेन च ।
अक्षीणायुरतिष्ठत्स पुरा कल्पचतुष्टयम् ।।८
ततश्चतुर्थे कल्पन्ते विवेकस्तस्य चोदभूत् ।
विदूरस्येव वैदूर्यमौचित्याज्जलदोदयात् ।।९
पुनर्मृतिःपुनर्जन्म जरामेति विभावयन् ।
लज्जेऽहं तत्किमेकं स्यात् स्थिरमित्यवमृश्य सः ।।१०
मामाजगाम् सम्प्रष्टुममष्टादशमयीं पुरीम् ।
स्वामुपोह्य विरक्तात्मा ससारारसतां गतः ।।११
स मत्समीपमागत्य कृतोदारनमस्कृतिः ।
मत्पूजितोऽवसदत उवाचेदमनिन्दितम् ।।१२

मृदूनि परितापनि दृषद्दृढलानि च ।
छेदे भेदे च दक्षाणि स्वशस्त्राणीन्द्रियाणि च ॥१३
पर्याकुलानि मलिनानि विपत्प्रदानि ।
दुःखोर्मिमन्ति गुणकाननपावकत्वात् ।
ह्रार्दान्धकारगहनानि तमोमयानि ।
जित्वेन्द्रियाणि सुखमेति च किं ममार्थः ॥१४

वह अनेक प्रकार से तप, और यम-नियमादि से युक्त अक्षय आयु होता हुआ चार कल्प तक अवस्थित रहा ।८। फिर चार कल्प की समाप्ति पर दीर्घकाल तक तप और यम नियमादि के अनुष्ठान से मेघ उदित होने से वैदूर्यमणि के समान उसके अन्तर में विवेक का उदय हुआ ।९। मुझे बारम्बार जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था से आक्रान्त न होना पड़े, इस विचार को करते-करते (उसका समाधान न मिलने से) मैं लज्जा को प्राप्त हो रहाहूँ । ऐसी स्थिर वस्तु कौनसी है,जहाँ इनका नितान्त अभाव हो ।१०। ऐसा विचार करके यह महात्मा विद्याधर दसों इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और स्थूल शरीर, इन अठारह अवयवों वाली इस पुरी को दीर्घकाल तक धारण करने से श्रान्त और संसार रस से विरक्त होकर मुझसे प्रश्न करने के लिए आया ।११। मेरे पास आकर उसने मुझे सादर नमस्कार किया तब मैंनेभी उसेआदर सहित बैठाया । तदनन्तर उसने पूछने के लिए उपयुक्त अवसर पाकर वह इस प्रकार अनिन्दित वाणी में बोला ।१२। विद्याधर ने कहा—हे प्रभो ! निज-निज विषयों में शीघ्र अनुप्रवेशी होने से अत्यन्त मृदु, प्रवेश के पश्चात् परिताप युक्त और फिर पाषाण से भी अधिक दृढ़, शक्तिशाली छेदन भेदन में समर्थ शस्त्र के समान ही यह इन्द्रियाँ हैं ।१३। हृदयस्थ यह इन्द्रियाँ रूढ़ और तपोमय होने ने अँधेरे से परिपूर्ण वन के समान हैं । यह कामादि वानरों से परिव्याप्त हो रहीहैं प्राण,मन,शरीर और हृदय की छैः दुःख रूपी तरङ्गों से सम्पन्न हैं,शम-दम आदि गुण रूपी वनको जलाने वाली होने से दुःखप्रद और मलीन भी हैं । इस प्रकार की इन

इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके ही जीवन्मुखी हो सकता है, इसलिए इन भोग रूपी पदार्थो से मुझे क्या सम्बन्ध है ? इसी कारण मैं विरक्त और जिज्ञासु भाव से आपके पास उपस्थित हुआ हूँ ।१४।

५९—संसार वृक्ष का वर्णन

यदुदारमनायासं क्षयातिशयवर्जितम् ।
पदं पावनमाद्यन्तरहितं तद्वदाऽऽशु मे ।।१
एतावन्तमहं कालं सुप्त आसं जडात्मकः ।
इदानीं सम्प्रबुद्धोऽस्मि प्रसादादात्मनो मुने ।।२
मनोहमहामयोत्तप्तं क्षुब्धमज्ञानवृत्तिषु ।
मामुद्धर दुरन्तेहं मोहादहमिति स्थितात् ।।३
ततस्तस्य मया ब्रह्म स्तच्छ्त्वा पावनं वचः ।
इदमुक्तं यथापृष्टं सुस्पष्टपदया गिरा ।।४
साधु विद्याधराधीश दिष्टया बुद्धोऽसि भूतये ।
भवान्धकूपकुहराच्चिरेणोत्थानमिच्छसि ।।५
पावनीयं तव मती राजते घनरूपिणी ।
विवेकेनानलेनेव कनकद्रवसन्ततिः ।।६
उपदेशगिरामर्थं मादत्ते हारि हेलया ।
मुकुरे निर्मले द्रव्यमत्यमेनैव बिम्वात ।।७

विद्याधर बोला—हे मुने ! मुझे आप उस पावन पद का उपदेश शीघ्र दीजिए, जो कृपणता निवारक, विषय-रहित, निरतिशय आनन्द स्वरूप होने के कारण परम उदार अनायास क्षय और अतिशय से रहित तथा अनादि और अनन्त है ।१। हे मुने ! अब तक मैं अत्यन्त मूढ़ हुआ निद्रामें सो रहा था,परन्तु अब मनमें उत्पन्न हुई तीव्र वैराग्य लालसा से जाग उठा हूँ ।१। हे प्रभो ! मैं मन के महारोग से उत्तप्त और अज्ञान की वृत्तियों से क्षुब्ध हो रहा हूँ । मेरे सभी कर्म कठिनाई से कटने वाले हैं । इसलिए देहादि अनात्मा में आत्मा का अभिमान

होने जो मोह मुझे हो गया है उससे मुझे बचाइये ।४। भुशुण्ड बोले–हे ब्रह्मन् ! उस विद्याधर के पावन वचनों को सुनकर जैसा तुमने पूछा था उसके अनुसार मैंने स्पष्ट पद वाली वाणी से कहा ।५। हे विद्याधरों के अधीश्वर ! बड़ी प्रसन्नता है जो तुम कल्याणार्थ भाग्य से ही जाग गये हो । इसीलिए इस संसाररूपी अन्धकूपसे आज चिरकाल बाद निकलने की तुम्हें इच्छा हुई है ।५। जैसे अग्नि के ताप से स्वर्ण अत्यन्त चमकने लगता है वैसे ही विवेकको प्राप्त हुए तुम्हारी बुद्धि अनिवर्चनीय सुन्दरता से शोभा को प्राप्त हो रही ।६। इसलिए मैं समझताहूँ कि तुम्हारी यह बुद्धि मेरे उपदेश को बिना प्रयास भी सुख पूर्वक ग्रहण कर लेगी जैसे स्वच्छ दर्पण में प्रतिविम्ब बिना प्रयास ही पड़ता है ।७।

नाहं त्वमस्ति न जगदिति निश्चयिनस्तव ।
सर्वं मस्ति शिवं तच्च न दुःखाय सुखाय ते ।।८
मृगतृष्णाम्बुवद्विश्वमवस्तुत्वात्सदप्यसत् ।
यच्चेद भाति तद ब्रह्म न किञ्चित्किञ्चिदेव वा ।।९
विश्ववीजमहन्त्वंत्वं विद्धि तस्माद्धि जायते ।
साद्यब्ध्युर्वीनदीशादिजगज्जरठपादपः ।।१०
अहन्त्वबीजाणुतो जायतेऽसौ जगदद्रुमः ।
तस्येन्द्रियरसाढ्यानि मूलानि भुवनानि हि ।।११
तारकाजालकलिका ऋक्षौघः कोरकोत्करः ।
वासनागुच्छविसराः पूर्णचन्द्रः फलालयः ।।१२
स्वर्गादयो वृहद्वर्गा महाविटपकोटराः ।
मेरुमन्दरसह्यादिगिरयः पक्षयाजयः ।।१३
सप्ताब्धयोऽग्रसुतयः पातालं मूलकोटरम् ।
युगानि घुणवृन्दानि पर्वाणि गुणपङ्क्तयः ।।१४

मैंने नहीं हूँ, तुम नहीं हो यह जगत् भी नहीं है, ऐसा निश्चय कर लो तो यह सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच ही शिवस्वरूप है,तो यह सुख या दुःखके

लिए नहीं होगा ।८। जैसे मृग तृष्णा का जल मिथ्या है, वैसे ही सम्पूर्ण संसार अवस्तु रूप होने से,सद्रूप प्रतीत होता हुआ भी असद्रूप ही है। जो यह सभी भाससान है, वह ब्रह्म रूप ही है ।९। इस अहङ्कार को ही तुम विश्व का बीज जानो। क्योंकि केवल अहंकार ही पर्वत, समुद्र पृथ्वी, नदीश आदि से युक्त इस जगत् रूपी पुरातन वृक्ष उत्पन्न होता है।१०। अहंकार रूपी सूक्ष्म बीज से विश्वरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है। उस वृक्ष की जड़े विषयाशक्ति रूपी रस से युक्त यह लोक है।११।तारों का जाल इस वृक्ष की कलियाँ हैं, वासनाऐं इसके पुष्प गुच्छ हैं, और पूर्णचन्द इसके फल का भण्डार है।१२। स्वर्गादि लोक इन शाखाओं के गर्भस्थल हैं और मेरु मन्दर, सह्य आदि पर्वत इस महावृक्ष के पत्तों की पंक्तियाँ है।१३। सातों समुद्र इसकी परिखाए हैं, पाताल इसका मूल कोटर और चतुर्युगी घुण समूह तथा युग के वर्ष,ऋतु आदि इसके पौरुष है।१४।

अज्ञानमुत्पत्तिमही नारा विहंगकोटयः।
उपलम्भो वृहत्स्तम्भो दवो निर्वाणनिर्वृतिः ॥१५
रूपालोकमनस्कारा विविधामोदवृत्तयः।
वनं विपुलमाकाशं शुक्तिजालं सुखत्वचः ॥१६
विचित्रशाखा ऋतव उपशाखा दिशो दश।
संविद्रसमहापूरो वातस्पन्दो निवर्तनः ॥१७
चन्दार्करुचयो लोला मज्जनोन्मज्जनोन्मुखाः।
रम्याःकुसुममञ्जर्यस्तिमिरं भ्रमरभ्रमः ॥१८
पातालमाशागणमन्तरिक्षमापूर्य तिष्ठत्यसदेव सद्वत्।
तस्यानहन्ताग्निहतेहमर्थवीजे पुनर्नास्ति सतोऽपि रोहः॥१९

इस वृक्ष का उत्पत्ति स्थल अज्ञानहै। इसमें जीवरूपी करोड़ों पक्षी निबास करते हैं। भ्रान्ति इसका स्तम्भ है। इस वृक्ष को भस्म करने

में समर्थ तत्वज्ञान से प्रपंचनिवृत्ति ही दावानल हैं ।१५। इन्द्रियों द्वारा विष्टयोपभोग और मानसिक सङ्कल्प-विकल्प इसकी विभिन्न गन्धेंहैं । अव्याकृति आकाश इसका विस्तृत वन और मुख की त्वचा आदि का विकास ही इसका शुक्तिजाल है । ऋतुयें इसकी अद्भुत शाखें, दिशायें उपशाखायें, आत्म संवित जीवन के लिए रस-धार और सूत्रात्मा इसके वायुका स्पन्द रूप है ।१७। नित्य प्रति उदय और अस्त होने वाले चन्द्रमा और सूर्य की चपल रश्मियाँ ही इसकी कोमल पुष्प मंजरियाँ हैं, और सूर्य के साथ भ्रमण करता हुआ (छाया रूपी) अन्धकार ही भ्रमण करते हुए भौंरे हैं ।१८। इसप्रकार का यह जगत् रूपी वृक्ष अपने मूल से पाताल को, मध्य में समस्त दिशाओं को और मस्तक से व्योम को परिपूर्ण कहता हुआ, असद्रूप जैसा ही प्रतीत होता है । उसका अहंकार रूपी बीज अहभाव रूपी ज्वाला से दग्ध करने पर जब तक यह देह पतित नहीं हो जाता तव तक जीवन्मुक्त के भोग के लिए प्रतिभास की स्थिति में भी जन्मादि के द्वारा इस वृक्षका पुनः आरोहण नहीं होता ।१६।

६०—ज्ञान द्वारा संसार वृक्ष का उच्छेद

विद्याधर धराधरो गिरिकन्दरमन्दिर ।
दिगन्तराम्बराचारचारसञ्चारचंचुरः ॥१
इद्दशोऽयं जगद्वृक्षो जायतेऽहन्त्वबीजतः ।
बीजे ज्ञानाग्निनिर्दग्धे नैव किंचन जायते ॥२
प्रेक्ष्यमाणं तन्नास्ति किलाहन्त्वं कदाचन ।
एतावदेव तज्ज्ञानमनेनैव प्रदह्यते ॥३
चिच्चमत्कारमात्रं चगद्धिद्धीह नेतरत् ।
नाशशु न वहिर्नान्तरेक्कुचन विद्यते ॥४
सङ्कल्पोन्मेषमात्रेण जगच्चित्र विलोक्यते ।
तदन्मेष विलयिचित्रक्कुच्चि तच्चित्रवत् ॥५

मण्डपोऽस्ति महास्तम्भो मुक्तामणिविनिर्मितः ।
बहुयोजनलक्षाणि कान्तकांचनचत्रितः ॥६
हृल्लेखाजालविसरैः सर्वावर्तविवर्तनैः ।
बिसरत्स्नेहसंश्रजडानुदयचर्वणैः ॥७

भुशुण्ड ने कहा—हे विद्याधन ! जिस वृक्ष का मूल सप्त अधः लोकों सहित यह पृथिवीहै, जिसकी लोकालोकान्तर पर्वतोंकी गुफायें हैं, दिग्दिग और आकाश में शाखा-विस्तार और उन २ स्थानों में जीवों के भ्रमण से जो अति चलायमान हो रहा है वह संसार वृक्ष अहकार रूपी बीज से ही उत्पन्न होता है और जब वह बीज ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाताहै तब वह किंचित भी उत्पन्न नहीं होता ।१-२। जैसे रत्नकी परीक्षा तत्व दृष्टि से की जाती है, वैसे ही भले प्रकार विचार पूर्वक यह सब ब्रह्महो है, ऐसा विश्राश होने पर अहंकार का निःशेष होना ही ज्ञान है, अहंकारका दहन इसी से हो जाताहै ।३। इस जगत्को तुम केवल चितिका ही चमत्कार जानो, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । यह न दिशाओं में है, और न बाहर या भीतर अन्यत्र ही कही है ।४। संकल्प के उन्मेष से यह संसार चित्र के समीप दिखाई देने लगता है और संकल्प के अभाव में उसी प्रकार अदृश्य हो जाता है, जिस प्रकार कि चित्रकारके चित्त से चित्र विलीन हो जाता है ।५। यह विश्व मोतियों से युक्त वृहत् स्तम्भों वाले स्वर्ण खचित लाखों योजन विस्तार वाले संकल्प से कल्पित हुए महामण्डल के समान है ।६। मन को क्षुब्ध करने वाले वासना-जालों से निवद्ध सब आवर्त रूपी विकारों से युक्त और मिथ्या स्नेह से विषयास्वादन से जो संवित् प्रसरित हैं, वही चित्र में चित्रित महाराज्य रूपी यह जगत् है ।७।

अहमित्यादिचिद्रूपे विकल्पेनोन्मुखी सती ।
न पराद्वायतिरिक्तैषाजलत्वादिव तोयता ॥८
चिदादित्यः स्व आत्मैव सर्ग इत्यभिधीयते ।
भूत्वाऽहमिति चेनान्यो न सर्गोऽस्ति न सर्जनः ॥९

स्पदात्मिकायां सत्तायां यथाऽस्पन्दो जलद्रवः ।
तथा चिदात्म व्योमत्वे न व्योमत्वादि वेत्ति हि ॥१०
देशकालादिनिर्माणपूर्वक वेदनं विदः ।
सर्गात्मकत्वात्त नाम्बुद्रवसाम्यं न दूरगम् ॥११
मनोहम्भावबुद्ध्यादि यत्किञ्चिन्नामवेदनम् ।
अविद्यां विद्धि यत्नेन पौरुषेणाऽऽशु नश्यति ॥१२
अर्द्धं मिथः सकथया भागः शास्त्रविचारणैः ।
आत्मप्रत्ययतः शिष्टमविद्याया निवर्तते ॥१३
चतुर्भागात्मनि कृते इत्यविद्याक्षये क्रमात् ।
समकालाच्च यच्छिष्टं तदनामार्थं सन्मलम् ॥१४

इस प्रकार आदि चिति ही अहं भाव आदि विकल्पों से निकलकर जीव रूप होने पर भी ब्रह्म से किंचित भी भिन्न नहीं हैं, कि जल रूप से जलत्व में भिन्नता नहीं है ।८। यह चित्ति रूपी आदित्य ही स्वात्मा हैं, उपाधि में प्रविष्ट होकर ही यह 'अहं' आदि संज्ञाओं वाला तथा 'सर्ग' कहा जाता है । अतः चेतन से भिन्न न तो कोई सृष्टि है और न कोई उस सृष्टि का रचने वाला ही है ।९। जैसे स्पद रूपी अपनी अस्तित्व में यथावतः जलद्रव में स्पन्द नहीं है, अपितु स्पन्द की प्रतीति विकल्प मात्र ही है। उसी प्रकार व्योमादि की रचना में चिदात्मा न तो आकाशादि रूप में अवस्थित है, न इनका कर्ता ही है और न इन पदार्थों का अपने से भिन्न ही मानता है ।१०। सृष्टिरूपत्व से देश,काल आदि के निर्माण से ही चिदात्म के विकल्प का ज्ञान हम कहते हैं, अतः जलद्रव की समानता कहीं अन्यत्र चली गई, यह नहीं कहीं कहा जा सकता ।११। मन, अहंकार, बुद्धि आदि जो कुछ विकल्प ज्ञान है, सभी को केवल अविद्या ही जानो, जिसका नाश पौरुष से ही सम्भव है ।१२। इस अविद्या का आधा भाग विनय, प्रणाम,दान सम्मान आदि के सहित तत्व ज्ञानियों से वार्तालाप और वैराग्यादि साधन चतुष्टय से नष्ट हो जाता है, श्रवण मनन आदि शास्त्र विचारों से इसका विलेश रूप चतु-

थांश नष्ट हो जाता है तथा अविशिष्ट चतुर्थांश ब्रह्मात्म साक्षात्कार से उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार क्रमश: मिटता जाता है ।१३। इस प्रकार समकाल में क्रमशा अभ्यास द्वारा चार भागों में विभक्त इस अविद्या के नष्ट किए जाने के पश्चात् जो शेष रह जाता है, वह संज्ञा और रूप रहित एवं सन्मात्र परम पुरुषार्थ ही है ।१४।

अर्द्धं मिथ: संकथया भाग: शास्त्रविचारणै: ।
आत्मप्रत्ययतो भाग: कथं तस्या निवर्तते ॥१५
समकाले क्रमाच्चेति मुनिनाथ किमुच्यते ।
तदनामार्थं सच्चेति सच्चासच्चेति किं वद ॥१६
सुजनेन विरक्ते संसारोत्तरणार्थिना ।
सह चाप्यात्मविदुषा संसृतिं प्रविचारयेत् ॥१७
अर्द्धं सज्जनसम्पर्कादविद्याया विनश्यति ।
चतुर्भागस्तु शास्त्रार्थैश्तुर्भाग स्वयत्नत: ॥१८
साधुसङ्गमशास्त्रार्थस्वयत्नै: क्षीयते मलम् ।
साधुसङ्गमशास्त्रार्थस्स्वयत्नै: क्षायते मलम् ।
एकैकेनाथ सर्वैश्च तुल्लकाल क्रमादपि ॥१९
यदविद्य क्षायैकात्म न किञ्चित्किञ्चिदेव च ।
शिष्यते तत्परं प्राहुरनामार्थं भसच्च सत् ॥२०
ब्रह्मेदं घनमजराद्यनन्तमेचं
सङ्कल्पस्फुरणमविद्यभानमेव ।
बुद्ध्वैवं व्यपगमानमेवमोहो ।
निर्वाणं परिविहरन्विशोकमास्व ॥२१

श्रीराम बोले हे भगवन ! अविद्या का आधा भाग तत्व ज्ञानियों के साथ वार्तालाप से, चतुर्थांश शास्त्र-विचार से और शेष चतुर्थांश आत्म-साक्षात्कार से किस प्रकार नष्ट होता है, यह बताइये ।१५। हे मुनीश्वर ! समकाल में और क्रमपूर्वक ऐसा क्यों कहा है ? वह नाम और अर्थ रहित सन्मय है और सत्-असत् भी कहा है, वह क्या है यह

कहिए ।१६। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! संसार सागर से पार होने की कामना वाले विरक्त पुरुषको आत्मज्ञानी के साथ अपनी बुद्धिसे विचार करे कि यह जगत् क्या है और इससे पार किस प्रकार से हो ।१७। सज्जन का सम्पर्क होने मात्र से अविद्याका अर्द्ध भाग नष्ट हो जाताहै, शेष दो चतुर्थ भागोंमें से एकका शास्त्रावलोकन से और दूसरेका आत्म साक्षात्कार से नाश कर दे ।१८। साधु सङ्ग, शात्रों का स्वाध्याय और स्वप्रयत्न इनके सम्मिलित योग से एक ही समय में और एक-एक की उत्तरोत्तर प्राप्ति से क्रमशः अविद्या रूपी मल का नाश होता है ।१९। जिसका एक सोथ स्व स्वरूप अविद्याका क्षीर होना है,ऐसा जो अविद्या नाश के पश्चात् अकिंचित या किंचित रूप शेष रहता है वही परमार्थ भूत, नाम और अर्थ रहित तथा असत् और सत् कहा जाता है ।२०। आनन्दघन, जरा आदि विकारों से रहित, अनन्त एक और संकल्प के स्फुरण से अविद्यमान है,अतः स्वयंका परमात्मतत्व रूपी समझकर मान मेय आदि मोह से शून्य होकर सब ओर से व्याप्त ब्रह्म रूप में विहार करते हुए शोक–रहित रूप से अवस्थित रहिये ।२१।

६१—परमाणु में इन्द्र राज्य की स्थापना

जगत्प्रसररूपस्य न देश उपयुज्यते ।
न कालो धारणे स्तम्भ आलोकस्याम्बरे तथा ॥१
मनोमननिर्माणमात्रमेतज्जगत्त्रयम् ।
शान्तं तनु लघु स्वच्छ वातान्तः सौरभादपि ॥२
चिच्चमत्कृतिमात्रस्य साधो जगदणोः किल ।
वातान्त सौरभं मेरुरन्यानुभवयोगतः ॥३
तं प्रत्युदेति सर्गोऽयं स एवैनं हि चेतति ।
पदार्थः सन्निवेशं स्वमिव स्वप्नं पुमानिव ॥४
अत्रैवोदाहरन्तीमतिहासं पुरातनम् ।
यद्वृत्त देवाराजस्य त्रसरेणूदरे पुरा ॥५

क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चित्किश्चित्कल्पद्रुमेऽभवत् ।
कस्तांचिद्युगशाखायां फलं जगदुदुम्बरम् ॥६
ससुरासुरभूतौघमशकाहितघुङ्घुमम् ।
शैलमांसलपातालद्युभूम्युग्रकपाटकाम् ॥७

भुशुण्ड ने कहा---हे विद्याधर ! इस मायामह विस्तृत जगद्रूप के धारण में, आकाश के धारण में खम्भों की अपेक्षा न होने के समान,देश काल की अपेक्षा नहीं हैं ।१। शान्त, वायुमें स्थित सुगन्ध अथवा प्रकाश से भी सूक्ष्म, लघु और निर्मल यह त्रिजगद् मन के मनन से ही उत्पन्न हुआ है ।२। हे साधो ! चिति के चमत्कार मात्र से दिखाई पड़ने वाले उस जगद्रूपी अणु की अपेक्षा वायुमें सुगन्ध भी मेरु के समान स्थूलहै । क्योंकि वायु सुगन्ध का अनुभव तो घ्राणेन्द्रिय के द्वारा सबको हो जाता है, परन्तु इस संसार की सृष्टि का अनुभव वही करता है जिसके मनमें वह उदय होता है । जिस प्रकार कि स्वप्न के मनोराज्य का अनुभव स्वप्न देखने वाला पुरुष स्वयं करता है ।३-४। देश ओर काल से अनुपेक्षित एवं अन्य के अनुभव में न आने वाले अत्यन्त सौम्य इस विषय का एक पुरातन इतिहास है, जिसका अनुभव त्रसरेणु के उदर में इन्द्र को हुआ था ।५। किसी समय, किसी एक कल्पवृक्ष में ब्रह्माण्ड रूपी उदुम्बर का एक फल उत्पन्न हुआ ।६। वह फल दूसरे फलों से अद्भुत था । देव-दानव और अनेक प्रकार के भुनगों की भिनभिनाहट से परिपूर्ण था,असंख्य शैल रूपी कीलोंसे जड़े हुए पाताल, स्वर्ग और पृथिवी रूपी दुर्धर्ष किवाड़ों से रक्षित था ।७।

चिच्चमत्कृतिचारूच्चैर्वासनारसपीवरम् ।
विवधानुभवामोदं चित्तस्वादमनोहरम् ॥८
बृहद्ब्रह्मतरुप्रौढसत्ताव्रततिकोटिगम् ।
अहंकारमहवृन्तं समालोकसमुज्ज्वलम् ॥९
तत्राऽध्रुदमराधीशः शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
क्षौद्रकुम्भनिषण्णानां क्षुद्राणामिव नायकः ॥१०

गुरूपदेशस्वाभ्यासात्स क्षीणावरणोऽभवत् ।
महात्मा भावितान्तात्मा पूर्वापरविदां वरः ॥११

नारायणादिषु ततः कदाचिद्वीर्यशालिषु ।
क्वचिदेव निलीनेषु सत्स्वेकः स सुराधिपः ॥१२

शस्त्रज्वालानोद्भारैरयुध्यत महासुरैः ।
विजितस्तैर्महावीर्यैरतो व्यद्र्‌वदाद्र्‌तम् ॥१३

दिशो दशा सुवेगेन दुद्रावाऽभिद्र्‌तोऽरिभिः ।
न विश्रामास्पदं प्राप परलोक इवाऽध्रमः ॥१४

वह फल चिति की चमत्कारिक अद्भुत निर्माण–शक्ति से नितांत रम्य, विशाल, वासना-रस में वृद्धि को प्राप्त हुआ, विषदानुभव रूपी सुगन्ध से सुशोभित और चित्त के आस्वाद से मनोहर हो रहा था ।८। वह फल पहले कहे हुए उस ब्रह्मरूपी कल्पवृक्ष में प्रकट हुआ सूक्ष्म संसार की सत्ता रूपी कोटिशः लताओं के मध्य में लगा हुआ था अहंकार रूपी महावृत से संयुक्त एवं साक्षी चेतनसे समुज्वल प्रतीत होता था ।९। उस गूलर के फल में त्रैंलोक्य-स्वामी, देवराज इन्द्र उसीप्रकार निवास करता था, जिस प्रकार किसी क्षुद्र कलश में मधुमक्षिकाओं का स्वामी निवास करता हो ।१०। अपने हृदय में आत्म, विचार-रत-पूर्व और अपर ज्ञानियों में श्रेष्ठ वह महात्मा गुरु का उपदेश पाकर और निरन्तर अभ्यास करता हुआ अविद्या रूपी जो परदा है उससे पृथकहो गया था ।११। फिर नारायणादि वीर्यशाली देव जब क्षीरसागर में शयन करते थे, तब उस इन्द्र ने एकाकी ही शस्त्र ज्वाला को धारण करने वाले भयङ्कर असुरों के साथ भीषण युद्ध किया और अन्त में पराजय को प्राप्त होकर रणक्षेत्र से पलायन कर गया ।१२-१३। तब शत्रुओं ने उसका पीछा किया । यह देखकर वह दसों दिशाओं में वेगसे भागने लगा परन्तु पापी पुरुष को श्रेष्ठ लोक की प्राप्ति न होने के समान उस भागते हुए इन्द्र को कहीं भी आश्रय स्थान नहीं मिला ।१४

तद्भ्रान्तदृष्टिष्वरिपु मनाक् छिद्रमवाप्य सः।
प्रशमं कालसंकल्पं नीत्वा स्वां स्वान्तरे बहिः ॥१५
कमप्यर्काशकोशस्थं त्रसरेणुं विवेश सः।
संविद्रूपतया पद्मकोशं मधुकरो यथा ॥१६
स तत्राऽऽ विशश्राम चिरादाश्वासमाययो।
अथ विस्मृतसङ्ग्रमो निवृत्तिं ममुपागमत् ॥१७
कल्पितं सद्म तत्राथ स क्षणानुभूतवान्।
तस्मिन्सद्मनि पदमान्ते रमे इव विष्टरे ॥१८
गृहस्थः स ददर्शाशि कल्पितं नगारं हरि।
मणिमुक्ताप्रवालादिकृतप्राकारमन्दिरम् ॥१९
नगरान्तोऽपश्यत्ततो जनपदं हरिः।
नानाद्रिग्रामगोवाटपत्तनारण्यराजितम् ॥२०
नादृग्रतिश्चेतितवान्स शक्रो भुवनं ततः।
साद्रचक्र्युवींनदीशान्तं सक्रियाकालकल्पनम् ॥२१

तदनन्तर जब यह किसी प्रकार शत्रुओंकी दृष्टिसे बचा तभी अवसर पाकर अपने स्थूलाकार संकल्पकी आंतरिक सूक्ष्म भूतमें लय करके वह अत्यन्त अणु का रूप होगया। फिर पद्मकोशमें प्रविष्ट होने वाले भौंरेके समान,वह सूर्य-रश्मियों के कोशमें स्थित किसी त्रसरेणु में प्रवेश संकल्प द्वारा घुस गया।१५-१६। वहाँ प्रविष्ट हुआ इन्द्र विश्राम करने लगा, उसे चिरकाल के पश्चात् शान्ति प्राप्त हुई। दीर्घकाल तक वहाँ रहता हुआ वह युद्ध की बात भूल गया, अब उसे बाहर निकलने की याद नहीं रही। उसने वहाँ अपने निवास-स्थान की कल्पना की और तुरन्त ही घर बना हुआ पाया। वह अपने कल्पित घर वे पद्मासन पर स्थित हो कर उसी प्रकार बिहार करने लगा जिस प्रकार अपने स्वर्गस्थ सिंहासन पर अवस्थित होकर किया करता था।१७-१८। उस घर में ही कल्पना से निर्मित एक ऐसा नगर उसने देखा जिसमें सुन्दर प्रकारों वाले, मणि मुक्ता और प्रवालों से जटित अनेक मन्दिर स्थित

थे ।१९। इन्द्र उस नगर में गया, वहाँ उसे एक ऐसादेश दिखाई दिया जिसमें विविध प्रकार के पर्वत ग्राम, गोष्ठ, नगर और वन विद्यमान थे ।२०। तदनन्तर थे ।२०। तदनन्तर उसी प्रकार के संकल्प वाले इन्द्र ने भूलोक को देखा जो अनेकों पर्वत, समुद्र भूखण्ड नदी, राजा, राज्यों की सीमा एवं क्रिया-काल आदि कल्पनाओं से युक्त था ।२१।

ताद्रग्रतिश्चेतितवान् स शक्रस्त्रिजगत्ततः ।
सपातालमहीव्योमविष्टपार्कादिपर्वतम् ॥२२
तत्रऽतिण्ठत्सुरेशत्वे स सोगभरभूषितः ।
पुत्रो बभूव तस्यार्थ कुन्दो नामथ वीर्यवान् ॥२३
ततो जीवतपर्यन्ते त्यक्त्वा देहमनिन्दितः ।
निर्वाणमाययौ शक्र निःस्नेह इव दीपकः ॥२४
कुन्दस्त्रैलोक्यराजोऽज्जनयित्वा सुत निजम् ।
कालेन जीवितस्यान्ते जगाम परमं पदम् ॥२५
तत्तुत्रोऽपि तथैवाथ कृत्वा रज्ये सुतं निजम् ।
जगाम जीवितस्यान्ते पावं परमं मदम् ॥२६
एवं पौत्रसहस्राणि समतोतानि सुन्दर ।
तत्राद्यापि सुरेशस्य येषां राज्ये स्थितोऽशकः ॥२७
इत्यद्ययावदमरेश्वरवंश एव ।
संकल्पिते जगति शक्रपदं विदत्ते ।
तस्मिन् क्षतेऽपि गलितेऽपि हतेऽपि नष्टे ।
क्याप्यम्बरे दिनकरातपपावनाणी ॥२८

फिर उसी प्रकार के संकल्प वाले इन्द्र ने त्रिजगत् का अवलोकन किया जो पाताल, पृथिवी आकाश स्वर्ग, पर्वत आदि से सम्पन्न थे ।२२।फिर विविध भागों से सम्पन्न वह इन्द्र देव देवलोकमें देवताओंके अधीश्वर पदपर अभीष्ठित हुआ और कुछ समय व्यतीत होनेपर उसके कुन्द नामक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ ।२३। तत्पश्चात् उस अनिन्दित इन्द्रने अपने जीवनके अन्तिम कालमें पंच भौतिक देह को छोड़कर तैल

बीत चुके दीपक के समान निर्वाणपद प्राप्त किया ।२४। तब उसका पुत्र कुन्द त्रैलोक्य का राजा हुआ: उसके पुत्रोत्पत्ति हुई और अन्तकाल में वह भी परमपद को प्राप्त होगया ।२५। कुन्दके पश्चात उसका पुत्र दीर्घकाल तक अपने पिता के समान राज्य भोगता रहा, फिर वह भी अपने पुत्र को राज्य देकर परम पवित्र पद को प्राप्त हो गया ।२६। इस प्रकार हे सुन्दर ! उस इन्द्र के सहस्रों ही पुत्र-पौत्रादि हो गए । आज भी उनके उस राज्य सिंहासन पर बैठकर अशक नामक राजा राज्य करता है ।२७। हे विद्याधर ! इस प्रकार जैसा कि मैंने कहा मैं, सूर्य के आतप से भी पावन उस त्रसरेणु के व्योम में क्षीण, गलित, हत अथवा नष्ट हो जाने पर भी, इन्द्र के संकल्प से रहित त्रसरेणु-स्थित लोक में इन्द्र का वंश ही राज्य चला रहा है ।२८।

६२—आकाश में इन्द्रत्व का वर्णन

तस्य शक्रस्य कुजलः कश्चिदासीत्सुराधिपः ।
तत्रौत्तमगुणः श्रीमान्पाश्चात्या यस्य सा तनुः ॥१
अथेन्द्रकुलपत्रस्य यस्य तत्र बभूव ह ।
प्रतिभाज्ञानसम्प्राप्तिर्बृहस्पतिगिरादिता ॥२
ततो विदितवेद्योऽसौ यथाप्राप्तानुवृत्तिमान् ।
चकार जगतां राज्यमाज्यानामधीश्वरः ॥३
युयुधे दानवैः सार्द्धमजयत्सर्वशात्रवान् ।
शतं चकार यज्ञानामज्ञानोत्तीर्णमानसः ॥४
उवास कार्यवशतो विसबलान्तरे चिरम् ।
अन्यायपि च वृत्तान्तशतान्यनुबभूव ह ॥५
कदाचिदासीत्तस्येच्छा प्रबोधलशालिनः ।
ब्रह्मतत्वमवेक्षेऽहं यथावद्ध्यानवानिति ॥६

भुशुण्ड बोले—हे विद्याधर ! उसी इन्द्र के वंश में एक श्रेष्ठ-गुण समन्वित, श्री से युक्त एक इंद्र हुआ । देवताओंमें वह अन्तिम राजा था

।१। उस देवलोक में इन्द्र के उस वंशज को बृहस्पति के उद्देश पूर्ण वाक्यों से आत्म-ज्ञान की उपलब्धि हो गई ।२। फिर ज्ञातव्य पदार्थका ज्ञान प्राप्त कराने वाले और प्रारब्ध-जनित प्राप्त कार्यो का सम्पादन करने वाले उस देवेश्वर से सम्पूर्ण जगत् का राज्य किया ।३। उसने दानवों से संग्राम किया और अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की फिर उस अज्ञानसे शून्य हुए राजा ने सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया, वहाँ उसने कल्पित ब्रह्माण्ड में राज्य और संग्राम में हार-जीत आदि विविध वृत्तों का अत्यन्त अनुभव किया ।५। ज्ञान-बल से सम्पन्न उस राजा ने अकस्मात् यह इच्छा की कि मैं ध्यान के द्वारा ब्रह्मतत्व का साक्षात्कार करूँ ।६।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन तत एकान्तसंस्थितः ।
सबाह्याभ्यन्तरेऽशेषकारणत्यागशान्तधीः ॥७
सर्वशक्तिपरं ब्रह्म सर्ववस्तुमयं ततम् ।
सर्वथा सर्वदा सर्व सर्वैः सर्वत्र सर्वगम् ॥८
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षि शिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य संस्थितम् ॥९
सर्वेन्द्रियगुणैर्मुक्तं सर्वेन्द्रियगुणान्वितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणंगुणभोक्तृ च ॥१०
वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके चतत् ॥११
घटे पटे वटे कुण्डले शकटे वानरे नरे ।
धाम्नि व्योम्नि तरावद्रावनिले सलिलेऽनले ॥१२
नानाचारविचाराणि विविधावृत्तिमन्ति च ।
परमाण्वंशमात्रेऽपि त्रिजगन्ति ददर्श सः ॥१३

फिर वह एकान्त में बैठकर बाह्याभ्यंतर के सब विक्षेप-हेतुओं का त्याग करके, शान्तमति पूर्वक समाधि लगाकर, सब प्रकार की शक्तियों

से समन्वित, सर्वार्थमय, सर्ववस्तुय । सर्वत्र, सर्वरूप सर्व सहित और सर्वगामी परब्रह्म को देखने लगा, जो अनेक हाथ पाँवों वाला, सर्वत्र चक्षु, मस्तक और मुखवाला, अनेक श्रवणेन्द्रियों से सम्पन्न और लोक में सब को आवृत्त करके विद्यमान था।७-९। वह सभी इन्द्रियों के गुणों से मुक्त होकर भी उनके गुणों को ग्रहण करने में सशक्त था। सबसे प्रथक् रहता हुआ भी वह सब गुणों का उपभोग करने वाला था।१०। सब जीवों के बाह्याभ्यन्तर में रहकर चर और अचर सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय और दूर होते हुए भी समीप में अवस्थित था।११। घट पट, वट, शकट, वानर, नर गृह, आकाश, वृक्ष, पर्वत, पवन जल, अग्नि आदि में तथा परमाणु के अंश में भी उसने विभिन्न प्राणियों के आचार वाले स्वर्ग, नरक आदि के आगमन युक्त तीनों लोकों का अवलोकन किया।१२-१३।

मरीचस्यान्तरे तैक्ष्ण्यं शून्यत्वमिवचाडम्बरे ।
त्रिजगत्सत्यसति च विद्यते चिन्मयात्मनि ॥१४
इत्येवं भावयन्मुक्तभावया शुद्धसंविदा ।
शक्रः क्रमेण तेनैव तथैव ध्यानवानभूत् ॥१५
ध्यानेनसर्वमेकत्र पश्यश्चिरमुदार धीः ।
ददर्शैममसौ सर्गमस्मदीयं महामतिः ॥१६
ततोऽस्मिन विचरन्सर्गे शक्रान्ते शक्रतां गतः ।
चकार जगतां राज्यं वृत्तान्तशतशोभितम् ॥१७
विद्याधरकुलाधीश इत्थद्यैव स देवराट् ।
तस्येन्द्रस्थ कुलोत्पन्न इति विद्ध यथास्थितम् ॥१८
ततो हृदयबीजस्थ प्राङ् मुख्याभ्यासयोगतः ।
विसबालनिवासादिवित्तान्तनुसभूतवान् ॥१९
यथैष शक्रः कथितस्त्रसरेणूदरास्पदः ।
विसबालास्पदश्चैतत्कुलजः कान्तिमानथ ॥२०

तथा शतसहस्राणि तत्रेतश्चान्यतश्च खे ।
तादृशव्यवहाराणि समतीतानि सन्ति च ॥२१

मरीच में तीक्ष्णता और व्योम में शून्यता के समान सत् और असत् रूप त्रिजगत चिन्मय ब्रह्म में विद्यमान है ।१४। इस प्रकार भाव रहित शुद्ध ज्ञानसे अवलोकन करता हुआ वह इन्द्र पूर्व वासनासे कल्पित उसी देह से क्रमपूर्वक ध्यान में संलग्न हो गया ।१५। उस महामति एवं ब्रह्माण्ड को ब्रह्म में स्थित देखा ।१६। फिर हमारे इस ब्रह्माण्ड में क्रमशः मन में भ्रमण करता हुआ वह इन्द्रलोक में इन्द्र के पास पहुँच गया और इन्द्र को देखते ही 'मैं इन्द्रहूँ' ऐसे संस्कार के जाग्रत होनेपर और पूर्व अनुष्ठित अश्वमेधों के फलकी प्राप्ति की अनिवार्यता से इन्द्र होकर उसने सैकड़ों वृत्तान्तों से विभूषित अनेक जगतों का राज्य किया ।१७। हे विद्याधर वंश के अधीश्वर ! इस प्रकार उस त्रसरेणु में इन्द्र-वंश में उत्पन्न हुआ वह राजा ब्रह्माण्डमें देवताओंके राजा रूप से अव-स्थित है उसे मान लो ।१८। ब्रह्माण्ड का अधीश्वर बनकर उसके हृदय में बीज के समान संस्कार रूपसे अवस्थित अपने पूर्व ज्ञानयोगाभ्यास के कारण कमल-तन्तु में स्थित अपने वृत्तान्त की याद आई ।१९। त्रसरेणु उदरस्थ कमल-तन्तु में रहता हुआ जैसा यह कान्तिमान इन्द्र बताया गया है, वैसे ही सैकड़ों और सहस्रों व्यवहार चिदाकाश में हुए और हो रहे हैं ।२०-२१।

वहतीयमविच्छिन्नाचिरायैवं तरङ्गिणी ।
तावद्दृश्यसरित् प्रौढा रूढारूढे च तत्पदे ॥२२
इति मामेयमादीर्घा प्रसृता प्रत्ययोन्मुखी ।
सत्यावलोकमात्राविलयैकविलासिनी ॥२३
यतः कुतश्चिन्मायेयं यत्र क्वचन वाऽनघ ।
कथाकथञ्चित्सम्पन्नमात्रैव परिदृश्यते ॥२४
अहंभावमत्कारमात्राद्वृष्टिरिवाम्बुदात् ।
जायते मिहिकेवाऽऽशु प्रेक्षामात्रविनाशिनी ॥२५

येनायताभिमततर्शनद्रष्टृदृश्य-
मुक्तस्व भाव भव भासनमात्मत्वम् ।
सर्वार्थशून्यमत एव च शून्यरूप-
मेकं खमात्रमित्र मात्रविकल्पमेव ॥२६

आत्म-साक्षात्कार के न होने तक यह दृश्यभाव प्रवल नदी चिर-काल तक इसी प्रकार वहती रहती है। उस ब्रह्म के अधिरूढ़ एवं अनारूढ़ होने पर यह दूर तक विस्तृत आकार वाली माया, अनुभव में आती है। यह विलास-तत्परा माया सत्य ब्रह्म के साक्षात्कार से ही विलीन होती है।२२-२३। हे निष्पाप! जिस किसी कारणवश यह माया जहाँ कहीं उत्पन्न होती हुई देखी जातीहै। इसलिए इसकी विचित्रता विशेष चिंतनीय विषय नहीं है।२४। बादल से वर्षा होने के अहंकारी रूपी चमत्कार से कुहरे के सदृश यह माया प्रकट होती है और आत्म साक्षात्कार से क्षणभर में नष्ट हो जाती है।२५। सर्व साक्षी स्वरूप ब्रह्म के विकल्प-रहित होने से विस्तृत मन के विकल्पों और दृष्टा दर्शन, दृश्य इस त्रिपुटी रूपी एन्द्रिक विकल्पों से मुक्त स्वभाव होने के कारण वासनामय और स्वप्नमय पदार्थों से शून्य रूपी व्योमके समान पूर्ण अवभासित चिद्रूप आत्मतत्व मात्रही परिशेष रहता है।२६

६३—विद्याधर को निर्वाण पद-प्राप्ति

अहन्त्वपनस्पन्दो जगदित्यवगम्यताम् ।
अहन्त्वपद्मसौगन्ध्यं जगदित्यबबुध्यताम् ॥१
जगदस्त्यसमर्थेऽन्तरहमस्ति जगद्धृदि ।
अन्योन्यभाविनी त्वेते आधारधेयवत्स्थिते ॥२
जगद्बीजमहन्त्व यो मार्ष्टिवोधादवेदनात् ।
अलं चित्रं जलेनेव तेन धौत जगन्मलम् ॥३
अहन्त्वं नाम तत्किञ्चिद्विद्याधर न विद्यते ।
अकारणमवस्तुत्वाच्छशश्रृङ्गमिवोदितम् ॥४

ब्रह्मण्यतितते॒ऽनन्ते संकल्पोल्लेखवर्जिते ।
अहन्त्वकारणाभावान्न कदाचन सन्मयम् ॥५
अवस्तुन्येति सर्गादौ न सम्भवति कारणम् ।
अतोऽहन्त्वादि नास्त्येव बन्ध्यासुत इव क्वचित ॥६
तदभावाज्जगन्नास्ति चित्व जगदभावतः ।
शिष्ट निर्वाणमेवाऽतः शान्तमास्व यथासुखम् ॥७
कथयत्येवमप्येवं संविद्याधरनायकः ।
आसीत्स्शान्तसविंतिः समाधिपदिणामवान् ॥८

भुशुण्डजी बोले—विद्याधर ! तुम इस जगत को अहं रूपी वायु का स्पन्द मात्र अथवा अहंरूपी पद्मकी गन्ध मात्र ही समझो ।१। अहं कार में यह विश्व और विश्व में यह अहंकार अवस्थित है । यही एक दूसरे के सत्पत्तिकर्त्ता और एक दूसरे के आधीन रहने वाले हैं ।२। जो पुरुष अहंरूपी इस जगत के बीज को अनह रूपी ज्ञानसे क्षीण कर देता है । वह मल युक्त जगद्रूपी चित्त को ज्ञानरूपी जल से स्वच्छ करता है ।३। परमार्थ में किंचित अहंभाव नहीं है । अवास्तविक होने से शश-शृङ्ग के समान यह अकारण ही उदय को प्राप्त है ।४। सर्व व्यापक, अन्तःरहित, सकल्पोंके उल्लेखों से वर्जित ब्रह्ममें अहंकार के कारण का अभाव होने से, वह कभी सन्मय नहीं हो सकता ।५। कारण का संभ-वता से लोक में अवस्तु के लिए कुछ भी कर सकना शक्य नहीं है,प्रकृत सर्ग आदि में तो कारण की संभवना ही नहीं हो सकती । इस प्रकार जैसे वन्ध्या के पुत्र नहीं होता, वैसे ही अहंकार का सर्वत्र अभाव है । ।६। अहंभाव आदि रूपी बीज के अभाव में जगत् का भी अभाव हैं और जगत् के अभाव से ही केवल्य रूपी चिन्मात्र ही शेष रहता है ! इसलिए तुम शान्त ब्रह्म स्वरूप में ही अवस्थित होओ ।७। हे मुने ! मेरे द्वारा यह कहे जाने पर वह विद्याधरेश पूर्ण दृश्यज्ञान के शान्त होने पर नीर-क्षीर विवेक के समान समाधि रूप चित्त वाला हो गया था ।८।

प्रबोध मनोऽपि मया भूयोभूयस्ततस्ततः ।
न पपात पुरो दृश्ये पर निर्वाणमागतः ॥९
स प्राप परमं स्थानं तावन्मात्रप्रबोधवान् ।
केनचिन्नाधिकेनाङ्ग यत्नेनातिशयैषिणा ॥१०
अत उक्तं मया रमा यदि शुद्धे हि चेतसि ।
उपदेशः प्रसरति तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥११
एवं विधा मुनिश्रेष्ठमूढाअपि चिरायुषः ।
भवन्त्यनियमो ह्यंग दीर्घायुष्यस्य कारणम् ॥१२

फिर मैंने बारम्बार उसे जगाने की चेष्टा की, किन्तु वह परम निर्वाणपद में लीन होने के कारण विषयों की ओर प्रवृत्त न हो सका।९ वह मेरे उतने से उपदेश से ही प्रबोधको प्राप्त होकर परम पदमें अवस्थित हो गया, उसे श्रवण, मनन, निदिध्य-ननादि कोई भी प्रयत्न नहीं करना पड़ा।१०। हे राम ! मैंने इसलिए तो कहा था कि जैसे जल में तेल की बूंदें फैलती है, बैसे ही निर्मल चित्त उपदेश वाणी फैल जाती है।११। भुशुण्डजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार कभी-कभी मूर्ख भी चिर जीवी होते पाये जाते हैं, इसका कारण तत्वज्ञान ही होगा, ऐसा नियम नहीं माना जा सकता।१२।

अन्तःशुद्धमनस्का ये सुचिरायाभयप्रदम् ।
मनागप्युपदिष्टान्ते प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥१३
मेरुमूर्द्धनि मामेवमुक्त्वा स विहंगाधिपः ।
तूष्णीं बभूव मुक्तात्मा ऋष्यमूक इवाम्बुदः ॥१४
अहमापृच्छ्य तं सिद्धं विद्याधरमथो पुनः ।
प्राप्त आत्मास्पदं राम मुनिमण्डलमण्डितम् ॥१५
एतत्तवाद्य कथित बलिभुक्वथोक्तं
विद्याधरोपशमनं लघुबोधनोत्थम् ।
अस्मिन् भुशुण्डविहगेन्द्रसभागमे मे ।
चैकादशेह हि गतानि महायुगानि ॥१६

चिरकाल के अभ्यास से जिनका चित्त स्वच्छता को प्राप्त हो गया है, वह अल्प उपदेश प्राप्त करके ही अभयपद को पा लेते हैं ।१३। वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! उस मेरे शिखर पर अवस्थित महात्मा भशुण्ड यह कह कर उसी मौन होगये जैसे ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ऋषि के शाप से भयभीत हुए बन्दर मौन साध लेते हैं ।१४। हे राम! फिर उन सिद्ध भुशुण्डजी से आज्ञा लेकर मैं उस विद्याधर के पास गया और उक्त संवाद को भले प्रकार जानकर मैं मुनियों से युक्त अपने आश्रम में आ पहुँचा ।१५। काकभुशुण्डजी ने जो कथा मुझसे कही थी, उसके द्वारा प्रतिपादित उस विद्याधर की, तत्वज्ञान से प्राप्य विश्रान्ति पूर्ण रूपेण मैंने आपको सुना दी है । हे राम ! खगेन्द्र भुशुण्ड और मेरे इस वर्णित समागमके पश्चात् अब इस कल्प के ग्यारह दिव्य व्यतीत हो चुके हैं ।

६४—दृश्यमान जगत् भ्रान्ति है

रूपालोकमनस्कारबुद्ध्यादीन्द्रियवेदनम् ।
स्वरूपं विदुरम्लानमस्वभस्य वस्तुनः ॥१
अस्वभावतंनुत्वेन स्वभावस्थितिरातता ।
यतोदेति तदा सर्गो: भ्रमाभ: प्रतिभासते ॥२
यदा स्वभावश्रान्ति स्थितिमेति शमात्मिका ।
जगद्दृश्यं तदा स्वप्नः सुषुप्त इव शाम्यति ॥३
भोगा भवमहारोगा बन्धवो दृढबन्धनम् ।
अनार्थायार्थसम्पत्तिरात्मनाऽऽत्मनि शाम्यताम् ॥४
अस्वभावात्मता सर्गः स्वभावैकात्मता शिवः ।
भूयतां परमव्योम्ना शाम्यतां मेह ताम्यताम् ॥५
नात्मानमवगच्छामि न दृश्यं च जगद्भ्रमम् ।
ब्रह्म शान्त प्रविष्टोऽस्मि ब्रह्मैवाऽस्मि निरामयः ॥६
त्वमेव पश्यसि त्वन्त्वं स त्वंशब्दार्थं जृम्भितम् ।
पश्यामि शान्तमेवाऽह केवलं परमं नभः ॥७

वसिष्ठजी ने कहा—हे राघव ! बाह्याभ्यन्तर विषय और बुद्धि आदि इन्द्रियों को स्वच्छ रूप से प्रकाशित करने वाले साक्षी स्वरूप चैतन्य को ही ज्ञानीजन आकार-हीन जगद्रूप मानते हैं।१। अपरिच्छन्न वस्तु के स्वाभाविक रूपमें अविद्याकृत परिच्छेद और देह रूप में उदय को प्राप्त होती हैं, तभी यह सृष्टि भ्रान्ति के समान प्रतीत होने लगती है ।२। जब आत्मज्ञान से शान्ति रूपी विश्रान्ति अपनी स्थिति में होती है तब जैसे सुषुप्ति स्वप्न विलीन हो जाता है, वैसे यह जगद्रूपी दृश्य लीन हो जाता है ।३। यह सम्पूर्ण भोग, संसार के रूप में महारोग ही हैं, बांधता दृढ़ बन्धन रूप और सभी अर्थ अनर्थ स्वरूप हैं । इस लिए अपने से ही अपने आत्मा में शान्ति प्राप्त करिए ।४। ब्रह्म से विपरीत भाव परम चिदाकाश रूप में अवस्यत होकर शांति प्राप्त करिए ।५। मैं स्वयं को नहीं जानता और न दृश्यमान् जगत् की भ्रान्ति को ही जानता हूँ । मैं शान्त में ब्रह्म में अवस्थित होकर निरामय ब्रह्म ही हो-गया हूँ ।६। 'तुमवशिष्ठ हो' इस परत्व को आप देख रहे हो परन्तु मैं सभी को शान्त स्वरूप एवं केवल परम चिदाकाश रूप ही देखता हूँ ।८

ब्रह्मण्येव पराकाशे रूपालोकमनोमयाः ।
विभ्रमास्तव सजातल्पाः स्पन्दा इवानिले ।।८
ब्रह्मात्मा वेत्ति नो सर्गं सर्गात्मा ब्रह्म वेत्ति नो ।
सुषुप्तो वेत्ति नो स्वप्नं स्वप्नस्थो न सुषुप्तकम् ।।९
प्रबुद्धो ब्रह्मजगतोर्जाग्रत्स्वप्नदृशोरिव ।
रूप जानाति भारूपं जीवन्मुक्तः प्रशान्तधीः ।।१०
यथाभूतमिदं सर्वं परिजानाति बोधवान् ।
संशाम्यति च शुद्धात्मा शरदीप पयोधरः ।।११
स्मृतिस्थः कल्पनस्थो वा यथाख्यातश्च सङ्गरः ।
सदसद्भ्रान्ततामात्रस्तथाहन्त्वजरद्भ्रमः ।।१२
आत्मन्यपि नास्ति हि या
द्रष्टा यस्या न विद्यते कश्चिद् ।

न च शून्यं नाशून्यं
　　　भ्रान्तिरिय भासते सेति ॥१३

हे राम ! जैसे पवनमें स्पन्दन होता है, वैसेही चिदाकाशरूपी ब्रह्म में ये बाह्याभ्यन्तर सभी पदार्थ भ्रान्ति रूप से ही उत्पन्न हैं। वे परमार्थ से उत्पन्न न होते हुए भी, उत्पन्न जैसे भासित होते हैं।८। ब्रह्म रूप में अवस्थित पुरुष सृष्टि को और उसमें अवस्थित पुरुष ब्रह्मरूप को उसी प्रकार नहीं जानता जिस प्रकार सुषुप्त पुरुष स्वप्न को नहीं जानता तथा स्वप्न में स्थित पुरुष सुषुप्ति के ज्ञान से रहित होता है। प्रबुद्ध पुरुष ब्रह्म और जगत् के क्रम को जाग्रत और स्वप्न-दृष्टा पुरुष के उनके रूप जानने के समान ही जानता है। इसीलिए वह प्रशान्त बुद्धि वाला जीवनमुक्ता उपदेष्टा होता है।१०। जीवनमुक्त ज्ञानी इस सम्पूर्ण विश्वको यथावत् ही जानता है और जैसे शरत्कालीन मेघ स्वच्छ होते हैं, वैसे ही वह शुद्धात्मा एवं शान्त होता है।११। जैसे कोई युद्ध की बात कहे तो स्मृति या कल्पना से युद्ध की प्रतीति होती है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष को सत्-असत् की भांति रूपी अहंभावना आदि ही जगद्रूपी भ्रम प्रतीत होता है।१२। भले प्रकार दृश्यमान जगत् रूपी माया परमार्थ सत्य आत्मा में और असत् रूपी शून्य है नहीं है तथा कोई जीव जिसका देखने वाला नहीं है, इस प्रकार की शून्य और अशून्य वाली अद्भूत भ्रान्ति अनिर्बचनीय ही प्रतीत होती है।१३।

६५—अविद्या कठपुतली का नृत्य

अस्वभावस्वभायोऽयं सर्वोहन्तादिवेदनः ।
स्वभावैकस्यभावेननिर्वाणीक्रियतां स्वयम् ॥१
यत्रादित्यो भवेत्तत्र यथाऽऽलोकस्तथा भवेत् ।
परं विषयवैरस्यं तत्रयत्रप्रबुद्धधीः ॥२
अकर्तृकर्मकरणमदृश्यद्रष्ट्रदर्शनम् ।
जगदग्राह्यं संभारमभितो चित्तमुत्थितम् ॥३

न चोत्थितं किञ्च न वा शान्तेशान्तंयथास्थितम् ।
अनामयंपरं ब्रह्म सत्यमव्ययमेव तत् ॥४
चिच्चमत्कारमात्रात्मकल्पनारङ्गरञ्जनाः ।
सख्यातुं केन शक्यन्ते खे जगच्चित्रपुत्रिकाः ॥५
रसभावविकराढ्यं नृत्यन्त्यभिनयैर्नवैः ।
परमाणुप्रतिप्रायः खे स्फुरन्त्यस्म्यरात्मिकाः ॥६

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! अविद्या स्वभाव वाला यह आत्मा ही सम्पूर्ण विश्व रूपसे अहंकार आदि का ज्ञाता बन जाता है। इस अग्नि वर्णत्व को प्राप्त हुए आत्मा का विद्या से विकट, अद्वितीय, स्वप्रकाश एवं पूर्णानन्द रूपी आत्मस्वभाव से निर्वाण मय बनाइए ।१। जैसे जहाँ आदित्य हैं वहाँ प्रकाश होगा ही, वैसे ही विषयों में जहाँ वैराग्य होगा वहाँ तत्व बुद्धि होगी ही ।२। कर्ता, कर्म कारण, दृश्य, दृष्टादर्शन और उपादेय पदार्थों से रहित यह जगत् बिना आधार और भित्तिके ही बना है ।३। वह दृश्य रूप से स्थित ब्रह्म में न कभी उत्पन्न हुआ और न शान्त ही हुआ। यथार्थ में तो वह ब्रह्म विकार रहित, नाश-रहित,सत्य और परब्रह्म ही है ।४। चित्ति के चमत्कार रूपी संकल्पमय नृत्यमंडल में विविध रसों से युक्त इस जगत् चित्र की पुतलियाँ चिदाकाश में नृत्य कर रही हैं इनकी गिनती करने में कौन समर्थ हैं ।५। रसादि भाव विकारों के द्वारा नवीन अभिनय-दृश्यों से युक्त परमाणु मात्राओं में स्थित चिदाकाश में यह पुतलियाँ नाँच कर रही हैं ।६।

सर्वर्तु शेखरधरा दिग्बाहुलतिकाकुलाः ।
पातालपादलतिका ब्रह्मलोकशिरोधराः ॥७
चन्द्रार्कलोलनयनास्तारोत्करततूरुहाः ।
प्राप्तलोकाङ्गलतिकाः परितोऽच्छाम्बराम्बराः ॥८
द्वीपाम्बुराशिवलया लोकालोकाद्रिमेखलाः ।
भतत्रारचलज्जीवप्रवहत्प्राणमारुतः ॥९

वनोपवनविन्यासहारकुयूरभूषिताः ।
पुराणवेदवचनाः क्रियाफलविनोदनाः ॥१०
त्रिजगत्पुत्रिकानृत्यं यदिदं दृश्यते पुरः ।
ब्रह्मवारिद्रवत्वं तत्तद्ब्रह्मानिल वेपनम् ॥११
अस्वभावत्थिथैवास्य कारण कारणात्मकम् ।
असुषुप्तस्थिता स्वापे स्वाप्नस्येव सतीव सा ॥१२

इन पुतलियों के शिरोभूषण सभी ऋतु, बाहुललितिका सभी दिशाएं, पादलतिका पाताल, कन्धे ब्रह्मलोक, चंचल चक्षु चन्द्र और सूर्य, रोमावलि तारागण, अङ्गुलतिका सातों लोक और सब ओर से स्वच्छ आकाश इनका परिधान है इनके करकंकण द्वीप और समुद्र, करधनी लोकालोक पर्वत, चलते-फिरते देहधारी इनके प्राण वायु और वन-उपवन इनके केयूरों से युक्त हार हैं। इनके वचन वेद-पुराण और हास-विलास विभिन्न कर्मों के फल रूपी सुख-दुःख हैं। इस प्रकार त्रैलोक्य रूपी पुत्तलिकाओं का जो नाच होता दिखाई देता है वह ब्रह्म रूपी जल वाबु का जलत्व और स्पन्दन ही है।७-११। जैसे सुषुप्ति में उसके स्वभाव से रहित चिति स्वप्न का कारण होती है, वैसे ही अस्वा भाव में अवस्थित होकर यह चिति ही नृत्य की कारण होगई है। ब्रह्म इस प्रकार का कारणात्मक कहा गया है।१२।

असुप्तसुषुप्तस्थः स्वभावं भावयन् भव ।
जाग्रत्यपि गतव्यग्रो मा स्वप्नमिदमाश्रय ॥१३
यज्जाग्रति सुषुप्तत्वं बोधादरसवासनम् ।
तं स्वभावं विदुस्तज्ज्ञा मुक्तिस्तत्परिणामिता ॥१४
अकर्तृ कर्मरणमदृष्ट्रदर्शनम् ।
अरूपालोकमननं स्थितं ब्रह्म जगत्तया ॥१५
कान्ते कान्तंप्रकचति पूर्णे पूर्णव्यव स्थितम् ।
द्वित्वैक्यरहिते भाति द्वित्वैक्यपरिवर्जितम् ॥१६

सत्वं सत्ये स्थितं शान्तं सर्गात्मन्यात्मनि स्वयम् ।
आकाशकोशसदृशं शिलाजठारसंनिभम् ॥१७
सुरत्नजठराकारं वनमप्यबरोपमम ।
प्रतिविम्वमिव क्षुब्धमप्यक्षुब्धमसच्च सत् ॥१८

हे राम ! आप-जाग्रत-रहित पारमर्थिक भाव में स्थित होकर जागृति में भी असुषुप्त-सुषु पद में अवस्थित हो जाइए । इस जगतरूपी स्वप्न का अवलम्बन त्याग दीजिए ।१३। तत्वज्ञान द्वारा जागृति में जिस राग-रहित सुषुप्ति की प्राप्त होती है, ज्ञानीजनों ने उसी को ब्रह्म स्वभाव कहा है । उस स्वरूप में अवस्थित होना ही मोक्ष है ।१४। ब्रह्मरूप में निष्ठित हुए ज्ञानी के लिए तो कर्त्ता, कर्म करण, दृश्य, द्रष्टा और दर्शन से शून्य तथा बाहर-भीतर के विषयों से रहित जगद्रूप से अवस्थित ब्रह्म ही है ।१५। ऐसी अवस्था होने पर ज्ञानी प्रकाश मान में प्रकार, पूर्ण द्वित्व और एकत्व शून्य, प्रत्यगात्मा में द्वित्व और एकत्व-रहित ब्रह्म ही एक रस से अनुभव करता है ।१६। यथार्थत: सृष्टि रूप से अवस्थित आकाश के समान शान्त और सत्य आत्मा ही पाषाण-जठर के समान सत्य स्वरूप में अवस्थित है ।१७। वह रत्नमय पाषाणोदर के समान प्रकाशमान और घन होते हुए भी आकाश के समान है । जगत–रूप प्रतिविम्ब से क्षुब्धसा स्थित होकर भी अक्षुब्ध ही है और जगत-रूपसे असत् भासित होने पर भी सत्स्वरूप ही रहता है ।१८।

भविष्यन्नवनिर्माणं चेतसीव स्थितं पुरम् ।
ब्रह्म बृहितभारूपमभेदीकृतमानसम् ॥१९
यथा संकल्पनगरं संकल्पान्नव भिद्यते ।
तथाऽयं जगदाभास: परमार्थान्न भिद्यते ॥२०
हेमपीठमिवाऽनेकभविष्यत्सन्निवेशवत् ।
लक्ष्यमाणमपि स्फारं शान्तमव्ययमास्थितम् ॥२१

अजस्रनाशोत्पादाढ्यमेकरूपमनामयम् ।
अनाशोत्पादमजरनेकमिव क्रान्तिमत् ॥२२
ब्रह्मैव शान्तिघनभावगतं विभाति
सर्गोदयेन विगतास्तमयोदयेन ।
व्योमेव शून्यविभवेन गलत्स्व भाव-
लाभं प्रति प्रसभमेव ननु प्रबुद्धे ॥२३

जैसे नये नगर के निर्माण से पूर्व उसका अस्तित्व चित्त में कल्पना रूप से रहता है, इस प्रकार नगर चित्तस्वरूप ही है, वैसेही यह आभासित जगत् अपने स्वरूप में ब्रह्मरूप ही है, जिससे मन भी अभिन्न है ।१६। जिस प्रकार संकल्पित नगर संकल्पसे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार यह जगदाभास परमार्थ रूप ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकता ।२०। जिस स्वर्णपीठ में होने वाली रचनायें (संकल्प द्वारा) विद्यमान हैं, उनके समान अनेक प्रकार से विस्तृत और परिपूर्ण भासमान यह जगत् शांत और अव्यय ब्रह्म ही है ।२१। यह उत्पत्ति एवं विनाश से युक्त होकर भी उत्पत्ति एवं विनाश से रहित है तथा अनेक रूप में भासमान होकर भी एक रूप हैं ।२२। तत्वज्ञान की प्राप्तिकर सृष्टि से प्रकट हुई भी उत्पत्ति विनाश-रहित हो जाती है । उस अवस्था में वह पूर्ण स्वस्थित होकर आनन्द घनब्रह्म की ही प्रतीत कहता है । जिस प्रकार कि आकाश में भ्रान्ति से भासित स्वभाव के नाश होने पर शून्य भाव से भासित होने लगता है ।२३।

६६—विश्व और ईश्वर का एकत्व वर्णन

चित्तवत्कचनं शान्ते यत्त मात्र भिद्यते ।
अव्याकृतामलतया क्वातः सर्गादिसम्भवः ॥१
चित्तदीपे मते यानि भ्रान्तियद्भ्रान्तिखे स्थिते ।
ख्यालोकमनस्कारसं ... ऽस्बुद्रवोर्मयः ॥२

निरस्तकसणापेक्षं मरुत्तः स्पन्दनं यथा ।
यथा विसरणं भासस्तथा जगदिदं परे।।३
द्रवत्वमिव कीलाले शून्यत्वमिव चाम्वरे ।
स्पन्दत्वं मरुतीवेदं किमप्यात्ममयं परे ।।४
महाचिति महाकाशे यदिदं भासते जगत् ।
तच्चित्वमेव कचति निर्मलत्वं मणाविव ।।५
यथा द्रवत्वं पयसि यथा शून्यत्वमम्बरे ।
यथा प्रस्पन्दनं बायो महाचिति तथा जगत् ।।६

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! शान्त कूटस्थ आत्मा में जो चित्तवत् प्रकाश होता है, वह चिदात्मा से भिन्न नहीं है। इसलिए सर्ग आदि कही संभय नहीं है, क्योंकि वह अव्याकृत और मल-रहित है ।१। कूटस्थ आत्माकाशमें बाह्यभ्यंतर विषयी का उदय होना ऐसा है जैसी जल रूपी द्रवकी तरंगें । वे मृगतृष्णा के जलके समान मिथ्या है। जब चित्त रूपी सूर्य अस्त हो जाता है, तब वे भी लीन हो जाती हैं।२। जैसे पवन में स्पन्दन अनपेक्ष रूप से होता है अथवा जैसे सूर्य में प्रभा प्रसारित होती है वैसे ही यह जगत ब्रह्म में भी है ।३। जल में द्रवत्व, व्योम में शून्यत्व और पवन में स्पन्दन के समान ही अनिर्वचनीय आत्मा का विवर्तरूप यह विश्व परब्रह्म में है।४। महाचिद्रूप आकाश में भासमान यह जगत, मणि में प्रकाश के समान, चिद्रूप ही भासित होता है ।५। जल में द्रवत्व, आकाश में शून्यत्व और पवन में स्पन्दन के समान ही यह जगत् महाचिति में है ।६।

वेत्ति वायुर्यथा स्पन्दं तथा वेत्ति जगच्चितिः ।
न द्वैतैक्यादिभेदानां मनागप्यत्र सम्भवः ।।७
अविवेकविवेकाभ्यां भागुरं भङ्गुरंजगत् ।
बोधे सदैव सद्रूपमभासुरमभंगुरम् ।।८
ज्ञप्तिमात्रादृते शुद्धादादिमध्यान्तवर्जितात् ।
नान्यदस्तीह निर्णीचं महाचिन्मात्ररूपिणः ।।९

तत्कस्य चिच्छिवं शान्तं कस्यचिदब्रह्म शाश्वतम् ।
कस्यचिन्छून्यतामात्रं कस्यचिज्ज्ञप्तिमात्रकम् ॥१०
तदनन्तात्म चिद्रूपं चेत्यतामिव भावयत् ।
रुवस्थमेव ज्ञेयत्वमज्ञत्वमिव गच्छति ॥११
चित्तया नास्ति सत्ता च चित्तता नास्ति तां विना ।
विना विना यथा बायोर्यथा स्पन्देषु कारणम् ॥१२

जैसे स्पन्दन को पवन अपना ही रूप जानता है, वैसे ही जगत को चिति अपना ही रूप मानती है। अतः द्वैत-अद्वैत आदि भेदों की किंचित भी सम्भावना नहीं है ।७। यह सम्पूर्ण विश्व अज्ञानसे चमकता है और विवेकके नाशवान् है । जब परमार्थ का ज्ञान हो जाता है, तब वह उज्वल या नश्वर कैसा भी भासित नहीं होता केवल सद्रूप ब्रह्मरूप में ही रहता है ।८। ज्ञान मान, शुद्ध, अनादि, अमध्य, अनन्त महा चिन्मात्र रूपी ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं रहता, यह तत्वज्ञान से निर्णीत र्णी तथ्य है ।९। कोई उसे शान्त शिव, कोई शाश्वत ब्रह्म कोई शून्य रूप और कोई ज्ञान स्वरूप मानता है ।१०। वही अनन्तात्म, चिद्रूप, चेतनात्मक स्वयं को विषय स्वरूप जैसा मानता हुआ अपने स्वरूप में स्थित रहकर भी विषय रूप एवं अज्ञानी जैसे हो जाता है ।१। अभ्यास से प्रतीत होने वाले पदार्थों का प्रकार अधिष्ठान भूत चैतन्य के प्रभाव से होती है, अतः विषयों का अस्तित्व अधिष्ठान भूत चेतन के बिना संभव नहीं है और अस्तित्व नहीं तो विषयात्मक चिन्तरूपत्व भी नहीं हो सकता। जैसे कि शून्य कूटस्थ आकाश हीपवन का कारण है और स्पन्दनों का कारण पवन है ।२।

तथामहाचितीच्छाया: सर्गसंवित्तिवृत्तिषु ।
नित्य सत्वमसन्वं वा हेतोरन्यायपेक्षणात् ॥१३
यथा स्पन्दानिलद्वित्वं शाब्दमेव न वास्तकम् ।
विश्वविश्वेश्वरद्वित्वं तथैवासन्मयात्मकम् ॥१४

सदेवासम्भवद्द्वित्वं महाचिन्मात्रकं च यत् ।
विश्वाभास तदेवेदं न विश्वं सन्न विश्वता ॥१५
जगद्भ्रम परिज्ञाव यदवासनमास्तिम ।
विरसाशेषविषयं तद्धि निर्वाणनुच्यते ॥१६
आख्यायिकार्थप्रतिभानमेत्य ।
सवेत्स्यचिद्वारि भरादद्रवात्म ।
अवेद्यचिद्रूपमशेषमच्छं ।
पश्यन्निर्वाण जगत्स्वरूपम् ॥१७
जात्यन्थरूपानुभानुरूपं ।
यदागमैर्बुमवाधरूपम् ।
अधस्पदीकृत्य तदन्तरेऽस्मिन् ।
बोधे निपत्याऽनुभवो भवाभूः ॥१८

महा चैतन्य से उत्पन्न और ब्रह्मसत्ता पर निरन्तर स्वसत्ता वाले सृष्टि भ्रमों में जो सत्ता हैं वह ब्रह्म की अपेक्षा से और जो असत्ता है वह स्वरूप के। यह निर्विवाद है, इसमें किसी अन्य तर्ककी अपेक्षा नहीं हो सकती।१३। जैसे पवन और स्पन्द में केवल शाब्दिक भेद है यथार्थ नहीं वैसे ही विश्व और विश्वेश्वर का भेद भी शाब्दिक ही है, वास्तव में तो वह असन्मयात्मक है।१४। जिसमें द्वित्व सम्भव नहीं, जो विकाल में सत्स्वरूप एवं महाचिन्मात्र रूप है, वही विश्वरूप से प्रतीत होताहै परन्तु यथार्थ में तो विश्व अथवा विश्व का स्वरूप कुछ भी नहीं है।।१५। जगत रूपी भ्रान्तिके भले प्रकार जान लेने पर प्राप्त हुए वासना रहित अवस्वा ही जिसकी अपेक्षा हिरण्यगर्भ तक के सब विषय रस-हीन है, निर्वापद कही जाती है।१६। अतः हे राम ! मैंने जो उपदेश किया है, उसे आप लौकिक अथवा पौराणिक आख्यान 'समझकर ही आप कृतार्थ नहीं होंगे, किन्तु वासना-बृद्धि से प्रवाहित जगद्रूपी अचित जलका दर्शन करेंगे। इसलिए आत्मदृष्टि से ही सम्पूर्ण विश्वको अवेद्यों द्रूप, अशेष देखोगे तभी निर्वाण में अवस्थित होंगे।१७। जैसे किसी

जन्माध को रूप के अनुभव ही, वैसे ही इन उपदेश वचनों में यदि परोक्ष रूप में आपको कुछ ज्ञान हुआ तो वह कोई यथार्थ ज्ञान नहीं है क्योंकि अवरोक्ष वस्तुका परोक्ष ज्ञान तो भ्रमयुक्त ही है। अत:-आप ऐसे ज्ञान का उल्लंघन करके आप प्रात्यगात्म रूपी अपरोक्ष आत्मज्ञान स्थित होकर जन्मादि से रहित आत्मानुभव स्वरूप ही हो जाइये।१८।

६७–तत्वज्ञान से ब्रह्मपद प्राप्ति

अहन्तावि जगच्चेदं परिज्ञानादसत्यताम्।
याति सानुभवो मोहात्सत्यमेवाऽन्यथाधियाम् ॥१
अज्ञानज्वरमुक्तश्य बोधशीतलितात्मनः।
एतदेव भवेच्चिह्नं यद्भोगाम्बु न रोचते ॥२
अलमन्यैः परिज्ञानैर्वाच्यवाचकविभ्रमैः।
अनहवेदनामात्र निर्वाणं तद्विभाव्यताम् ॥३
परिज्ञाता यथा स्वप्ने पदार्था रसयन्ति नो।
न च सन्ति तथैवास्मिन्नहं जगदिदं भ्रमे ॥४
यथा स्वभावनाद्यक्षस्तरौ सस्वजन पुरम्।
पश्यत्यसत्यमेवैवं जीवः पश्यति ससृतिम् ॥५
विभ्रमात्मा यथा यक्षो यक्षलोकश्च ते मिथः।
सद्रूपी सुस्थितौ मिथ्या तथाऽहन्त्वजगत्भ्रमौ ॥६
अनावरणतोऽरण्ये यथा विभ्रमरूपिणः।
यथा स्फुरन्ति भूतानि तथेमानि चतुर्दशः ॥७

वशष्ठि बोले—हे राम भोक्ता और भोग्य स्वरूप यह अहन्तादि जगत् तत्वज्ञान की प्राप्ति पर असत् रूप हो जाता है। भोग चिति से नाश होता है, वह भोक्ता और भोग्य से सम्बन्धित अनुभव है। उसी अनुभव से मोह द्वारा आत्म-अनात्म धर्मो को परस्पर समझने वाले में आत्मबुद्धि वाले मूर्खों को वाह्य जगत् का बोध होता है। अतः बाह्य-भ्यन्तर जगत् का अनुभव ब्रह्मरूप ही समझो।१। अज्ञान से भले प्रकार

रहित जिस पुरुष के आत्मा को ज्ञान रूपी शीतलता प्राप्त हो चुकी है, उसका लक्षण यही है कि उसे भोगरूपी जल रुचिकर प्रतीत नही होता ।२। वाचक रूपी श्रमों से सम्पादित ज्ञान निष्फल है। अहंभाव का अभाय होना ही निर्वापाद है।३। जिस प्रकार जागे हुए पुरुषको स्वप्न में देखे हुए पदार्थों से कोई आनन्द नहीं मिलता, उसी प्रकार यह जगत् हैं, ऐसी भ्रान्ती से देखे गये अस्तित्वहीन पदार्थों से तत्वज्ञानी को आनन्द की प्राप्ति नहीं होती ।४। जैसे कोई यक्ष किसी वृक्ष में अपनी भावना से अपने परिजनों से युक्त किसी मिथ्या नगर को देखे, वैसेही जीव भी अविद्या के कारण इस मिथ्या जगत् को देखता है ।५। जैसे भ्रान्ति आत्मा वाला यक्ष सद्रूप की तरह स्थित मिथ्या यक्षलोक को देखता है, वैसे ही अहन्ता और जग्रत् का भ्रम भी मिथ्या ही है ।६। वन में जैसे यक्ष आदि भ्रान्ति ही स्फुरित होती है, वैसे ही अनावरण से यह चौदह भुवन स्थुरित हैं ।७।

भ्रममात्रमहं मिथ्यैवेति बद्ध्वा विभावयन् ।
यक्षोऽयक्षत्वमायाति चित्तं चित्तत्वतामिदम् ।।८
निरस्तकलनाशङ्कं त्यागग्रहणवर्जितम् ।
अविसारिसमस्तेच्छं शान्तमास्व यथास्थितम् ।।९
यदिदं जगदाभासं शुद्धं चिन्मात्रवेदनम् ।
काऽत्रैकता द्विता का वा निर्वाणमलमास्यताम् ।।१०
भूयता चिन्मयव्योम्ना पीयतां परमो रसः ।
स्थीयतां विगताशंकं निर्वाणानन्द ।।११
किमेतास्वतिशून्यासु संसारारण्यभूमिषु ।
मानवा वातहरिणा भ्रमथो भ्रान्तबुद्धयः ।।१२
जगत्त्रयमरीच्यम्बुविप्रलब्धान्धबुद्धयः ।
मा धावत गतव्यग्रमाशयोपहताशयाः ।।१३

जिस प्रकार 'यह मेरे भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं ऐसा बोध होने पर यक्ष अयक्षत्व को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार अहमादि जगतको

मिथ्या जानता हुआ चित्त चिद्रूपता को प्राप्त होता है ।८। सभी कल्पनाओं और शंकाओं से शून्य त्याग और ग्रहण से रहित तथा अत्यन्त दूर जाने वाली कामनाओं से विगलित एवं शान्त रूप से जैसे स्थितहै, वैसे ही रहिए ।९। सब जगदाभास शुद्ध चिन्मात्र वेदन स्वरूप है, इसमें द्वैत-अद्वैत क्या हो सकता है ? अतः आप पूर्ण निर्वाणपद में अवस्थित रहिए ।१०। आप सभी चिन्मयाकाश बनिए, परम रस का पान करिए और निर्वाण रूप नन्दन काननमें निःशंक होकर विचरण कीजिए ।११ हे मनुष्यो ! आप सभी इस नितान्त शून्य संसार रूपी महा अरण्य के मरुखण्डों में भ्रान्ति बुद्धि वाले मृगों के समान क्यों भ्रमते फिर रहे हैं? ।१२। हे अन्य मति जीवों ! आपको त्रैलोक्य रूपी मृग-तृष्णा ने ठग लिया है । आप इस व्यर्थ माया से चंचल एवं व्यग्र होकर मत दौड़ते फिरो ।१३।

निर्वागताऽवासनता पराऽपतापज्ञता ।
ससाराध्वनि खिन्नस्य शान्ता विश्रामभूमयः ॥१४
तज्ज्ञज्ञातोनमूर्खाणां मूर्खज्ञातो न तद्विदाम् ।
विद्यते जगदर्थोऽसावाच्यार्थ मयो मिथः ॥१५
भ्रान्तिशान्तौ प्रबुद्धस्य विनिर्णाणस्य विश्वता ।
यथास्थितैव गलिते विद्यते च यथास्थितम् ॥१६
देशकालं विनैवाऽऽत्मा बोधाबोधेन चित्ततम् ।
अबुद्धो नीयते न्यायैरेकमेवैष सुस्थितः ॥१७
अत्र यद्यप्यबाधादेः सम्भवो नास्ति कश्चन ।
तथापि कल्यप्यतेऽत्रैव बोधनाय परस्परम् ॥१८
महानुभावा विगताभिमाना
विमूढभावोपशमे गलन्ति ।
निर्भ्रान्तयोऽनन्ततयैव शान्ता ।
नित्यं समाधानमया भवन्ति ॥१९

इस संसार-मार्ग में निरन्तर भ्रमते हुए पथिक के लिए निर्वाणता, वासना-रहितता और त्रिविताप शून्यता ही विश्राम भुमियाँ हैं।१४। परस्पर कहने के आयोग्य अर्थो वाले इस जगतके पदार्थोको जैसा तत्व ज्ञानी जानते हैं, वैसा मूर्ख नहीं जानते अथवा जैसा मूर्ख जानते हैं, वैसे तत्वज्ञानी नहीं जानते।१५। भ्रान्ती के नष्ट होने पर प्रबुद्ध पुरुष के लिए यह संसार रूप प्राप्त नहीं होता। उसके लिए तो आत्मरूप में अवस्थित केवल ब्रह्म ही स्थित रहता है।१६। बोध रूपी आत्मा के अवोध से ही देश-कालादि रहित यह अज्ञानी आत्मा चित्तता को प्राप्त हो गया है। यथार्थमें तो यह एक ही है।१७। शुद्ध चिदात्मा में अज्ञान की सम्भावना होते हुए भी परस्पर में दोष का आदान-प्रदान करने के लिए ही ऐसी कल्पना को गई है।१८। हे राम ! तत्वज्ञान द्वारा मूल अज्ञान के समान होने पर महात्मा पुरुष अभिमान का परित्याग करके घृत से समान अपने स्वरूप में ही लीन हो जाते हैं और निरतिशय आनन्द की उपलब्धि से शान्त निक्षेप रहित एवं निरन्तर समाधि रूपी उत्कृष्ट विश्रान्ति में अवस्थित होते हैं।१९।

६८—ध्यान से दृढ़ वैराग्य की उत्पत्ति

परमार्थ फले ज्ञाते मुक्तो परिणति गते।
वोधोऽप्यसत्भवत्याशु परमार्थो मनोमृगः ॥१
क्त्रापि सा मृगता याति प्रक्षीणस्नेहदीपवत् ।
परमार्थ दर्श वास्ते तत्रानन्तावभासिनी ॥२
ध्यानद्रुमफलप्राप्तौ बोधतामागतं मनः।
वज्रसारां स्थिति धत्ते छिन्नपक्ष इवाचलः ॥३
मनस्ता क्वापि संयाति तिष्ठत्यच्छैव बोधता।
निर्बाधा निर्विभागा च सर्वाऽखर्वात्मिकता सती ॥४
स्वयमेव ततस्तत्र गिरस्तसदलेषणम् ।
अनाद्यन्तमनायासं ध्यानमेवावशिष्यते ॥५

यावन्नाधिगततं ब्रह्म न विश्रान्त परे पदे ।
तावत्तन्मनत्वेन न ध्यानमवगम्यते ॥६
परमार्थैकतामेत्य न जाने क्व मानो गतम् ।
क्ववासना क्व कर्माणि क्व हर्षमर्षसंविद: ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! परमार्थ फल के जानने पर जब मुक्ति दृढ़ता होती है,तब साक्षात्कार वृत्तिरूपी ज्ञानभी अज्ञान के वाधित होने से असद्रूप हो जाता है और मन रूपी मृग परमार्थ को प्राप्त होता है ।१। तब बिना तेल के दीप के समान इसकी पूर्वकालीन मृगता (राग चञ्चलता) न जाने कहाँ लोप हो जाती है ? उस समय आत्मरूप प्रकाशिका परमार्थ-स्थिति ही शेष रह जाती है ।२। जब ध्यान रूपी वृक्ष परमार्थ रूपी फल को प्राप्त कर लेता है तब बोधता को प्राप्त हुआ यह मन पंख-रहित पर्वत के समान वज्र सदृश दृढ़ हो जाता है।३। वाह्य पदार्थों के मननका स्वभाव नष्ट होकर निर्वाध निर्विभाग,सम्पूर्ण अरर्वात्मिक चिन्मन्यता ही शेष रह जाती है ।४। तब सभी इच्छाओं के विगत होने तथा कोई अन्य गति न रहने के कारण आदि और अन्त रहित, अनायास आत्मध्यान ही अवगत होता है ।२। जब तक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और जब तक परम पदमें विश्रान्ति की उपलब्धि नहीं हो जाती, तब तक विषय के मनन में उलझा हुआ मन आत्म-ध्यान का अनुभव भी नही कर पाता ।६। परमार्थ रूपता के प्राप्त होने पर तो वह मन न जाने किधर चलाजाता है । तव कहाँ वासना रहती है कहाँ कर्म रहते हैं और हर्ष—अमर्ष की वृत्तियाँ कहाँ रहती हैं ।७।

केवलं दृश्यते योगी गतो ध्वानैकनिष्ठताम ।
स्थितो वज्रसमाधाने विपक्ष इव पर्वत: ॥८
तावद्विषयवैरस्य भावयन्त्युचिताशय: ।
न पश्यन्त्येव तान्यावद्भोगाश्चित्रतरो यथा ॥९

अपश्यञ्जागतानर्थान्निर्बासनतयाऽऽत्मवान् ।
वलाद्वज्रसमाधाने त्वन्येनेव निवेश्यते ॥१०
यस्मै न स्वदते दृश्यं स सम्बुद्ध इति स्मृतः ।
न स्वदन्ते यदः भोगाः सम्यग्बोबस्तथोदितः ॥११
यस्यं स्वभावविश्रान्तिः कथ तस्यास्ति भोगिता ।
अस्वाभावो हि भोमित्वं तत्क्षये तत्कथं कुतः ॥१२
श्रुतपाठजपान्तेषु समाधिनिरतो भवेत् ।
समाधिविपतः श्रातः श्रुतपाठजपाञ्छ्रयेत् ॥१३
निर्वाणमासीत निरस्तखेदं ।
समस्तशकास्तमयाभिरामम् ।
सुषुप्तसौम्यं समशान्तचित्तं ।
शरद्घनाभोगविशुद्धमन्तः ॥१४

इस अवस्था मैं योगी ध्यान में एकनिष्ठ दिखाई देता है और वह वङ्क-रहित पर्वत अथवा वज्र के समान दृढ़ से अवस्थित हो जाता है ।८। शुद्ध अन्तः करण वाले योगियों की विषयों में विरक्ति हो जाती है तबतक चित्रित मनुष्यों को चित्र-चित्रित पुरुष द्वारा देखे जानेके समान ही भोगों की ओर वे अर्थहीन रूप देखते हैं ।९। वासना रहित होने से जगत् के पदार्थों को न देखता हुआ आत्मज्ञानी ऐसा हो जाता है जैसे यह वज्र के समान अटूट समाधि मानों किसी अन्य के द्वारा वलात् नियुक्त किया गया हो ।१०। जिसे विषयों से विरक्ति हो, वही ज्ञानी कहा जाता है और भोगों में अरुचि होने पर ही उसे सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है ।११। जो अपने अपने आत्म स्वभाव में अवस्थित हो गया उसे भोग कैसे ! क्योंकि भोग तो आत्मा के विरुद्ध स्वभाव वाला ही है, उसके क्षीण होने पर वह टिक ही कैसे सकता है ? ।१२। प्रथम शास्त्रों का श्रवण पाठ और जप आदि करें, फिर समाधि में तत्पर हो और समाधि टूटने पर पुनः श्रवण, पाठ और जपादि करे ।१३। हे राम ! अपने अन्तर में एक मात्र निर्वाण रूप समादि को देखता हुआ

स्थित रहे, खिन्न मन न रहे और शंकाओं का परित्याग कर दे। यही समाधि सुषुप्ति के समान परम शान्त सुखद और शरत्कालीन मेघ के समान स्वच्छ है। ऐसी ही अवस्था में चित्त सम्यक् रूपसे शान्त रहता है।१२।

६९—जगत् परमार्थमय है

भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मचराचराः।
आदावे हि नोत्पन्नना सर्गादौ कारणं विना ॥१
न त्वमूर्तौऽहि चिद्धातुः कारणं भवितु क्वचित्।
स्वात्मा शक्तः स मूर्ताना बीजमुर्वीरुहामिव ॥२
स्वभावमेव सततं भावयन् भावनात्मकम्।
आत्मन्येव हि चिद्धा तु सर्वोऽनुभववान् स्थितः ॥३
आस्वादयति यं भाव चिद्धातुर्गगनात्मकः।
लब्ध सर्गः प्रलापेन क्षीबः क्षुब्धतया यथा ॥४
यथा सर्वमनुत्पन्न नासत्येवापि च दृश्यते।
तदा ब्रह्मैव विद्धीद सम शान्तमसत्समम् ॥५
चिन्नभश्चिन्नभस्येव पयसीव पयोद्रवः।
चित्वात्कचति यत्तेन तदेवेद जगत् कृतम् ॥६
स्वप्ने तदेव जगदित्युदेति विमला यथा।
काचकस्येव कचतितथैत्थ सादि सर्गखे ॥७

वसिष्ठ जी बोले—राम ! भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग स्थूल, सूक्ष्म और चराचर सहित यह जगत सृष्टि के आरम्भ में ही प्रकट भाव नहीं है क्योंकि इनके उत्पत्तिकर्त्ता किसी कारण का उस समय भाव नहीं होता।१। आकार-हीन चितितत्व कहीं भी कारण रूप नहीं हो सकता साकार वृक्षों से ही साकार बीज के उत्पन्न होने के समान, यदि अपनी आत्मा साकार होती तो साकार पदार्थों को उत्पन्न कर सकता था।२।

सभी तत्वज्ञानी पुरुष चितितत्व रूप से अपने आत्मामें ही आत्म-रूपत्व की भावना करके अवस्थित है ।३। चिदाकाश रूपी आत्मा जिस भाव का आस्वादन करता है, वही भाव इस प्रकार साक्षात हो जाता है, जिस प्रकार की मद्य के क्षोभ से प्रलाप करता हुआ मद्यपायी अपनी आत्मा से स्वरूप प्राप्त कर लेता है ।४। जब यह सभी अनुत्पन्न हैं और कुछ न होते हुए भी दिखाई देता है । तब आप इस अज्ञानावस्था में असद्रूपको शान्त ब्रह्म ही जानिये ।३। जलमें द्रवत्वके समान चिदाकाश में चिदाकाश रूपी विश्व है । चिदात्मा के कारण इस सम्पूर्ण प्रपंच के प्रवाक्षित होने से यह विश्व ब्रह्मरूप ही है और उस जगदाकार ब्रह्म ने ही इसकी रचना की है ।६। स्वप्न में जिसप्रकार निर्मल चेतन ही यज-द्रूप से उदय को प्राप्त होता है अथवा कांचदोष वाले चक्षु से आकाश में के शोण्ड्रक आदि की भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार सृष्टि रूप से उत्पन्न चिदाकाश में ऐसा आदि रूप विश्व प्रकाशित होता है ।७।

आदिसर्गे हि चित्स्वप्नो जाग्रदित्यमिशब्द्यते ।
आद्यरात्रौ चिते स्वप्नः स्वप्न इत्यापि शब्द्यते ॥८
सर्वप्रवृत्ता सरिता रूढाद्यापि यथास्थिता ।
तमरङ्गलेख दृष्टीनां पदार्थ रचना तथा ॥९
कुकर्मभ्यस्तु चेदभीतिः सा समेह परत्र च ।
तस्मावेते सममुखे सर्वेषां मृतिजन्मनी ॥१०
मरणं जीवितं वाऽस्तु सहजे वासने तयौः ।
इति विश्रान्तचित्तो यः सोऽन्तः शीतल उच्यते ॥११
सर्वसंवित्तिवगमे सविद्रोहति यादृशी ।
भूयते तन्मयेनैव तेनासौ मुक्त उच्यते ॥१२
अत्यन्ताभावसवित्या सर्वदृश्यस्गवेदनम् ।
उदेत्यपास्तहंवेद्य सति वाऽसति सर्गके ॥१३
यन्य चेत्यं न चिद्रुपं यच्चितेरप्यचेतितम् ।
तद्भावैक्यं गतास्तज्ज्ञा शान्ता व्यवहृतौ स्थिताः ॥१४

प्रथम प्रवृत्त हिरण्यगर्भ की सृष्टिमें स्थिति चिति स्वप्न ही जागृत'कहा जाता है और घोर रात्रि में प्रवृत्त चित्ति-स्वप्न ही 'स्वप्न' कहलाता है ।८। प्रथम सकल्प सर्ग के अन्तिम काल तक व्यवस्थापिका नियतिहै । उसी के अनुसार भले प्रकार व्यवस्थित पदार्थ रचना एक प्रकार से पूर्व में प्रवाहित नदियों की तरङ्गलेखा के समान प्रत्यक्ष प्रतीत होती है ।९। कुकर्म के फलस्वरूप नरक आदि का भय जीवित और मृतक के लिए समान ही है । सभी के जन्म-मरण में सुख-दुःख की समानता होने से उनमें कोई भेद नहीं है ।१०। मरण अथवा जीवन दोनों अवस्थाओं में विद्यमान वासनाओं अथवा उनकी सूक्ष्म सत्ता के ब्रह्मरूप होने से, वे ब्रह्म सुखरूपी है, । अतः ब्रह्म मुख में विश्रान्ति प्राप्त करने वाला वीर पुरुष ही शीतलात्मा कहा गया है ।११। सभी प्रकार के भिन्न ज्ञानों के अस्त होने पर उत्पन्न हुआ एक रूप ज्ञान ही तद्रूप हो जाता है । तब दृश्य सत्ता के नष्ट होने पर ही पुरुष मुक्त कहलाता है ।१२। तीनोंकाल में विषयों के अस्तित्व हीन होने का ज्ञान होते ही ब्रह्मरूप से सृष्टि की पारमार्थिक सत्ता उसकी दृष्टि में असत्ता बन जाती है । तब सभी दृश्य की ज्ञान विषय-रहित रूप से ही उदित होता है और मुक्त रूपत्व की प्राप्ति होती है ।१३। जो न चेत्य रूप है, न चितिक्रिया रूप है तथा जो वितिक्रियासे प्रकार को भी प्राप्त नहीं होता, इस प्रकारब्रह्मत्व रूप से एकरूप बने वह तत्वज्ञ पुरुष परम शान्ति रूपी व्यबहार में स्थित रहतें हैं ।१४।

चित्काचकाचकच्यं यज्जगन्नाम्ना तदुच्यते ।
अत्यच्छे परमाकाशे बन्धमोक्षदृशः कुतः ॥१५
चिन्नभः स्पन्दमात्रात्म सङ्कल्पात्मतया जगत् ।
सद्भतमयमेवेद न पृथव्यदिमय क्वचित् ॥१६
नेह देशो न कालोऽस्ति न द्रव्यं न क्रिया न खम् ।
सादिवा खिलमुच्छून वाऽप्यच्छूनमप्यसत् ॥१७

भाति केवलमेवेत्थं परमार्थघन घनम् ।
यन्न शून्य न वाऽशून्यमत्यच्छं गगनादपि ॥१८
साकारमप्यनाकारमसदेवातिभास्वरम् ।
अतिशुद्धं कचिन्मात्रस्फारं स्वप्नपुरं यथा ॥१९
निर्वाणमेवमिदमाततमित्यमन्त-
चिद्व्योम्न आबिलमनाबिलरूपमेव ।
नानेव न क्वचिदपि प्रसृतंन नाना ।
शून्वत्वमम्बर इवाम्बुनिधौ द्रवत्वम् ॥२०

अति निर्मल विदव्योम में चिति का निरन्तर प्रकाशन ही तो जगद्रूप कहा गया है, अतः उसमें वध और मोक्ष की दृष्टियाँ ही संकल्प से आकार को प्राप्त हुआ यह जगत् चिदाकाश का स्पन्दन स्वरूप ही है इसलिए वह तीनों कालों से वधित ब्रह्ममय है, पृथिव्यादिमय नहीं है, ।१५-१६। यहाँ देश काल, दृव्य, क्रिया, आकाश आदि कुछ भी नहीं है, केवल प्रतिभासित होने से.ही यह सब प्रकट और सत् के समान प्रतीत होताहै यथार्थ में तो प्रतिभासित होनेसे सब उत्पन्नहै वह अनुत्पन्नओर असत्य ही है ।१७। इस प्रकार इस जगत्-रूपमें केवल परमार्थ मन रूपी ब्रह्म ही भासमान है, ब्रह्म न तो शून्य है और न अशून्य है, वह तो आकाश से भी अधिक निर्मल है ।१८। स्वप्न में देखे गये नगरके समान साकार लगता हुआ ब्रह्म निराकार ही है । वह अत्यन्त भास्कर,स्वच्छ और चिन्मात्र होने से विस्पष्ट हैं ।१९। चिदाकाश में स्थित कलुषित-स्वरूपही वताए हुए मार्गसे कलुष-हीन होकर निर्वाण स्वरूप हो जाता है । यह निर्माण स्वरूप सर्वत्र उपलब्ध हैं । यह जगत् भिन्न नहीं है, अपितु व्योम में शून्य और समुद्र में जलत्व के समान अभिन्न हैं ।२०।

७०—चिति ही सब कुछ है

सर्वत्र सर्वथा सर्वदा सर्वं व्योम्नि चिन्मये ।
साधु सम्भवतिस्वच्छशून्यत्व ख इवाखिले ॥१

यत्र चित्तत्र सर्गश्रीरव्यौम्नि व्योम्निवाऽस्ति चित् ।
चिन्मयत्वात्पदार्थानां सर्वेषां नास्त्यचित क्वचित ॥२
पदार्थ जातं शैलादि यथा स्वप्ने पुरादि च ।
चिदेवैकं पर व्योम तथा जाग्रत्पदार्थ भू: ॥३
पाषाणाख्यानमत्रेद शृणु राम रसायनम् ।
थूर्व मयैव यद्दृष्टं चित्रं प्रकृतमेव च ॥४
अह विदितवेद्यत्वात्कदाचित्पूर्ण मानस: ।
त्यक्तुमिच्छरिमं लोकव्यवहारं घनभ्रमम् ॥५
व्यानैकत्तानतामेत्य शनैविश्रान्तये चिरम् ।
त्यक्ताजव जवीभाव एकान्मार्थी शमं व्रजन् ॥६
इदं चिन्तिवानस्मि कस्मिश्चिदमरालये ।
संस्थितो विविधा: पश्यन् भंगुरा जागतीर्गती: ॥७

बसिष्ठजी बोले—हे राम ! चिन्मय व्योममें सर्वत्र सर्वथाएवं असं कोच से अवस्थित एवं स्वच्छ है । जैसे नील रूप से शून्यया आकार में मलीनता उत्पन्न कर उसे दूषित नहीं करती,वैसे जगत् के मलसे चिति दूषित नहीं होती ।१। जहाँ चिति है, वही श्री है वही, पृथिवी आकाश सभी में विद्यमान है । सभी पदार्थों के चित्ति रूप होने के कारण कहीं चिति नहीं हैं । ऐसा सम्भव नहीं है ।२। जिसप्रकार स्वप्नमें पर्वतनगर आदि सब चिति रूप हैं, उसी प्रकार जाग्रत में भी यह पदार्थ चितिरूप ही हैं ।३।हे राम ! अब इस विषयमें मुझसे पाषाण आख्यायिका सुनो । यह रसों से पूर्ण और भ्रमरूपी रोगको परमौषधि एवं अत्यन्त अद्भुत है ।४। एक समय जब मैंने ज्ञातव्य वस्तु को जान लिया और मेरा मन भी पूर्णता को प्राप्त हो चुका,तब मुझे इस घोर भ्रम वाले लोक व्यवहार को त्याग देने की इच्छा हुई ।५। फिर मैं समाधि में एकनिष्ठ होकर चिर-विश्रान्ति के निमित्त सब प्रकार की चचलता छोड़कर एकान्त शान्ति की ओर बढ़ने लगा ।६। तब अनन्त की ओर चलता हुआ मैं किसी देवता के स्थान में अवस्थित होकर लोक की अद्भुत

नाशवान गतियों का पर्यालोचन करता हुआ सोचने लगा ।७।

विरसा खल्वियं लोकस्थितिरापातसुन्दरी ।
न जातु सुखदा मत्ये कस्यचित्केनचित् क्वचित् ॥८
उद्वेगजमयन्त्यन्तस्तीव्रसंवेग खेदतः ।
इमा दृश्यदृशो द्रष्टुरिष्टानिष्टफलप्रदाः ॥९
किमिदं दृश्यते किं वा प्रेक्षते कोऽहमेव वा ।
सर्वं शान्तमजं व्योम चिन्मात्रात्मतिरिङ्गकम् ॥१०
तस्मात्समस्तसिद्धेन्द्रदेवदैत्यादिदुर्गमम् ।
सुप्रदेशमितो गत्वा संगोप्यात्मानमात्मा ॥११
अदृश्य सर्वभूतानां निर्विकल्पसमाधिगः ।
समे स्वच्छे पदे शान्ते विगतवेदनम् ॥१२
तस्मात्को नु प्रदेशः स्यादत्पातं शून्यतां गतः ।
यत्रैता नानुभूयन्ते पञ्जवाह्यार्थ वेदनाः ॥१३
शब्दकाननवार्यब्दभूतौद्याभिसमाकुलः ।
क्षोभयन्त्यथ मंक्षुब्धास्तस्मान्मे गिरयोऽस्यः ॥१४

मैंने विचार किया लोकों की यह अवस्था नीरस ही है, केवल ब्रह्म रूप से सुन्दर प्रतीत होता है। अतः मैं समझता हूँ कि वह कभी, भी कही किसी को किसी भी कारण सुखदायी नहीं हो सकती है ।१८। यह दृश्य दृष्टियाँ अत्यन्त सवेग खेद उत्पन्न करने वाली, इच्छित और अनश्चित फल के देने वाली हैं तथा यह दृष्टा के लिए अत्यन्त उद्वेगप्रद है ।१९। यह क्या दिखाई दे रहा है, कौन देखता है, मैं कौन हूँ ? अर्थात् यह सभी कुछ शान्त, अजन्मा और चिदाकाश रूप है तथा चिदाकाश में किंचित रेंगने वाला विवर्त वन गया है। यह सोचता हुआ मैं इच्छा करने लगा कि सब सिद्ध, इन्द्र, देवता, दैत्य आदि को भी दुर्गम किसी रमणीक स्थान में जाकर अपने शरीर को अन्तर्हित रखता हुआ निर्विकल्प समाधि द्वारा एक अद्वितीय एवं शान्तपद में अवस्थित और सब विकल्पों से मुक्त हो जाऊँ ।११-१२। वह शून्यता प्राप्त श्रेष्ठ प्रदेश

कौन सा है जहाँ मुझे समाधिस्थ होना चाहिए । वहाँ पंचेन्द्रियों से उत्पन्न पाँच प्रकार के वाह्यार्थज्ञान का भी नितान्त अभाव हो ।१३। क्षुब्ध करने वाले शब्दों से आक्रान्त वन, जल, मेघ, सिंह आदि से व्याप्त पर्वत भी शत्रु के समान प्रतिकूल है, क्योंकि वे स्वयं क्षुब्ध होने के कारण दूसरों को भी वैसा ही कर देते हैं ।१४।

गायन्त्यनिलभांकारैर्नृत्यन्ति लतिकाः करैः ।
पुष्पैर्हसन्त्तगेन्द्राणां गुहा गहनकोटराः ॥१५
मौनिमीनमुनिस्परर्शकम्पिनालचलाम्बुजाः ।
सरस्यो विरसा एव वार्यावर्तविराविताः ॥१६
तस्मादाकाशमाशून्यं कस्मिश्चिद्दूरकोणके ।
अत्र तिष्ठाम्यवष्टब्य योगयुक्तिमनिन्दिताम् ॥१७
इति सञ्चिन्त्य यातोऽहमाकाशमसिनिर्मलम् ।
वायत्तदपि पश्यामि सकल वितताम्तरम् ॥१८
क्वचित् भ्रमत्सिद्धगणं क्वचिदुद्गर्जदम्बूदम् ।
क्वचिद्विद्याधराधारं तक्षोत्क्षिप्तक्षय क्वचित् ॥१९
क्वचिद्भ्रमत्पुरवरं प्रारब्धसमरं क्वचित् ।
क्वचिद्द्रवज्जलधरं क्वचिदुद्वृत्तयोगिनि ॥२०
क्वचिद् दैत्यपुरोड्डीनसगन्धर्वपुरं क्वचित् ।
क्वचित्भ्रमद्ग्रहगणं तारकाकुलितं क्वचित् ॥२१

पर्वतों की गहन गुफाएँ भी पवन के भाकारादि शब्दों में गाती, लतिका रूपी हाथों से नाचती और पुष्पोंके साथ हास-परिहास करती है, इसलिए वे भी क्षोभ उत्पन्न करने वाली है ।१५। दर्प और भय से भीत मछलियों और मुनियों के स्नान-स्पर्श से कम्पनशील ओर नाल-दण्डों से चञ्चल नीरजों से परिपूर्ण सरोबर भी शब्दायमान होने के कारण समाधि में विघ्न के कारण हैं, इसलिए वे भी नीरसही हैं।१६। इस लिए मैंने निश्चय कियाकि सव ओर विक्षे कारणोंसे शून्य आकाश

ही समाधि के लिए उपयोगी रहेगा, अतः आकाश के किसी एक कोनेमें जाकर आनन्द से युक्त समाधि लगालूँ ।१७। ऐसा विचार कर मैं असि की धार जैसे स्वच्छ प्रकाशकी ओर बढ़ा तभीमैंने देखाकि वह आकाश भी असंख्य विक्षेपों से व्याप्त उदर वाला है ।१८। वहाँ कहीं सिद्धगण भ्रमण कर रहे हैं तो कही घोर गर्जनशील मेघ हैं, कहीं विद्याधर हैं तो कहीं यक्षों का साम्राज्य है ।१९। कही श्रेष्ठ नगर-समूह चल रहेहैं; कही संग्राम की तैयारी हो रही है, कहीं मेघ वर्षा कर रहे हैं और कही रौद्ररूप वाली योगिनियां स्थित हैं ।२०। कहीं दैत्य नगरों के कारण गन्धर्व और देवताओं के नगर उड़े जा रहे है, कहीं ग्रहगण विचार शील है और कहीं वह तारागणों से समाकुल है ।२१।

क्वचित्खे खंगसंघृष्टं क्वचित् क्रुद्धमहानिलम् ।
क्वचिदूत्पातवलितं क्वचिन्मण्डलमण्डितम् ॥२२
क्वचिद्पूर्व भूतौघं नागरावलितं क्वचित् ।
क्वचिदर्करथ: क्रान्तं क्वचिनन्यरथोद्धुरम् ॥२३
क्वचिदादित्गदाहान्तं शशिशैत्यान्वितं क्वचित् ।
क्वचित्क्षुद्रजनासह्यं क्वचिदग्न्यौष्ण्यदुर्गमम् ॥२४
क्वचिद्त्तालवेतालं गरुडोढामरं क्वचित् ।
क्वचित्सप्रलयाम्भोदं क्वचित्सप्रलयानिलम् ॥२५
ततो भूतगणांस्त्यक्त्वा दुराद्रततं गतः ।
प्राप्तवानहमेकान्तं मून्यमत्यन्तं विस्तृतम् ॥२६
अत्यन्तमन्यपवनं स्वप्नेऽप्यप्राप्यभुतकम् ।
मंगलोत्पातरहितसगम्यं विद्धि संसृतेः ॥२७
कल्पिताऽथ मया तत्र कुटी प्रकटकोटरा ।
नीरन्ध्रकुडचनिबिडा पद्मकुड्मलसुन्दरी ॥२८

कहीं पक्षियों का प्राबल्य है, कहीं कुपित वायु का प्रकोप है, कहीं उत्पात हो रहे हैं तो कहीं मेघ मण्डल आदि की व्याप्तता है ।२२।कही विचित्र भूतों का समाज है,कहीं विविध नगरोंके समूह हैं कहीं वह सूर्य

के रथ से और कहीं चन्द्रमा के रथ से आक्रान्त हो रहा है ।२३। कहीं सूर्य की निकटता से जीव दग्ध हो रहे हैं, कहीं शीत ऋतु की शीतलता कहीं भूत-प्रेतादि की वीभत्सता है और कहीं अग्नि की दुर्गम उष्णता है ।१४। कहीं घोर रूप वाले दीर्घकाय वेताल हैं, मेघ जैसी वर्षा कर रहे हैं कहीं वायु प्रलय जैसा दृश्य उपस्थित कर रहा है ।२५। इस सबको देखता हुआ मैं दूर-अति दूर चलता-२ एक ऐसे एकान्त स्थानमें पहुँचा, जो नितान्त शून्य और विस्तृत था ।२६। उस प्रदेशमें मन्द वायु प्रवाहित था, भूतगण की तो स्वप्न में भी वहाँ पहुँच नहीं हो सकती थी, वह शुभ और अशुभ सभी चिन्हों से रहित स्थान संसारी जीवों के लिए तो अगम्य ही था ।२६। मैंने अपने सत्य सत्य सङ्कल्प से उस शून्य प्रदेश में, एक कुटी बनाई उसके कोटर अत्यन्त स्वच्छ थे, भीत छिद्र-रहित निविड एवं पद्म की कलियोंके समान सुरम्य थी ।२८।

घुणक्षुण्णाङ्गपूर्णेन्दुबिम्वोदरमनोहरा ।
कह्लारकुन्दमन्दारपुष्पश्रीकोशशोभिता ॥२६
समस्तभूतागम्यत्व तत्र सङ्कल्प्य चेतसा ।
अगम्ये सर्वं भूतानाप्रहमासंतदा ततः ॥३०
बद्धपद्मासनः शान्तमनाः परममौनवान् ।
सयत्सरशातेन निर्णीयोत्थानमात्मनः ॥३१
निर्विकल्पसमाधिस्थो निद्रामुद्रामिवागतः ।
समः सौम्यनभः स्वस्थः समुत्कीर्ण इवाम्बरात् ॥३२
चिर यदनुसंधते चेतः पश्यति तत्क्षणात् ।
च्चिरेण चाशापवनव्यक्तिवद्वितत यदा ॥३३
तदा वर्षशतेनात्र बोधबीज वृतान्तरम् ।
असीन्मे हृदयक्षेत्रे कालमेकं विकसतः ॥३४
संप्रबद्धोऽभवन्मेथ जीवः सम्बुद्धवेदतः ।
शिशिराक्षीणगात्रास्य मधाविदरसस्तरोः ॥३५

वह कुटी ऐसी सुरम्य थी,जैसे पूर्णचन्द्रमें घुन ने छेद कर दियाहो। वह कहलार,कुन्द और मन्दार पुष्पों द्वारा सुसज्जित की गई।२९।प्रथम तो मैंने अपने मानसिक सङ्कल्प द्वारा उसे सब जीवों के लिए अगम्य बनाया और फिर मैं उस कुटीमें प्रविष्ट हुआ।३०। फिर वहाँ मैं पद्-मासन में स्थित हुआ, मन को शान्त कर मौनावलम्बी रहता हुआ सौ वर्ष तक समाधि लगाने का निश्चय कर निर्विकल्प रूपसे समाधिस्थ हो गया उस समय में एकवृत्ति से निश्चल हुआ आकाशोपम अपने स्वरूप में इस प्रकार अवस्थित हो गया, जैसे में आकाशसे ही लिपट गया हूँ।३१-३२। मन जिसका दीर्घकाल तक स्मरण करे उसे वह तुरन्त ही देखता है, इस नियम के अनुसार सौ वर्ष का लम्बा समय व्यतीत होने पर, जब आशा और वायु के उत्पन्न होने पर कर्म का आन्तरिक भाग आवृत्त था, तब ज्ञेय का ज्ञान प्राप्त करके मेरी जीव, शिशिर में क्षीण काम हुए तरु का रस मधु मास में प्रबुद्ध होने के समान ही, प्रबोध को प्राप्त हो जाता है।३३-३५।

तच्छतं तत्र वर्षाणां निमेषमिव मे गतम् ।
बहवचोऽपि कालगतयो भवन्त्येकधियो मनाक् ॥३६
विकासमागतो बाह्यं गतो बद्धीन्द्रियक्रमः ।
वासन्त पुष्परूपेण मदस्येव रसो मम ॥३७
मां प्राणपूरितमुपागतसंविदंश—
मभ्यागतं त्वहमिति प्रसृतः पिशाचः ।
इच्छाङ्गनाविवलितोऽथ कुतोऽपि सद्यः ।
प्रो नामसन्नमनवायुरिवोग्रावृक्षम् ॥३८

वहां मेरे वह सौ वर्ष निमेषमात्रके समान बीत गए, क्योंकि एकाग्र चित्त होने से काल की गति भी स्वल्प ही हो जाती है।३६। वृक्षों के रसका मद पुष्टि और हर्ष का हेतु भूत वसन्त कालीन रस पुष्परूप से जैसे प्रकट होता है, वैसेही शनैः शनैः विकसित होती हुई बुद्धि-इन्द्रियों की परम्परा बाहर गमनशील हो गई।३७। फिर पंचवृत्यात्मक प्राण-

वायु और इन्द्रियों से पूर्ण होनेके कारण चिति-अंश युक्त देह वाले मुझ अभ्यागत को देखकर तुम और मैं संज्ञक अहङ्कारापिशाच अपनी इच्छा रूपिणी पत्नी के सहित किसी ऐसे तर्क-रहित प्रदेश से मेरे पास शीघ्र आ पहुँचा, जैसे कि उग्र वृक्षों के निकट ऊँचे वृक्षों को झुका देने वाला प्रचण्ड वायु आ जाता है ।३८।

७१–दृश्य प्रपंच की चिन्मात्रता

त्वामप्युदितनिर्वाणमहङ्कारपिशाचकः ।
बाधते किमित ब्रूहि मुने सन्देहशान्तये ॥१
अहंभावं विना देहस्थितिस्तज्ज्ञाज्ञयोरिह ।
आधेयस्य निराधारा न संस्थेहोपपद्यते ॥२
अयं त्वत्र विशेषस्तं श्रृणु विश्रान्तचेतसः ।
श्रुतेन येनाहंभावपिशाचः शान्तिमेति ते ॥३
अहंभावपिशाचोऽयमज्ञानशिशुनाऽमुना ।
सविद्यमान एवान्तः कल्पितस्तेन संस्थितः ॥४
अथानमपि नास्त्येव प्रेक्षितं यन्न लभ्यते ।
विचारिणा दीपवता स्वरूपं तमसो यथा ।५
यथायथा विलोक्यते तथातथा विलीयते ।
इहाज्ञता पिशाचिका तथा विचारिता सती ॥६
किल सत्यामविद्यायामज्ञतोदेति शाश्वती ।
बुद्धिमोहात्मिका-पक्षी निदेहैव यथा निशि ॥७

श्रीराम बोले—हे मुने ! आप तो निर्वाणपद में अवस्थित हैं; क्या आपको भी अहङ्कार रूपी पिशाच बाधा पहुँचाता है ? कृपया मेरे इस संशय का शमन कीजिए ।१। वसिष्ठजी ने कहा—हे राघव ! अहंभाव के बिना इस जगत् में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों में किसी की भी देह स्थिति सम्भव नहीं है । क्योंकि आधेय पदार्थ कभी निराधार नही रह

सकता ।२। परन्तु इसमें ज्ञानी चित्त वाले के लिए जो विशेषताहैं, उसे सुनो । क्योंकि इसके श्रवणसे आपका अहंकार रूपी पिशाच शान्ति को प्राप्त हो जायगा ।३। यह जो अज्ञान रूपी शिशु है इसने अपने चित्त में अहंकार रूपी पिशाच की कल्पना की है इसी से इसकी यह स्थिति ।४। विचार पूर्वक देखने पर तत्व ज्ञानी पुरुष की अज्ञान उसी प्रकार नहीं रहता: जिस प्रकार दीपक युक्त पुरुषको अन्धकार दिखाई नहीं देता।५। यह अज्ञानता रूपी पिशाचि का ज्यों-ज्यों अनुभव में चढ़ती जाती है, त्यों-त्यों विचारित होती हुई नाश को प्राप्त होती हैं ।६। अवश्य ही अविद्या की स्थिति से अज्ञता बारम्बार वैसे ही प्रकट होती हैं, जैसे कि रात्रि में भ्रान्ति से देह–रहित यक्षी प्रकट होती है ।७।

सति तर्गे त्वविद्याया: सम्भवो नान्यत: क्वचित् ।
सति द्वितीये शशिनि द्वितीयो विद्यते शश: ।।८
सर्गस्त्वयमजातत्वादज्ञातो न विद्यते ।
न जात: कारणा भावात्पर्वमेव खवृक्षवत् ।।९
परमाकाशकोशान्तरादिसर्गे निरामये ।
पृथ्वादेरुपलम्भस्य भवेत् किमिव कारणम् ।।१०
मन षष्ठेन्द्रियातीतं मन: षष्ठेन्द्रियात्मम: ।
साकारस्य निराकारं कथं भवति कारणम् ।।११
बीजात्कारणत: कार्यमंकुर: किल जायते ।
न बीजमपि यत्रास्ति तत्र स्यादंकुर: कुत: ।।१२
कारणेन विना कार्यं न च नामोपपध्यने ।
कदा क इव खे केन दृष्टो लब्ध: स्फुटो द्रुम: ।।१३
सङ्कल्पेनाम्बरे यद्वद्दृश्यते विटपादिकम् ।
स सङ्कल्पस्तथाभूतो न तत्रास्ति पदार्थता ।।१४

अविद्या की सृष्टिसे ही उसकी सत्ता है, जैसे कि द्वितीय चन्द्रमाकी अवस्थिति में ही दूसरा खरगोश दिखाई देता है।८। अज्ञानी द्वारा जाना

हुआ यह जगत् अनुत्पन्न होने से ही नहीं है, क्योंकि जैसे आकाश वृक्ष नहीं होता, वैसे ही जगत् भी कारणहीन होने से उत्पन्न नहीं हुआ समझो ।९। चिदाकाश में अवस्थित सृष्टि के निरामय होने से पृथिवी आदिकी उपलब्धि का कारण ही क्या हैं? ।१०। मन सहित छः इन्द्रियों से अज्ञात निराकार ब्रह्म, मन रहित छः इन्द्रियोंसे अज्ञान साकार जगत का कारण कैसे होगा ? ।११। कारण बीजरूप है, उसी से अंकुर रूपी कार्य की उत्पत्ति है तो जहाँ बीज रूपी कारण ही नही है, वहां अंकुर ही कैसे उत्पन्न होगा ? ।१२। सभी जानते हैं कि कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता । लहलहाते हुए प्रत्यक्ष आकाश वृक्ष को किसने देखा या ग्रहण किया है ।१३। जिस प्रकार संकल्प से ही आकाश में वृक्ष आदि देखे जाते हैं, वैसे ही यह जगत् संकल्पात्मक है, इसमें पदार्थता नहीं हो सकती है ।१४।

एवं येयं चिदाकाशे सर्गादावनुभूयते ।
शून्यरूप इवाकाशे सर्गस्थितिरनर्गला ॥१५
सम एवचिदाकाशः कचन्यात्मनि तत्तथा ।
स्वभाव एव सर्गाख्यश्चित्वाच्चैतन्यमीश्वरः ॥१६
स्वप्नसर्गोऽत्र दृष्टान्तः प्रत्यहं योऽनुभयते ।
स्वयं संवेदने स्वप्ने स्फुरत्यद्रिपुरुकृतिः ॥१७
चित्स्वभावे यथा स्वप्ने आस्ते सर्ग इवेह यः ।
असर्गे सर्ववद्भाति तद्धा पूर्वं महाम्वरे ॥१८
अवेध्यवेदनं शुद्धमेकं भात्यजमव्ययम् ।
सर्गादौ यदनाद्यन्तं स्थितः सर्गः स एव नः ॥१९
नेह सर्गोऽस्ति नैवाय पृथ्व्यादिगणगोलकः ।
सर्वं शान्तमनालम्ब ब्रह्मैव ब्रह्मणि स्थितम् ॥२०
सर्वशक्त्यात्म तद्ब्रह्म यथा कचति यादृशम् ।
रूपमत्यजदेवाच्छ तथा भवति तादृशम् ॥२१

सर्गारम्भा में इस अर्गला–रहित स्थिति का चिदाकाश में अनुभव होता है वह भी आकाश में शून्य रूथी बृक्ष आदि के समान ही है।१५ विषय सृष्टि के आकार से शून्य चिदाकाश ब्रह्म ही अपने स्वभाव से सर्ग रूप होता है। सर्ग नामक चिति स्वभाव चिद्रूप होनेसे वह ईश्वर चैतन्य रूप है। इसलिए सृष्टि रूप से चिति ही भासमान होती है।१६ नित्यप्रति अनुभव में आने वाला स्वप्न सर्ग ही इसमें दृष्ठान्त स्वरूप हैं क्योंकि स्वप्न विषयों में आत्मा ही विभिन्न रूपों में प्रकट होता है।१७ जैसे स्वप्न में प्रकट होने वाली सृष्टि सृण्टि-रहित आत्मा में विद्यमान है चित्स्वभाव से वैसे ही ज्ञान होने से पहिले दिखाई पड़ने वाला यह सर्ग महाकाश में सर्ग-रहित चित्स्वभाव ही भासित होता है।१८। सर्ग के आदि में अनेद्यवेदन, शुद्ध एक अजन्मा, अव्यय आदि अन्त से रहित जो ब्रह्म है, वही सर्ग रूप से अवस्थित है।१६। उस परब्रह्म में यह सर्ग अथवा यह पृथिवी आदि लोक नहीं है। वह तो सर्वशान्त, निरावलम्ब एकमात्र ब्रह्म ही ब्रह्म में अवस्थित है।२०। सर्वशक्तिमान ब्रह्म जिस प्रकार स्फुरित होता हे, वह अपने निर्मल स्वरूप को न छोड़ता हुआ उसी प्रकार का हो जाता है।२१।

यथा स्वप्नपुरं जन्तोश्चिन्मात्रप्रविजृम्भितत्।
तथैव सर्गः सर्गादौ शुद्धचिन्मात्रजृम्भितम् ॥२२
स्वच्छे चित्परमाकाशे चिदाकाशो यः आस्थितः।
स्वभाव एव सर्गोऽसाविति तेनैव भावितः ॥२३
भाव्यभावकभावादिभूमीनां भावनं भृशम्।
सर्वं चिन्नभ एवाच्छमात्मनात्मनि संस्थितम् ॥२४
एवं स्थिते कुतः सर्गः कुतो विद्या क्व चाज्ञता।
ब्रह्म शान्तं घनं सर्वक्वाहंकारादयः स्थिता ॥२५
अहंभावस्य संशान्यिरेषाऽसौ कथिता तव।
अहभावः परिज्ञातः पिशाच इव शाम्यति ॥२६

मया त्वेवमहंभावः परिज्ञातो यदाऽखिलः ।
तदा मे विद्यमानोऽपि निष्फलः शरदभ्रवत् ॥२७
चित्राग्निदाहो विज्ञातो यथा दाह्येषु निष्फलः ।
तथाऽहंभावसर्गादि ज्ञातं निष्फलतामियात् ॥२८

जिस प्रकार जीव के लिए स्वप्ननगर चिन्मात्र का विलासमात्र है उसी प्रकार सर्गारम्भ में यह सृष्टि भी चिन्मात्र का ही विलास है।२२ स्वच्छ चिद्रूप परमाकाशमें स्थित चिदाकाश ने स्व-स्वभान को सर्गरूप में जो भावना की वह यह सृष्टि है।२३। भाव्य भावक और भाव आदि भूमियों की निरन्तर उत्पत्ति ही अपने आत्मा में स्वच्छ चिदाकास की स्थिति है ।२४। ऐसे अवस्थामें सृष्टि, अविद्या, अज्ञान, अहङ्कार आदि की स्थिति कहाँ से आई? यह सब शान्त चिद्घन ब्रह्म ही तो अवस्थित है ।२५। इस प्रकार मैंने यह अहंकार की स्थिति का वर्णन किया है, इसके भले प्रकार जान लेने पर बालक द्वारा कल्पित पिशाच के समान नष्ट हो जाता है ।२६। इस प्रकार मैं इस अहंकार को भले प्रकार जानता हूँ, इसलिए यह रहता हुआ भी मेरे लिए तो शरत्कालीन मेघ के समान निष्फल ही है ।२७। जैसे चित्र में लिखित अग्नि की दहन क्रिया निरर्थक होती है, वैसे ही अहंकार आदि के पूर्णरूप से जान लेने पर उसकी सृष्टि निरर्थक ही होती है ।२८।

इति मेऽहंकृतेस्त्यागे रागे च समता यदा ।
तदा व्योम्न इताव्योम्नः सर्गेऽसर्गेच मे स्थितिः ॥२९
अहंभावस्य नैवाहं नाहं भायो ममेति च ।
तेन विद्धि चिदाकाशमेवेदमिति निर्धनम् ॥३०
यथा मम तथान्येषामपि बोधगतामिह ।
अग्नित्वममिव चित्राग्नेनस्थित्यं बोधविभ्रमः ॥३१
नाहमस्मि न चान्योऽस्ति सर्वं नास्तीति विश्रये ।
प्रकृतव्यवहारस्त्वं शिलामोनमयो भव ॥३२

आकाशकोशविशदाकृतिरेव तिष्ठ
निर्देशवच्चिरमपह्नुतसर्वभावः ।
अद्यादितश्च किल चिन्मयमेव सर्व
नो द्रश्यमस्ति विश्वमेव मशेषमित्थम् ॥३३

हे राम ! समाधिमें अहंकार-शून्यता और व्यवहार में उसके विषयों में समता और सृष्टि की विद्यमानता-अविद्यमानता में मेरी दशा उस प्रकार है जिस प्रकार कि अवकाश रहित आकाश मेघ, वायु और आतप से शून्य होता है ।२८। मैं न तो अहंकार का हूँ और न अहङ्कार ही मेरा है, ऐसा जानकर आप इस सम्पूर्ण जगत् को वन-रहित चिदाकाश हो समझो ।३३। चित्रगत अग्नि की निष्फल दाह क्रिया के इस अभाव आदि की भ्रान्ति जैसे मेरे दृष्टि में नहीं है, वैसे ही अन्व ज्ञानी महात्मा पुरुषों की दृष्टि में नहीं है।३१। न मैं हूँ, न कोई अन्य है और न यह दिखाई पड़ने वाला प्रपंच ही ऐसा निश्चय करके आप भी प्रकृत व्यवहार का पालन करते हुए पाषाण के समान मौन अवस्थित हो जाइए ।३२। चिरकाल के लिए सभी भावों का अपह्न करते हुए आप अवकाश हीन पाषाण के समान एवं आकाशकोश के समान निषदाकार से अपने स्वरूप में अवस्थित रहिए, क्योंकि इस सर्वकाल में सर्गसे पूर्व भी जो कुछ स्थित है। वह निःसन्देह शिव ही है। यह दृश्य प्रपंच यथार्थ में कुछ भी नहीं है ।३३।

७२—सृष्टिशोभा का भावाभाव दृष्टिभेद

अहो न विततोदार विमला विपुलाचला ।
भवता भगवान् भूत्यै भयो दृष्टिरुदाहृता ॥१
सर्वथा सर्वदा सर्वं सर्वं सर्वत्र सर्वदा ।
सदि त्येव स्थितं सत्यं कमं समनुभूतितः ॥२

अयमस्ति मम ब्रह्मन् संशयस्तं निवारय।
किमिदं भगवन्नाम पाषाणाख्यानमुच्यते ॥३
सर्वत्र सर्वदा सर्वमस्तीति प्रतिपादने।
पाषाणाख्यानदृष्टान्तो मयाऽयं तव कथ्यते ॥४
नीरन्ध्रैकघनाङ्गस्य पाषाणस्यापि कोटरे।
सन्तिसर्गसहस्राणि कथयेति प्रदर्श्यते ॥५
भूताकाशे महत्यस्मिन् शशून्यत्वमनुज्झति।
सन्ति सर्गसहस्राणि कथयेति प्रदर्श्यते ॥६
अन्तर्गुल्मांकुरादीनां प्राणवाय्यम्बुतेजसाम्।
सन्ति सर्गसहस्राणि कथयेति प्रदर्श्यते ॥७

श्रीराम ने कहा-हे भगवन् ! आपने मेरे प्रति व्यापक, महा उदार, विमल, विपुल और अचल दृष्टिका उपदेश दिया है।१। यह सर्वत्र,सर्व प्रकार से सत् हैं और असत् है, इस विषय पर विचार किया जाय तो यह सम, अविषय, एकरस और सत्य स्वरूप ही प्रतीत होता है, क्योंकि सभी धर्म धर्मी और उनका देशकाल सर्वात्मक हो जाय तो भेद आदि की सिद्धि नहीं होती।२। हे भगवन् अब मेरे इस सन्देहका शमन कीजिए कि यह पाषाणाख्यान किसकी समानता में कहा है। क्योंकि भेद के कारण वाले पदार्थों को ही साधारण धर्म से समानता मानी जाती है।३ वसिष्ठजी बोले—सर्वत्र, सर्वदा और सर्व के प्रतिपादन में ही पाषाणाख्यायिका का यह दृष्टान्त है। अब इसकी सादृश्यता को कहता हूँ।४। छिद्र-रहित और घनीभूत अवयवों से युक्त पाषाण के उदरमें भी सहस्रों सृष्टियाँ है,यही बात इस आख्यायिका द्वारा समझाई गई है।४। आकाश की शून्यता का त्याग न करने वाले महा भूताकाश में भी सहस्रों सर्गो का आरोप सम्भव है, यह भी इसके द्वारा बताया गया है।६। गुल्म, अंकुर आदि तथा प्राण, वायु, जल अग्नि आदि के उदर में भी सहस्रों सृष्टियाँ सम्भव हैं, यह निरूपण भी इसके द्वारा किया गया है।७।

एतत्ते वर्णितं राम मुख्यमेव मयाऽखिलम् ।
योऽययालक्ष्यते सर्गः स ख एव खमास्थितम् ॥८
आदावेद हि नोत्पन्नमद्यापि न च विद्यते ।
दृश्यं यच्चात्रभातीदं तद्ब्रह्म ब्रह्मणि स्थितम् ॥९
नास्ति भूरणुमात्रापि सर्गैर्निविरा न या ।
न च क्वचन विद्यन्ते सर्गाब्रह्मखमेव ते ॥१०
न तेजसोऽणुरप्यस्ति सर्गैर्निर्विवरो न यः ।
न च क्वचन सर्गास्ते सन्ति ब्रह्मखमेव तत् ॥११
न वायोरणुप्यस्तु सर्गैर्निर्विकरो न यः ।
न च क्वचन विद्यन्ते सर्गा ब्रह्मखमेव तत् ॥१२
ख नाणुमात्रमप्यस्ति सर्गैर्निर्विवरं न यत् ।
न च क्वचन सर्गास्ते सन्ति ब्रह्मखमेव तत् ॥१३
न सा महाभूतताऽस्ति सर्गैनिबरा न या ।
न च क्वचनविद्यिन्ते सर्गा ब्रह्मखेमेव तत् ।१४

हे राम ! यथार्थ में मुख्य चेतनमें सम्पूर्ण जगत् का आरोप है,यही बात मैंने आपसे कही है । यह दृश्यमान सर्व चिदाकाश में चिदाकाश रूपसे ही स्थित है ।८। यह दृश्य जगत् न तो पहिले कभी उत्पन्न हुआ न आज ही है, किन्तु इसका जो आभास हो रहा है वह ब्रह्म में ब्रह्म ही स्थित है ।९। मम्पूर्ण पृथ्वी सृष्टियों से परिपूर्ण न हो, ऐसी बात नहीं है, परन्तु जो कुछ है वह समी ब्रह्माकाश रूप ही है ।१०। तेजका ऐसा अणु कोई नहीं है, जिसमें सर्ग न हो। यथार्थ में तो सर्ग कही है ही नहीं, यह जो कुछ भासित है बह ब्रह्माकाश है ।११। ऐसे वायु का भी कोई अणु नहीं है, जिसमें वृद्धि न हो । यथार्थ में तो सर्ग कहीं नहीं है, केवल ब्रह्माकाश ही है ।१२। अणु भीं आकाश सर्गों से रहित नहीं है, यह जो सृष्टियों से भरा है, वह सृष्टि ब्रह्माकाश रूप ही है ।१३। महाभूत भी सर्गों से रहित नहीं है, यह सर्गो से पूर्ण ही है । कहीं भी सर्ग नहीं हैं, सब चिदाकाश ही हैं ।१४।

सर्गाएव परब्रह्मैव सर्गता ।
मनागप्यस्ति न द्वैतमत्राग्न्यर्कोष्णययोरिव ॥१५
इमे सर्गा इद ब्रह्म तेऽत्यन्ताबाच्यदृष्टयः ।
विदार्यदारुरववद्भात्त्यर्थपरिवर्जिताः ॥१६
द्वैतमैक्यं च यत्रास्ति न मनागपि तत्र ते ।
सर्गब्रह्मादिशब्दार्थाः कथ कस्येव भान्तु के ॥१७
शान्तमेकमनाद्यन्तमिदमच्छमनामयम् ।
व्यवहारवतोऽप्यङ्ग ज्ञस्य मौनं शिलाघनम् ॥१८
निर्वाणमेवमखिलं नभ एव दृश्यं ।
त्वंचाहभद्रिनिचयाश्च सुरासुराश्च ।
यादृग्जगत्समवलोकय यादृगङ्ग
स्वप्नेऽथ जन्तुमनसि व्यवहारजालम् ॥१९

जिस प्रकार सूर्य और अग्नि की उष्णता समान है, वे दोनों एक रूप ही हैं, उसी प्रकार सर्ग और परब्रह्म में भी कोई भेद नहीं है, वे एक रूप ही हैं ।१५। यह सर्ग और ब्रह्म वाचक जो शब्द है, उन पर दृष्टिपात करें तो वे अर्थ शून्य एवं अनिवार्य वस्तुका ज्ञान कराने वाले उस प्रकार दिखाई देंगे, जिस प्रकार कि कुठार से काष्ठ का ही दीर्घ जो भिन्न शब्द हैं, वे पृथक् अर्थ वाले न होकर काष्ठ का ही बोध कराते हैं ।१६। जिस अवस्था में द्वित्व और एकत्व हैं, उसमें भी स्वर्ग और ब्रह्म के अर्थ का आभास नहीं होता तब क्या वे अर्थ द्वित्व द्रष्टा को भासते हैं अथवा एकत्व द्रष्टा को ? ज्ञानी पुरुष के लिए यह सभी कुछ शान्त एक, अनादि, अनन्त, स्वच्छ, विकार-रहित पाषाण के समान घन, एवं मौन रूप ब्रह्म ही रहता है, उससे भिन्न नहीं रहता ।१७-१८। यह सम्पूर्ण दृश्य निर्वाण एवं चिदाकाश ही है । तुम, मैं, पर्वत, देवता, दैत्य आदि भी तद्रूप हैं । इस जगत्को आप उसी प्रकार आत्मस्वरूप जानिए जिस प्रकार जागने पर स्वप्नगत दृश्य, यदि आने पर आत्म रूप ही होता है :१९।

७३—अनन्तकोटि जगत् का बोध

अनन्तरं नभः कोशकुटीकोटरती मुने ।
तत्र ध्यानात्प्रबुद्धस्त वृत्तं वर्षशतेन किम् ॥१
ततो ध्यानात्प्रबुद्धोऽहं श्रुतवास्तत्र निःस्वनम् ।
मृदु व्यक्तपदं हृद्य न च वाच्यानुगो यतः ॥२
स्त्रीस्वभावादिव मृदु मधुरं वा निनादि वा ।
स्वल्पाङ्गत्वादनिर्ह्वादि मया तद्वाक्येमूहितम् ॥३
तदाकर्ण्याऽऽशु तत्रेदमहं चिन्तितवानथ ।
शाब्दिकान्वीक्षणात्पश्यन् दिशो दश सविस्मय ॥४
व्योम्नोऽयं सिद्धसञ्चारमार्गशून्यान्यनन्तरम् ।
भागो योजनलक्षाणि समतिक्रम्यः संस्थितः ॥५
तदिहेदृग्विधस्य स्यात्कुतः शब्दस्य सम्भवः ।
शाब्दिकं न च पश्यामि यत्नेनापि विलोकयन् ॥६
यदेति चिन्तयित्वाऽहं भूयोभूयो विलोकयन् ।
शब्देश्वरं न पश्यामि तदा चिन्यितवानिदम् ॥७

श्रीराम ने कहा—हे मुने ! आकाश कोटि की उस कुटीमें जब सौ वर्ष व्यतीत होने पर आपका ध्यान भंग हुआ, तब जानने योग्य जो घटना घटी हो उसका वर्णन कीजिए ।१। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! जब मेरा ध्यान भंग हुआ, तब मैंने एक अत्यन्त मृदु और स्पष्ट ध्यान सुना । वह पदार्थ प्रतिपादन या वाक्यार्थ प्रतिपादन शक्ति से रहित थी ।२। मुझे लगा कि वह ध्वनि किसी नारी-कंठ से निकली हुई मृदु और मधुर है। अधिक उच्च न होने से निकट से ही आ रही प्रतीत हुई ।३ उसे सुनकर मैं अत्यन्त विस्मित हुआ, उस शब्द करने वाले की खोजमें मैंने दसों दिशाओं से देखा और फिर सोचने लगा ।४। जहाँ सिद्ध पुरुष विचरण कर सकते हैं, उन मार्गों से भी लाखों योजन दूर आकाश का यह उच्चतम स्थान है ।५। अतः इस एकान्त में नारी के समान स्वर

किस प्रकार संभव हुआ ? यड़े यत्न पूर्वक देखने पर भी मैं शब्दकर्ता को नहीं देख सका।६। उस प्रकार विचार करता हुआ मैं जव सब ओर भले प्रकार देख सका ।६। उस प्रकार विचार करता हुआ मैं जब सब ओर भले प्रकार देख चुका और शब्दकर्त्ता कहीं भी दिखाई न दिया, तो मैं पुन: सोचने लगा ।७।

आकाश एव भुत्वाऽहमाकाशेनैकतां गतः ।
आकाशगुणशव्दार्थान् करोम्याकाशकोशके ॥८
चिन्तयित्वेत्यहं त्यक्तुं वेहं पद्मासनस्थितः ।
आसं समाधिमाधातुं पुनगामीलितेक्षणः ॥९
त्यक्त्वा वाह्यार्थसस्पर्शा नैन्द्रियानान्तरानपि ।
चित्ताकाशोऽहमभवं संवित्स्पन्दमयात्मकः ॥१०
क्रमात्तदपि सन्त्यज्य बुद्धितत्वपद गतः ।
सम्पन्नोऽहं चिदाकाशे जगज्जालैकदर्पणः ॥११
ततस्तेन स्वभावेन भुतव्योमैकतामहम् ।
सम्प्रयातोऽम्बुनेवाम्बु सौरभं सौरभेन वा ॥१२
सम्पन्नोऽथ महाकाशं व्याप्यानन्तोऽथ सर्वगः ।
अनाकारोऽप्यनाधारः सर्वथाधारतां गतः ॥१३
अहं त्रैलोक्यवृन्दानि संसारणां शतानि च ।
तत्र ब्रह्माण्डलक्षाणि पश्याम्यगणितान्यपि ॥१४

मैं उपाधि छोड़कर चिदाकाश रूप में एकत्व प्राप्त करूँ और अव्याकृत आकाश के कार्य भूताकाश के गुण, शब्द और अर्थो का वहीं अनुभव करूँ ।८। ऐसा निश्चय कर मैंने पद्मासन लगाये हुए ही देह का परित्याग करने के लिए समाध्यस्थ होने के उद्देश्य से नेत्र बन्द कर लिए ।९। मैंने बाह्य विषयों और आन्तरिक विषयों का स्पर्श छोड़ दिया तथा मन्तव्य आदि का त्याग करके एकमात्र संवित-स्पत्दनात्मक चित्ताकाश रूप हो गया ।१०। फिर क्रमश: सब का त्याग करता हुआ मैं बुद्धितत्व के पद में स्थित हो गया, फिर उसेभीं छोड़कर चिदाकाश में पहुँचा और अपने आत्मामें अभ्यस्त सम्पूर्ण विश्व के प्रतिबिम्बों का

एक दर्पण बन गया ।१७। इसके पश्चात् उसी चित्स्वभावात्म हुआ मैं भूताकाश में वैसा ही एकाकार हो गया, जैसा कि जल में जल अथवा सुगन्ध में सुगन्ध मिल जाता है।१२। चिद्रूप आकाश में अभिन्न होकर सर्वथा सर्वगामी बन गया । मैं जंग-रहित एवं अद्वितीय होनेसे आभार रमित और आधार-रहित होकर सर्व धारण योग्य सबका ही आकार भूत हो गया ।१३। इस प्रकार भूताकाश अवस्था को प्राप्त हुआ मैं चिदाकाश मैं त्रैलोक्य-समूह, सैकड़ों संसार तथा लाखों ब्रह्माण्डों को देखने लगा ।१४।

परस्परमदृष्टानि मिथः खान्यमलानि च ।
नानाचारविचारणि शून्यान्येव परस्परम् ॥१५
जायमानानि नश्यन्ति वर्द्धमानानि भूरिशः ।
वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्ति च सर्वशः ॥१६
तथा जलैकपूर्णानि पवनैकमवानि च ।
स्तब्धानि परमाकाशे वहन्ति च तथाऽनिशम् ॥१७
देवमात्रैकसर्गाणि नरमात्रगर्यानि च ।
दैत्यवृन्दमयान्येव कृमिनिर्विवराणि च ॥१८
अन्तरन्तत्तदन्तश्च स्वकोमेऽप्यणुकं प्रति ।
जातानि जायमानादि कदलीदलपीठवत् ॥१९
विविधान्यप्यनन्तानि स्वच्छाकाशात्मकान्यलम् ।
अन्योऽन्यमन्यवृत्तीनि न मिथोऽन्यस्थितीनि च ॥२०
चित्संकल्पनभस्येव भासमानानि भूरिशः ।
वासनावातनुन्नानि विलुठन्त्यात्मचेष्टितैः ॥२१

यह सभी सृष्टि-अव्याकृत आकाश रूप होने के परस्पर एक दूसरे के देखनेमें नहीं आती थी । वह अनेक प्रकार के आचार विचार वाली तथा परस्पर शून्यरूप ही थी।१५। उनमें कुछ उत्पत्ति को, कुछ विनाश को और कुछ वृद्धि को प्राप्त हो रही थी । कुछ वर्तमान थीं, कुछ अतीत में छिपी थीं और कुछ भविष्य में अवस्थित थीं ।१६। कुछ जल से परिपूर्ण थीं, कुछ वायु में एकाकार हो रही थीं,कुछ

परमाकाश में निश्चल और कुछ दिन-रात गतिशील थी ।१७। कुछ सृष्टि केवल देवरूप थी, कुछ मनुष्य रूप और दैत्यरूप थी तथा कुछ कीड़ों से परिपूर्ण थीं, ।१८। कहीं कदली दल के समान प्रत्येक परमाणु में उसके भी भीतर तथा उससे भी और भीतर अपने कोश में कुछ उत्पन्न हो चुके थे और कुछ हो रहे थे ।१९। कुछ सृष्टियाँ विविध प्रकार की कुछ अनन्त और निर्मल आकाश के समान थीं । उसकी क्रियाएँ भिन्न और स्थिति विषम थी ।२० चिति के सङ्कल्प रूपी आकाश में ऐसे अनगिनती जगत् भासमान हैं, वे सभी वासना रूपी वायु के थपेड़ों से अपनी चेष्टाओं द्वारा ही लुढ़कते फिर रहे हैं ।२१।

अभिजातस्वभावस्य सर्गारम्भकरस्य च ।
शुद्धचित्तत्वबालस्य सङ्कल्पनगराणि खे ।।२२
त्वमहं स इद चेति धिया वलदढान्यलम् ।
सम्पन्नान्यर्कदीप्त्येव पंकक्रीडनकानि च ।।२३
वृत्तानि रसशालिन्या नियत्या नित्यतृप्तया ।
वनान्युग्रफलानीव बसन्तरसलेखया ।।२४
महाकर्तृ ण्यतृ णि न कृतान्येव खानि वा ।
स्वयं सम्पन्नपाणि चिद्व्योम्न्येव कृतानि वा ।।२५
परमार्दमयान्येव तदन्यद्वोदितान्यपि ।
अलब्धान्येव लब्धानि सदाऽसन्त्येव सन्ति च ।।२६
चतुर्दशदशैकादिविधभूतगणानि च ।
पुनस्तान्येव तान्यन्तरन्यन्यायथो बहिः ।।२७
नरकस्वर्गपातालबन्धुमित्रमयान्यपि ।
यहारम्भमयान्येव शून्यानि परमार्ततः ।।२८

चिदाकाश में स्थित यह सभी सर्ग सुन्दर स्वभाव वाले विशुद्ध चितितत्व रूपी वालक के रमणीय संकल्प नगर ही समझो ।२२। वे सभी 'त्वं 'अहं' 'इदं' आदि अहंभावात्मक वृद्धि-बलसे सूर्य की दीप्ति

समान चमकते मिट्टी के खिलौनों के समान ही निर्मित हुए है ।२३। निरन्तर तृप्त हुई, राग-रस से भरी हुई कर्म फल देने वाली नियति ने उनकी शाखा-उपशाखा को ऐसे बढ़ाया है, जैसे बसन्त की रस-रेखाफल वाले वनों की शाखा-उपशाखाओं को बढ़ातीहै ।२४। उनका कर्त्ता ब्रह्मा ही है अथवा ब्रह्म नहीं भी है। यथार्थ में वे महाचिदाकाश में अपनी रूप को स्वयं ही धारण करके स्थित है और किसी के द्वारा सम्पादित भी लगते हैं ।२५। वैसे तो यह परमार्थ चित्रूप ही हैं तो भी अन्य द्वारा उत्पन्न प्रतीत होते हैं । अप्राप्य हैं,तो भी प्राप्त जैसे और असद्-रूप होकर भी सद् रूप दिखाई देते हैं ।२६। चौदह भुवन, केवल दस सँख्यक देवता और मनुष्य की एक-एक जाति सहित, विभिन्न प्रकार के भूत समूहों से युक्त अनेक रूप वाले होकर भी एक रूप ही है,परन्तु अन्य रूप के बाहर-भीतर बन्धु और मित्र रूप से महारम्भ वाले हैं तो भी परमार्थत: शून्य रूप ही है ।२८।

क्षीराम्बुधेर्जलानीव स्नेहसाराणि सर्वत: ।
तरङ्गभगुराक्यन्तर्वहिश्चावृतिमन्ति च ॥२९
आभासमात्ररूपाणि तेजस्यात्मविवस्वत: ।
जातानीव स्वतस्तानि स्पन्दनानि नभस्वत: ॥३०
वृक्षरूपाणि पत्राणां बुघ्यहंकारचेतसाम् ।
असतामप्यसन्त्येव स्वप्ने न्यस्तनृणामिद ॥३१
पुराणवेदसिद्धान्तकल्पनातल्पपालिषु ।
घननिद्राणि सुप्तानि विभ्रन्ति शवतामिव ॥३२
परमार्थमहारण्ये चिद्गन्धर्वकृतानि वै ।
सूर्यदीपकदीप्तानि गृहाणि गहनात्मनि ॥३३
प्रजायमानानि नभस्यबन्ते
विशीर्यमाणानि च निर्निमित्तम् ।
तदा त्वहं वै तिमिराक्षदुष्ट-
केशोण्ड कानोब जगन्त्यपश्यम् ॥३४

क्षीर सिंधुके जल के समान यह सब ओर से स्नेह रूपी स्वरसे भरे हुए, तरङ्गोंके समान नाशवान् और बाह्याभ्यंतर रूप से परिवर्तन शील है ।२६। आत्मरूपी सूर्य के तेज में वे आभास-मात्र प्रतीत होते हैं और जैसे वायु में स्पन्दन स्वयं उत्पन्न होता है वैसे वह स्वयं ही उत्पन्न हुए हैं ।३०। यह जगत् बुद्धि, अहंकार और चित्त रूपी पल्लवों के लिए एक प्रकार से वृक्ष रूप ही है । स्वप्न-दृश्यों के असत्य होने समान ही अपने से भिन्न देखने वालों के लिए वे असद्रूप ही हैं ।१३। पुराण और वेदके सिद्धान्त रूपी कल्पना-स्वप्नों में विश्वास रूपी प्रगाढ़ निद्रा में निद्रित यह जगत् भ्रान्ति से मृतको के समान हो रहे हैं ।३२। परपार्थ भूत ब्रह्मा रूपी उस महा विपिनमें चितिरूपी गन्धर्व द्वारा निर्मित और सूर्य रूपी दीपक से दीप्त वे जगद्रूप गृह अत्यन्त गहन हैं ।३३। मैंने उस समाधि में अनन्त चिदाकाश कारण रहित रूप से उत्पन्न हुए और अकारण ही जीर्ण-शीर्णता को प्राप्त, तिमिर-रोग में दिखाई देने वाले केशोण्ड्रक के समान भ्रान्ति से अवतीर्ण अनन्त जगत् देखे ।३४।

७४—विचित्र जगत् का दर्शन

ततोऽहमभितो भ्रान्तस्तादृशं प्रतिचारयन् ।
वहुकालमसंरुद्धसंविदाकाशतां गतः ॥१
शव्दं पश्चात्तमश्रौतमहं वीणास्वरोपमम् ।
क्रमात्स्फुटपदं जातं तत आर्यात्विमागतम् ॥२
शव्ददेशपतद्दृष्टिर्दृष्टवान्वनितामहम् ।
पार्श्वे कनकनिस्पन्दप्रभया भासिताम्बराम् ॥३
सा पूर्णचन्द्रवदना पुष्पकरहासिनी ।
यौवनोद्दामवदना पक्ष्मलक्षणशालिनी ॥४
आकाशकोशदसना शशांककरसुन्दरी ।
मुक्ताकलापरचना कान्ता मदनुसारिणी ॥५

स्वरेण मधुरेणैवमार्यामार्यविलासिनी ।
पपाठा कठिनं वामा मत्पार्श्वे मृदुहासिनी ॥६
असदुचितरिक्तचेतन-
संसृतिसरिति प्रमुह्यमानानाम् ।
अवलम्बनतटविटपिन-
मभिनौमि भवन्तमेव मुने ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! उन अगणित संसारों को देखता हुआ मैं उस शब्द के कारण की खोज करता-करता बहुत काल तक भ्रमण करता रहा और फिर निरावरण संविदाकाश रूप हो गया ।१। फिर मुझे वीणा के स्वर के समान शब्द सुनाई पड़ा और जब उसके पद भी क्रमश: स्फुट हो गये, तब मुझे आर्याछन्दकी प्रतीत होने लगी ।२। फिर जहाँ से यह शब्द निकल रहा था उस स्थान पर मेरी दृष्टि गई । तब वहाँ मुझे एक स्त्री दिखाई दी, जो अपनी स्वर्ण जैसी स्पन्दनशील प्रभा से आकाश मण्डलको सब ओर प्रकाशित कर रही थी ।३। पूर्ण चन्द्र के समान उस नारी का मुख था, पुष्प-राशि के समान लुभावनी हँसी एवं यौवन से उद्दाम वदन वह श्रेष्ठ चिह्नोंसे युक्त एवं अत्यन्त शोभामयी थी।४। उसका गृह वह आकाश कोश ही था, शशांक चन्द्र किरणों के समान वह सुन्दरी अर्द्ध चन्द्रकार एक मुक्ताहार धारण किए थी । लगता था कि वह मेरी ओर आना चाहती है ।५। उसी स्त्री ने मेरे पास आकर आर्या का मृदु स्वर से उच्चारण किया । आर्या के समान विलास वाली वह नारी मृदु हास से संयुक्त थी ।६। उसने कहा-हे मुने ! खल पुरुषों में स्थित जो काम-क्रोधादि दोष है, उनसे अलिप्त रहने वाले आप संसार-संहिता में डूबते हुए प्राणियों के लिए तट पर अवस्थित वृक्ष जैसे आश्रय हैं । मैं आपको सब ओर से नमस्कार करती हूं ।७।

इत्याकर्ण्याहमालोक्य तां चारुवदनस्वनाम् ।
ललनेय किमनयेत्यनादृत्यैव तां गतः ॥८

ततो जगत्-वृन्दमयीं मायां प्रप्रेक्ष्य विस्मितः ।
अनादृत्यैव तां व्योम्नि विहर्तुमहमुद्यतः ॥९
ततस्तां चिन्तामलमुत्सृज्य खे स्थिताम् ।
जगन्मायां कलयितुं व्योमात्माऽह प्रवृत्तवान् ॥१०
यावत्तानि यथोग्राणि जगन्ति सकलानि खम् ।
शून्यमेव यथास्वप्ने सङ्कल्पे कथने तथा ॥११
न पश्यन्ति न शृण्वन्ति कदाचित्कानिचित्क्वचित् ।
तानि कल्पमहाकल्पमहाजन्मैकतान्यथ ॥१२
प्रमत्तपुष्करावर्तानुन्मत्तोत्पात मारुतान् ।
स्फुटितान्द्रीन्द्रढाकारघटितब्रह्ममण्डपान् ॥१३
ज्वलत्कल्पाग्निविस्फोटचटदडविडास्पदान् ।
प्रतपद्द्वादशाकारकन्दुमार्तण्डलात् ॥१४

यह सुनकर मैं उस चारु वदना और सुन्दर स्वर वाली नारी को देखता हुआ सोचने लगा—इस स्त्री से मेरा क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार उसकी उपेक्षा करता हुआ मैं आगे वढ़ने लगा ।८। फिर मुझ अगणित जगतोंसे परिपूर्ण माया दिखाई दी । आश्चर्य में भरा हुआ मैं उसकी भी उपेक्षा कर आकाश मण्डल में विहार करने के लिए बढ़ा ।९। फिर शून्याकाशमें स्थित उस जगत् रूपी माया को जानने के लिए चिदकाशरूप होकर मैं जैसेही प्रवृत्त हुआ, बैसेही ये सभी लोकस्वप्नसे, मनोराज्य में और यथार्थ में उत्पन्न लोकोंसे शून्य रूप होने के समान ही हो गये ।१०-११। इस प्रकार यह सव, शून्य रूप ही है, परमार्थतः ये कहीं, कभी देखते या सुनते नहीं है । इसीलिए वे जभी कल्प, महा-कल्प, और सर्ग सभी में अभिन्नता के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।१२। जिनमें प्रमत्त पुष्करावर्त्त नामक मेघ वर्षण करते, उन्मत्त पवन उत्पात करते और विशाल पर्वतों के टूटने के भीषण शब्दोंसे जो प्राप्त है,उन उन लोकोंमें प्रवृत्त हुए कल्पान्तों को भी यह लोक परस्पर नहीं जानते

।१३। धधकती हुई प्रलय ज्वाला के विस्फोटों से चटकते हुए कुबेर भवन जिनमें गोलाकार द्वादश आदित्य आकाश में घूमते रहते हैं, ऐसे कल्पान्त उन्हें परस्पर में दिखाई नहीं देते '१०।

देवासुरत्ररागारघर्घराक्रन्दकर्कशान् ।
सप्तार्णवमहापूरपूरितार्केन्दुमण्डलान् ॥१५
तव रुद्रसहस्राणि ब्रह्मकोटिशतानि च ।
दृष्टानि विष्णुलक्षाणि कल्पवृन्दान्यल मया ॥१६
तत्र क्वचिदनादित्ये निरहोराबभूतले ।
अकल्पयुगवर्षान्ते जगत्व्यूहैः क्षयोदयः ॥१७
चिति सर्वं चितः सर्वं चित्सर्वं सर्वतश्च चित् ।
चित्सत्वीत्मिकेत्येद्दृष्ट तत्र मयाऽखिम् ॥१८
दृश्यदृष्टिरिय भ्रान्तिराकाशतरुमञ्जरो ।
चिद्वयोमाङ्ग कमेवेति तत्राहमनुभूतवग्न् ॥१९
बुद्धयाकाशरूपेण व्यापिना बोधरूपिणा ।
तत्रानन्तेन संकल्पमनुभूतामिद मया ॥२०
ब्रह्मव्योम जगज्जालं ब्रह्मव्योम दिशो दश ।
ब्रह्मव्योम कलाकालदेशद्रव्यक्रियादिकम् ॥२१

सुर, असुर और मनुष्यों के घर्घर स्वर तथा क्रन्दनों से परिपूर्ण एवं द्युलोक और सप्त सागरों की तृप्ति करते हुए जल से सूर्य और चंद्रमा के मण्डलों को परिपूर्ण कर देते हैं, उन कल्पान्तों को भी वे छोक परस्पर में नहीं जानते।१५। वहाँ मुझे सहस्रों रुद्र, शतकोटि, लाखों विष्णु और अगणित कल्प दिखाई दिये।१६। इस प्रकार विविध ब्रह्मांडों का जो मैंने वर्णन किया है उनमें अवस्थित चिति रूप वस्तु में संकल्पों से उदय और विनाश होता हुआ देखा। उसमें सूर्य मंडल, दिवस, रात्रि, पृथिवी, कल्प, युग या वर्षान्त कुछ भी नहीं है।१७। सब कुछ चितिहै, उसी से यह सब और चिति ही है, वह सत् और सर्वात्मक है, अन्वय व्यतिरेक से परीक्षा करने पर मुझे यही दिखाई दिया।१८। हे राम !

दृश्यों का यह ज्ञान, केवल भ्रान्ति ही है, इसे आकाश वृक्ष की मन्जरी के समान भ्रम समझो। लोक में परिशिष्ट चिदाकाश सुख है, मुझे यही अनुभव हुआ है।१९। अन्तिम साक्षात्कार की वृत्ति तद्रूप आकाश में आविर्भूत होनेसे एक पूर्ण, अनन्त और ज्ञानरूप हुए मैंने संकल्पशून्यता का उस समाधि में ही अनुभव किया।२०। यह सभी जगज्जाल ब्रह्माकाश ही है दसों दिशायें, कला, देश, द्रव्य क्रिया आदि जो कुछ भी है, यह सभी मैंने ब्रह्माकाश रूप ही देखा।२१।

तत्राऽहमिव संसारशते भाते मुनीश्वराः।
दृष्टा वसिष्ठनामामो ब्रह्मपुत्राः सदुत्तमा ॥२२
ब्रह्मन् द्वासप्ततिस्त्रेताः सर्वा एव सराघवाः।
तत्र दृष्टा कृतशतं द्वापराणां शतं तथा ॥२३
भेदोदयेन वै दृष्टास्तास्ताः सर्गदशास्तथा।
बोधेन चेतदत्यच्छमेकं ब्रह्म नभस्ततम् ॥२४
नेदं ब्रह्मणि नामास्ति जगद्ब्रह्मण्यथ त्विदम्।
ब्रह्मैबाजयनाद्यन्तं तत्पर्व तत्पदादिकम् ॥२५
पाषाणमौनप्रतिमं न किञ्चिदभिशब्दितम्।
यत्तत्किञ्चिदिति द्योतरूपं ब्रह्म जगत्स्मृतम् ॥२६
विथात्यचेत्यं चिद्व्योम्नि स्वसत्तैव जगत्तया।
निराकारे निराकारा स्वप्नानुभवसन्निभा ॥२७
पातालपातिषु तथाऽम्धरसुत्पतत्सु
तिष्ठत्सु विभ्रमषदेष्वथ दिङ्मुखेषु।
नानाजगत्सुकिमिबास्तिमयानदृष्टं
यन्नाम चिज्जलधिचञ्चलवुद्बुदेषु ॥२८

अपने संकल्पके अनुसार ही विभिन्नता जगत् मुझे जो दिखाई दिए उनमें मेरे समान वसिष्ठ नामक अत्यन्त श्रेष्ठ मुनीश्वर और ब्रह्म पुत्र थे।२२। वहाँ मुझे रामावतार से युक्त बहत्तर त्रेतायुग दिखाई दिए

सैकड़ों सत्ययुग और सैकड़ों द्वापर भी देखे ।२३। वासनाभेद के प्राबल्य से उन-उन सृष्टियां की विविध प्रकार की अवस्थायें मुझे दिखाई दी, परन्तु उन सबमें यथार्थ रूष से तो मैंने ब्रह्मको देखा ही था ।२४। ब्रह्म में जगद्रूप नाम की कोई वस्तु नहीं है । वह तो तत्पदादित्य, अजन्मा आदि-अन्त-रहित केवल ब्रह्म ही है ।२५। पाषाण के समान जो मौन और नाम रूपों से रहित है, वही प्रकाशवान् ब्रह्म नाम रूपात्मक वन कर जगद्रूप में स्मृत होता है ।२६। यथार्थ में तो चेत्य चिद्व्योम में नहीं है, किन्तु चिति की स्वमत्ता ही जगद्रूप प्रतीत होती हैं । वह स्वप्न के समान भ्रान्ति होने के कारण निराकार ब्रह्म में प्रतीत होती हुई सृष्टि परमार्थता तो निराकार ही है ।२७। हे राम ! पाताल में गिरती हुई, आकाश में उड़ती हुई, दिशाओं में उत्मुख होती हुई जो विभिन्न प्रकार की सृष्टियां है, वे सब भ्रान्ति से ही विदित है, वे चिति रूप समुद्र के चञ्चल बुदबुदों के समान ही हैं । ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो वहां मैंने न देखी हो ।२८।

७५—ब्रह्मज्ञान से जगत्सत्ता का अभाव

चिदाशाच्चिदाकाशे पयसीव पयोरयाः ।
चित्वाज्जीवाः स्फुरन्त्येते एत एव मनांसि नः ॥१
विशदाकाश रूपाणि तान्येव च मनांसि नः ।
जगन्ति तान्यनन्तानि सम्पन्नान्यभितः स्वयं ॥२
सर्वभूतगणे मोक्षं महाकल्पक्षये गते ।
पुनःकस्य कथं सर्गसंवित्तिरुपजायते ॥३
आकाशपरमाणुसस्त्रांशमात्रेपि या ।
शुद्धचिन्मात्रसत्ता विद्यते ॥४
वपुर्जगविदं तस्या ननु नाम महाचितेः ।
कथं नश्यत्यनष्टायां तस्यां सा च न नश्यति ॥५

सविदो हृदयं स्वप्ने यथा भाति जगत्तया ।
व्योमात्मैव तथैवादिसर्गात्प्रभृति भासते ॥६
चिद्व्योमावयवः सर्गः सर्गस्यैतादृशाः क्षयाः ।
उदयाश्चेति ख सर्व किनाशि किमनाशि च ॥७

वशिष्ठजी बोले–हे राम ! जल में जो तरङ्ग उठती है, वे जलरूप ही है, उसीके समान यह सभी जीव चिदाकाश से ही स्फुरित होते हैं । वही जीव सहस्रों संकल्प-विकल्पों से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए जीव रूप होकर 'मन' कहे जाते हैं ।१। वे ही विशदाकाश रूपी मन हैं, जो स्वयं सब ओर अनन्त जगत्-स्वरूपको प्राप्त होगए हैं ।२। श्रीराम ने कहा–हे ब्रह्मन् जब महाकल्प का नाश होनेपर यह सभी जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं फिर किसे, किस प्रकार से सर्गज्ञान की उत्पत्ति होती है ? ।३। वसिष्ठ बोले हे राम ! आकाश के बड़े-बड़े और परमाणु के छोटेसे छोटे जितने भी यह असंख्य पदार्थ हैं,उन सभीमें विशुद्ध चिन्मात्र की सत्ता है ।४। यह सम्पूर्ण जगत् उसी महाचिति का देह है, जब महाचिति का नाश नहीं होता तो वह जगत् ही कैसे नष्ट हो सकता है ? स्वप्न में जगद्रूप से ज्ञान का ही हृदय प्रतीत होने के समान ही यह सर्ग प्रभृति जो कुछ भी भासमान है, आत्मा का हृदय ही है । यह सभी चिदाकाश रूप समझो ।६। यह सर्ग चिदाकाश का ही संकल्पित अङ्ग और अङ्गभूत इस सर्ग का उदय और अस्त भी ऐसे ही कल्पित अङ्ग हैं । इसलिए यह सभी कुछ चिदाकाश है, तब कौन नाशवान और कौन नाश-रहित होगा ।७।

इतो भाव्य इतो भाव इतः सर्ग इतः क्षयः ।
स्वभाव एवानुभव इति ब्रह्माऽचल स्थितम् ॥८
एवंमयेऽविपरमे ब्रह्माकाशे न रञ्जनाः ।
काश्चिदेवाङ्ग सन्तीन्दुविम्बे विमलता यथा ॥९
निर्भखे परमाकाशे क्य भावाभावरञ्जनाः ।
क्वादिनध्यान्तकलनाः क्व लोकान्तरंविभ्रमाः ॥१०

अपरिज्ञाननेवैक तत्र दोषवदुत्थितम् ।
केवल नत्परावृत्य प्रेक्षणात्परिशाम्यति १२
अज्ञान ज्ञप्तिबोधेन परामृष्टं प्रणश्यति ।
येनवाभ्युदितस्तेन पववेनेच दीपक:
अज्ञान संपरिज्ञातं नत्सोदेवेति बुध्यते ।
अबन्धमोक्षं ब्रह्मैव सवमित्यवगम्यते ॥१३
एवं बोधादयो राम मोक्ष उक्ता स्वसंविदा ।
विचारयत्नो लभते नात्र कश्चन संशय: ॥१४
इदं जगज्जालमनाद्यजातं
ब्रह्मार्थमाभातमितौह दृष्ट्वा ।
विचारदृष्टथाऽष्टगुणेश्वरत्वं
सस्यस्तृणं स्वात्मनि जीव आस्ते ॥१५

हे राघव ! यह जितने भी होने वाले अथवा हो चुके पदार्थहैं तथा वर्तमान में जो पदार्थ हैं अथवा जितने भी सर्ग या प्रलय हैं, उन सभी की सिद्धि अनुभव से है और अनुभव स्व सत्तात्मक है, इसलिए यह सब ब्रह्म ही अचलरूप से विद्यमान है ।८। इस प्रकार सृष्टि के ब्रह्मात्मक होने पर सभी परम ब्रह्माकाश में सृष्टि या प्रलय आदि उसी प्रकार नहीं है, जिस प्रकार चन्द्रबिम्ब में कलंक नहीं होता ।९। निर्मल परम आकाश में सृष्टि के भाव या अभाव, मध्य, अन्त आदि कल्पना और लोकान्तर की भ्रान्ति कहाँ से आई ! ।१०। आत्म-ज्ञान का अभाव ही उसमें दोष रूप सा अवस्थित है, अत: केवल तत्व बुद्धि से देखे तो उसका शमन हो जाता है ।११। जिस ज्ञान रूप आत्मा से अज्ञान की सिद्धि हुई, उसी से वह वैसेही नाशको प्राप्त हो जाता है जैसे वायु से अभ्युदय को प्राप्त हुआ अग्नि रूप दीपक, वायु से ही नष्ट हो जाता है ।१२। अज्ञान का भले प्रकार ज्ञान होने पर उससे नष्ट होता है और बन्ध-मोक्ष से शून्य ब्रह्म के ही सब कुछ होने का निश्चय हो जाता है ।१३। यह बोध आदि रूपी उपाय मोक्ष के लिए ही मैंने कहे हैं । आत्म

चिंतन में जो पुरुष सतत् प्रयत्नशील रहता है, वह अधिकारी पुरुष अवश्य ही इन उपायों को प्राप्त करता है ।१४। यह अनादि जगज्जाल अनुत्पन्न ही है । किन्तु यह जो जीवादि स्वरूप जगत् प्रतीत होता है, वह मोक्ष की कामना वाला (आत्मज्ञान-रहित) ब्रह्म ही है । विचार दृष्टि से देखे तो आठ सिद्धियों से सम्पन्न ईश्वर भी माया रूप होने से सार-हीन ही है । इस प्रकार उस ईश्वरत्वको भी तृण के समान समझने वाला अधिकारी पुरुष आत्मा में ही निरतिशय आनन्दरूपता अनुभव करता हुआ अपने आत्मा में ही पूर्ण सन्तुष्ट रहता है ।१५।

७६–आकाश रूपी स्त्री से वार्तालाप

यदेतद्भवता दृष्टं चिद्व्योमवपुषा तदा ।
तदेकदेशसंस्थेन किमुत भ्रमताऽम्बरे ॥१
सम्पन्नोऽहमनन्तात्मा व्वापी व्योम तदा किल ।
स्यातां तस्यामवस्थायां कीदृशौ तो गमागमो ॥२
नैकस्थानस्थितमयो नाहं गतिमयोऽभवम् ।
तदनेन स्व एवास्मिन् दृष्टमेतन्मयात्मनि ॥३
यथाऽङ्गानि शरीरत्वे पश्याम्यापादमस्तकम् ।
चिन्नेत्रेणाप्यनेत्रेण तथैतदृष्टवानहम् ॥४
अनाकृतेर्निरवयवस्थितेस्तदा
तथाऽभवद्विमलचिदम्बरात्मनः ।
जगन्ति तान्यवयवजालकानि मे
यथा स्वतो न विगलिता न वस्तुता ॥५
प्रमाणमत्र ते स्वप्नदृष्टो भुवनविभ्रमः ।
स्वप्नेऽनुभूयते दृश्यं न च किञ्चित्खमेव तत् ॥६
यथा पश्यति वृक्षः स्वं पत्रपुष्पफलादिकम् ।
स्वसंवेदननेत्रेण तथैतद्दृष्टवानहम् ॥७

श्रीराम—बोले हे भगवान् आपने उस समय, पक्षियों के समान उड़ते हुए जिन लोकों को देखा, वह एक देश में अवस्थित होकर देखा या चिदाकाश रूपी देह से ? ।१। वसिष्ठजी ने कहा—राम ! जब सर्वव्यापी अनन्तात्मा चिदाकाश रूपी हो गया तब उस अवस्थामें गमन और आगमन कैसे सम्भव होता ? ।२। उस समय मैं तो एक स्यान पर स्थित था और न गतिमय ही था, अपने इसी अपरिच्छ रूप से आत्मा रूपी चिद्व्योम में अवस्थित होकर मैंने इन सब लोकों का अवलोकन किया ।३। जिस प्रकार देह में आत्मभाव होने के कारण पाँव से शिर पर्यन्त सभी अङ्गों का अवलोकन करता हूँ, उसी प्रकार इस चर्म-नेत्र से रहित हुए मैंने चिद्रूपी नेत्रसे लोकों का दर्शन किया।४। उस समाधि में अनाकृति और अवयव-रहित रूपसे चिदाकाश रूप हुए वे लोकमेरी सत्ता से ही अस्तित्व पाकर अवयवों के रूपमें परिणित होगये थे, जिस से मेरी सत्ता से ही अस्तित्व पाकर अवयवों के रूप में परिणित होगये थे, जिससे मेरी वस्तुस्वभाबता गलित न हो सकी और सत्ता-रहित होने से उनमें वस्तुता का भी अभाव था ।५। इस सम्वन्ध में प्रमाणरूप तो स्वप्न में देखे गये लोकों की भ्रान्ति ही है, क्योंकि स्वप्न से अनुभूत दृश्य चिदाकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ।६। जिस प्रकार वृक्ष रूपी, जीव पत्न पुष्प, फल आदि से सम्पन्न अपने को ही देखता हैं, वैसे ही मैंने इस सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान-चक्षुओं से देखा ।७।

अद्यापि तानहं देहे व्योम्नि शैले जले स्थले ।
तथैव सर्गान्पश्यामि राम बोधैततां गतः ॥८
ब्रह्मन्ननुभवस्येवं त्वयि तामरसेक्षण ।
सा किं कृतवती ब्रूहि कान्ताऽऽर्यापाठपाठिनी ॥९
तामेवार्यां पठन्ती सा तथैवानुनयाऽन्यिता ।
मत्समीपे नभोदेहा व्योम्नि देवीव संस्थिता ॥१०
यथाऽहमाकाशवतुस्तथैं बासौ खरूपिणी ।
तेन दृष्टा न सा पूर्वदेहेन ललना मया ॥११

अह्माकायमात्रात्मा सा खमात्रशरीरिणी ।
जगज्जालंखमात्रं तदिति तत्र तदा स्थितम् ॥१२
शरीरस्थानकरणप्रयत्नप्राणसम्भवै ।
यदुदेति बची वर्णैस्तत्कुतस्तादृशाकृतेः ॥१३
रूपालोकमनस्काराः शब्दापाठवचांसि च ।
यथा स्वप्ने नभन्येव सन्ति तत्र तथाऽम्बरे ॥१४

लोभ रूपी आत्मासे एकत्व को प्राप्त हुआ मैं अबभी उन विभिन्न रूपों वाली सृष्टियों को शरीर, आकाश, पर्वत और सर्वत्र देख रहा हूँ ।८। श्रीराम ने पूछा हे ब्रह्मन् ! जब आपको इस प्रकार का अनुभव हो रहा था तब उस आर्याछन्द पाठ करने वाली स्त्री ने क्या किया यह बताइए ।९। वशिष्ठजी वोले—हे राम ! आर्याछन्द पढ़ती हुई वह नारी अनुनय से झुकती हुई, चिदाकाश रूपी देह से मेरे पास देवी के समान अवस्थित हो गई ।१०। जिस प्रकार मेरा देह आकाशमय वैसेही देह वह धारण किए हुए थी इसलिए समाधिकाल से पूर्व के अपने शरीर से मैं उसको देख नहीं पाया ।११। फिर तो जैसा मैं आकाश रूप था, वैसा ही वह थी, तथा आकाशमय वह सम्पूर्ण जगज्जाल भी उस समय चित्व्योम में स्थित हो रहा था ।१२। श्रीराम बोले—देह में तो जीभ, तालु ओष्ठ आदि होते हैं, उनके तथा प्राणों के प्रयत्न से वर्ण-वाक्यों की उत्पत्ति होतीहै, उसकी उत्पत्ति उस आकाशदेह वाली नारी से कैसे सम्भव हुई ! ।१३। वसिष्ठजी ने बताया—जिस शंका स्वप्न में बाह्याभ्यन्तर ज्ञान, शब्द-पाठ और बचन आकाश में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार वे सब पदार्थ चिदाकाश में अवस्थित हैं ।१४।

रूपालोकमनस्कारैः स्वप्ने चिन्नभ एवं ते ।
यथोदेति तथा तत्र तद्द्रश्यं खात्मकं स्थितम् ॥१५
शरीरस्थानकरणसत्तायां सा तव प्रभा ।
यथैव तेषां देहादि तथाऽस्माकमिदं स्थितम् ॥१६

स्वप्न शब्देन बोधार्थं तव व्यवहराम्यहम् ।
दृश्य त्विदं न सन्नासन्न स्वप्नो ब्रह्म केवलम् ॥१७
अथ राघव सा कान्ता मया कान्तानुषङ्गिणी ।
सविदं तन्मयीं कृत्वा पृष्टेदं दृश्यरूपिणी ॥१८
व्यवहारो यथोदेति स्वप्ने स्वप्नजनैः सह ।
तथा तदा तथा सार्द्धं व्यवहारो ममोदितः ॥१९
यथैव स्वप्नस काशो व्यवहारः खमेव सः ।
तथैव त्वमिमं विद्धि मामात्मानं जगच्च खम् ॥२०
स्वप्नोऽयं जगदाभोगो न किंचिद्वा खमेव च ।
निर्मलं ज्ञप्तितामात्रमित्थं सन्मात्रसंस्थितम ॥२१

जैसे स्वप्नमें चिदाकाश ही बाह्याभ्यन्तर पदार्थों का रूप धारण कर लेता है, वैसे ही मेरे उस समाधिकाल में जो दृश्य-प्रपंच था, वह चिदा काश रूप में ही अवस्थित था।१५। देह में जीभ, तालु ओष्ठ आदि की सत्ता में आपको क्या संदेह है ? जिस प्रकार उनके शरीर हैं उसी प्रकार हमारा भी है।१६। मैंने आपको समझाने के निमित्त स्वप्न शब्द का व्यवहार किया है, यथार्थमें तो यह दिखाई पड़ने वाला प्रपंच और स्वप्न दोनों ही न सत् है न अचेत है, केवल ब्रह्मही है।१७ हे राघव ! फिर कान्त की इच्छा वाली उस दृश्यरूपिणी नारी से उस के अभिप्रायको जानने वाली सेवितका संकल्प करके मैंने प्रश्न किया।१८। स्वप्नकाल दिखाई पड़ने वाले स्वप्न शरीरों के साथ जिस प्रकार के व्यवहार की प्रवृत्ति होती है वैसा ही व्यवहार मैंने भी उस स्त्री के साथ किया।१९। स्वप्न के व्यवहार के समान वह व्यवहार जैसे आकाश रूप था, वैसे ही इस आत्मा, में और जगत् को भी चिदाकाश रूप ही समझो।२०। इस जगत् का आभोग स्वप्न ही है, अथवा कुछ भी नहीं है वह तो चिदाकाश मात्र ही हैं। क्योंकि यह सब दृश्य प्रपंच स्वच्छ, सत् और ज्ञप्तिमात्र ब्रह्म ही अवस्थित है।२१।

स्वप्नस्य विद्यते द्रष्टं साकारो युष्मदादिकः ।
द्रष्टा तु सर्गस्वप्नस्य चिद्व्योमैवामल स्वतः ॥२२
यथा द्रष्टात्मल व्योम दृश्यं तद्वद्गतं तथा ।
स्वरूपजगत्युच्चैर्जगत्वेनामलं नभः ॥२३
चिद्व्योम्नोऽनाकृतेः स्वप्नो हृदि स्फुरति यः स्वतः ।
सगस्तस्य कुलस्तेन साकृतित्वं कथं भवेत् ॥ २४
साकारस्यैव यत्स्वप्नजगत्तद्योम निर्मलम् ।
निराकारः चिद्व्यम्नः सर्गः स्वप्नः कथं न खम् ॥२५
निरुपादानसम्भारमभित्तावेव चिन्नभः ।
पश्यत्यकृतमेवेम जगत्स्वन्नं कृतं यथा ॥२६
मृद्वया चिदाकाशमृदा ब्रह्मणा ब्राह्मणेन खे ।
कृतोऽपि न कृतः सर्ग मण्डपोऽक्षगवाक्षकः ॥२७
नो कर्तृता न च जगन्ति न भोक्तृताऽस्ति ।
नास्तीति नास्तिन च किञ्चिदतो बुधः सन् ।
पाषाणमौनमवम्ब्य यथाप्रवाह-
माचारमाचर शरीरमिहास्तु मा वा ॥२८

हे राम ! वासना के आकार में ही स्वप्न द्रष्टा का आकार है, किन्तु सर्गरूपी स्यप्न का द्रष्टा तो स्वयं चिदाकाश है ही ।२२। द्रष्टा और दृश्य दोनों के स्वच्छ चिदाकाश होने के समान ही द्रष्टा और दृश्य के मध्यगत जो दर्शन है, वह भी चिदाकाश रूप है। स्वप्नरूपी इस विशाल जगत् में निर्मल चिदाकाश ही जगत् रूपसे स्थित है ।२३। उस आकार हीन चिदाकाश का जो जगत् रूप स्वप्न हृदय में स्फुरित होता है, वह स्वप्न का साकार होगा ? अथवा बन्ध्या-पुत्र के समान वह चिदाकाश सर्ग रूप से कैसे साकार होगा ? ? ।२४। साकार का जो स्वप्नलोक है यदि वही निर्मल चिदाकाश रूपहै तो निराकार ब्रह्मरूपी जगत् स्वचछ चिदाकाश रूपी क्यों नहीं होगा ।२५। उपादान आदि

साधनों के बिना जो अभित्ति है (दीवार नहीं है) उसमें ही इस जगत रूपी स्वप्न को बिना बनाये ही बना हुआ देखता है।२६। मृदु चिदा-काशरूपी स्वप्न को बिना बनाये ही बना हुआ देखता है।२६। मृदु चिदाकाशरूपी मृत्तिका से, हिरण्यगर्भ रूपी ब्राह्मण ने, इन्द्रिय रूपी झरोखों वाले शरीर आदि सर्ग मण्डल को बनाया है, फिर भी उसका वह बनाना नहीं के समान ही है।२७। न कर्तृता है, न जगत् है, न भाव है, और न अभाव ही हैं, इसीलिए सब दृश्यों के परिमार्जन से परिमार्थ ही उनका साक्षीहै। अत: आप पाषाण के समान मौनावलम्बी होकर जैसा प्रवाह है वैसा ही आचरण करते रहिए। प्रारब्ध कर्म के शेष रहने तक शरीर का रहना या न रहना कुछ विशेषता नहीं रखता।२८।

७७-चिदघ्न ब्रह्म ही सब कुछ है

तव स्त्रीयाऽस्वरूपेण देहेनाभुत्तया कथम्।
कथनुच्चारिलास्तव वर्णा: कचटतादय: ।।१
वर्णेषु खशरीराणां वर्णा: कचटतादय:।
कवाचनाषि नोद्यन्ति शतानामिव केचन ।।२
वर्णोच्चारो भविष्यच्चेत्प्रकटार्थस्तत: क्वचित्।
स्वप्नेष्वन्बभविष्यत्तं विनिद्र: पार्श्वगो जन: ।।३
तस्मान्न किञ्चित्स्वप्नेष तत्सत्ब भ्रान्तिरेव सा।
चिन्मात्राकाकचम तत्तया खे स्मभावजम् ।।४
तवेन्दुकाय्र्ण्यखतनुशिलागेयादितागता:।
इवाभान्ति चिदाकाशास्तथदेहरवादय: ।।५
तच्चिदाकशकचनं यन्नाम स्वप्नवेदने।
आकाशमेव नभश: कचनं विद्धि नेतरत् ।।६
यथा स्वप्नस्तस्तथैवेदं जाग्रदगृ व्यवस्थितम्।
आकाशमष्यनाकाशं यथैवेदं यथैव तत् ।।७

श्रीराम बोले-हे ब्रह्मन् ! आपका उसी स्त्रीके साथ मुखादि स्वरूप के बिना, केवल वासनारूपी देहसे ही बोलना किस प्रकार हो सका ! उस समय जीभ के बिना क च ट त आदि वर्णोका उच्चारण कैसे कर सके। ।१। वसिष्ठजी बोले-हे राम ! चिदाकाशरूप शरीरों में क से ट त आदि वर्णका उच्चारण उसी प्रकार नहीं होता, जिस प्रकार मृतकों के मुखसे कोई वर्ण उच्चारित नहीं होता, क्योंकि वे सब कल्पनारूप ही हैं ।२। स्वप्न में वर्णो का उच्चारण यदि यथार्थ होता तो निकटस्थ जागे हुए व्यक्तिको भी उनका अनुभव होता ही।३। अतः स्वप्नमें उसकी किंचित् भी सत्यता नहीं है। वह केवल भ्रम ही । निद्रास्वभाव के बलसे कल्पित चिदाकाश का वह स्फुरण चिदाकाश में ही होता है ।४। शिस प्रकार नेत्र-रोगसे दिखाई पड़ने वाला चन्द्रमामें कृष्णवर्ण, आकाशमें साकारता पाषाण प्रतिमा आदि में गेयता आदि का आभास चिदाकाश रूप ही हैं उसी प्रकार स्वप्नमय देह और शब्दादि भी उस-उस जाने हुए पदार्थ के संस्कारों से उपहित चिद्व्योम रूप होकर ही अनुभव में आते है ।५। जैसे आकाश की साकारता का आभास आकाश से अभिन्न है वैसे ही स्वप्न ज्ञान में चिदाकाश का जगदाकार स्फुरण चिदाकाश से अभिन्न ही है । उसे आप चिदाकाश रूप ही जानो ।६। जैसे स्वप्न जगत् चिदा काश रूप है, वैसे ही यह जाग्रत-दृश्यप्रपंच चिदाकाश रूप है। और जैसे यह चिदाकाश होकर भी चिदाकाश नहीं है, वैसे ही मेरा समाधि कालीन वह संसार है ।७।

यथा कचति तचारु चेतनं चतुर तथा ।
यथास्थित तदेवेदं सत्यं स्थिरमिव स्फुरत् ।।८
भगवन्स्वप्न एवेदं कथं जाग्रदवस्थितम् ।
असत्यमेव सत्यत्वमिवयातं कथं भवेत् ।।९
शृणु स्वप्नमयान्येव कथं सन्ति जगन्त्यलम् ।
नान्यानि न च सत्यानि न स्थिराणि स्थितानि च ।।१०
प्रत्येकमन्तरन्यानि तथैवाभ्युदितानि च ।
परस्परमदृष्टानि बहूनि विविधानि च ।।११

अन्योन्यं तानि सर्वाणि न पश्यन्त्येव किञ्चन ।
जडानीवैकराशीनिबीजानीव गलन्त्यपि ॥१२
व्योमात्मत्वान्न गगनं न विदन्ति परस्परम् ।
अपि चेतनरूपाणि सुप्तानीव निरन्तरम् ॥१३
सुप्ता: स्वप्तजगज्जालमहनि व्यवहारिण: ।
असुरां निहता देवैस्तै स्वप्नजगति स्थिता: ॥१४
अज्ञानान्न गता मुक्ति न जाड्याज्जडतामिता ।
न देहवन्त: किं सन्तु विना स्वप्नजगत्स्थिते ॥१५

जिस प्रकार से यह सौन्दर्यमय जगत स्फुरित है उस प्रकार उस चतुर ब्रह्म को ही स्फुरित हुआ समझो। यह सत्य-सा और स्थिर-सा स्फुरित हो रहा है वैसे तो वह चतुर ब्रह्म ही स्थित है। श्रीराम ने पूछा-हे भगवान् ! स्वप्न रूप यह संसार जाग्रत रूप में कैसे स्थित है। यह असत्य होते हुए भी सत्य-सा कैसे सम्भव हुआ है ! ।६। वसिष्ठजी बोले-यह संसार स्वप्न रूप कैसे है, उसे सुनो। यह स्वप्न जगत् न तो आत्मासे भिन्न है और न आत्म-सदृश्य सत्य एवं स्थिर ही है। यह सब आत्मासत्ता से ही विद्यमान है ।१०। प्रत्येक लोकके भीतर परस्पर एक दूसरे द्वारा न देखे जाते हुए विभिन्न रूप वाले यह लोक केले की छाल के समान ही अभ्युदय को प्राप्त हुए हैं ।११। यह परस्पर एक दूसरे को न देखते हुए सभी जगत् कोठों में रखे हुए बीजों के समान भीतर ही भीतर गल जाते हैं ।१२। गलने पर भी चेतनरूप रहते हैं, तप्त खर्पर में गिरी हुई जल की बूँद के समान शून्यरूप होकर भी शून्य नहीं होते। वे परस्पर न देखते हुए और अज्ञानसे ढकेहुए होने के कारण सोते हुए से रहते हैं ।१३। ये सुप्त प्राणी स्वप्तमय जगज्जाल को पाकर ही अपना व्यवहार करते हैं। स्वप्नलोक में स्थित हुए वे सुरों या असुरों के द्वारा मारे जाकर न तो मुक्त होते हैं न जड़भाव को ही प्राप्त होते हैं और न शरीर में ही रहते हैं। इस अवस्था में वे स्वप्न जगत् में स्वित होने के अतिरिक्त क्या ही सकते हैं ?

रुप्ता स्वप्नजगज्जाले स्वाचारव्यवहारिणः ।
पुरुषा निहताः पुंभिस्ते तथैव व्यवस्थिताः ॥१६
निर्मोक्षा निःशरीरास्ते चेनतावासनान्विताः ।
दृष्टं स्वप्नजगज्जालं विना च क्व वसन्तु ते ॥१७
सुप्ताः स्वप्नजगज्जालव्यवस्थाचारिणः ।
ते हता राक्षसा देवैस्ते यथैवव्यवस्थिताः ॥१८
एवं ये निहता राम कि ते कुर्वन्ति कथ्यताम् ।
अज्ञत्वान्न गता मुक्ति चेतनान्न दृषस्थिताः ॥१९
ते स्वप्नपुरुषास्तेषां सत्या एवानुभूतितः ।
आत्मनोऽदि परस्यापि सर्वगत्वाच्चिदात्मनः ॥२०
यथा ते स्वप्नपुरुषाः सत्यमात्मन्यथाऽपरे ।
तणापि स्वप्नपुरुषाः सत्यमेव तथैव ते ॥२१

इसी प्रकार का व्यवहार जगज्जाल में बासनाओं के कारण मनुष्य भी करते हैं । स्वप्न में स्थितमें मनुष्य अन्य मनुष्यों द्वारा वधको प्राप्त होकर स्वप्न में ही अवस्थित रहते हैं ।१६। वे भी ज्ञान-शून्य, मोक्ष-रहित और देह-रहित रहने से चेतनायुक्त और वासना से व्यवहार युक्त नहीं होते । इसलिए ऐसे मनुष्य दिखाई पड़ते हुए स्वप्न लोक के अतिरिक्त कहाँ स्थित रहें! ।१७। सुप्त एवं लोक-प्रपंच के अनुसार आचार-व्यवहार करते हुए जो राक्षस स्वप्नमें देवताओं द्वारा निहतहुए असुरों के समान उसी स्वप्न में रहते हैं ।१८। हे राम ! इस प्रकार स्वप्न में जो निहत हुए, वे बताओ क्या करते होंगे ! अज्ञानवश तो उन्हें मुक्ति ही मिल सकी और न चेतन होने के कारण पाषाण के समान ही स्थित रह सके ।१९। उनके स्वप्न में ये पुरुष अपने और अन्य पुरुषके अनुभव से समान होने के कारण सत्य ही हैं, क्योंकि उनकी सत्ता के हेतुभूत चिदात्मा सर्वगामी के कारण समान ही हैं ।२०। आत्मा में उन स्वप्न पुरुषों के सत्य होने के समान ही अन्य पुरुष भी जो स्वप्न में व्यवहृत होते हैं, सत्य ही हैं ।२१।

स्वरेण मधुरेणैवमार्यामार्यविलासिनी ।
पपाठा कठिनं वामा मत्पार्श्वे मृदुहासिनी ॥६
असदुचितरिक्तचेतन-
संसृतिसरिति प्रमुह्यमानानाम् ।
अवलम्बनतटविटपिन-
मभिनौमि भवन्तमेव मुने ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! उन अगणित संसारों को देखता हुआ मैं उस शब्द के कारण की खोज करता-करता बहुत काल तक भ्रमण करता रहा और फिर निरावरण संविदाकाश रूप हो गया ।१। फिर मुझे वीणा के स्वर के समान शब्द सुनाई पड़ा और जब उसके पद भी क्रमश: स्फुट हो गये, तब मुझे आर्याछन्दकी प्रतीत होने लगी ।२। फिर जहाँ से यह शब्द निकल रहा था उस स्थान पर मेरी दृष्टि गई । तब वहाँ मुझे एक स्त्री दिखाई दी, जो अपनी स्वर्ण जैसी स्पन्दनशील प्रभा से आकाश मण्डलको सब ओर प्रकाशित कर रही थी ।३। पूर्ण चन्द्र के समान उस नारी का मुख था, पुष्प-राशि के समान लुभावनी हँसी एवं यौवन से उद्दाम वदन वह श्रेष्ठ चिह्नोंसे युक्त एवं अत्यन्त शोभा-मयी थी।४। उसका गृह वह आकाश कोश ही था, शशांक चन्द्र किरणों के समान वह सुन्दरी अर्द्धचन्द्रकार एक मुक्ताहार धारण किए थी । लगता था कि वह मेरी ओर आना चाहती है ।५। उसी स्त्री ने मेरे पास आकर आर्या का मृदु स्वर से उच्चारण किया । आर्या के समान विलास वाली वह नारी मृदु हास से संयुक्त थी ।६। उसने कहा-हे मुने ! खल पुरुषों में स्थित जो काम-क्रोधादि दोष है, उनसे अलिप्त रहने वाले आप संसार-संहिता में डूबते हुए प्राणियों के लिए तट पर अवस्थित वृक्ष जैसे आश्रय हैं । मैं आपको सब ओर से नमस्कार करती हूँ ।७।

इत्याकर्ण्याहमालोक्य तां चारुवदनस्वनाम् ।
ललनेयं किमनयेत्यनादृत्यैव तां गतः ॥८

ततो जगत्-वृन्दमयीं मायां प्रप्रेक्ष्य विस्मितः ।
अनादृत्यैव तां व्योम्नि विहर्तुमहमुद्यतः ॥९
ततस्तां चिन्तामलमुत्सृज्य खे स्थिताम् ।
जगन्मायां कलयितुं व्योमात्माऽह प्रवृत्तवान् ॥१०
यावत्तानि यथोग्राणि जगन्ति सकलानि खम् ।
शून्यमेव यथास्वप्ने सङ्कल्पे कथने तथा ॥११
न पश्यन्ति न शृण्वन्ति कदाचित्कानिचित्क्वचित् ।
तानि कल्पमहाकल्पमहाजन्मैकतान्यथ ॥१२
प्रमत्तपुष्करावर्तानुन्मत्तोत्पात मारुतान् ।
स्फुटितान्द्रीन्द्रढाकारघटितब्रह्ममण्डपान् ॥१३
ज्वलत्कल्पाग्निविस्फोटचटदडविडास्पदान् ।
प्रतपद्द्वादशाकारकन्दुमार्तण्डलात् ॥१४

यह सुनकर मैं उस चारु वदना और सुन्दर स्वर वाली नारी को देखता हुआ सोचने लगा—इस स्त्री से मेरा क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार उसकी उपेक्षा करता हुआ मैं आगे बढ़ने लगा ।८। फिर मुझ अगणित जगतोंसे परिपूर्ण माया दिखाई दी । आश्चर्य में भरा हुआ मैं उसकी भी उपेक्षा कर आकाश मण्डल में विहार करने के लिए बढ़ा ।९। फिर शून्याकाशमें स्थित उस जगत् रूपी माया को जानने के लिए चिदकाशरूप होकर मैं जैसेही प्रवृत्त हुआ, वैसेही ये सभी लोकस्वप्नसे, मनोराज्य में और यथार्थ में उत्पन्न लोकोंसे शून्य रूप होने के समान ही हो गये ।१०-११। इस प्रकार यह सब, शून्य रूप ही है, परमार्थतः ये कहीं, कभी देखते या सुनते नहीं है । इसीलिए वे जभी कल्प, महा-कल्प, और सर्ग सभी में अभिन्नता के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।१२। जिनमें प्रमत पुष्करावर्त्त नामक मेघ वर्षण करते, उन्मत्त पवन उत्पात करते और विशाल पर्वतों के टूटने के भीषण शब्दोंसे जो प्राप्त है,उन उन लोकोंमें प्रवृत्त हुए कल्पान्तों को भी यह लोक परस्पर नहीं जानते

।१३। धधकती हुई प्रलय ज्वाला के विस्फोटों से चटकते हुए कुवेर भवन जिनमें गोलाकार द्वादश आदित्य आकाश में घूमते रहते हैं, ऐसे कल्पान्त उन्हें परस्पर में दिखाई नहीं देते '१०।

देवासुरत्ररागारघर्घराक्रन्दकर्कशान् ।
सप्तार्णवमहापूरपूरितार्केन्दुमण्डलान् ॥१५
तव रुद्रसहस्राणि ब्रह्मकोटिशतानि च ।
दृष्टानि विष्णुलक्षाणि कल्पवृन्दान्यल मया ॥१६
तत्र क्वचिदनादित्ये निरहोराबभूतले ।
अकल्पयुगवर्षान्ते जगत्व्यूहैः क्षयोदयः ॥१७
चिति सर्वं चितः सर्वं चित्सर्वं सर्वतश्च चित् ।
चित्सत्वात्मिकेत्येद्दृष्ट तत्र मयाऽखिम् ॥१८
दृश्यदृष्टिरिय भ्रान्तिराकाशतरुमञ्जरी ।
चिद्वयोमाङ्ग कमेवेति तत्राहमनुभूतवग्न् ॥१९
बुद्धयाकाशरूपेण व्यापिना बोधरूपिणा ।
तत्रानन्तेन संकल्पमनुभूतामिद मया ॥२०
ब्रह्मव्योम जगज्जालं ब्रह्मव्योम दिशो दश ।
ब्रह्मव्योम कलाकालदेशद्रव्यक्रियादिकम् ॥२१

सुर, असुर और मनुष्यों के धर्धर स्वर तथा क्रन्दनों से परिपूर्ण एवं द्यु लोक और सप्त सागरों की तृप्ति करते हुए जल से सूर्य और चंद्रमा के मण्डलों को परिपूर्ण कर देते हैं, उन कल्पान्तों को भी वे छोक परस्पर में नहीं जानते।१५। वहाँ मुझे सहस्रों रुद्र, शतकोटि, लाखों विष्णु और अगणित कल्प दिखाई दिये।१६। इस प्रकार विविध ब्रह्मांडों का जो मैंने वर्णन किया है उनमें अवस्थिति चिति रूप वस्तु में संकल्पों से उदय और विनाश होता हुआ देखा। उसमें सूर्य मंडल, दिवस, रात्रि, पृथिवी, कल्प, युग या वर्षान्त कुछ भी नहीं है।१७। सब कुछ चितिहै, उसी से यह सब ओर चिति ही है, वह सत् और सर्वात्मक है, अन्वय व्यतिरेक से परीक्षा करने पर मुझे यही दिखाई दिया।१८। हे राम !

दृश्यों का यह ज्ञान, केवल भ्रान्ति ही है, इसे आकाश वृक्ष की मन्जरी के समान भ्रम समझो। लोक में परिशिष्ट चिदाकाश सुख है, मुझे यही अनुभव हुआ है।१६। अन्तिम साक्षात्कार की वृत्ति तद्रूप आकाश में आविर्भूत होनेसे एक पूर्ण, अनन्त और ज्ञानरूप हुए मैंने संकलपशून्यता का उस समाधि में ही अनुभव किया।२०। यह सभी जगज्जाल ब्रह्माकाश ही है दसों दिशायें, कला, देश, द्रव्य क्रिया आदि जो कुछ भी है, यह सभी मैंने ब्रह्माकाश रूप ही देखा।२१।

तत्राऽहमिव संसारशते भाते मुनीश्वराः।
दृष्टा वसिष्ठनामामो ब्रह्मपुत्राः सदुत्तमा ॥२२
ब्रह्मन् द्वासप्ततिस्त्रेताः सर्वा एव सराघवाः।
तत्र दृष्टा कृतशतं द्वापराणां शतं तथा ॥२३
भेदोदयेन वै दृष्टास्तास्ताः सर्गदशास्तथा।
बोधेन चेतदत्यच्छमेकं ब्रह्म नभस्ततम् ॥२४
नेदं ब्रह्मणि नामास्ति जगद्ब्रह्मण्यथ त्विदम्।
ब्रह्मैवाजयनाद्यन्तं तत्पर्वं तत्पदादिकम् ॥२५
पाषाणमौनप्रतिमं न किञ्चिदभिशब्दितम्।
यत्तत्किञ्चिदिति द्योतरूपं ब्रह्म जगत्स्मृतम् ॥२६
विथात्यचेत्यं चिद्व्योम्दि स्वसत्तैव जगत्तया।
निराकारे निराकारा स्वप्नानुभवसन्निभा ॥२७
पातालपातिषु तथाऽम्धरसुत्पतत्सु
तिष्ठत्सु विभ्रमषदेष्वथ दिङ्मुखेषु।
नानाजगत्सुकिमिबास्तिमयानदृष्टं
यन्नाम चिज्जलधिचञ्चलवुद्बुदेषु ॥२८

अपने संकल्पके अनुसार ही विभिन्नता जगत् मुझे जो दिखाई दिए उनमें मेरे समान वसिष्ठ नामक अत्यन्त श्रेष्ठ मुनीश्वर और ब्रह्म पुत्र थे।२२। वहाँ मुझे रामावतार से युक्त बहत्तर त्रेतायुग दिखाई दिए

सैकड़ों सत्ययुग और सैकड़ों द्वापर भी देखे ।२३। वासनाभेद के प्राबल्य से उन-उन सृष्टियाँ की विविध प्रकार की अवस्थायें मुझे दिखाई दी, परन्तु उन सबमें यथार्थ रूष से तो मैंने ब्रह्मको देखा ही था ।२४। ब्रह्म में जगद्रूप नाम की कोई वस्तु नहीं है। वह तो तत्पदादित्य, अजन्मा आदि-अन्त-रहित केवल ब्रह्म ही है ।२५। पाषाण के समान जो मौन और नाम रूपों से रहित है, वही प्रकाशवान् ब्रह्म नाम रूपात्मक बन कर जगद्रूप में स्मृत होता है ।२६। यथार्थ में तो चेत्य चिद्व्योम में नहीं है, किन्तु चिति की स्वमत्ता ही जगद्रूप प्रतीत होती हैं। वह स्वप्न के समान भ्रान्ति होने के कारण निराकार ब्रह्म में प्रतीत होती हुई सृष्टि परमार्थता तो निराकार ही है ।२७। हे राम ! पाताल में गिरती हुई, आकाश में उड़ती हुई, दिशाओं में उत्मुख होती हुई जो विभिन्न प्रकार की सृष्टियाँ है, वे सब भ्रान्ति से ही विदित है, वे चिति रूप समुद्र के चञ्चल बुदबुदों के समान ही हैं। ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो वहाँ मैंने न देखी हो ।२८।

७५—ब्रह्मज्ञान से जगत्सत्ता का अभाव

चिदाशाच्चिदाकाशे पयसीव पयोरयाः ।
चित्वाज्जीवाः स्फुरन्त्येते एत एव मनांसि नः ॥१
विशदाकाश रूपाणि तान्येव च मनांसि नः ।
जगन्ति तान्यनन्तानि सम्पन्नान्यभितः स्वयं ॥२
सर्वभूतगणे मोक्षं महाकल्पक्षये गते ।
पुनःकस्य कथं सर्गसंवित्तिरुपजायते ॥३
आकाशपरमाणुसत्रांशमात्रेपि या ।
शुद्धचिन्मात्रसत्ता विद्यते ॥४
वपुर्जगविदं तस्या ननु नाम महाचितेः ।
कथं नश्यत्यनष्टायां तस्यां सा च न नश्यति ॥५

सविदो हृदयं स्वप्ने यथा भाति जगत्तया।
व्योमात्मैव तथैवादिसर्गात्प्रभृति भासते ॥६
चिद्व्योमावयवः सर्गः सर्गस्यैतादृशाः क्षयाः।
उदयाश्चेति ख सर्वं किंनाशि किमनाशि च ॥७

वशिष्ठजी बोले—हे राम ! जल में जो तरङ्ग उठती है, वे जल-रूप ही है, उसीके समान यह सभी जीव चिदाकाश से ही स्फुरित होते हैं। वही जीव सहस्रों संकल्प-विकल्पों से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए जीव रूप होकर 'मन' कहे जाते हैं।१। वे ही विशदाकाश रूपी मन हैं, जो स्वयं सब ओर अनन्त जगत्-स्वरूपको प्राप्त होगए हैं।२। श्रीराम ने कहा—हे ब्रह्मन् जब महाकल्प का नाश होनेपर यह सभी जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं फिर किसे, किस प्रकार से सर्गज्ञान की उत्पत्ति होती है ?।३। वसिष्ठ बोले हे राम ! आकाश के बड़े-बड़े और परमाणु के छोटेसे छोटे जितने भी यह असंख्य पदार्थ हैं,उन सभीमें विशुद्ध चिन्मात्र की सत्ता है।४। यह सम्पूर्ण जगत् उसी महाचिति का देह है, जब महा-चिति का नाश नहीं होता तो वह जगत् ही कैसे नष्ट हो सकता है ? स्वप्न में जगद्रूप से ज्ञान का ही हृदय प्रतीत होने के समान ही यह सर्ग प्रभृति जो कुछ भी भासमान है, आत्मा का हृदय ही है। यह सभी चिदाकाश रूप समझो।६। यह सर्ग चिदाकाश का ही संकल्पित अङ्ग और अङ्गभूत इस सर्ग का उदय और अस्त भी ऐसे ही कल्पित अङ्ग हैं। इसलिए यह सभी कुछ चिदाकाश है, तब कौन नाशवान और कौन नाश-रहित होगा।७।

इतो भाव्य इतो भाव इतः सर्ग इतः क्षयः।
स्वभाव एवानुभव इति ब्रह्माऽचल स्थितम् ॥८
एवंमयेऽविपरमे ब्रह्माकाशे न रञ्जनाः।
काश्चिदेवाङ्ग सन्तीन्दुविम्दे विमलता यथा ॥९
निर्भखे परमाकाशे क्व भावाभावरञ्जनाः।
क्वादिनध्यान्तकलनाः क्व लोकान्तरंविभ्रमाः ॥१०

अपरिज्ञाननेवैक तत्र दोषवदुत्थितम् ।
केवल नत्परावृत्य प्रेक्षणात्परिशाम्यति १२
अज्ञान ज्ञप्तिबोधेन परामृष्टं प्रणश्यति ।
येनवाभ्युदितस्तेन पववेनेच दीपकः
अज्ञान संपरिज्ञातं नत्सोदेवेति बुध्यते ।
अबन्धमोक्षं ब्रह्मैव सवमित्यवगम्यते ॥१३
एवं बोधादयो राम मोक्ष उक्ता स्वसंविदा ।
विचारयत्नो लभते नात्र कश्चन संशयः ॥१४
इदं जगज्जालमनाद्यजातं
ब्रह्मार्थमाभातमितौह दृष्ट्वा ।
विचारदृष्टथाऽष्टगुणेश्वरत्वं
सस्यस्तृणं स्वात्मनि जीव आस्ते ॥१५

हे राघव ! यह जितने भी होने वाले अथवा हो चुके पदार्थहैं तथा वर्तमान में जो पदार्थ हैं अथवा जितने भी सर्ग या प्रलय हैं, उन सभी की सिद्धि अनुभव से है और अनुभव स्व सत्तात्मक है, इसलिए यह सब ब्रह्म ही अचलरूप से विद्यमान है ।८। इस प्रकार सृष्टि के ब्रह्मात्मक होने पर सभी परम ब्रह्माकाश में सृष्टि या प्रलय आदि उसी प्रकार नहीं है, जिस प्रकार चन्द्रबिम्ब में कलंक नहीं होता ।६। निर्मल परम आकाश में सृष्टि के भाव या अभाव, मध्य, अन्त आदि कल्पना और लोकान्तर की भ्रान्ति कहाँ से आई ! ।१०। आत्म-ज्ञान का अभाव ही उसमें दोष रूप सा अवस्थित है, अतः केवल तत्व बुद्धि से देखे तो उसका शमन हो जाता है ।११। जिस ज्ञान रूप आत्मा से अज्ञान की सिद्धि हुई, उसी से वह वैसेही नाशको प्राप्त हो जाता है जैसे वायु से अभ्युदय को प्राप्त हुआ अग्नि रूप दीपक, वायु से ही नष्ट हो जाता है ।१२। अज्ञान का भले प्रकार ज्ञान होने पर उससे नष्ट होता है और बन्ध-मोक्ष से शून्य ब्रह्म के ही सब कुछ होने का निश्चय हो जाता है ।१३। यह बोध आदि रूपी उपाय मोक्ष के लिए ही मैंने कहे हैं । आत्म

चिंतन में जो पुरुष सतत् प्रयत्नशील रहता है, वह अधिकारी पुरुष अवश्य ही इन उपायों को प्राप्त करता है ।१४। यह अनादि जगज्जाल अनुत्पन्न ही है । किन्तु यह जो जीवादि स्वरूप जगत् प्रतीत होता है, वह मोक्ष की कामना वाला (आत्मज्ञान-रहित) ब्रह्म ही है । विचार दृष्टि से देखे तो आठ सिद्धियों से सम्पन्न ईश्वर भी माया रूप होने से सार-हीन ही है । इस प्रकार उस ईश्वरत्वको भी तृण के समान समझने वाला अधिकारी पुरुष आत्मा में ही निरतिशय आनन्दरूपता अनुभव करता हुआ अपने आत्मा में ही पूर्ण सन्तुष्ट रहता है ।१५।

७६—आकाश रूपी स्त्री से वार्तालाप

यदेतद्भवता दृष्टं चिद्व्योमवपुषा तदा।
तदेकदेशसंस्थेन किमुत भ्रमताऽम्बरे ॥१
सम्पन्नोऽहमनन्तात्मा व्यापी व्योम तदा किल।
स्यातां तस्यामवस्थायां कीदृशौ तो गमागमो ॥२
नैकस्थानस्थितमयो नाहं गतिमयोऽभवम्।
तदनेन स्व एवास्मिन् दृष्टमेतन्मयात्मनि ॥३
यथाऽङ्गानि शरीरत्वे पश्याम्यापादमस्तकम्।
चिन्नेत्रेणाप्यनेत्रेण तथैतदृष्टवानहम् ॥४
अनाकृतेर्निरवयवस्थितेस्तदा
तथाऽभवद्विमलचिदम्बरात्मनः।
जगन्ति तान्यवयवजालकानि मे
यथा स्वतो न विगलिता न वस्तुता ॥५
प्रमाणमत्र ते स्वप्नदृष्टो भुवनविभ्रमः।
स्वप्नेऽनुभूयते दृश्यं न च किञ्चित्खमेव तत् ॥६
यथा पश्यति वृक्षः स्वं पत्रपुष्पफलादिकम्।
स्वसंवेदननेत्रेण तथैतद्दृष्टवानहम् ॥७

श्रीराम—बोले हे भगवान् आपने उस समय, पक्षियों के समान उड़ते हुए जिन लोकों को देखा, वह एक देश में अवस्थित होकर देखा या चिदाकाश रूपी देह से ? ।१। वसिष्ठजी ने कहा—राम ! जब सर्वव्यापी अनन्तात्मा चिदाकाश रूपी हो गया तब उस अवस्थामें गमन और आगमन कैसे सम्भव होता ? ।२। उस समय मैं तो एक स्थान पर स्थित था और न गतिमय ही था, अपने इसी अपरिच्छ रूप से आत्मा रूपी चिद्व्योम में अवस्थित होकर मैंने इन सब लोकों का अवलोकन किया ।३। जिस प्रकार देह में आत्मभाव होने के कारण पाँव से शिर पर्यन्त सभी अङ्गों का अवलोकन करता हूँ, उसी प्रकार इस चर्म-नेत्र से रहित हुए मैंने चिद्रूपी नेत्रसे लोकों का दर्शन किया।४। उस समाधि में अनाकृति और अवयव-रहित रूपसे चिदाकाश रूप हुए वे लोकमेरी सत्ता से ही अस्तित्व पाकर अवयवों के रूपमें परिणित होगये थे, जिस से मेरी सत्ता से ही अस्तित्व पाकर अवयवों के रूप में परिणित होगये थे, जिससे मेरी वस्तुस्वभावता गलित न हो सकी और सत्ता-रहित होने से उनमें वस्तुता का भी अभाव था ।५। इस सम्बन्ध में प्रमाणरूप तो स्वप्न में देखे गये लोकों की भ्रान्ति ही है, क्योंकि स्वप्न से अनुभूत दृश्य चिदाकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ।६। जिस प्रकार वृक्ष रूपी, जीव पत्र पुष्प, फल आदि से सम्पन्न अपने को ही देखता हैं, वैसे ही मैंने इस सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान-चक्षुओं से देखा ।७।

अद्यापि तानहं देहे व्योम्नि शैले जले स्थले ।
तथैव सर्गान्पश्यामि राम बोधैततां गतः ॥८
ब्रह्मन्ननुभवस्येवं त्वयि तामरसेक्षण ।
सा किं कृतवती ब्रूहि कान्ताऽऽर्यापाठपाठिनी ॥९
तामेवार्या पठन्ती सा तथैवानुनयाऽन्यिता ।
मत्समीपे नभोदेहा व्योम्निं देवीव संस्थिता ॥१०
यथाऽहमाकाशवतुस्तथै वासौ खरूपिणी ।
तेन दृष्टा न सा पूर्वदेहेन ललना मया ॥११

अहमाकायमात्रात्मा सा खमात्रशरीरिणी ।
जगज्जालंखमात्रं तदिति तत्र तदा स्थितम् ॥१२
शरीरस्थानकरणप्रयत्नप्राणसम्भवै ।
यदुदेति बची वर्णैस्तत्कुतस्तादृशाकृतेः ॥१३
रूपालोकमनस्काराः शब्दापाठवचांसि च ।
यथा स्वप्ने नभन्येव सन्ति तत्र तथाऽम्बरे ॥१४

लोभ रूपी आत्मासे एकत्व को प्राप्त हुआ मैं अबभी उन विभिन्न रूपों वाली सृष्टियों को शरीर, आकाश, पर्वत और सर्वत्र देख रहा हूं ।८। श्रीराम ने पूछा हे ब्रह्मन् ! जब आपको इस प्रकार का अनुभव हो रहा था तब उस आर्याछन्द पाठ करने वाली स्त्री ने क्या किया यह बताइए ।६। वशिष्ठजी वोले—हे राम ! आर्याछन्द पढ़ती हुई वह नारी अनुनय से झुकती हुई, चिदाकाश रूपी देह से मेरे पास देवी के समान अवस्थित हो गई ।१०। जिस प्रकार मेरा देह आकाशमय वैसेही देह वह धारण किए हुए थी इसलिए समाधिकाल से पूर्व के अपने शरीर से मैं उसको देख नहीं पाया ।११। फिर तो जैसा मैं आकाश रूप था, वैसा ही वह थी, तथा आकाशमय वह सम्पूर्ण जगज्जाल भी उस समय चित्व्योम में स्थित हो रहा था ।१२। श्रीराम बोले—देह में तो जीभ, तालु ओष्ठ आदि होते हैं, उनके तथा प्राणों के प्रयत्न से वर्ण-वाक्यों की उत्पत्ति होतीहै, उसकी उत्पत्ति उस आकाशदेह वाली नारी से कैसे सम्भव हुई ! ।१३। वसिष्ठजी ने बताया—जिस शंका स्वप्न में बाह्याभ्यन्तर ज्ञान, शब्द-पाठ और बचन आकाश में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार वे सब पदार्थ चिदाकाश में अवस्थित हैं ।१४।

रूपालोकमनस्कारैः स्वप्ने चिन्नभ एवं ते ।
यथोदेति तथा तत्र तद्द्रश्यं खात्मकं स्थितम् ॥१५
शरीरस्थानकरणसत्तायां सा तव प्रभा ।
यथैव तेषां देहादि तथाऽस्माकमिदं स्थितम् ॥१६

स्वप्न शब्देन बोधार्थं तव व्यवहराम्यहम् ।
दृश्य त्विदं न सन्नासन्न स्वप्नो ब्रह्म केवलम् ॥१७
अथ राघव सा कान्ता मया कान्तानुषङ्गिणी ।
सविदं तन्मयीं कृत्वा पृष्टेदं दृश्यरूपिणी ॥१८
व्यवहारो यथोदेति स्वप्ने स्वप्नजनैः सह ।
तथा तदा तथा सार्द्धं व्यवहारो ममोदितः ॥१९
यथैव स्वप्नस काशो व्यवहारः खमेव सः ।
तथैव त्वमिमं विद्धि मामात्मानं जगच्च खम् ॥२०
स्वप्नोऽयं जगदाभोगो न किंचिद्वा खमेव च ।
निर्मलं ज्ञप्तितामात्रमित्थं सन्मात्रसंस्थितम ॥२१

जैसे स्वप्नमें चिदाकाश ही बाह्याभ्यन्तर पदार्थों का रूप धारण कर लेता है, वैसे ही मेरे उस समाधिकाल में जो दृश्य-प्रपंच था, वह चिदा काश रूप में ही अवस्थित था ।१५। देह में जीभ, तालु ओष्ठ आदि की सत्ता में आपको क्या संदेह है ? जिस प्रकार उनके शरीर हैं उसी प्रकार हमारा भी है ।१६। मैंने आपको समझाने के निमित्त स्वप्न शब्द का व्यवहार किया है, यथार्थमें तो यह दिखाई पड़ने वाला प्रपंच और स्वप्न दोनों ही न सत् है न अचेत है, केवल ब्रह्मही है ।१७ हे राघव ! फिर कान्त की इच्छा वाली उस दृश्यरूपिणी नारी से उस के अभिप्रायको जानने वाली सेवितका संकल्प करके मैंने प्रश्न किया ।१८। स्वप्नकाल दिखाई पड़ने वाले स्वप्न शरीरों के साथ जिस प्रकार के व्यवहार की प्रवृत्ति होती है वैसा ही व्यवहार मैंने भी उस स्त्री के साथ किया।१९। स्वप्न के व्यवहार के समान वह व्यवहार जैसे आकाश रूप था, वैसे ही इस आत्मा, में और जगत् को भी चिदाकाश रूप ही समझो ।२०। इस जगत् का आभोग स्वप्न ही है, अथवा कुछ भी नहीं है वह तो चिदाकाश मात्र ही हैं । क्योंकि यह सब दृश्य प्रपंच स्वच्छ, सत् और ज्ञप्तिमात्र ब्रह्म ही अवस्थित है ।२१।

स्वप्नस्य विद्यते द्रृष्टं साकारो युष्मदादिकः ।
द्रष्टा तु सर्गस्वप्नस्य चिद्वयोमैवामल स्वतः ॥२२
यथा द्रष्टात्मल व्योम दृश्यं तद्वद्‌गतं तथा ।
स्वरूपजगत्युच्चैर्जगत्वेनामलं नभः ॥२३
चिद्वयोम्नोऽनाकृतेः स्वप्नो हृदि स्फुरति यः स्वतः ।
सगस्तस्य कुलस्तेन साकृतित्वं कथं भवेत् ॥ २४
साकारस्यैव यत्स्वप्नजगत्तद्योम निर्मलम् ।
निराकारः चिद्‌व्यम्नः सर्गः स्वप्नः कथं न खम् ॥२५
निरुपादानसम्भारमभित्तावेव चिन्नभः ।
पश्यत्यकृतमेवेम जगत्स्वन्नं कृतं यथा ॥२६
मृद्वया चिदाकाशमृदा ब्रह्मणा ब्राह्मणेन खे ।
कृतोऽपि न कृतः सर्ग मण्डपोऽक्षगवाक्षकः ॥२७
नो कर्तृता न च जगन्ति न भोक्तृताऽस्ति ।
नास्तीति नास्तिन च किञ्चिदतो बुधः सन् ।
पाषाणमौनमवम्ब्य यथाप्रवाह-
माचारमाचर शरीरमिहास्तु मा वा ॥२८

हे राम ! वासना के आकार में ही स्वप्न द्रष्टा का आकार है, किन्तु सर्गरूपी स्यप्न का द्रष्टा तो स्वयं चिदाकाश है ही ।२२। द्रष्टा और दृश्य दोनों के स्वच्छ चिदाकाश होने के समान ही द्रष्टा और दृश्य के मध्यगत जो दर्शन है, वह भी चिदाकाश रूप है। स्वप्नरूपी इस विशाल जगत् में निर्मल चिदाकाश ही जगत् रूपसे स्थित है ।२३। उस आकार हीन चिदाकाश का जो जगत् रूप स्वप्न हृदय में स्फुरित होता है, वह स्वप्न का साकार होगा ? अथवा बन्ध्या-पुत्र के समान वह चिदाकाश सर्ग रूप से कैसे साकार होगा ? ? ।२४। साकार का जो स्वप्नलोक है यदि वही निर्मल चिदाकाश रूपहै तो निराकार ब्रह्मरूपी जगत् स्वच्छ चिदाकाश रूपी क्यों नहीं होगा ।२५। उपादान आदि

साधनों के बिना जो अभित्ति है (दीवार नहीं है) उसमें ही इस जगत रूपी स्वप्न को बिना बनाये ही बना हुआ देखता है।२६। मृदु चिदाकाशरूपी स्वप्न को विना बनाये ही बना हुआ देखता है।२६। मृदु चिदाकाशरूपी मृत्तिका से, हिरण्यगर्भ रूपी ब्राह्मण ने, इन्द्रिय रूपी झरोखों वाले शरीर आदि सर्ग मण्डल को बनाया है, फिर भी उसका वह बनाना नहीं के समान ही है।२७। न कर्तृता है, न जगत् है, न भाव है, और न अभाव ही हैं, इसीलिए सब दृश्यों के परिमार्जन से परिमार्थ ही उनका साक्षीहै। अतः आप पाषाण के समान मौनावलम्बी होकर जैसा प्रवाह है वैसा ही आचरण करते रहिए। प्रारब्ध कर्म के शेष रहने तक शरीर का रहना या न रहना कुछ विशेषता नहीं रखता।२८।

७७-चिदघन ब्रह्म ही सब कुछ है

तव स्त्रीयाऽस्वरूपेण देहेनाभुत्तया कथम्।
कथनुच्चारिलास्तव वर्णा: कचटतादयः ॥१
बर्णेषु खशरीराणां वर्णा: कचटतादयः।
कवाचनाषि नोद्यन्ति शतानामिव केचन ॥२
वर्णोच्चारो भविष्यच्चेत्प्रकटार्थस्ततः क्वचित्।
स्वप्नेष्वन्बभविष्यत्तं विनिद्रः पार्श्वगो जनः ॥३
तस्मान्न किञ्चित्स्वप्नेष तत्सत्ब भ्रान्तिरेव सा।
चिन्मात्राकाकचम तत्तया खे स्मभावजम् ॥४
तवेन्दुकार्ण्यखतनुशिलागेयादितागताः।
इवाभान्ति चिदाकाशास्तथदेहरवादयः ॥५
तच्चिदाकशकचनं यन्नाम स्वप्नवेदने।
आकाशमेव नभशः कचनं विद्धि नेतरत् ॥६
यथा स्वप्नस्तस्तथैवेदं जाग्रदगृ व्यवस्थितम्।
आकाशमष्यनाकाशं यथैवेदं यथैव तत् ॥७

श्रीराम बोले-हे ब्रह्मन् ! आपका उसी स्त्रीके साथ मुखादि स्वरूप के बिना, केवल वासनारूपी देहसे ही बोलना किस प्रकार हो सका ! उस समय जीभ के बिना क च ट त आदि वर्णोंका उच्चारण कैसे कर सके। ।१। वसिष्ठजी बोले-हे राम ! चिदाकाशरूप शरीरों में क से ट त आदि वर्णका उच्चारण उसी प्रकार नहीं होता, जिस प्रकार मृतकों के मुखसे कोई वर्ण उच्चारित नहीं होता, क्योंकि वे सब कल्पनारूप ही हैं ।२। स्वप्न में वर्णो का उच्चारण यदि यथार्थ होता तो निकटस्थ जागे हुए व्यक्तिको भी उनका अनुभव होता ही।३। अतः स्वप्नमें उसकी किंचित् भी सत्यता नहीं है। वह केवल भ्रम ही । निद्रास्वभाव के बलसे कल्पित चिदाकाश का वह स्फुरण चिदाकाश में ही होता है ।४। शिस प्रकार नेत्र-रोगसे दिखाई पड़ने वाला चन्द्रमामें कृष्णवर्ण, आकाशमें साकारता पाषाण प्रतिमा आदि में गेयता आदि का आभास चिदाकाश रूप ही हैं उसी प्रकार स्वप्नमय देह और शब्दादि भी उस-उस जाने हुए पदार्थ के संस्कारों से उपहित चिद्व्योम रूप होकर ही अनुभव में आते है ।५। जैसे आकाश की साकारता का आभास आकाश से अभिन्न है वैसे ही स्वप्न ज्ञान में चिदाकाश का जगदाकार स्फुरण चिदाकाश से अभिन्न ही है । उसे आप चिदाकाश रूप ही जानो ।६। जैसे स्वप्न जगत् चिदाकाश रूप है, वैसे ही यह जाग्रत-दृश्यप्रपंच चिदाकाश रूप है। और जैसे यह चिदाकाश होकर भी चिदाकाश नहीं है, वैसे ही मेरा समाधि कालीन वह संसार है ।७।

यथा कचति तचारु चेतनं चतुर तथा।
यथास्थित तदेवेदं सत्यं स्थिरमिव स्फुरत् ।।८
भगवन्स्वप्न एवेदं कथं जाग्रदवस्थितम् ।
असत्यमेव सत्यत्वमिवयातं कथं भवेत् ।।९
शृणु स्वप्नमयान्येव कथं सन्ति जगन्त्यलम् ।
नान्यानि न च सत्यानि न स्थिराणि स्थितानि च ।।१०
प्रत्येकमन्तरन्यानि तथैवाभ्युदितानि च ।
परस्परमदृष्टानि बहूनि विविधानि च ।।११

अन्योन्यं तानि सर्वाणि न पश्यन्त्येव किञ्चन।
जडानीवैकराशीनिबीजानीव गलन्त्यपि ॥१२
व्योमात्मत्वान्न गगनं न विदन्ति परस्परम् ।
अपि चेतनरूपाणि सुप्तानीव निरन्तरम् ॥१३
सुप्ताः स्वप्तजगज्जालमहनि व्यवहारिणः।
असुरां निहता देवैस्तै स्वप्नजगति स्थिताः ॥१४
अज्ञानान्न गता मुक्ति न जाड्याज्जडतामिता ।
न देहवन्तः किं सन्तु विना स्वप्नजगत्स्थिते ॥१५

जिस प्रकार से यह सौन्दर्यमय जगत स्फुरित है उस प्रकार उस चतुर ब्रह्म को ही स्फुरित हुआ समझो। यह सत्य-सा और स्थिर-सा स्फुरित हो रहा है वैसे तो वह चतुर ब्रह्म ही स्थित है। श्रीराम ने पूछा-हे भगवान् ! स्वप्न रूप यह संसार जाग्रत रूप में कैसे स्थित है। यह असत्य होते हुए भी सत्य-सा कैसे सम्भव हुआ है ! ।६। वसिष्ठजी बोले-यह संसार स्वप्न रूप कैसे है, उसे सुनो। यह स्वप्न जगत् न तो आत्मासे भिन्न है और न आत्म-सदृश्य सत्य एवं स्थिर ही है। यह सब आत्मासत्ता से ही विद्यमान है ।१०। प्रत्येक लोकके भीतर परस्पर एक दूसरे द्वारा न देखे जाते हुए विभिन्न रूप वाले यह लोक केले की छाल के समान ही अभ्युदय को प्राप्त हुए हैं ।११। यह परस्पर एक दूसरे को न देखते हुए सभी जगत् कोठों में रखे हुए बीजों के समान भीतर ही भीतर गल जाते हैं ।१२। गलने पर भी चेतनरूप रहते हैं, तप्त खर्पर में गिरी हुई जल की बूँद के समान शून्यरूप होकर भी शून्य नहीं होते। वे परस्पर न देखते हुए और अज्ञानसे ढकेहुए होने के कारण सोते हुए से रहते हैं ।१३। ये सुप्त प्राणी स्वप्नमय जगज्जाल को पाकर ही अपना व्यवहार करते हैं। स्वप्नलोक में स्थित हुए वे सुरों या असुरों के द्वारा मारे जाकर न तो मुक्त होते हैं न जड़भाव को ही प्राप्त होते हैं और न शरीर में ही रहते हैं। इस अवस्था में वे स्वप्न जगत् में स्वित होने के अतिरिक्त क्या हो सकते हैं ?

रुप्ता स्वप्नजगज्जाले स्वाचारव्यवहारिण: ।
पुरुषा निहता: पुंभिस्ते तथैव व्यवस्थिता: ॥१६
निर्मोक्षा नि:शरीरास्ते चेनतावासनान्विता: ।
दृष्टं स्वप्नजगज्जालं विना च क्व वसन्तु ते ॥१७
सुप्ता: स्वप्नजगज्जालव्यवस्थाचारिण: ।
ते हता राक्षसा देवैस्ते यथैवव्यवस्थिता: ॥१८
एवं ये निहता राम कि ते कुर्वन्ति कथ्यताम् ।
अज्ञत्वान्न गता मुक्ति चेतनान्न दृषस्थिता: ॥१९
ते स्वप्नपुरुषास्तेषां सत्या एवानुभूतित: ।
आत्मनोऽदि परस्यापि सर्वगत्वाच्चिदात्मन: ॥२०
यथा ते स्वप्नपुरुषा: सत्यमात्मन्यथाऽपरे ।
तणापि स्वप्नपुरुषा: सत्यमेव तथैव ते ॥२१

इसी प्रकार का व्यवहार जगज्जाल में बासनाओं के कारण मनुष्य भी करते हैं। स्वप्न में स्थितमें मनुष्य अन्य मनुष्यों द्वारा वधको प्राप्त होकर स्वप्न में ही अवस्थित रहते हैं ।१६। वे भी ज्ञान-शून्य, मोक्ष-रहित और देह-रहित रहने से चेतनायुक्त और वासना से व्यवहार युक्त नहीं होते। इसलिए ऐसे मनुष्य दिखाई पड़ते हुए स्वप्न लोक के अतिरिक्त कहाँ स्थित रहें! ।१७। सुप्त एवं लोक-प्रपंच के अनुसार आचार-ध्यवहार करते हुए जो राक्षस स्वप्नमें देवताओं द्वारा निहतहुए असुरों के समान उसी स्वप्न में रहते हैं ।१८। हे राम ! इस प्रकार स्वप्न में जो निहत हुए, वे बताओ क्या करते होंगे ! अज्ञानवश तो उन्हें मुक्ति ही मिल सकी और न चेतन होने के कारण पाषाण के समान ही स्थित रह सके ।१९। उनके स्वप्न में ये पुरुष अपने और अन्य पुरुषके अनुभव से समान होने के कारण सत्य ही हैं, क्योंकि उनकी सत्ता के हेतुभूत चिदात्मा सर्वगामी के कारण समान ही हैं ।२०। आत्मा में उन स्वप्न पुरुषों के सत्य होने के समान ही अन्य पुरुष भी जो स्वप्न में व्यवहृत होते हैं, सत्य ही हैं ।२१।

समूह में जा पहुँचा ।३। कुछ समय पश्चात मैं उस आकाश में देवतादि के विवरण को भी लाँघता हुआ धवल मेघ के समान अत्यन्त स्वच्छ लोकालोक पर्वत से शिखराकाश पर उनके साथ जा पहुँचा ।४।चन्द्रमा के समान अत्यन्त श्वेत, आकाश पीठ से नीचे उत्तर दिशा के पूर्व भाग में स्थित उस शिलाके पास वह मुझे ले गई। अत्यन्त उन्नत वह शिला तप्त स्वर्ण जैसे वर्ण की थी ।५। सुमेरु तटीके समान अत्यन्त ऊँची उस स्वर्णिम शिला का मैंने सब ओर से भले प्रकार अवलोकन किया,परन्तु उसमें मुझे जगत् कहीं भी दिखाई न पड़ा ।६। हे राम ! तब मैंने उस कान्ता से पूछा कि तुमने जिस सृष्टि का वर्णन किया था वह कहाँ हैं ? रुद्र सूर्य अग्नि तारागण और दूसरे-२ सात लोक कहाँ हैं ? ।७।

क्वाऽर्णवाकाशककुभ: क्वोन्मज्जननिमज्जने ।
क्वमहाम्भोदसम्भार: क्व ताराम्बराडबरम् ।।८
क्व शैलशिखरश्रेण्य: क्य महार्णवलेखिका: ।
क्व द्वीपवलया सप्त क्व तप्तकवकायनि: ।।९
क्व कार्य कालकलना क्व भूतभुवनभ्रम: ।
क्व विद्याधरगन्धर्वा क्व नरामरदानवा: ।।१०
पश्याम्यखिलमात्मीयमह सर्वमिहोपले ।
सुकूरप्रतिबिम्बस्थपुरान्यपुखज्जनम् ।।११
नित्यानुभव एवात्र दर्शने कारण मम ।
तदभावो मुने मन्ये ते कारणमदर्शने ।।१२
अन्यच्च चिरकालकद्वैतसंकथयाऽनया ।
शुद्धाऽऽतिवाहिकैकात्मदेहता विस्मृताऽऽपयो: ।।१३
ममातिसुचिराभ्यस्तमापि व्योमलतामित ।
गतं निज जगदिदंयत: पश्यामि न स्फुटम् ।।१४

हे ललने! यहाँ समुद्र, आकाश, दिशाएँ कहाँहै ! प्राणियों के जन्म मरण यहाँ कहाँ हो रहा है ! बड़े-बड़े मेघमण्डल और तारागणसे समन्वित उज्जवल आकाशका आडम्बर कहाँ-कहाँ है ! ।८। पर्वत शिखरों

की श्रेणियाँ लवणों के महासागरों के समूह, सप्तद्वीप रूपी कंकण और तप्त सुवर्णके समान चमकती हुई पृथिवी यहाँ कहाँहै ।६। काल, क्रिया, कल्पना भूतलोक का विभ्रम, विद्याधर, गन्धर्व मनुष्य, देवता और दानव यह सब यहाँ कहाँ है ? ।१०। विद्याधरी बोली—हे मुने ! इस पाषाण-शिला में,जो कुछ पहिले था, वह अब मुझे दिखाई नहीं दे रहा है । परन्तु, मैंनें जिस सर्ग का आप से वर्णन किया है, उस सबको मैं प्रतिबिम्ब रूप से स्थित प्रसिद्ध नगर से जो अन्य नगर हैं उसके समान ही मैं प्रतिबिम्ब रूप से देख रही हूँ ।११। वह जो मुझे दिखाई दे रहा है, उसकी कारण नित्य का अनुभव ही है, आपको उस नित्य अनुभव के न होने से ही जगत् दिखाई नहीं दे रहेहैं ।१२। एक अन्य कारण यह भी है कि चिरकाल तक चलती हुई अपनी इस द्वैत-कथा के कारण शुद्ध, सूक्ष्म मनोमात्र शरीर को हम भूल गये हैं, इसीलिए हम इसे अस्फुट रूप से देखते हैं, पर आप नहीं देख पाते ।१३। यहाँ जो मेरा जगत् था, वह अब नष्ट प्रायः हो चुका है, यद्यपि चिरकाल तक मुझे उसका अभ्यास रहा है, फिर भी आकाशलता के समान मुझे अब स्फुट रूप से दिखाई नहीं देता है ।१४।

अभूद्यत्स्वजगत्पूर्वमतिप्रकटमेव मे ।
तत्पश्यामीदमादर्श इव विम्बिमस्फुटम् ॥१५
चिरव्यर्थोत्थया नाथसंकथाव्यथया मिथः ।
स्वास्थ्यं विस्मृतमात्मीयमवदाततमं ततम् ॥१६
न सच्छास्त्रेण सा विद्धि न सन्नयान्ये सा कला ।
अस्ति नास्यमितोद्योगाद्यदभ्यासान्न सिद्धयति ॥१७
स्वजगत्सन्तोताभ्यासवशतो माँ कथाभ्रमः ।
नूनमाक्रान्तवानेष योहि बलवान् जयी ॥१८
इष्टवस्त्वर्थिनां तज्ज्ञसूपदिष्टन कर्मणा ।
पौनः पुन्येन करणान्नेतरच्छरणं मुने ॥१९

अयमित्यमिहाज्ञानभ्रम प्रोढोऽहमात्मक: ।
शाम्यति ज्ञानचर्चाभि: पश्याऽम्यासविजृम्भितम् ॥२०
अहं शिलावला वाला पश्यामि त्वं न पश्यसि ।
सर्वज्ञोऽपि शिलासर्ग पश्याभ्यासविजृम्भितम् ॥२१

जो जगद्पहिले मेरे लिए अत्यन्त प्रकट था, उस जगत को अब मैं दर्पण में प्रतिविम्ब समान अस्पष्ट रूप में हो देख रही हूँ।१५। हे मुनि-नाथ! हमारा परस्पर दीर्घकाल तक जो निरर्थक संभाषण चलता रहा था, उससे जो व्यथा उत्पन्न हुई, उसके कारण अपनी व्यापक न्याय से सिद्धि नहीं हो सकती, उसकी सिद्धि तो उद्योग युक्त अभ्यास से ही सम्भव है। आप जान लीजिए कि अभ्यास से उसकी सिद्धि न होती हो, एसी बात नहीं है।१७। आपके साथ हुए कथा भ्रम रूपी संवाद ने अपने जगत् के निरन्तर अभ्यास के कारण मुझे भ्रमग्रस्त को वश में कर लिया, इसलिए वह संस्कार नष्ट हो गया। क्योंकि भूतकालीन भ्रम मे वर्तमान कालीन भ्रम के अधिक बलवान् होने से वर्तमानकालीन भ्रम जीत गया।१८। हे मुने! अपनी-अपनी इच्छित वस्तुकी अभिलाषा वालोंके लिए वारम्वार जो श्रेष्ठ उपदेश किवा जाता है उसी से उन्हें अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, इसके अतिरिक्त उनका अन्य आश्रय नहीं हो सकता।१९। इस प्रकार का जो अहं रूपी महा अज्ञान रूप का भ्रम है, वह ज्ञान चर्चा के अभ्यास से ही शान्त होता है, अभ्यास की इस महिमा को देखिए।२२। मैं एक शिला की अवला और वाला भी हूँ। फिर भी शिलामें जो सृष्टि है उसे देखती हूँ, परन्तु आश्चर्य है कि आप सर्वज्ञ होकर भी इसे नहीं देख पाते, इस अभ्यास के फल को तो आप देखिए।२१।

अज्ञोऽपि तज्ज्ञतामेति शनै शैलोऽपि चूर्ण्यते ।
वाणोऽप्येति महालक्ष्यं पश्याभ्यासविजृम्भितम् ॥२२

इत्थं नाम परिप्रौढा मिथ्याज्ञानविषूचिका ।
शाम्यत्येव विचारेण पश्याम्यास विजृम्भितम् ।।२३
अभ्यासेन कटु द्रव्यं भतत्यभिमतं मुने ।
अन्यस्मै रोचते निम्बस्त्वन्यस्मै मधु रोचते ।।२४
आतिवाहिकदेहोऽयं शुद्धचिद्व्योम केवलम् ।
आधिभौतिकतामेति भावनाभ्यासयोगतः ।।२५
आधिभौतिकदेहोऽसौ धारणाभ्यासभावनात् ।
विहङ्गवत् खमभ्येति पश्याऽभ्यासविजृम्भितम् ।।२६
येनाऽभ्यास परित्यक्त इष्टे वस्तूनि सोऽधमः ।
कदाचिन्न तदाऽप्नोति बन्ध्या स्वतनयं यथा ।।२७
यथा कल्पद्रुमलताः सच्चिन्तामणयो यथा ।
फलन्ति शरदश्चैतास्तथैवाऽभ्यासभूमयः ।।२८

अभ्यास के द्वारा अज्ञानी भी शनैः शनैः ज्ञानी हो जाताहै अभ्यास से पर्वत भी चूर्ण हो जाता है, जड़ बाणभी अपने सूक्ष्म लक्ष्य पर पहुँच जाता है, अभ्यास के इस फल का आप अवलोकन कीजिए ।२२। इस प्रकार अज्ञान रूपी यह महामारी जो सब ओर फैली हुईहैं, वह विचार रूपी अभ्यास से ही शमन होती है, आप अभ्यास के इस फल को तो देखिए ।२३। हे मुने ! कढ़वा पदार्थ भी अभ्यास से अच्छा लगने लगता है, अभ्यास से कोई नीम को पसन्द करता है कोई मधू को ।२४। यह विशुद्धि चिदाकाश रूपी आतिवाहिक शरीर भावना रूपी अभ्याससे ही यह आधिभौतिकता को प्राप्त हो जाता है ।२५। धारण अभ्यास से ही यह आधिभौतिकता को प्राप्त शरीर पक्षियोंके समान आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्तकर लेता है इस अभ्यासके फलको देखिए ।२६। इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये जिसने अभ्यास का परित्याग कर दिया, वह अधम पुरुष बंध्या-पुत्रके समान, इष्ट वस्तु को भी नहीं पा सकता।२७ जिस प्रकार कल्प द्रुम की लता, श्रेष्ठ चिन्तामणि अथवा शरद् ऋतु

उन-उन इच्छित फलों के देने वाली है, वैसे ही यह सुनने आदि की अभ्यास—भूमियाँ भी इच्छित वस्तु प्रदान करने वाली होती हैं ।२८।

सर्वस्य जन्तुजातस्य सर्ववस्त्व वभासने ।
सर्वदेवैक एवोच्चैर्जयत्यभ्यासभास्करः ॥२९
चतुर्दशाविधायास्तु भूमजातेर्न कस्यचित् ।
सिध्यन्त्यभिमतं वस्तु विनाभ्यासमकृत्रिमम् ॥३०
पौनः पुण्येन करणमभ्यास इति कथ्यते ।
पुरुषार्थः स एवेह तेनाऽस्ति न बिना गति ॥३१
दृढाभ्यासाभिधानेन यत्ननाम्ना स्वकर्मणा ।
निजवेदनजेनेव सिद्धिर्भवति नाऽन्यथा ॥३२
अभ्यासभास्वति तपत्यनी वने च ।
वीरस्व सिद्धयति न यन्न तदस्ति किंचिन् ।
अभ्याससतो भुवि भयान्यभयीभवन्ति ।
सर्वासु पर्वतगुहास्वपि निर्जनासु ॥३३

जितने भी उत्पन्न हुए जीव है, उन सभीके लिए सदैव सब वस्तुयें प्रकाशित करने वाली अभ्यास रूपी सर्वोच्च सूर्य है ।२९। चौदह भुवनों में जो चौदह प्रकार के प्राणी है, उनमें किसी भी प्राणी की स्वाभाविक इच्छित वस्तु अभ्यास के बिना कभी भी सिद्ध नहीं हो सकती ।३०। जिस एक क्रिया का बारम्बार करना हीं अभ्यास कहा गया है, जिस पुरुषार्थ का अनेक बार वर्णन हुआ है, वह भी यथार्थ में अभ्यास ही है । इस प्रकार अभ्यास के बिना कोई गति नहीं है ।१२। अभ्यास रूपी जो प्रयत्न है, वही अपना कर्म है, उसी से सिद्धि प्राप्त होती है, अन्य किसी से नहीं होतो । यह अभ्यास रूपी सत्कर्म विवेक द्वारा ही प्रकट होती हैं ।३२। इन्द्रियों को जीतने में समर्थ पुरुष के लिए अभ्यास रूपी सूर्य के तपते रहने तक पृथिवी, जल या आकाश में ऐसी कोई भी इच्छित वस्तु नहीं है जो सिद्धि न हो सके । पृथिवी और निर्जन वन-

कन्दराओं में सर्प, सिंह आदि भय रूपी जितने भी हैं, वे अभ्यास से भय-रहित हो जाते हैं ।३३।

८२-सत्य का आश्रय ही श्रेयस्कर है

ततः प्राचीनाभ्यामं वोधधारणयाऽमले ।
कुर्वः प्रकटतां तेन जगदेष्यति शैलगम् ॥१
युक्तियुक्तं विद्याधर्या धरोरसि ।
वद्धपद्मासनोऽथाहं समाधावुदितोऽभवम् ॥२
सर्वार्थ भावनात्यागे चिन्मात्रैकान्तभावितः ।
अत्यज तमहं पूर्वकथार्य कलनामलम् ॥३
अथ चिद्व्योमतां प्राप्तः परा दृष्टिमहं गतः ।
शरत्समयम्प्राप्तौ व्योम निर्मलतामिच ॥४
ततः सत्यबधानैकघनाभ्यासेन देहके ।
ममाधि भौतिकभ्रान्तिनूनमस्तमुपागता ॥५
उदयास्तमयोन्मुक्ता सततोदमव्यपि ।
महाचिद्व्योन्मुता स्वच्छा प्रोदिते तदाऽभवत् ॥६
अथ पश्याम्यहं यावत्स्वत्यैवामलतेजसा ।
वष्नुतस्तु न चाकाश नोपलः परमेवतत् ॥७

विद्याधरी ने कहा—हे मुने दृढ़ अभ्यास के बिना, देहादि में जो आधिभौतिक भ्रान्ति है, उसका निबृत होना और आतिवाहिक भावका उदय होना संभव नहीं है। और अतः मल-रहित ब्रह्म में बोध रूपी धारण से हमें आतिबाहिक भाव का पुनः अभ्यास करना चाहिए तभी मेरे द्वारा कहे हुए शिला के उदर में जगत् का प्राकट्य हो सकता है ।१। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! उस सर्वत में स्थित विद्याधरी के यह युक्तियुक्त वचन सुनकर मैं पद्मासन बाँधकर समाधि के लिए तत्पर हुआ ।२। उस समाधि में बाह्य पदार्थों की कलपना से रहित एक-

चिन्मात्र रूप होकर मैंने उस पूर्व यथार्थकी कल्पना और उसके विषयों का नितांत त्याग कर दिया।३। फिर चिदाकाश रूपत्व को प्राप्त होते हुए मुझे दिव्य दृष्टि को वैसे ही प्राप्ति होगई, जैसे शरद्कालीन व्योम स्वच्छता की प्राप्ति करता है।४। तब तो सत्यात्मक ब्रह्मके दृढ़ अभ्यास द्वारा, देहके प्रति जो आधिभौतिक भ्रान्ति थी, उसका अस्त होगया।५ ऐसा होने पर उदय और अस्त से उन्मुख सदैव अभ्युदय स्वरूपा अत्यन्त स्वच्छ महानचिदाकाश रूपता का ही प्रकाश फैल गया।२। तब मैं साक्षात् स्वरूप अपने स्वच्छ तेज से देखने लगी तब मुझे न तो वह आकाश ही दिखलाई दिया और न वह शिलः ही सभी कुछ परमार्थ यही दिखाई पड़ने लगा।७।

परमार्थ धन स्वच्छ तत्तथा भाति तादृशम्।
तथा भावनया ह्यात्मा मदीयो दृष्वास्तथा ॥८
यथास्वप्ने सुमहती दृष्टा गेहगता शिला।
व्योमैव केवलं तद्वत्सुशुद्धं चिन्नभ शिला ॥९
स्वयं स्वप्नान्वितोऽन्यस्य स्वप्नपुंस्त्वं गतो नरः।
स्वप्नेऽज्ञानप्रबुद्धस्य यादृक्तादृक्स्वरूपतः ॥१०
स्वप्नस्थानां शिरश्छिन्नं येषां ते संसृतौ स्थिताः।
कालेन ज्ञानलाभेन विना कुर्वन्तु किं किल ॥११
बोधः कालेन भवति महामोहवनामपि।
यस्मान्न किञ्चनत्प्यास्ति ब्रह्मतत्वादृतेऽक्षयम् ॥१२
अतस्तच्चिद्घनं स्वच्छं ब्रह्माकाशं शिलाकृति।
दृष्टं मया तत्र न तु पृथ्व्यादि सत् क्वचित् ॥१३
भूतानामादिसर्गे यच्छुद्धं यत्पारमार्थिकम्।
व पुस्तदेव ह्ये तेषां ध्यानलभ्यमवस्थितम् ॥१४

इस प्रकार सब परमार्थ घत निर्मल ररतत्वकी ही प्रतीत होने लगी वह परतत्व ही मेरी आत्मा है। यही शिला की भावना रहने से उसे शिला ही दिखाई देने लगी थीं।२। जिस प्रकार स्वप्न में अपने गृह में

एक वड़ी शिला दिखाई देना चिदाकाशरूप हैं, वैसे ही शुद्ध चिदाकाश ही वहाँ शिला रूप से आभासित हैं ।६। जैसे 'स्वप्न में जगा हुआ' मानते हुए किसी अन्य पुरुष के स्वप्न में देखे गये पुरुष रूप को प्राप्त स्वप्नमय पुरुषस्वयं को प्रबुद्ध हुआ समझता है, उसी के समान उस व्यवहार को समझो ।१०। जैसे स्वप्न में जिनका सिर छिन्न होगया वे स्वप्नमें स्थित पुरुष ज्ञानके बिना क्या करने में समर्थ हैं, वैसेही संसार में स्थित प्राणी ज्ञान विना क्या कर सकते हैं ।११। महामोह में पड़े पुरुषों का समय आने पर जो बोध होता है, वही जागरण है । क्योंकि स्वप्न अथवा जागरण किसी भी अवस्था में ब्रह्मत्व के अतिरिक्त कोई भी अक्षय पदार्थ नहीं है २। इसी कारण आत्मबोध के पूर्व मुझे जो शिला दिखाई दीथी, निर्मल चिद्धन् ब्रह्माकाश ही मुझे दिखाई दियाथा, पृथिवी आदि का विकार रूप नहीं दिखाई दिया था ।१३। भूतों के आदि सर्ग में बिद्यमान जो शुद्ध परमार्थिक ब्रह्म हैं, वह ज्ञानी जनों के ध्यान से उपलब्ध इन भूतों का देह ही विद्यमान है ।१४।

ब्राह्मं वपुर्हि भूतानामात्मीयं यत्पुरातनम् ।
तदेवाद्य मनोराज्यं सङ्कल्प इति कथ्यते ॥१५
सत्तातिवाहिको देहस्तत्परं परमार्थतः ।
प्रत्यक्षं परमं यत्तत्तदाद्यं कचनं चितः ॥१६
आतिवाहिकदेहत्वं प्रत्यक्षं प्रथमोदितम् ।
सत्यं सर्वगतं विद्धि मायैव त्वाधिभौतिकम् ॥१७
अनुभूतानि नास्त्ये हेम्नः कटकता यथा ।
तथाऽऽतिवाहिकस्याऽऽधिभौतिकत्वं न विद्यते ॥१८
भ्रममभ्रमतां यातमभ्रमं भ्रमतां गतम् ।
वेत्ति जीवो विचारेण विनाऽहो नु विमूढ़ता ॥१९
यदसत्तत्कृतं सत्यं यत्सत्यं तदसत्कृतम् ।
अहो नु मोहमात्म्यं जीवस्याऽस्याऽविचारजम् ॥२०

योगिप्रत्वक्षमेवास्ति किञ्चिदस्ति तु मानसम् ।
यस्माल्लोकद्वयाचारस्ताभ्यामेव प्रसिध्यति ॥२१

ब्रह्म का आरोप और पुरातन रूप ही भूतोंका परमार्थिक रूप है। वही मनोराज्य या संकल्प रूप, अज्ञानियों का जगत् है ।१५। माया-शवल सत् ब्रह्ममें चिति की जो जगत्-संस्कार वाली अंश-सत्ता है,वही आतिवाहिक देह है तथा नित्य, अप्रत्यक्ष चिदश ही उसका स्वरूप में प्रकट होना है ।१६। आतिवाहिक देह ही प्रत्यक्ष एवं प्रथम उदित होता है, उसीको सत्य और सर्वगत समझो । यह आधिभौतिक देह तो केवल माया ही है ।१७। जिस प्रकार अनुभव से स्वर्ण में किंचित् भी कटकता नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार सूक्ष्म देह में आधि भौतिकता का अभाव है ।१८। अविचारी होने से ही यह प्राणी भ्रम में भ्रम-रहितता और भ्रम-रहितता में भ्रमरूपता को प्राप्त समझता है, अहो ! यह मूढ़ता कैसी ! ।१९। अहो इस प्राणी के अविचार अन्य मोह की प्रबलता तो देखो जिसने असत् को सत्य और सत्य को असत् बना डाला है ।२०। योगियों की जो प्रत्यक्ष चिति-स्फूर्ति है यथार्थ में तो वही सत्य है और हृदय का स्पन्द भी कुछ है ही, क्योंकि दोनों लोकों के आचारकी सिद्धि इन दोनों से ही है ।२१।

आद्यं प्रत्यक्षमुत्सृज्य यः सत्येऽस्मिन्कृतस्थितिः ।
प्रत्यक्षे मृगतृष्णाम्बु पोत्वा स सुखमास्थितः ॥२२
यत्सुखं दुःखमेवाहु क्षणनाशनुभूतिभिः ।
अकृत्रिमनाद्यन्तं यत्सुखंतत्सुखविद्ः ।२३
प्रत्यक्षेणैवमध्यक्षं प्रत्यक्ष प्रविचार्यताम् ।
यदाद्यं तत्सदध्यक्षं तत्प्रत्यक्षेण दृश्यताम् ॥२४
लोकत्रयानुभवदं त्यक्त्वा प्रत्यक्षमैहिकम् ।
मायात्मकयो गृह्णाति नास्ति मूढ़तमस्ततः ॥२५
आतिवाहिकमेवैषाँ भूतानां विद्यते वपुः ।
अत्राऽऽधिभौतिकव्याप्तिरसत्यैव पिशाचिका ॥२६

अजातसङ्कल्पमयं प्रत्यक्षं सत्कथं भवेत् ।
स्वमेव नयत सत्यं तत्यात्कार्यकरं कथम् ॥२७
यत्र प्रत्यक्षमेवासदन्यत् किं तत्र सद्‌भवेत ।
क्व वत्सत्यं भवेद्वस्तु यदसिद्धे न साध्यते ॥२८

इस आद्य सूक्ष्म प्रत्यक्ष का त्याग कर स्थूल देह में सत्य बुद्धि रखते हैं, वह मानों मृगतृष्णा का जल पीकर ही संतुष्ट हो रहेहैं ।२२। क्षण-भंगुरके अनुभव वाले ज्ञानी पुरुष विषय सुखको दुःख रूप बतातेहैं और अकृत्रिम, अनादि, अनन्त सुख को यथार्थ सुख कहतेहैं ।२३। इस प्रकार साक्षी चेतन के द्वारा प्रत्यक्ष विचार और अनुभवसे देखो तो जो सबका आदि साक्षी चित् प्रत्यक्ष है वही यथार्थ सुख है ।२४। जो त्रैलोक्य का अनुभव देने वाले सूक्ष्म चित् प्रत्यक्षका परित्याग कर इस लोकके स्थूल प्रत्यक्ष को ग्रहण करता है उससे अधिक महामूढ़ अन्य नहीं है ।२५। सभी प्राणियों का सूक्ष्म देह ही सत है और आधितिक की प्राप्ति ही असत्य रूपी पिशाची है ।२६।जो अन्य रहित और संकलपमय है उसका प्रत्यक्ष होना कैसा ! और जो स्वयं सत् नहीं हैं वह कार्य कर ही कैसा होगा ! ।२७। प्रत्यक्ष को साधक जो नेत्रादि इन्द्रियां हैं, वे जब योगियों की दृष्टि में असत् रूप है, तो उनसे जनित पदार्थही सत् कैसे होंगे ! क्योंकि असत् से जिसकी सिद्धि होगी, वह सत् कहाँ से हो सकेगी ! ।२८।

प्रत्यक्ष एव भावत्वे नष्टे क्वेवानुमादयः ।
उह्यन्ते वारणा यत्र तत्रोर्णायुषु का कथा ॥२९
अतः प्रमाणसंसिद्ध दृश्यं नास्त्येव कुत्र चित् ।
अनन्यदिदमस्तीव सत्तद्ब्रह्मघनं घनम् ॥३०
स्वप्ने द्रष्टुः खमेवाद्रिर्गृहे नायन्यस्य वै यथा ।
तथातद्‌भावनवतोरोवयोः सा शिलैव चित् ॥३१
अयं शैल इदव्योम जगदेतदिदं त्वहम ।
इति चिन्मय आत्मान्तः ख चमत्कुरु ते स्वयम् ॥३२

पश्यत्यतेत्प्रबुद्धात्मा नाप्रबुद्धः कदाचन ।
श्रोतुः कथार्थसंवित्तिर्नाश्रोतुर्भवति क्वचिद् ॥३३
अप्रबुद्ध भिति भ्रान्तिरेवेयं सत्यतां गता ।
क्षवस्य सुस्थिरा एवं नृत्यन्ति तरुपर्वताः ॥३४
सर्वत्राप्रतिहतमेकरूपबोधं
प्रत्यक्षं शिवमनुवध्य चित्स्वरूपम् ।
प्रत्यक्षान्तरमिह पेलवं श्रयन्ते
ये मूढास्तृणतनुभिः शठैरल तैः ॥३५

जव प्रत्यक्ष ही भावत्र नहीं है, तब उसके आश्रित अनुमाना की गति कहाँ ! जहाँ बड़े बड़े गजराज भी वह जाते हो वहाँ भेड़ों का तो कहना ही क्या है ! ।२९। अतः इस सव का तात्पर्य यही है कि प्रमाण से सिद्ध दृश्य-प्रपञ्च की स्थिति कहीं भी नहीं है । यह सद्रूप भाव जैसा प्रतीत हो रहा है वह धनरूप चिद्धन ब्रह्म ही है ।३०।जिस प्रकार पर्वत देखने वाला स्वप्न अपने समय में भी शून्य रूप ही है, क्योंकि उसी गृह के किसी अन्य पुरुष के लिए उस पर्वत का अभाव है: वैसे ही शिलाभावना वाले हम दोनों को भी यह दृश्य शिला के समान चिद्रूप ही है ।३१। थह पर्वत, वह आकाश यह जगत् और यह मैं इस प्रकार यह जो कुछ थी है वह सब चिन्तमय आत्मा हीं चिदाशरूप से अपने रूपमें प्रकाशित है ।३२। इस प्रकार चिन्मय आत्मा का आभास बुद्धात्मा ही देखता है, अप्रबुद्धात्मा की यह कभी दिखाई नहीं देता । क्योंकि जो कथा सुनता है, उसी को उसका अर्थज्ञान होता हैं, जो नहीं सुनता उसे कभी नहीं हो सकता।३३। अप्रबुद्धको यह जगत् रूप भ्रान्ति सत्यरूप है । क्योंकि यह मद्य पीकर मदमत्त हुए पुरुष को ही यह भले प्रकार स्थिर वृक्ष और पर्वत नृत्य करते हुए दिखाई देते हैं ।३४। जो पुरुष सर्वत्र अप्रनिहत, एक बोधरूप का बोध करके भी उन इन्द्रियादि प्रत्यक्ष के आश्रित होते हैं, वे मूर्ख एक तिनके समान नगण्य ही हैं।३५।

८३-वसिष्ठ ब्रह्मा संवाद

सा प्रविष्ट ततः सर्गं तमनर्गलचेष्टिता ।
अहमप्यविशं तत्र सङ्कल्पात्मा तया सह ॥१
यावत्सा तत्र वैरिञ्चं लोक मासाद्य सोद्यमा ।
उपविष्टा विरिञ्चस्य पुरा परमशोभना ॥२
वक्त्ययं मुनिशर्द्दूल पतिर्मे पाति मामिमाम् ।
विवाहार्थं मनेनाह जनिता मनसा पुरा ॥३
पुराणः पुरुषोऽप्येष मामप्यद्य जरागताम् ।
न विवाहिवांस्तेन विरागमहभागता ॥४
विरागमेषोऽप्यायातो गन्तुमिच्छति तत्पदम् ।
यत्र द्रष्ट्रता नैव दृश्यता न तु शून्यता ॥५
महाप्रलय आसन्नो जगत्यस्मिश्च सम्प्रति ।
ध्यानान्न च चलत्येष शैलमौनादिवाऽचलः ॥६
तस्मान्मामेनमपि च बोधयित्वा मुनीश्वरः ।
आमहाकल्पसर्गादौ परमे पथि योजय ॥७

वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! फिर वह अबोधगति वाली विद्याधरी उस शिला के उदर में विद्यमान जगत् में प्रविष्ट हुई तो संकल्पात्मा में भी उसके साथ ही घुस गया ।१। फिर वह उद्यमयी परम शोभना उस ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्माजीके सामने बैठ गई और मुझसे कहने लगी-हे मुनिशार्दूल ! यही मेरे रक्षक पति है । ईन्होंने विवाह के अर्थ मुझे उत्पन्न किया था । यद्यपि यह और मैं दोनों ही वृद्धावस्था को प्राप्तहो गये हैं, तो भी इन्होंने अभी तक मेरे साथ विवाह नहीं किया है । इसी कारण मुझे वैराग्य हो गया तथा यह भी वैराग्य युक्त हो गये हैं। यह उस परमपद में जाना चाहते हैं, जिसमें द्रष्ट्रता, दृश्यत्व अथवा शून्यत्व आदि कुछ भी नहीं हैं ।२५। हे राम ! विद्याधरी के इतना कहते-कहते ही महाप्रलय का समय पास आता जा रहा था, तब भी वह कहती

जा रही थी यह अभी भी अचल पर्वत के समान ऐसे बैठे हैं कि अपना ध्यान ही नहीं छोड़ते ।६। हे मुनीश्वर ! इसलिए आप मुझे और इन्हें दोनों को ही बोध प्रदान करके परम पद की ओर प्रेरित करिए जो महा प्रलय पर्यन्त सम्पूर्ण सर्गों का कारण रूप है ।७।

इत्युक्त्वा मामसौ तस्य बोधायेद रमुवाच ह ।
नाथायं मुनिनाथोऽद्य सद्‌ग सम्प्राप्तवानिदम् ।।८
एषोऽन्यस्मिन् जगद्‌गेहे ब्रह्मणस्तनयो मुनिः ।
पजयैनं गृहायातः गृहस्थगृहपूजया ।।९
तपेत्युक्ते मदाबुद्धिर्बुबुधे स समाधितः ।
स्वसंवित्तिद्रवात्मत्वादावर्त इव वारिधौ ।।१०
शनेरुन्मीलयामास नयने नयकोविदः ।
मधुः शिशिरसं शान्तावनौ कुसुमे यथा ।।११
सुरसिद्धाप्सरः संघाः समाजग्मुः समन्ततः ।
यथा हंसालयो लीलाः प्रातर्विकसित सरः ।।१२
ददर्शासौ पुरः प्राप्त माँ च ता च विलासिनीम् ।
उवाचार्थं वचो वेधाः प्रणवस्वरसुन्दरम् ।।१३
करामलकवद्दृष्टसंसारसार हे ।
ज्ञानामृतमहाम्भोद मुने स्वागतमस्तु ते ।।१४

हे राम ! इतना कहकर वह वह विद्याधरी ब्रह्माजी को जगातीहुई बोली-हे स्वामिन् ! आपके इस गृह में आज मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी आये हैं, यह जगद्रूप गृहके निवासी ब्रह्माजी के पुत्र हैं । आप अपने घर पर आये हुए इनका, गृहस्थ घरों में होने वाले अतिथि-पूजनसे इन्हें सत्कारित कीजिए ।८-९। उससे इस प्रकार कहने पर वह महामति मुनि अपनी समाधि से समुद्र में लहरों के समान उठे । उस समय वे अपनी आत्मा को पहिचानके लिए द्रवात्मक हो रहे थे ।१०। फिर उन नीति के ज्ञाता मुनिने अपने नेत्र उस प्रकार खोल दिए, जिस प्रकार कि शिशिर से शान्त हुई पृथिवी पर मधुमास अपने पुष्परूपी नेत्रों को

खोलता है ।११। फिर देवता सिद्ध और अप्सराएं सब दिशाओं से आ गईं जैसे प्रभात में विकसित कमलों में सम्पन्न सरोवर पर हंसों के समूह आ जाते हैं ।१२। तब उन ब्रह्मा ने मुझे और उस विलासिनी को अपने सामने देखा और ओंकारमय स्वरों के साथ सुरम्य स्वरोंमें कहने लगे ।१३। उन भिलोदरस्त्र जगत् के ब्रह्माजी ने कहा—हे मुने ! आप हाथ में रखे आंवले के समान संसार के तथ्य के पूर्णज्ञाता एवं ज्ञानामृत की वर्षा करने वाले महामेघ हैं, आपका स्वागत है ।१४।

पदवीपसि सम्प्राप्त इमामतिदवीयसीम् ।
दूराध्वसुपरिश्रान्त इदमासनमास्थताम् ॥१५
इत्युक्त तेन भगवन्नभिवादय इत्यहम् ।
वदन्मणिमये पीठे निविष्टो दृष्टिदर्शिते ॥१६
अथामरर्षिगन्धर्वमुनिविद्याधरो दता: ।
प्रस्तुता स्तुतय: पूजा नतय: स्थितिनीतय: ॥१७
ततो मुहूर्तमात्रेण सर्वभूतगणोदिते ।
शान्ते प्रणतिसंरम्भे तस्योक्त ब्रह्मणो मया ॥१८
किमिदं भूतभव्येश यव्यिं मामुपागता ।
वक्ति ज्ञानगिराऽस्मांस्त्वं बोधयेति प्रयत्नत: ॥१९
भवान् भूतेश्वरो देव सकलज्ञानपारग: ।
इयं तु काममुर्खा किं ब्रूते ब्रूहि जगत्पते ॥२०
कथमेषा त्वया देव जायार्थं जनिता सती ।
नेह जायापद नीता नीता विकसतां कथम् ॥२१

हे मुनिश्रेष्ठ ! आप इस दूर से भी अधिक दूरस्थित स्थानमें आये है हमसे परिश्रान्त हो रहे होंगे, अब आप इस आसन पर बैठिये ।१५। उनके इस प्रकार कहनेपर मैंने कहा-हे भगवन् आपको नमस्कार करता हूं, और उनके नेत्र संकेत से बताये हुए आसन पर बैठ गया ।१६।

फिर देव, ऋषि गन्धर्व मुनि विद्याधर आदि के द्वारा प्रस्तुत स्तुतियाँ होने लगीं और पूजन, प्रणाम, और परस्पर के यथा योग्यत्यवहार की नीति सम्पन्न हुई ।१७। सब भूतगणों द्वारा प्रस्तुत प्रणामादि का यह समारोह मुहूर्त मात्र में ही शान्त हो गया । इसके पश्चात् मैं उन ब्रह्मा जी से बोला १८। हे भूतभव्येश ! इस विद्याधरी ने मेरे पास आकर प्रयत्न पूर्वक कहा है कि हमें उपदेश दीजिए तो क्या कथन उचित है ! ।१९। हे देव आप तो सब भूतों के ईश्वर और सम्पूर्ण ज्ञान में पारङ्गत हैं, फिर भी हे जगत्पते ! यह काम से मूढ़ हुई रमणी क्या कहतीहै यह बताइए ।१०। हे देव ! आपने इसे अपनी पत्नी बनाने के उद्देश्य से क्यों उत्पन्न की ? यदि उत्पन्न भी की तो पत्नी बनाई क्यों नहीं और उस वैराग्य की ओर क्यों प्रेरित कर दिया ।२१।

मुने शृणु यवावृत्तमिदं ते कथयाम्यहम् ।
यथावृत्तमशेषण कथनीयं यतः सताम् ॥२२
अस्ति तावदजं शान्तमजरं किञ्चिदेव सत् ।
ततश्चित्कचनैकान्तरूपिणा कचितोऽस्म्यहम् ॥२३
आकाशरूप एवाहं स्थित आत्मनि सर्वदा ।
भविष्यति स्थिते सर्गे स्वयंभूरित नाम मे ॥२४
वस्तुतस्तु न जातोऽस्मि न च पश्यामि किञ्चन ।
चिदाकाशश्चिदाकाशे तिष्ठाम्यहमनावृत ॥२५
यदयं त्वं ममाहन्ते यदिद कथनं मिथः ।
तत्तरङ्गास्तरङ्गाग्रे रणतीवेति मे मतिः ॥२६
एवं रूपस्य मे कालवशतोऽविशदाकृतेः ।
सा कुमार्याश्चिदाभासमात्रस्यान्तः स्वभावतः ॥२७
ममानन्या तवान्यस्य चान्येवेह विभाति या ।
मोदितोनुदितेवान्तर्ममाहमिति वासना ॥२८

शिलोदर जगत् के ब्रह्माजी बोले—हे मुने, मेरा जो वृत्तान्त है, उसे आप सुनो । मैं उसे यथावत् कहता हूँ क्योंकि सज्जन पुरुषों के समक्ष

इस बात को यथार्थ रूप में कह दे ।२२। अजन्मा, शान्त अजर और किसी भी काल में वापिस न होने वाली जो वस्तु है वह चिति कही गई हैं । इसी चिति के उज्ज्वल रूप से मेरी उत्पति हुई है ।२३। मैं सदैव अपने चिदाकाश रूप में स्थित हूँ । अब सर्गकी स्थिति हो जाती है, तब मेरा नाम स्वयंभू होता है ।२०। वस्तुत: मैं न तो उत्पन्न हुआ हूँ,न कुछ देखता ही हूँ । अनावृत रूप से अपने चिदाकाश रूप से चिदाकाश में ही अवस्थित हूँ, ।२५। यह जो तुम मेरे सामने हो अथवा मैं तुम्हारे सामने हूँ आदि जो अपना सम्भाषण है, वह एक ही समुद्र में उठे हुए तरङ्गोंके परस्पर आघातों से निवाद करता हो,ऐसा मैं मानता हूँ ।२६। इस प्रकार एक ही समुद्र से उत्पन्न तरङ्गों को भिन्न दृष्टि से देखे जाने पर भेद रूपी और कालवश अपने यथार्थ रूप के भूल जानेसे म्लान-रूप मुझ चिदाभास में स्वभाव से 'मेरी' या मैं ऐसी वासना ही इस कुमारी को भी भासती है, परन्तु यही मुझे अनन्य दिखाई देतीहै । वही वासना हमारी दृष्टि से उदित और अनुदित भी है ।२७-२८।

अनाशसत्तानुदितस्त्वहमात्माऽऽमनि स्थित: ।
स्वभावादच्युताकार: स्वात्माराम: स्वयं प्रभु: ॥२९
तस्या अहमिति भ्रान्तेर्वासनाया जगत्स्थिते: ।
सम्पन्नेयमधिष्ठातृदेवता देहरूपिणी ॥३०
वासनाया अधिष्ठातृदेदतैवसिय स्थिता ।
न तु मे गृहिणी गृहिण्यर्थेन सत्कृता ॥३१
स्ववासनावेशवशे भावं
गृहिण्यहं ब्रह्मण इत्युपेत्य ।
एषा स्वयं व्यर्थंदिताऽतिदु:खं
यस्मात्किलैषैव हि वासनाऽत: ॥३२

हे मुने ! मैं अविनाशी सत्ता वाला होने से कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ । मैं अपने स्वरूप में आत्मरूपसे ही अवस्थितहूँ । स्वभावसे ही मैं

तो अच्युताकार, स्वात्माराम और स्वयं प्रभु हूँ ।२६। इस प्रकार मैं शुद्ध स्वरूप पहले के अहंकार संस्कार जनित स्मृति के समान जो अहं-रूपी भ्रान्ति, जगत की स्थिति और वासना है, उसका अभिष्ठातृ देवता ही देवरूप से स्थित है ।३०। वासना का अधिष्ठातृ देव ही यह स्थित है, न यह मेरी गृहिणी है और न मैंने गृहिणीत्व के उद्देश्य से इसे उत्पन्न किया है ।३१। अपनी वासना के आवेशवश मैं ब्रह्मा की भार्या हूँ, यह इस प्रकार की भावना अपने मन की इच्छा से ही किए हुए है, परन्तु यह इस भावना को प्राप्त करके व्यर्थ ही घोर दुख में पड़ गई है ।३२।

८४—जगत् के प्रलय का वर्णन

अथाहं चिन्मयाकाशस्त्वन्याकाशमयीं स्थितम् ।
परां ग्रहीतुमिच्छामि तेनेहोपस्थित: क्षय: ॥१
महाप्रलयकालेऽस्त्यिक्तुमेषा मयाऽधुना ।
मुनीन्द्र नूनमारब्धा तेन वैरच्यमागता ॥२
आकाशत्वाद्यदाद्योऽयं पराकाशी भवाम्यहम् ।
तदा महाप्रलया वासनायाश्च संक्षय: ॥३
तेनैषा विरसीभूता मत्मार्गं परिधावति ।
नानुगच्छति को नाम निर्मातारमुदारधी ॥४
इहाद्यायं कले रन्तश्चतुर्युगविपर्यय: ।
प्रजामन्विन्द्रदेवनामद्यै वान्तोऽयमागत: ॥५
अद्यै व चाय कल्पान्तो महाकल्पान्त एव च ।
ममायं वासनान्तोऽद्य देहव्योमान्त एव च ॥६
तेनेयं वासना ब्रह्मन् क्षयं गन्तु समुद्यता ।
क्वेय पद्माकराशोषे गन्धलेखावतिष्ठताम् ॥७

अन्य जगत् के ब्रह्मामाजी कहने लगे—हे मुने ! अब चिदाकाश रूपी मैं सर्वोच्च चिन्मयाकाश रूपी कैवल्य की स्थितिके लिए यत्नशील हूँ इसीलिए मेरी वासना से निर्मित इस जगत में चारों प्रकार के प्रलय उपस्थित हैं ।१। इस महाप्रलय की प्राप्ति पर इसका मूलनच्छेद पूर्वक पतन करने का सत्य मैंने अपनी सत्ता से आरम्भ कर दिया है इसीलिए यह वैराग्यमयी हो गई है ।२। मैं जब चित्ताकाश रूपता का परित्याग कर चिदाकाश रूपता को प्राप्त हो रहा हूँ तब यह महाप्रलयता एवं वासना का विनाश ही सत्य है ।३। इसीलिए यह वैराग्य से युक्त होकर मेरे मार्ग पर भाग रही हैं । उदारमति वाला ऐसा कौन-सा पापी है, जो अपने उत्पन्न करने वाले के पीछे न भागे ! ।४। आज ही यहाँ कलियुग की समाप्ति एवं चारों युगका अन्त उपस्थित हो रहा है तथा मनु, इन्द्र,देवता आदि प्रजाओं का विनाशकाल आ गया है ।५। मेरे कल्प का बिनाश भी आज ही है, महाकल्प, वासना और देहाकाश का भी आज ही विनाश होना है ।६। हे ब्रह्मन् ! इसीलिए यह अपने विद्या धारी रूप की वासना के विनाश के होने के लिए तत्पर है । कहीं सरोवर के सूखने पर गन्धलेखा स्थित रह सकती है ।७।

यथा जडाब्धिलेखाया जायते लहरीं चला ।
वासनायास्तथैवेच्छा मधोदेत्यपकारणम् ॥८
आभिमानिकदेहाया वासनाया: स्वभावत: ।
अस्या अत्मावलोकेच्छा स्वयमेवोपजायते ॥९
आत्मतत्वं नु पश्यन्त्या धारणाभ्यासयोगत: ।
दृष्टोऽनया भवत्सर्गो वर्ग: ग्रनिरर्गल: ॥१०
अनयाऽम्बरसच्चारपरयाऽद्रिशि:शिला ।
दृष्टा स्वजगदाधारभूताऽस्माकं तु खात्मिका ॥११
एतद्यस्मिन् जयद्गत्र तद्दृषत्वं जगद्गिरौ ।
अस्मज्जगतत्पदार्थेषु सन्त्यन्यानि जगन्त्यपि ॥१२

वयं तानि न पश्यामो भेददृष्टौ स्थिता इमे ।
बोधैकतां गतास्त्वाशु पश्यामस्तानि वीक्षणात् ॥१३
घटे पटे वटे कुड्.ये खेऽनलेऽम्भसि तेजसि ।
जगन्ति सन्ति सर्वत्र शिलायामिव सर्वदा ॥१४

जैसे जड़ समुद्रलेखा ही चंचल तरंगों का कारण है वैसे ही वासना अपने विनाश को आत्मदर्शन वाली इच्छा का कारण है ।८। अभिमान रूपी देह वाली इस वासना को स्वभाव से ही स्वयं आत्मावलोकन की इच्छा उत्पन्न होती है ।६। आत्मतत्व को देखने के लिए किए गये धारणाभ्यास के योग का फल जो सिद्धि है, उसी की परीक्षा के उद्-देश्य से यह आकाश में आकर आपके उस अनर्गल प्रजा वाले सर्ग को देखने लगीं ।१०। आकाशचारिणी इस विद्याधरी ने अपने जगत् की आधारभूत पर्वत शिखर स्थित शिला को भी उसी सिद्धि के बल से देखा, जो कि हमारी दृष्टि में तो आकाशरूप ही है ।११। हमारे अनेक जगद्रूपी पदार्थों के भीतर यहाँ इस जगत में उक्त पाषाण-शिला का रूपहै-इस प्रकार के अन्यान्य जगत भी स्थित हैं।१२। परन्तु हम अपनी भेद-दृष्टि में स्थित होनेके कारण उसको नहीं देख पाते । यदि समाधि ज्ञान से एक रूप होकर देखे तो ही देखने में समर्थ है ।१३। घट, पट, वट, कुडम् आकाश, पवन, जल और तेज आदि में सर्वत्रही इस शिला के समान ही असंख्य जगत अवस्थित है ।१५।

जगन्नाम मुधा भ्रान्तिः किल स्वप्नपुरोगमा ।
मिथ्यैवेयं क्व नामासौ चिद्रूपाऽस्त्यथ नास्ति च ॥१५
परिज्ञाता सती येषामेषा चिन्नभसैकताम् ।
गता तेन विमुह्यन्ति शिष्टास्तु भ्रमभाजनम् ॥१६
अथान्यधारणाभ्यासात्स्वविरागवशोदितम् ।
साधंयन्त्यऽर्थमात्मीयं दृष्टस्त्वमनया मुने ॥१७
इति मायेव दुष्पारा चिच्छक्तिः परिजृम्भते ।
इत्थमाद्यन्तरहितता ब्राह्मी शक्तिरनामया ॥१८

प्रवर्तन्ते निवर्तन्ते नेह कार्याणि कानिचित् ।
द्रव्यकालक्रियाद्योता चितिस्तपति केवलम् ॥१९
देशकालक्रियाद्रव्यमनोबुद्ध्यादिकं त्विदम् ।
चिच्छिलांगकमेवैकं विद्धचनस्तमयोदयम् ॥२०
चिदेवेयं शिलाकारभवतिष्ठति विभ्रती ।
अङ्गमस्या जगज्जाल मरुतः स्पन्दनं यथा ॥२१

हे मुने! जगत नाम की जो यह व्यर्थ भ्रान्ति है, वह स्वप्ननगर के ही समान है । क्योंकि यह जगत् रूपी माया मिथ्या हैं, तो इस मिथ्या भ्रम का अस्तित्व ही कहाँ से होगा? यदि उसका अस्तित्व है तो चिति रूप से ही है अन्य रूप से नहीं ।१५। परिज्ञात हुई यह भ्रान्ति, जिनकी दृष्टि में चिदाकाश रूप हो जाती है, उसके लिए तो उस भ्रान्ति का गमन ही समझो । इनके अतिरिक्त जो व्यक्ति हैं वे भ्रमभाजन ही हैं । ।१६। हे मुने यह धारणाओं के अभ्यास से वैराग्यके वश होकर आपका संकल्प जनित समाधि स्थान जानती हुई यहाँ पहुँच गई और अदृश्य होते हुए भी इसने आपको देख लिया ।१७। इस प्रकार माया के समान अनुलंघनीय चितशक्ति चारों ओर फैली हुए हैं वैसे ही आदि-अन्त रहित ब्राह्मी शक्ति सर्वत्र फैली हुई हैं ।१८। यहाँ कभी कोई कार्य न उत्पन्न होते है न नष्ट होते हैं । केवल चिदि ही द्रव्य काल, क्रिया, रूप से प्रकाशित होती हुई तपती है ।१९। यह देश, काल, क्रिया द्रव्य, मन, बुद्धि आदि सब चितिरूपी शिला की प्रतिमूर्तियाँ ही है। इसलिए उनका उदय-अस्त कुछ भी नहीं है ।२०। शिला के रूप में यह निति ही विद्यमान है । वायु स्पन्दन के समान सभी जगत इस चिति के ही अङ्ग हैं ।२१।

विज्ञानधनमात्मान जगदित्यत्वबुध्यते ।
अनाद्यन्तापि साद्य ताऽचित्वादिति गतापि चित् ॥२२
चिच्छिलेयमननाद्यान्ता साद्यन्तास्तीति बोधतः ।
साकारापि निराकारा जगदगैति संस्थिताः ॥२३

यद्वत्स्वप्ने चिदेव स्वं रूप व्योमैव पत्तनम् ।
वेत्ति तद्वदिदं वेत्ति पाषाण जगदंगकम् ॥२४
न सरन्तीह सरितो न चक्र परिवर्तते ।
नार्थः परिणमन्त्यन्तः कचत्येतच्चिदम्बरम् ॥२५
न महाकल्पकल्पान्तसंविदम्बरे ।
सम्भवन्ति पृथग्रूपाः पयसीव पयोन्तरम् ॥२६
जगन्ति सन्त्येव न सन्ति शान्ते
चिदम्बरे सर्वगतैकभूर्तो ।
नभोन्तराणीव महानभोन्त—
श्चित् सन्ति सत्तानि पराम्बराणि ॥२७
वसिष्ठ तद्गच्छ मुने जगत्स्वं
त्वं चासने सम्प्रति शान्तिमेहि ।
बुद्ध्यादिरूपाणि परं व्रजन्तु
वयं वृहद् ब्रह्मपद प्रयामः ॥२८

विज्ञानधन आत्मा को चिति ही जगत् मानती है । वह स्वयं आदि और अन्त से रहित होकर भी चित्स्वभाव के परिज्ञान के बिना देश-वस्तुसे उत्पन्न परिच्छिन्न भाव वाली चिति ही हो जाती है ।२२। यह चिति रूपी शिला यथार्थ में तो आदि अन्त रहित होकर भ्रान्तिवश आदि अन्त वाली हो जाती है तथा निराकार होकर भी साकार जगत रूपी अवयव वाली बन जाती है ।२३। जैसे स्वप्नमें चिति अपने स्वच्छ रूप को नगर रूप समझती है, वैसे ही जागृति में भी चिति पत्थर को अपना जगत्रूप अङ्ग मानती है ।२४। यहाँ न नदियाँ प्रवाहित हैं, न चक्र घूमता है, न अर्थो का फल मिलता है, अपितु अपने में केवल चिदाकाश ही आभासित हैं ।२५। जैसे जल में स्थित जलत्व में कोई भेद नहीं होता वैसे ही संविदाकाल में आभासित महाकाब्य और कल्प की संवित् में भी अन्तर नहीं होता है ।२६। जैसे महाकाश में अन्यान्य

घटादि आकाश उस महाकाश की सत्ता से ही अवस्थित हैं, वैसे ही ये जगत स्वतः शून्यरूप होकर भी चिति की सत्ता में विद्यमान है, अपनी सत्ता से नहीं ।२७। हे मुने ! अब आप अपने जगतमें जाइये और वहां एकान्त समाधि में लीन होकर विक्षेप-हीन सुख का अनुभव करिये । मेरे यह कल्पित बुद्धि आदि रूपी पदार्थ भी प्रलय रूप से अव्यक्त की ओर गमन करें । अब हम भी उस वृहद् ब्रह्मपद की ओर अग्रसर हो रहे हैं ।२८।

८५—संकल्प नाश से प्रलय

इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोकेजनैः सह ।
वद्धपद्मासनोऽनन्तसमाधानगतोऽभवेत ।।१
ओंकारार्धोर्धमात्रान्तः शान्ततिःशेषमानसः ।
लिपिकर्मार्पिताकार आसीदाशान्तवेदनः ।।२
तमेवानुसरन्ती सा तथैव ध्यानगा सती ।
वासनाऽऽसीदशेषाँशा शान्ता आकाशरूपिणी ।।३
परमेष्ठित्यसंकल्पे तस्मिंस्तानवमेयुषि ।
सर्वंगानन्तचिद्व्योमरूपोऽपश्यामहं यदा ।।४
यावत्संकल्पनं तस्य विस्य विरसीभवति क्षणात् ।
तथैवाऽऽशु तथैवोर्व्याः साद्रिद्वीपयोनिधेः ।।५
तृगुल्मलताशालिसमुद्भवनशक्तया ।
समस्तैवास्तमागन्तुमारब्धा च शनैःशनैः ।।६
किलतस्य विराडात्मरूपस्यागेकदेशताम् ।
सा बिभति मही तेन तदसंवेदनोदयात् ।।७
विचेतना सा विरसा बभूव परिजर्जरा ।
मार्गशीर्षान्तवल्लीब जराविधुरतांगता ।।८

वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! वह कहकर वे भगवान् ब्रह्माजी उन ब्रह्मलोक निवासियों के सहित पद्मासन बांधकर अनन्त समाधि में स्थित हो गए ।१। ओंकार को आधी मात्रा मे विद्यमान, नाद, बिन्दु आदि भागों में चित्त को लीन करने से उनकी सब वासनाओं का क्षय हो गया और तब वे चित्र लिखित मूर्तिके समान अचञ्चल हो गये ।२ उन ब्रह्माजी का अनुसरण करती हुई वह सती विद्याधारी भी ध्यान में तन्मय होगई तब वह समस्त वासनाओं के निःशेष होने पर शान्त और आकाशरूपिणी हो गई ।३। जब संकल्प-शून्यता को प्राप्त हुए ब्रह्माजी उत्तरोत्तर सूक्ष्म-भाव को पाने लगे, तब मैं भी समाधि से सर्वव्यापी चिदाकाशरूप होकर ब्रह्माजी के समान ही सब देखने लगा ।४। जैसे जैसे ब्रह्माजी का संकल्प नीरसता को प्राप्त होता गया, वैसे ही पर्वत द्वीप और समुद्रादि से युक्त पृथिवी की उर्वरा शक्ति विनाशोन्मुख होने लगी ।५-६। पृथिवी विराटात्मरूप की एक देशता धारण करती है,उस के संवेदन का उपसंहार होने पर वह जड़ और रसहीन होकर उस प्रकार जर्जरता को प्राप्त हो गई, जिस प्रकार कि मार्गशीर्ष समाप्त होने पर लता जरा से अविधुरता को प्राप्त होती है ।७८।

यथाऽस्माकसंवित्तेरंगाली विरसा भवेत् ।
तथा विरिञ्चिसंवित्तेर्धरा वैधुर्तमागता ॥९
सम्पन्ना सहतानेकमहोत्पातभरावृता ।
दुष्कृतांगारनिर्दग्धनरकोन्मुखमानवा ॥१०
दुर्भिक्षाकाण्डदौस्थित्यदैन्यदारिद्र्यदुर्भगा ॥११
पांसुप्रमन्दनीहारधूलिधूसरसूर्यका ।
द्रान्द्विमूर्खमहादुःखिष्ध सनिव्याधिताकुला ॥१२
अग्निदाहजलापूरयुद्धप्रोच्छिन्नमण्डला ।
अवृष्ट्यवग्रहोन्नष्टकष्टचेष्टितपामरा ॥१३

अंशकितमहोत्पातपतत्पर्वतपत्तना ।
शिशुश्रोत्रियमुन्यार्यगुणिनाशरुदज्जना ॥१४

जिस प्रकार हमारे अङ्ग संवेदन के उपसंहार में रसहीन हो जातेहैं वैसे ही ब्रह्माजी की भूमि संवेदन के उपसंहार में रसहीनता को प्राप्त हो गई ।६। प्रथम तो वह पृथिवी एक साथ महा उत्पातों के भार से आवृत होगई, फिर उसमें दुष्कृत्य रूपी अङ्गारे से जलते हुए नरकों की ओर प्रवृत्ति वाले मनुष्य हुए ।१७। तब दुर्भिक्ष रूपी अकाण्डाताण्डव राजाओं और दस्युओं के प्रकोप से उत्पन्न दैत्य और दारिद्रसे सौभाग्य से हीन हुई इस पृथिवी से सभी स्त्रियाँ चरित्रहीन हुईं और मनुष्य मर्यादाहीन होगए ।११। वह पानु के समान मन्द नीहार, धूलधूसरित सूर्य तथा द्वन्द्वों का निराकरण न कर सकने वाले मूर्ख, दुर्व्यसनी और व्याधि से व्याकुल पुरुषों से आक्रान्त होती गई ।१२। उसमें अग्निदाह जल प्रवाह और युद्धों से अनेक मण्डल नष्ट हो गये और अति वृष्टि के कष्टों से व्यग्र कायरों से वह परिपूर्ण होगई ।१३। अशङ्कित भीषण उपद्रवों से बड़े बड़े पर्वतों एवं नगरों का पतन होने लगा, बालकों, श्रोत्रियों, मुनियों आर्यो तथा गुणियों के नाश से लोग रोने लगे ।१४।

अधमशूलव्रलिता कुशास्त्रशतशूलिनी ।
दुर्जनाखिलवित्तढ्या विपद्विहतसज्जनना ॥१५
अनार्यं वसुधापाला तदनाहृतपण्डिता ।
लोभमोहभयद्वेषरागरोगजारता ॥१६
आवर्तवलनाकाराः केतवः पेतुरम्बरात् ।
हेमरत्दमया मुक्तः सिन्दूरभुजगा इव ॥१७
पृथिव्यादीन्यसुरादीनि ब्रह्मोन्मुक्तानि सवतः ।
द्विविधानि महाभूतान्यलं मङ्क्षोभमाययुः ॥१८
चन्द्रार्कानिलशक्राग्नियमाः कोलाहलाकुलाः ।
परिपातप राआगत ब्रह्मलोकगतेश्वराः ॥१९

कम्पैः कटकटारावपतत्पादपपङ्क्तयः ।
भूमेरन्वभवन् भूरिदोलान्दोलनभद्रयः ॥२०
भूकम्पलोलकैलासमेरुमन्दरकन्दराः ।
पेतुः कल्पतरून्मुक्ता रक्तस्तबकवृष्टयः ॥२१
लोकान्तराद्रिपुरवारिधिकाननान्त
मुत्पातकल्पपवनेन मिथो हतानाम् ।
कोलाहलैर्जगदभूत्प्रविकीर्णशीर्ण
पूर्णार्णवे त्रिपुरपूर इवाऽभिपाती ॥२२

सम्पूर्ण पृथिवी अधर्मरूपी शूल से आक्रान्त मनुष्यों से व्याप्त और सैकड़ों कुशास्त्रोंमें पीड़ित होगई। उस समय दर्जन धनोंसे ऐश्वर्यशाली और सज्जन विपत्तियों से आक्रान्त हो गए।१५। तब अनार्य पृथिवी-पालक राजा होगए, पण्डितों को वे सताने लगे, सर्वत्र लोभ मोह भय, द्वेष राग और रोग रूपी धूल उड़ने लगी।१६। आकाश मण्डल के आवर्त्तों की गोलाई के समान वर्तुलाकार उत्पन्न करने वाले जो धूम केतु गिरते थे, वे सुवर्ण, रत्न, मुक्ता और सिन्दूरिवों सर्पो के समानवर्ण वाले थे।१७। पहले मैंने जिन ब्रह्माजी के विषय में कहा है, उन्होंने जब अपने विधारण संकल्प का उपसंहार किया तव उपेक्षित असुरादि और पृथिवी आदि दोनों प्रकार के महाभूत क्षोभ को प्राप्त होगए।१८ चन्द्रमा, सूर्य, वायु, इन्द्र, अग्नि और यम यह सब अत्यन्त कोलाहल से व्याकुल होगए, उनके अधिकार प्रवाह के ब्रह्मलोक में लीन होने से यह जब अपने-अपने आसन से गिरने लगे।१९। भूकम्प होने से वृक्षों की पंक्तियाँ कटकट शब्द करती हुई गिरने लगीं। पर्वतों को भी झूलों के समान हिलने की अनुभूति होने लगी।२०। भूकम्प से कैलास, मेरु और मन्दर की कन्दरायें भी चलायमान होगई और कल्पवृक्षसे रक्तरूप पुष्प गुच्छ बरसने लगे।२१। लोकान्तर पर्वत, पुत्र, समुद्र, वन-वह सम्पूर्ण जगत् उत्पातमयी कल्पवायु के प्रवाह से परस्पर टकराते मनुष्य

के कोलाहल से वैसे ही विकीर्ण शीर्ण हो गया, जैसे अग्नि से जलकर त्रिपुरा नगर गिर गया था ।२२।

८६-विराट् स्थिति का वर्णन

अथाकृष्टवति प्राणान् स्वयंभुव नभोभवः ।
विराडात्मनि तत्याज बातस्कन्धस्थितः स्थितिम् ॥१
ते हि तस्य किल प्राणास्तेन क्रान्तेषु तेष्वपि ।
ऋृक्षचक्रे स्थितिं कोऽन्यो धत्ते भूतैकधारिणीम् ॥२
वातस्कन्धे समाक्रान्ते ब्रह्मणा प्राणमारुते ।
समगन्तु परित्यज्य संस्थितिं क्षोभमागते ॥३
निराधाराः सवातान्निदाहोल्सुकवदापतन् ।
व्योम्नस्तरास्तरोः पुष्पनिकरा इव भूतले ॥४
प्रलयोन्मुखतां याते ब्राह्मे संकल्पनेन्धने ।
सिद्धानां गतयः शेमुरिद्धानामर्चिषामिव ॥५
प्रभ्रमन्त्योऽम्बरे कल्पमारुतैस्तनुतूलवत् ।
स्वशक्त्यपचये मूकाः सिद्धसन्ततयोऽपतन् ॥६
संकल्पद्रुमजालानि सेन्द्रादिनगराणि च ।
पेतुर्भूकम्पलोलस्य शिरास्यमरभूभतः ॥७

वशिष्ठजी वोले-हे राम ! जब विराटात्मा ब्रह्माजी ने अपने प्राणों का निरोध किया तब बातस्कन्ध नामक आकाशोत्पन्न वायु ने अपनी मर्यादा छोड़ दी ।१। वातस्कन्ध नामक यह वायु ही उन विराटात्मा ब्रह्माजी के प्राण हैं, अतः अब उनका उपसंहार हो गया तब सूक्ष्म भूतों के धारण वाली मर्यादा को धारण ही कौन करता ? ।२। वातस्कन्धको अपने में उपसंहार करते-करते ही वह आदि में क्षोभ-उत्पन्न हो गया और तब जैसे वायु चलते समय अग्नि से अङ्गारे गिरते हैं वैसे ही

आकाश में तारे टूट-टूट कर पृथिवी पर गिरने लगे, जैसे वृक्ष से पुष्प गिर रहे हों ।३-४। ब्रह्माजी के संकल्परूपी ईंधन के प्रलयोन्मुख होने पर सिद्धि की गतियाँ वैसे ही शान्त होगईं जैसे दीप्त ज्योतियाँ शान्त हो जाती हैं ।५। अपनी शक्ति के नष्ट होने से प्रलय समीरसे छोटे तूल के समान नभमण्डल में उड़ती हुई निःशब्द सिद्ध पंक्तियाँ आकाश से पतित होने लगी ।६।कल्पतरु समूह इन्द्रादि सहित उनकी नगरियाँ और भूकम्प से डगमग होते हुए मेरु शिखर आदि गिरने लगे ।७।

चिति संकल्पमाप्रात्मा विराड् ब्रह्मा जगद्वपुः ।
किमंग यस्य भूलोकः कि स्वर्गः किं रसातलम् ॥८
कथमेतानि चांगानि ब्रह्मस्तस्य स्थितानि च ।
कथ वा सोऽन्तरे तस्य स्वस्यैव वपुषः स्थितः ॥९
ब्रह्मसंकल्पमात्रात्मा निराकृतिरिदं स्थितम् ।
जगदित्येव जातो मे निश्चय कथयेतरत् ॥१०
आदौ तावदिदं नासन्न सदास्ते निरामयम् ।
चिन्मात्रपरमाक शमासाकोशैकपूरकम् ॥११
तत्स्वामाकाशतां चैतच्चेत्यमित्यवबुध्यते ।
स्वरूपमत्यजन्नित्य चित्वाद्भवति चेतनम् ॥१२
विद्धि तच्चेतनं जीव सघनत्वान्मनः स्थितम् ।
एतावति स्थितिजाले न किञ्चित्साकृति स्थितम् ॥१३
शुद्धं व्योमैव चिद्व्योम स्थितमात्मनि पूर्ववत् ।
यदेतत्प्रतिभातं तु तदन्यन्न शिवात्ततः ॥१४

श्रीराम ने कहा-हे भगवन् ! ब्रह्माजी तो चित्त के संकल्परूप मन और विराट जगद्रूप हैं,इनके भूलोक आदि अवयव नहींहो सकते । यदि निराकार के अङ्ग होते हैं तो भूर्लोक कौन सा अङ्ग है ? स्वर्ग कौन सा और पाताल कौनसा है ? ।८। यदि यह माने कि ब्रह्माजी सकार है तो छोटे-से देह वाले उनके यह विशाल पृथिवी आदि कैसे अङ्ग बनकर

स्थित हो सकते हैं ? यदि उनको अत्यन्त विस्तृत कहें तो वे अपने ही देहरूपी इस ब्रह्माण्ड के सत्यलोक में कैसे निवास कर सकते हैं ? ।९। इसलिये मैं तो इस संकल्प मात्र ब्रह्माजी को निराकार और जगत् को साकार मानता हूं । यदि इसके विपरीत है तो मुझे बताइये ।१०।वसिष्ठजी बोले—हे राम ! आदि में तो असत् या सत नाम की कोई वस्तु ही नहीं थी,केवल सदादि विकारोंसे रहित चिन्मात्र स्वरूप परम व्योम ही था, यही सब अशाओं और दिशाओं को परिपूर्ण करता था ।११। यही परम आकाश अपने यथार्थ रूप को न छोड़कर अपनी अवकाश रूपता की वैसे ही कल्पना करने लगा,जैसे चन्द्रमा किसी अन्य चन्द्ररूप की करे । इससे ही उसने चेत्य को अपने से भिन्न समझा और चिद्रूप होने के कारण वह चेतन हो गया ।१२। बोध्य,बोध और बोद्धाके मनन से घनीभूत हुआ मन के वेश स्थित वह चेतन जीव ही समझो । अभ्यास जनित जितना भी स्थिति जाल है,उसमें पृथक-पृथक होने वाली साकारता नहीं है, वह शुद्ध चिदाकास पूर्ववत् अपने रूप में विद्यमान है । इसलिए यह दृश्यमान जगत् रूप से भिन्न नहीं हो सकता ।१३-१४।

अथ तन्मन आभोगि भाविताहंकृति स्फुरत् ।
सङ्कल्पात्मकमाकाशमास्ते स्तिमितमक्षयम् ॥१५

ततसङ्कल्पचिदाभासनभोऽहमिति भावितम् ।
असत्तमेवानुभवत्सन्निवेशं खमेव खे ॥१६

शून्यमेव यथाकारि सङ्कल्पनगरं भवान् ।
पश्यत्येवमजो देह ख खमेवानुभूतवान् ॥१७

संविदो निर्जलत्वात्स यावदित्थं तथाविधम् ।
अनुभूयानुभवनं स्वेच्छयैबोपशाम्यति ॥१८

यदा तत्वपरिज्ञानमस्मदः देस्तदाततम् ।
इदं संवरणं विद्धि शून्यं सत्यमिव स्थितम् ॥१९

यथाभूतपरिज्ञानादत्र शाम्यति वासना ।
अद्वैतान्निरहंकारात्ततो मोक्षोऽवशिष्यते ॥२०
एवमेष स यो ब्रह्मा स एवेदं जगत् स्थितम् ।
विराजो ब्रह्मणो राम देहो यस्तदिदं जगत् ॥२१

फिर विशाल मन के अहंकार भाव से स्फुरित होने पर अहं रूप धारणकर लेता है,परन्तु वह संकल्पात्मक भी अचल और अक्षय चिदाकाशही है ।६५।संकल्पात्मक चिदाकासरूपी जो आकाश अहंभाव वाला होकर स्थूल शरीर से आपका अनुभव करता है । यथार्थ में तो असत् होने के कारण इसके अबयव भी आकाश में आकाशरूप के ही समान हैं ।१६। जैसे आप शून्यरूप संकल्प नगर को साकार रूप में देखते हैं, वैसे ही ब्रह्माजीने भी शून्यरूपी आकाशको देह रूपमें देखा और अनुभव किया ।१७। सवित् के स्वयं ही निर्मल होने से इस प्रकार के जगत् के अनुभव की जबतक इच्छा रखता है तब तक हो वैसा अनुभव करता है और स्वेच्छा से ही उसका शमन कर डालता है ।१८। शून्यरूप होने पर भी सत्यके समान विद्यमान यह दृश्य प्रपंच तत्वज्ञान होने पर उपसंहार को प्राप्त हो जाता है ।१९। यथार्थ में तो सद्रूप का परिज्ञान होने से ही मिथ्या वासना को शमन हो जाता हैं तब अद्वैत भाव की प्राप्ति और अहंकार का विलय होने पर मोक्ष ही शेष रह जाता है।२० इस प्रकार जो बृह्मा हैं, वही यह जगत् स्थिति हैं । हे राम ! विराट बृह्मा का शरीर ही यह जगत है ।२१।

संकल्पाकाशरूपस्य या भ्रान्तिरुत्थिता ।
तदिदं जगदाभाति तद्ब्रह्माण्डमुदाहृतम् ॥२२
सर्वमाकाशमेवेदं सङ्कल्पकलनात्मकम् ।
वस्तुतस्त्वस्ति न जगत् ष्वत्तामत्ते च न क्वचित् ॥२३
जगदादिकया भासा चिन्मात्रं स्वदते स्वत ः।
आत्मनाऽऽमाम्वरेऽद्वै ते स्कन्दनेनेव मारुतः ॥२४

इदं किञ्चिन्नकिञ्चद्वा द्वैताद्वैतविवर्जितम् ।
चिदकाशं जगद्विद्धि शून्यमच्छं निरामयम् ॥२५
शान्ताशेषोऽहं तेन राघव संस्थितः ।
सन्नेवासन्निवातस्त्वमेवाऽऽस्व निर्ममः ॥२६
निर्वासनः शान्तमना मोनी विगतचालप ।
सर्वं कुरु प्रथाप्रन्प्तं कुरु मा वाऽत्र किं ग्रहः ॥२७
अनादिनित्यानुभवं य एकः
स एव दृश्यं न तु दृश्यमन्यत ।
सन्यानुभूतेऽननुभूतयी याः
सुविस्तृता दृश्ययहादृशस्ताः ॥२८

संकल्पाकाश रूप भ्रान्ति ही यह जगत् रूप हो गई है । वहीं जगत् की स्थिति ब्रह्माण्ड की कही जाती है ।२२। सकल्प-कलिपत इस जगत् के संकल्पाकाश रूप होने से उसकी सत्ता कहीं भी नहींहै ।२३। चिन्मात्र ब्रह्म ही जगत् आदि रूप में स्वयं आभासित है । हवा से स्पन्दन की अभिन्नता के समान ही स्वयं से ही अद्वैत चिदाकाश में जगद्रूप से स्पन्दित होता हैं ।२४। यह द्वैत या अद्वैत से वर्जित नहींहै । उस स्वयं निर्मल और विकारशून्य चिदाकाश को ही आप जगत् समझिए ।२५।हे राघव ! मैं इसीलिए सब विशेषणों से रहित अनस्थित हूँ । हे राघव ! मैं इसीलिए सब विशेषणों से रहित अवस्थित हूँ । यथार्थ में तो देहादि रूप में ममता रहित होकर स्थित हो जाइए ।२६। सब वासनाओं का त्याग कर, शान्त मन, मौन रूप से चंचलता रहित हो जाइए और जो कुछ यथावसर प्राप्त हो उसको करिए या न करिए इसमें कोई आग्रह नहीं है ।२७। अनादि,नित्य अनुभवस्वरूप एवं एक साक्षी चेतन ही यह दृश्य है,इससे भिन्न कुछ भी नहीं है । अनुभूत रूप ब्रह्मामें जो विभिन्न अज्ञातहैं । वे ही विभिन्न भ्रान्तियों को उत्पन्न करते हुए दृश्य अनुभव स्वरूप हो जाते हैं ।२८।

८७-ब्रह्मा के अंगभूत लोकों का वर्णन

तस्मिन् कल्पे तु संकल्पे तस्य यद्वपुरास्थितम् ।
शृणु तत्र व्यवस्थेयं विचित्राचारहारिणी ॥१
परमं यच्चिदाकाशं तद्विराडात्मनो वपुः ।
आद्यान्तमध्यरहितं लघुत्वस्य वपुर्जगत् ॥२
संकल्परहितो ब्रह्मा स्वाण्डं सङ्कल्पनात्सकम् ।
वपुषः परितो भास्वत्पश्यत्याकाशमेव तत् ॥३
ब्रह्मात्मैष स्वसङ्कल्पं स्वमण्डमकरोद्द्विधा ।
तैजसं तैजसाकरः पुष्टःपुष्टः विहंगवत् ॥४
अण्डस्यैकं नभोदूरं गतं संबुद्धवावसौ ।
भुवोऽथः संस्थितं भागं व्यतिरिक्तं च नात्मना ॥५
ब्रह्माण्डभाग ऊर्ध्वस्थो विराजः शिर उच्यते ।
अधोभागस्य पादाख्यो नितम्बो मध्यमात्रखम् ॥६
दूरं विमुक्तयोः सन्धिखण्डयोरिति विस्तृता ।
अनन्ता व्योमलेखा सा श्यामा शून्येति दृश्यते ॥७

वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! अब उस शिलोदर में देखे हुए उस विराटके संकल्प में स्थित जो ब्रह्माण्डात्मक देह और आचार से चित्त का हरणकर लेने बाली उसकी जन्म कर्म अवयव आदि की व्यवस्थाका श्रवण करिए ।१। आदि, अनन्त और मध्यसे रहित चिदाकाशही विराट आत्मा का प्रथम कल्पना रहित देह है और उसका कल्पित यह जगत् रूपी शरीर तो अत्यन्त छोटाहै ।२। यह ब्रह्मा अपने संकलपयुक्त ब्रह्माण्डरूपी देह से बाहर संकल्प रहित साक्षी और चिद्व्योम होकर अपने संकलपात्मक अण्ड का सब ओर अवलोकन करता है यथार्थ में तो ब्रह्माण्ड भी उज्जवल चिद्व्योम ही है ।३। उस ब्रह्मात्मा ने अपने संकल्प शब्द के दो भाग वैसे ही कर दिए जैसे कि पक्षी अपने पुष्ट अण्डके दो भाग करता है ।४।उसने अण्डके एक भागको उन्नत आकाश

समझा और नीचे के भाग को पृथिवी माना, परन्तु उसने इनकी कल्पना अपने से भिन्न नहीं की ।५। ब्रह्माण्ड का जो उच्च भाग था, वह उस विराट पुरुष का सिर और नीचे का पैर कहलाया । इन दोनोंका मध्य-भाग अन्तरिक्ष ही उसका नितम्ब कहा गया ।६। बहुत दूरी पर विभक्त उन खण्डों की मध्य सन्धि अनन्त शून्यश्याम वर्णकी व्योम रेखा दिखाई देती है ।७।

द्यौस्तालुविपुलं तस्य तारारुधिर विन्दवः ।
संविद्वातलवा देहे सुरासुरनरादयः ॥८
देहान्तः कृमयस्तस्य भूतप्रेतपिशाचकाः ।
लोकान्तराणि रन्ध्राणि सुषिराण्यस्य देहके ॥९
ब्रह्माण्डखण्डमस्याधो विस्तृत पादयोस्तलम् ।
जानुमण्डलरन्ध्राणि पातालकुहराण्यधः ॥१०
जलैश्चलचलायन्ती सुशिरानेकरन्धिका ।
भूरन्तर्मण्डली लीला समुद्रद्वीपवेष्टना ॥११
जलैर्गुडगुडान्त्यो नद्यो नाड्यः सरिद्रसः ।
जम्बूद्वीपं हृदम्भोजमस्य हेमाद्रिकर्णिकम् ॥१२
कुक्षयः ककुभः शून्या यकृत्प्लीहादवोऽचलाः ।
मृदुः स्निग्धाः पयकारा मे दसो जालिका घनाः ॥१३
चन्द्रकौं लोचने तस्य ब्रह्मलोको मुख स्मृतम् ।
तेजः सोमीऽस्य कथितः श्लेष्मा प्रालेयपर्वत्तः ॥१४

अन्तरिक्ष उसका तालु और तारागण रुधिरकी बूँदें हैं । सुर असुर मनुष्यादि जो हैं वे शरीर में बुद्धि और प्राण की बृतियों के भेद समझो ।८। भूत, प्रेत, पिशाच आदि जो हैं, वह देहगत कृमि है, सूर्य-चन्द्र आदि जो लोक हैं, वे उसके छेदहैं तथा लोकोंके अन्तर उसके देह-रन्ध्र हैं ।९। पृथिवी तल ही उसके पाँव का यिस्तृत तलुआ और पाताल आदिके जो गर्तहैं वे जानमण्डल के रन्ध्र है ।१०। जलोंसे चञ्चल अनेक

रन्ध्रों से युक्त सभी समुद्र और द्वीप जिसके वेष्टन हैं, ऐसी पृथिवी उसकी मध्यस्थ मण्डली है ।११। जलों के गुड़गुड़ शब्द से युक्त नदियाँ उसकी नाड़ी और जल उसके देह का रस है । हेमाद्रिकर्णिका सहित जो जम्बूद्वीप है, वही उसका हृदय पद्म है ।१२। शून्य दिशाएँ उसकी कुक्षि, पर्वत उसके यकृत-प्लीहा आदि और उसके मृदु एवं चिकने पटा कर मेघवाल हैं ।३। सूर्य चन्द्र उसके नेत्र, ब्रह्मलोक मुख, सोम वीर्य और हिमालय उसका श्लेष्मा बताया गया है ।१४।

अग्निलोकस्तथौर्वाग्नि पित्तमस्यातिदुःसहम् ।
वातस्कन्धमहावाताः प्राणापाना हृदि स्थिताः ॥१५
कल्पद्रुमवनान्यस्य सपवृन्दानि च क्वचित् ।
लोमजालान्यनंतानि वनान्युपवनानि च ॥१६
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्ड तु समस्तनारुमस्तकम् ।
ब्रह्माण्डप्रान्तरन्ध्रार्चिरस्य दीप्ता शिखोत्थिता ॥१७
स्वयमेष मनस्तेन मनो नास्योपयुज्यते ।
आत्मैवभोक्तृतामेति किल कस्य कथं कुतः ॥१८
स्वयमेवेन्द्रियाण्येष तेनान्यशाऽस्तिता कृता ।
यंतस्तत्कल्पनामात्रमेवेन्द्रियगणः किल ॥१९
अवयवावयविनोरिलेहेन्द्रियचित्तवोः ।
न मनागपि भेदोऽस्ति चैक्यनेकशरीरयोः ॥२०
तस्य तान्येव कार्याणि जगतां यानि कानिचित् ।
संकल्पा एव पुंवृत्या चलन्त्यारुपितद्विताः ॥२१

अग्निलोक और पृथिवी के भीतर की अग्नि उसका अत्यन्त दुःसह पित्त है । बात स्कन्धों में प्रसिद्ध जो महावात है,वे इसके हृदयमें स्थित प्राणापान है ।१५। कल्पद्रुम के वन सर्पवृन्द और वन-उपबन उसकी अनन्त रोमावली हैं ।१६। ब्रह्माण्ड खण्ड का उन्नत भाग इसका मस्तक है । ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्वप्रान्त के रन्ध्र दीप्त ज्योति ही उसकी खड़ी हुई

शिखा है ।१७। यह मन के स्वयं विधाता मन रूप हैं इसलिए किसी भी कल्पना में किसी अन्य मन का उपयोग नहीं करना होता । ऐसा होने पर आत्मा ही भोक्तृता को प्राप्त होता है तब किसका कहाँ से हो सकता है ?।१८। वह स्वयं इन्द्रिय रूप होनेके कारण अन्य किसीइन्द्रिय का भी उपयोग नहीं करना होता । इस प्रकार वे सब इन्द्रियाँ यथार्थमें तो कल्पना स्वरूप ही है ।१९। अवयव और अवयवी के समान एक देहधारी इन्द्रिय और चित्त में किंचित् भेद नहीं अपितु ऐक्य ही है।२०। संसार के जितने भी कार्य हैं वे सब उसी के हैं क्योंकि उसके संकल्प ही सब प्राणियों के रूप से अपने में भेद का आरोप करके जगत के सभी व्यवहारों में व्यवहृत है ।२१।

जागते यस्त विज्ञेय नान्येऽस्य मृतिजन्मनी ।
स एवेदं जगयस्मरंकस्पात्मास्य नेतरत् ॥२२
तत्सत्तया जगासत्ता तन्मृत्यैव जगत्मृतम् ।
यादृग्री स्पन्दमरुतो सत्तैका तादृशा तयोः ॥२३
जगद्विराजो सत्तैका पवनस्पन्दयोरिव ।
जगद्यन्स विराडेव यो विराट् तज्जगत्स्मृतम् ॥२४
गद्ब्रह्मा विराट् चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः ।
संकल्पमात्रमेवैते शुद्ध चिद्व्योमरूपिणः ॥२५
संकल्पात्सं विराडेव खमेवाकृतिमागत् ।
अस्तु नाम स्वदेहान्तः कथं ब्रह्मैव तिष्ठति ॥२६
यथा ध्यानेन देहान्तस्तिष्ठसि त्वं यथास्थितम् ।
तथास्ते निजदेहेऽन्तः संकल्पात्मा पितामहः ॥२७
नृणाँ तथा च मुख्यानां जीवो ब्रह्मतुरोदरे ।
उत्पत्ति पुत्रिक देह प्रतिबिम्वोपमोऽस्वि सः ॥२८

सम्पूर्ण जगत् के जन्म-मरण को ब्रह्म का ही जन्म-मरण समझो। परन्तु हमारे जैसे विशिष्ट व्यक्तियोंके जन्म-मरण को वैसा मत समझो, क्योंकि जगत् में वही समष्टि रूप हैं और हमारा संकल्प है उसका रूप

भी नहीं हैं। उस ब्रह्म का समाधि से और व्यक्ति से भिन्न कोई अन्य रूप नहीं है।२२। उसी की सत्ता से जगत् की सत्ता और उनके अभाव से जगत् का अभाव है। वायु और स्पन्द की अभिन्नता के समान ही ब्रह्म और जगत् की सत्ता भी अभिन्न हैं।२३। जैसे पवन और स्पन्द की सत्ता एक ही है, वैसे ही विराट् पुरुष और जगत् की सत्ता एक ही है। विराट ही जगत् है और जगत ही विराट कहा जाता है।२४।जगत् ब्रह्मा और विराट तीनों का एक ही अर्थ है। विराट् और जगत शुद्ध चिदाकाश रूपी ब्रह्म के संकल्पमात्र ही हैं।२५। श्रीराम बोले-हे ब्रह्मन् मैं यह तो मानता हूँकि वह विराट् ही अपने संकल्प से साकार होगया, परन्तु वह ब्रह्मा अपने देह में किस प्रकार स्थित रहते हैं यह बताइये।२६। वसिष्ठजी ने कहा—हे राम! जैसे ध्यानके द्वारा हृदयमें कल्पित देवता की पूजा करते हुए अपने को उस देवता की समीपता में आप अनुभव करते हैं वैसे ही संकल्प रूप ब्रह्मा भी अपने देह में अवस्थित रहते हैं।२७। ज्ञान पुरुषों का जीव अपने देह के हृत्पुण्डरीक में स्थित रहता है। सबकी देह उत्पन्न हुई पुतली के समान है। इसीलिए वे ब्रह्माजी भी दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान ही हैं।२८

यत्र त्वमापि देहान्तः कर्तुं शक्तोऽस्यलं स्थितम्।
संकल्पात्मा विधुस्तत्र ब्रह्मा कि न करिष्यति ॥२९
बीजान्तः स्थावरं ह्यास्ते पदार्थं यत्र जङ्गम।
किं नास्ते तत्र देहेन्तर्निजचित्कल्पनात्मिधा ॥३०
साकारो गगनात्माऽस्तु निराकारं खमस्तु वा।
आस्ते बहिरथान्तश्चभिन्ने वाह्यन्तरे वहिः ॥३१
आत्मारामः काष्ठमौनी न जडोऽपि दृज्जडः।
अहं त्वमित्यादिमयो विराडात्मनि तिष्ठति ॥३२
आवेष्टितोज्झतलतातृणदारुपुंव-
दुच्छब्दमवुरयवच्च विरोपितांगः।
नानाविधैऽपि विहरन्नपि कार्यजाले।
तज्ज्ञः शिलाजठरशान्तमनक एव ॥३३

जब अपने देह में आप भले प्रकार स्थित रह सकते है, तब वह संकल्पात्मा विभु ब्रह्माजी ऐसा क्यों नहीं कर सकते ? ।२९। जब जीव में स्थावर प्राणी भले प्रकार स्थित रह सकते है तब जंगम ब्रह्माजी चित्ति की कल्पनारूप होकर भी अपने देह में स्थित क्यों रह सकते ? ।३०। इस प्रकार ब्रह्माजी चाहे साकार होकर भी चिदाकाश रूप रहे आवें या निराकार, दोनों की कल्पनाएँ स्वरूप से बाहर स्थित हैं।३१। ब्रह्मांडरूप से उसी विराट् पुरुष की ब्राह्म स्थिति है और व्यष्टि-समष्टि भूत-भौतिक है। किन्तु निज स्वरूप में अवस्थित होकर काष्ठ के समान मौन और पाषाण के समान जड़ होकर भी यथार्थ में विवेक रस होने से जड़ रूप से स्थित नहीं रहता ।३२। विराट् पुरुष ही नहीं, सब तत्वज्ञ पुरुष, लता, तृथ, अथवा काष्ठ प्रतिमा के समान रत्नादिके बन्धन से मुक्त होने पर क्षुब्ध नहीं होते तथा जल के प्रवाह के समान अवरुद्ध होकर भी अपनी शान्त स्थिति का त्याग नहीं करते और विभिन्न कार्यो में विहरते हुए भी शिलोदर के समान ही शान्त चित्त रहते हैं ।३३।

८८—द्वादश सूर्यों की उत्पत्ति

अथाग्रस्थ ब्रह्मलोको ब्रह्मणि ध्यानशालिनि ।
निक्षिप्ताक्षः शनदिक्ष दृष्टवानहमग्रतः ॥१
द्वितीयमर्कं मध्याह्ने पश्चादम्युदित स्फुटम् ।
दिग्दाहमिव दिग्वक्त्रे बनदाहमिवाचले ॥२
ब्रह्निलोकमिव व्योम्नि वडवाग्निमिवार्णवे ।
ततोऽपश्यमहं दीप्तं सूर्यं नैऋॄतदिङ्मुखे ॥३
सूर्यं याम्ये ककुब्भागे सूर्यमग्निककुब्मुखे ।
सूर्यं मैन्द्रककुब्भागे सूर्यमीशानदिङ्मुखे ॥४

कुदेरकुकुभि सूर्यं सूर्यं वायव्यदिक्तटे।
सूर्यं वरुणदिग्भागे तेन विस्मयवानहम् ॥५
याविद्विचायाम्याशु विविवैधुर्यमाकुलम्।
उदभूद्भूतलात्तावदर्क और्व इवार्णवात् ॥६
एकादशेऽखिलार्काणां प्रतिविम्वमिवोत्थितम्।
उदभूतयमर्कानामन्तरे दिगगणाम्बरे ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! ब्रह्माजी ध्यान में लीन हो गए और इन्द्र उनके नगर और मेरु-शिखर आदि को देखता हुआ मैं दिशाओं की ओर दृष्टिपात करने लगा, तब मेरे समक्ष पश्चिम और स्पष्ठ रूप में उदित दिशाओं के सुख में दाह के समान और पर्वत पर होते हुए वन-दाह के सदृश मध्यकाल के सूर्य से भिन्न एक अन्य सूर्य दिखाई दिया ।१-२। फिर आकाश में अग्नि लोक के समान और समुद्र में वडवानल के समान प्रकाशित एक अन्य सूर्य मुझे नैॠत्य दिशा में उगे हुए दिखाई दिए ।३। फिर मैंने दक्षिण, आग्नेय, पूर्व और ईशानकोण में उदित हुए इस प्रकार के पृथक्-पृथक् सूर्य देखे ।४। तदनन्तर उत्तर में वायव्यकोण में और पश्चिम दिशा में भी भिन्न-भिन्न सूर्यों को देखता हुआ मैं विस्मय में पड़ गया ।५। वह देखता हुआ मैं व्याकुलता पूर्वक दैव की इस विविधता पर विचार कर ही रहा था कि सभी मुझे भूतल से उदित सूर्य ऐसे दिखाई दिया जैसे समुद्र से वडवानल ।६। दिशाओं के मध्याकाश में जो ग्यारहवाँ सूर्य उदित हुआ, उसमें दर्पण में प्रकट हुए प्रतिबिम्ब के समान तीन अन्य सूर्य उदित हो गए ।७।

तद्धि रौद्रं वपुस्तत्र तन्मध्ये लोचनत्रयम्।
तद्द्वादशपरीमाण दीप्त वृन्द विवस्वताम् ॥८
सर्वादिक्कं ददाहोच्चैः शुष्कं वनमिवाऽनलः।
अथोदभूज्जगत्खण्डशोषणग्रीमवासरः ॥९
अनग्निरग्निदाहो द्रागदृश्योल्मुकगुल्मकः।
अनग्निनाऽग्निदाहेन तेन तामरसेक्षण ॥१०

अङ्गानि दावदग्धानि खिन्नानीव ममाभवन् ।
प्रदेश तमथ त्यक्त्वा दूरमारूढवानहम् ॥११
दृढस्ततलाघातहकन्दुकवन्नभः ।
अपश्यं गगनस्थोऽहमुद्रितं चण्डतेजसम् ॥१२
पतन्तं द्वादशादित्यणं दिक्ष दशस्वपि ।
बृहत्तत्र सतारावज्वालेव भावणं चलम् ॥१३
महाकुहकुहाशब्दं क्वणत्सप्ताब्धिडम्बरम् ।
सज्जालोल्मुलनीरन्ध्रलोकान्तरपुरान्तरम् ॥१४

हे राम ! उस ग्यारहवे सूर्य में उदित वे तीनों सूर्य भगवान् रुद्र के देह ही हैं क्योंकि रुद्र के शरीर के मध्य तीन लोचन हैं द्वादश सूर्यो के परिणाम वाला प्रदीप्त सूर्य-समूह रौद्रदेह होकर सभी दिशाओंको शुष्क वन को दावाग्नि द्वारा जलाने समान ही दाध करने लगा । इसके पश्चात् जगत् के भूमण्डल को सुखाने वाला ग्रीष्म ॠतु का दिवस उत्पन्न होगया ।८-९। फिर तुरन्त अग्नि के बिना ही अग्नि का दाह और न दिखाई देने वाले उल्मुकों के गुल्मक प्रकट हुए । उस अग्निके अग्निदाह से मेरे सभी अवयव दावानल द्राह के समान जलते हुए खिन्नता को प्राप्त हुए, अब मैं उस प्रदेश का परित्यागकरके आकाश में बहुत दूर अवस्थित हो गया ।१०-११। फिर करतल के आघात से उछलते हुए गेंद के समान आकाश में पहुँचकर स्थित हुए मैंने उस प्रचण्ड तेज से तपते हुए द्वादश सूर्य-समूह को दसों दिशाओं में देखा तथा फिर उस तारामण्डल युक्त आकाश को व्याप्त करने वाली अग्नि के समान चपल एवं वर्तुलकार बृहदनक्षत्र चक्र मुझे दिखाई दिया ।१२-१३। कुलकुला शब्द करते हुए साय समुद्रों को तप्त कर क्वाथ जैसा वनाते हुए ज्वालोल्मुख से सव लोकों और नगरोंको भरने वाले उस द्वादश सूर्य-समूह को मैंने देखा ।१४।

क्षणेनैवानलात्तस्माद्धिमवान् ततुवद्‌ुतः ।
सर्वान्तः शीतलः शुद्धो दुर्जनादिव सज्जनः ॥१५

तस्यामपि दशायां तु मलयोऽमलसौरभः ।
आसीत्यजत्युदारात्मा न शाशेप्युत्तमं गुणम् ॥१६
नश्यन्नपि महान् ह्लादं न सम्प्रयच्छति ।
चन्दनं दग्धनप्यासीदानन्दायैव जीवताम् ॥१७
न कदाचन संयाति वस्तूत्तममबस्तुताम् ।
प्रलयानलनिर्दग्धमपि हेम न नष्टवत् ॥१८
दे हेमनभसो तस्मिन नष्टे प्रलयानले ।
ययोरेव वपुः श्लाघ्यं सर्वनाशेऽप्यनाशयोः ॥१९
नभो विभुतयाऽनाशि हेमाऽऽनाष्टतयाऽक्षयम् ।
सत्यमेकं सुख मन्ये न रजो न च वा तमः ॥२०
चलदुच्चवनानीव विकीर्णागारवर्षणः ।
दग्धाब्दाद्रिर्महाधमज्वालोऽभूद्वह्निवारिदः ॥२१

सर्वान्तर में शीतल और शुद्ध हिमालय उस प्रलयाग्नि से एक क्षण में ऐसे पिघल गया, जैसे दुर्जन के सामने सज्जन पिघल जाते हैं ।१५। परन्तु उसे प्रलय की अवस्था में भी मलयाचल अपनी अमल सुगन्ध से युक्त होकर ही अवस्थित रहा, जैसे कि विनाश-काल की प्राप्ति पर भी उदारात्मा पुरुष अपने श्रेष्ठ गुण का परित्याग नहीं करते ।१६। महा-पुरुष तो नाश को प्राप्त होते हुए भी आनन्द देने वाले होते हैं,किसीको खिन्न नहीं करते इसी प्रकार स्वयं जलता हुआ चन्दन जीवित प्राणियों को सुख देता हुआ यथागुण रहता हैं ।१७। श्रेष्ठ वस्तु अपने बस्तुत्व (गुण) को कभी नहीं छोड़ती । प्रलयानल में दग्ध होता हुआ भी स्वर्ण कभी नाश को प्राप्त नहीं होता ।१८। हे राम ! उस प्रलयाग्निमें स्वर्ण और आकाश इन दो का ही नाश नहीं हो सका । सर्वनाश होनेपर भी वे यथावत् रहे आए, इसलिए उनके देह प्रशंसनीय ही हैं ।१९। आकाश विभु होने के कारण नाशवान् नहीं है और व्यर्थ आकर्षक होनेके कारण (शोभित होने पर और भी उज्ज्वल हो जासे के कारण) कभी भी न होने वाला ही है । अतः रज-तम रहित शुद्ध सत्य को हीं ब्रह्मसुखोंके

अभिव्यक्ति के कारण मैं सभी सुखों का सार मानता हूँ ।२०। मेघरूपी पर्वतों को दग्ध करने वाला महाधूम ज्वाला के सहित प्रलयानल रूपी बादल इधर-उधर चलते हुए उच्च वनों के समान आकाश में स्फुरण को प्राप्त होकर विकीर्ण अङ्गारों की वर्षा करने लगा ।२१।

न लंघयति कैलासं यावदुल्लसितोऽनलः ।
तावत्तं कल्पकुपितो रुद्रो नेत्राग्निनाऽदहत् ॥२२
दाहस्फुटद्द्र मस्थूलशिलाचटारवाः ।
लकुटोपललोष्टीघैरयुद्ध्यन्तेव भूभृताः ॥२३
ज्वालघनघटाटोपसावतंसचलान्तिमाः ।
बभूवुर्व्योनविकसद्स्थूलपद्मवना इव ।
सर्गः कदाचिदेवासीदित्यगात्स्मरणीयताम् ।
कल्पान्तः स्मारयन्मूर्खानगादस्मरणीयताम् ॥२४
अथ कल्पान्तमरुति वहत्यवधुताचले ।
वलेनाम्भोधिकल्लोलैर्न भस्यावर्तकारिणि ।
समुद्रेषु विमुद्रेषु मर्यादोल्लंघने घने ।
अथनेषु थनिष्वम्गुदारिद्रयोपद्रवद्रुते ॥२५
भूतले भूतलेशांशवर्जिते वह्विभर्जिते ।
पातालमपि पाताले गते किमपि कालतः ॥२६
दिवि विद्यमानार्या विशीर्णे सर्गवर्गकेः ।
लोके व्योमगतालोके शीकौकसि ककुब्गणे ॥२७
कुतोऽप्याकाशकुहरादृदैत्यगणा इव ।
पुष्करावर्तका मेघाश्क्रु गुलुगुलारबम् ॥२८

हे राम ! जब तक उल्लास को प्राप्त हुआ वह प्रलयानल कैलाश को नहीं लांघ सका, तभी कल्पान्त में कुपित हुए भगवान ने अपने नेत्रानल से ही उस कैलास को भस्म कर दिया ।१२। उस अग्नि-दाहसे चटकते हुए वृक्षों और शिलाओं के चटपट होने वाले शब्द से शब्दायमान कैलाश से नीचेके सब पर्वत लक्कड़ों और पत्थरों के समूहोंके रूप

में होते हुए ऐसे लगने लगे जैसे परस्परमें युद्ध कर रहे हों ।२३। यह सब पर्वत ज्वालाओं के घन घटाटोपों से आवर्त समय एवं चलायमान शिखरों वाले होकर आकाश में विकसित होते हुए पद्म वनोंके समान हो गये । कभी सृष्टि रही होगी, इसका स्मरण मात्रही शेष रह गया । मूर्ख व्यक्तियों को जगत्के असार होनेका स्मरण कराने वाला कल्पान्त प्रत्यक्ष उपस्थित होगया । फिर पर्वतों को कम्पाने वाला और समुद्रकी तरंगों से आकाश में आवर्त उत्पन्न करने वाला कल्पान्त वायु प्रवाहित हुआ था, समुद्रों और मेघों ने मर्यादा छोड़ दी थी, जल भी दरिद्र के दुःख के समान पीड़ित होकर भाग गए थे, धनिक निर्धन हो गए थे, पृथिवी अपने अंश से हीन और अग्नि से दग्ध होगई, पाताल-पाताल में समा गया, अन्तरिक्ष अपने रूप में मिल गया और सभी दिशायें शोक सन्तप्त होगई । ऐसी दशा में किसी आकाश मार्ग से कुपित दैत्यों के समान पुष्करावर्तक मेघ गुलगुल जैसी ध्वनि करने लगे ।२४-२६।

ब्रह्मविस्फोटतस्वाण्डकुड्यविस्फोटनोद्भटम् ।
अन्योन्यास्फालनोत्फालमत्ताणवरवाविलम् ॥२९
लोकार्णवपुरोद्गीर्ण घनकोलाहलोल्वणम् ।
एतत्कुलाचलस्कन्धबद्धोग्ररवघर्घरम् ॥३०
ब्रह्माण्डशंखजटरपूरणावर्तमन्थरम् ।
स्वर्लोकरोद पातालतलतोऽसिगुल्मकम् ॥३१
अथास्मिन्सति कल्पाग्नौ स्थितिमेति कथंचनः ।
इति विस्मितवानस्मि दृशं दिग्नवकेऽयजम् ॥३२
यावन्न क्वचिदेवत्र पश्याम्ताशासु केवलम् ।
तरन्ति तरलास्फालमुल्मुकाशनिवृष्टयः ॥३३
तेन ज्वलनतापेन वहुयोजनकोटिषु ।
पदार्था स्मतां यान्ति दूरे दिक्षु दशस्वपि ॥३४
अनन्तरं क्षणाद्वयोम्नि दूरेऽहमनुभूतवाम् ।
ऊर्ध्वतः शीतल वातमधस्तादनलोपमम् ॥३५

वैसी वह ध्वनि अत्यन्त भयंकर थी। जब ब्रह्माजी ने अपने अण्ड का भेदन किया तब ब्रह्माण्ड विस्फोट से निकली हुई उच्च ध्वनि के समान ही यह ध्वनि थी। परस्पर के आस्फालनों सहित तरङ्गित मत्त समुद्र की ध्वनि के समान ही वह भीषण थी।२९। शोक, सागर और पुरों से टकराकर घने कोलाहल रूप हुई वह ध्वनि असह्य थी और कुशाचल पर्वतो के कन्धों पर दाह की कर्कश ध्वनियों से मिलकर वह और भी वीभत्स हो गई थी।३०। उस शब्द से समस्त ब्रह्माण्ड रूपी शंख उदर परिपूर्ण होगया और ब्रह्माण्ड भित्तियोंके प्रतिरोध से उत्पन्न अनेक आवर्तनों के कारण यह अत्यन्त निविड होगया। इसलिए उसकी आँखें स्वर्ग, अन्तरिक्ष, पृथिवी और पाताल पर्यन्त फैल गई।३१। कल्पान्त में मेघ की स्थिति कैसे सम्भव है? यह सोचता हुआ मैं नीचे की दिशा को छोड़कर अन्य नौओं दिशाओं की ओर देखने लगा।३२। उन दिशाओं में मुझे मेघ तो दिखाई नहीं दिए किन्तु तरल आस्फालित उल्मुक रूपी वज्रों की वर्षा होती हुई दिखाई दी।३३। उसके उत्ताप से दसों दिशाओं को करोड़ों योजन दूर पर्यन्तके सम्पूर्ण पदार्थ भस्म होते हुए मैंने देखे।३४। फिर एक क्षण में ही मुझे उस अत्यन्त दूर आकाश में ऊपर से ठण्डी वायु का और नीचे से अग्नि के समान उष्ण वायु का अनुभव हुआ।३५।

एतावति नभोमार्गे कल्पाम्बुदाः स्थिताः।
यस्तेषानग्नितापानां विषयो न च सदृशाम् ॥३६
अथ वारुणदिग्भागादाययौ कल्पमारुतः।
यस्मिंस्तृणवदुह्यन्ते विन्ध्येमेरुहिमालयाः ॥३७
सन्ध्याभ्रसदृशाकारास्तेरुंगार वारिदाः।
भ्रमुर्मस्मभराभ्रणि पूताँगाररजांसि खे ॥३८
सज्वालतिलसद्धातो दुरोऽमलदृशं व्रजन्।
हेमाद्रीणां सपक्षाणामनीक द्रवतामिव ॥३९

अर्णवेष्वनलार्णस्सु क्वथनोत्फालवारिषु ।
वनेष्वस्मृतपर्णेषु दीप्ताग्नितरुधारिषुः ॥४०
ब्रह्मलोकस्थानथेषु ब्रह्मलोकपुरेषु च ।
सांगनावालवृद्धेषु दग्धेषु निपतत्सु खम् ॥४१
उष्ट्रसेन्यमिवाऽऽलक्ष्य गतिमन्निकटं नभः ।
आययावञ्जनश्यामः कल्पाम्बुदगणः क्वणन् ॥४२

वे मेघ आबाश में इतने दूर पर स्थित थे कि जब तक न तो नीचे का अग्निताप ही पहुँच सकता था और न वह जीवित प्राणियों द्वारा दिखाई ही दे सकता था ।३६। फिर पश्चिम दिशा से कल्पवायु प्रवाहित होने लगी, जिसमें विन्ध्य, सुमेरु और हिमालय आदि विशाल पर्वत भी तिनके के समान उड़े जा रहे थे ।३७। आकाश में सन्ध्याकालीन अभ्रों के समान आकार वाले अङ्गार रूपी मेघ वर्षा कर रहे थे और उसमें जलथर मेंघों और पवन से संशोधित हुए अङ्गारों की धूल उड़ रही थी ।३८। वह ज्वाला-विलास युक्त कुपित हुआ वायु अग्नि दिशा की ओर ऐसे ही जा रहा था, जैसे हेभाद्रि आदि पर्वतोंका समूह उड़ा जा रहा हो ।३६। समुद्र अग्नि के समान काढ़े के समान खोलते और उछलते हुए जल से परिपूर्ण हो रहे थे और यन पत्रों से रहित और प्रज्वलित अग्नि रूपी वृक्षों के आश्रय बने हुए है ।४०। जब स्त्री, बालक वृद्धोंके साथ ब्रह्मलोक के अधिपति और ब्रह्मलोक के नगर वहन को प्राप्त हो-होकर आकाश में गिरने लगे ।४१। तब ऊँटों की सेना के समान अलक्षित संचरण व्योम को देखते हुए काजल के समान काले घनघोर कल्पांत मेघ गर्जना करते हुए समीप आ गए। ।४२।

स्थिरकल्पालज्वालाज्ञासुल्यविद्युन्मयाचलः ।
एककोणकविश्रान्तसप्तार्णवपयोभरः ॥४३

अथ ब्रह्माण्डविस्फोटकठिनं घटिताम्बरम् ।
प्राबद्रुतोद्भटतौषारकाष्ठा वृष्टिः पपातह ॥४४
अग्निदाहवनाकाशविद्युदुन्मेषभीषणा ।
चटद्गड्गडास्फोटस्फुटद्ब्रह्माण्डमण्डला ॥४५
धराचटचटास्फोटस्फुटदगारपत्तना ।
गर्जितोर्जितसपातपतल्लोकान्तराकुला ॥४६
सा बभूवाथ सांगारजगद्गेपविलासिनी ।
कृतप्रत्युद्गा वाष्पश्रियोऽम्वलनया भुवः ॥४७
दवृच्चचटारवपूरिताशो ।
भीमोऽभवत्सलिलदानलसन्निपातः
दुर्बारवैरिविषमो महतां बलानां
संग्राम उग्र इस हेतिहतोग्रहेतिः ॥४८

वह कल्पांत मेघ मण्डल स्थिर अग्नि की लपटों के समान अत्यन्त वीभत्स विद्युत युक्त पर्वतों से समन्वित था। उसने अपने एक ही कोण में सप्तावरणक जल भर लिया।४३। फिर वर्षा होने लगी, इससे सम्पूर्ण आकाश का ब्रह्माण्ड विस्फोटके समान अत्यन्त कठोर वज्र जैसे निर्घात से युक्त कर दिया। इसने पहले ही सभी दिशाओं में पिघले हुए तुषार कीं वर्षा कर डाली।४५। यह वर्षा वन और आकाश में विद्युत प्रकाश एवं अग्निदाह के समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती हुई सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने चटपट और गड़बड़ शब्द से तथा विस्फोटसेचूर्ण कर रही थी उसने चटपट शब्द से पृथिवी को विदीर्ण करने के कारण अंगार समूह भी तोड़ दिये थे। गर्जन सहित जल वर्षा से लोकान्तरों को गिराती हुई वह व्याकुल कर रही थी।४६। फिर अङ्गारों से परिपूर्ण जगद्रूप घर में विलसती हुई वह वृष्टि वाष्पश्री की सखीके समान दाह रहित भूमि पर आकर मिल गई थी।४७। उस समय वृहद् भीषण चटपट शब्द को परिपूर्ण करने वाले मेघों और और अग्नियों का जो समागम हुआ वह परस्पर में किसीसे भी पराजित न होने वाले शत्रुओं

के विषम, अत्युग्र, कुशल सेनाओं के पारस्परिक तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से नष्ट हुए उन शस्त्रों से समन्वित युद्धके समान अति भीषण होता था। ।४८।

८९-ब्रह्माण्डकोटर का विनाश

अथावन्नपयस्तेजः पवनानां युगक्षये ।
जाते परमसङ्क्षोभे बभूवास्मिन् जगत्त्रयम् ॥१
तापिच्छविपिनोडीतिनिभभंस्माभ्रभासुरम् ।
महार्णवमहावर्त्तवृत्तिधूमविवर्त्तनम् ॥२
नीलज्वालालवोल्लास हेलाटिमिटिमारटि ।
कृतभस्माभ्रम्भारपूर्णलोकान्तरान्तरम् ॥३
उच्छलदीर्घरुत्कुरैच्छमच्छमत्यास्मकैः ।
तुर्यनुन्नमदासारविसारिजयघोषणम् ॥४
भ्रमद्भस्माभ्रधूमाभ्रं वृहत्कल्पाभ्रमभ्रमम् ।
वाष्पाभ्रविमोद्भ्रन्तसीकरोग्राभ्रवृन्दवत् ॥५
ब्रह्माण्णमित्तिभाँकारभीषणैर्मातरिश्वनः ।
प्रसरैरम्बरोडोनदग्धेन्द्रादिपुरोत्करम् ॥६
जलानलानिलोल्यासस्फुटत्कोटिगताश्मनाम् ।
अविघट्टनटङ्कारैर्जडीभूताक्षकश्रुति ॥७

वसिष्ठजी बोले-हे राम ! पृथ्वी, जल, तेज और वायु का विक्षोभ होने पर त्रिजगत् की जो उत्पत्ति हुई अब उसका वर्णन कहता हूँ,आप श्रवण कीजिए।१। उस समय तीनों जगत् उड़ते हुए तमाल वन के समान उड़ते हुए भस्मरूपी अभ्र से भासुर होते हुए महार्णवोंके भ्रमण शील महान् आवर्तों के समान विचरणशील धूमों से ढकगये।२। उनमें जो धूमयुक्त नीली लपटें निकल रही थी, उनमें विलासपूर्ण टिमटिम शब्द हो रहे थे। उन्होंने भस्माभ्र के ढेरों में लोकान्तर के अन्तर को भी व्याप्त कर दिया।३: उस घनघोर वृष्टि का सर्वत्र व्यापक घोष

हो रहा था, गीली लकड़ियों से छमछम की ध्वनि हो रही थी, इससे प्रतीत होता है कि कोई तुरही ही जयघोष कर रही हैं ।४। सम्पूर्ण त्रिलोकी भ्रमशील भस्मरूपी मेघों से व्याप्त हो गई। उससे महाकल्प के मेघों की शोभा झलकने लगी। भापरूपी मेघों के विभ्रम से वह युक्त होगई उद्भ्रान्त सीकर रूपी मेघोंकी उसमें भले प्रकार स्थिति हुई ।५। ब्रह्माण्ड भित्ति में हो रहे भांकार शब्दों से युक्त भयंकर पवन के प्रवाह द्वारा आकाश मण्डल में उड़ाए गये एवं जले हुए इन्द्रादि पुरोंके समूह से वह भर गया ।६। जल, अग्नि और वायु के उल्लासपूर्ण ताण्डव से बड़े-बड़े पाषाण भी उड़े जा रहे थे इसके परस्पर टकराने से निकलती हुई टंकार ध्वनि से सबके श्रोत्र जड़ हो गए थे ।७।

निरर्गलोल्लसन्मादं सर्गलोपशमक्रमम् ।
सर्गलोपोल्लच्छेषं सर्गलोपविवर्जितम् ॥८
अनारतविपर्यासकारिमास्तनिर्वृतम् ।
बीजराशिरिवाजस्रं पूर्यमाण पुनः पुनः ॥९
उन्मुकान्योन्यनिष्पेषवह्निचूर्णसुवर्णजैः ॥
रजोभिर्विवृतैर्हेमकुट्टिमाकाशकीटरम् ॥१०
भूमण्डलबृहत्खण्डभ्रंष्टैः सद्वीपसागरैः ।
पूर्णसप्तमपाताल लुठत्पातालमण्डलैः ॥११
आसप्तमसुतालान्तमामहीतलपर्वतम् ।
आव्योमैकार्णवीभूत पूर्णप्रलयवायुभिः ॥१२

उस समय निरर्गल नाद गूँज रहा था। सृष्टि के लोप हो जाने के कारण वातावरण शान्तसा हो गया। सर्गलोकमें ब्रह्माका विलास प्रत्यक्ष होगया। यथार्थ में तो यह सम्पूर्ण सृष्टि ही उत्पत्ति और लय से रहित है ।३। अथवा यह निरन्तर परिवर्तन करने वाले पवन से वृत्ति-रहितहैं ।३। अथवा यह निरन्तर परिवर्तन करने वाले पवन से वृत्ति-रहित हैं और बीज के ढेर के समान ही बारवार पूर्णता को प्राप्त होता है ।९। सम्पूर्ण सर्ग में लुआठों के परस्पर आघातों से अग्नि चूर्ण और स्वर्ण से

उत्पन्न होकर फैली हुई आपार वृक्षोंसे आकाश कोटर स्वर्ण कुट्टिम जैसा हो गया।१०। जगत् उस समय सातवें पाताल एक स्थान-च्युत द्वीपों और समुद्रों से परिपूर्ण पृथिवी मण्डल के वृहद खण्डों से और लुढ़कते हुए पाताल से भर गया।११। नीचे पाताल तक, बीच में पृथिवी और पर्वत तक तथा ऊपर आकाश तक प्रलय पवनों से परिपूर्ण हुआ जगत् एक समुद्र के रूप में भर गया।१२।

एकार्णवोऽथ ववृधे शनैः शीघ्रं सरिच्छतैः।
भुवने जल कल्लोलैः कोपो मूर्खाशये यथा ॥१३
मुसलोपमया पूर्वं ततः स्तम्भनिभांगया।
ततस्तालद्रुमाकार धाराऽऽसारसारयाः ॥१४
ततो नदीप्रवाहोग्रजयपातैकपातया।
सप्तद्वीपमहीपीठसममेदुरमेधया ॥१५
वह्निर्विदाह द्वृष्टया शममभ्याययौ तथा।
शास्त्रसज्जनसगत्या गाढ ापत्पद यथा ॥१६
ऊर्ध्वाधरस्थपरिवृत्तपदार्थजात-
मन्तः कर्णः खणखणायितशैल-ज्जम्।
ब्रह्माण्डकोटरमभूद्विधुरं कुवाल-
ललाविलोलेमिव बिल्वफल विशुद्धम् ॥१७

फिर यह एकार्णव ही शनैः शनैः शीघ्र बहने वाली नदियोंके द्वारा जल की तरङ्गों से बढ़ता भय मूर्ख मनुष्य के चित्त में क्रोध के समय लोक में वृद्धि को प्राप्त होने लगा।१३। प्रथग मूसल के आकारमें फिर स्तम्भ के आकारमें फिर ताल वृक्ष के आकार में उत्तरोत्तर अत्यन्त मोटी होती हुई वृष्टिधारा पड़ने लगी।१४। फिर जैसे नदी प्रवाह से उग्र जलपात होता है उसके समान जलधार गिराने वाली एवं सातों दोषों से युक्त भूपीठ के समान अत्यन्त मोटी जल धाराऐं गिरने लगीं।१५। उस वृष्टिसे वह दाहमयी अग्नि उसी प्रकार शांत हो गई जिस

प्रकार कि सज्जनों और शास्त्रों की सङ्गति से भीषण आपदाओं का पाद भी शान्त हो जाता हैं।६। जिससे ऊपर नीचे के अनेकों भ्रमण शील पदार्थ थे, जल-कणों से पर्वत रूपी मज्जा खनखना रही थी, ऐसा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कोटर जैसा ही नष्टहो गया जैसे कि बालकों की लीला से ही शुद्ध विल्वफल नष्ट हो जाता है।१६।

६०—छायारूपिणी कालरात्रि का वर्णन

अथ राघव रुद्रं तं तदा तस्मिन्महाम्बरे।
प्रवृत्तं नर्तितुं मत्तमपश्यं विततात्रृतिम् ॥१
व्योमेवाकृतिमापन्नमजहृगयापितां निजाम्।
महाकारं घनश्यामं दशाशापरिपूरकम् ॥२
अर्केन्दुवह्निनयन चयद्दशदिगम्बरम्।
घनदीर्घप्रभाजालमालानं श्यामल च्छिषाम् ॥३
वड़वाग्निदृशं लोल भुजोर्मिभरभासुरम्।
एकार्णवार्णो द्वाग्देहवन्धेनेव समुत्थितम् ॥४
पश्याम्यनन्तरमह यावत्तस्य शरीरतः।
छायेव परिनिर्याति नर्तनानुविधायिनी ॥५
सूर्येष्वविद्यमानेषु महातमसि चाम्बरे।
स्थिता कथमियं छाया भवेदिति मतिर्मम ॥६
यावद्विचारयाम्याशु तावत्तस्य तदा पुरः।
सा स्थिता परिनृत्यन्ती विस्तीर्णा श्रीत्रिलोचना ॥७

वशिष्ठजी ने कहा-हे राघव ! फिर उस महाकाल में मुझे मत्त हुए भगवान रुद्र नृत्य करते हुए दिखाई दिए, इस समय वे आकाशके समान वृहदाकार, व्यापक महदाकृति वाले, घन के समान श्याम वर्ण वाले सूर्य चन्द्र, अग्निरूपी तीन नेत्रवाले दिशा रूपी परिधानकारी, दीर्घ

प्रभाजाल से समन्वित होने से नीलम के बन्धन स्तम्भ के समान दिखाई देने वाले, बड़वानल जैसे दीप्त नेत्र और चंचल भुजा रूपी तरङ्गों से समुज्जवल शरीर वाले ऐसे लग रहे थे, जैसे प्रलयकालीन महार्णव का जल ही देह धारण कर साक्षात् प्रकट हो गया हो। फिर मुझे दिखाई दिया कि उनके नृत्य का अनुकरण करती हुई एक छाया उनके देह से निर्गत हुई उसे देखते ही मैं सोचने लगा कि जब सूर्य ही उपस्थित नहीं है और आकाश घोर अन्धकार से परिपूर्ण है तब यह छाया कैसे स्थित हो गई ? मेरे इतना सोचते-सोचते ही वह छाया नृत्य करती हुई तत्काल भगवान् रुद्र के समक्ष उपस्थित होकर ठहर गई। विस्तीर्ण देह और तीन नेत्रों सहित साक्षात् श्री हीन प्रतीत होती थी।१—७।

कृष्णा कृशा शिरालांगी जर्जरा वितताकृतिः।
ज्वालाकुलानना लीलवनसभारशेखरा ॥८
विश्वरूपण्यार्कादिशिरः कमलजालकैः।
कृतमालाऽमलाकीकवातवह्निमयाञ्चला ॥९
प्रलम्बकर्णा लुलितनागा नृशवकुण्डला।
शुण्कतुम्बीलताष्ठीला दीर्घा लोलाऽसितस्तनी ॥१०
दन्तेन्दुमालाबिमला विमलोद्योतपाततः।
तमीर्णवोद्ध्ववर्लेखेव वृत्तावर्तविवर्तिनी ॥११
क्षणभेकभुजाकारा श्रणं बहुधुजाकुला।
अनन्योग्रभुजाक्षिप्तजगन्नर्तनमण्डपा ॥१२
क्षिप्रमेक मुखाकारा क्षिप्रं बहुमुखाकृतिः।
अनन्तोग्रमुखी क्षिप्रं निर्मुखी चापि च क्षणम् ॥१३
एकपादान्विता क्षिप्रं क्षिमं पादशतान्विता।
क्षणं चानन्तपादाढ्या निष्पादाकारिणी क्षणम् ॥१४

वह कृशांगी, काली नसों से परिपूर्ण अङ्ग वाली, जर्जरा वितताकार और ज्वालाओं से व्याप्त मुख वाली थी। चञ्चल बन की समृद्धि रूप पुष्पादि से उसका शीश शोभित हो रहा था।८। विभिन्न वर्णों के सूर्य

आदि देवताओं के शिररूपी कमलों की माला उसके कण्ठ में विभूषित थी और स्वच्छ आलोक वाले पवन से प्रतीत हुआ अग्नि ही उसका आँचल था ।६। उसके लम्बे कानों में चपल नाग झूम रहे थे और दो मनुष्य देह कुण्डल के रूप में सुशोभित थे, सूखी हुई तुम्बीलता के समान दीर्घ, चञ्चल लटकते हुये असित् वर्ण के दोनों स्तन थे ।१०। दांत रूपी चन्द्रमाला से स्वच्छ होने के कारण वह दन्त-प्रकाश के गिरने से और अन्धकार रूपी समुद्र के आवर्तों से चपल उर्ध्वलेखा-सी प्रतीत हो रही थी ।११। क्षण भर में ही वह कभी तो एक भुजा के आकार वाली और कभी अनेक भुजाकार हो जाती थी तथा क्षण भर में ही वह अपनी अनन्त भुजाओं से जगत रूपी नतन मण्डल की ऊपर फैलाती हुई व्यग्रता उत्पन्न करती थी ।१२। क्षण में ही वह एक मुख वाली और क्षण भर में ही अनन्त मुख वाली हो जाती थी तथा क्षण भर में ही उसका एक भी मुख नहीं रहता था ।१३। वह तुरन्त ही एक पांव वाली तुरन्त ही सैकड़ों और अनन्त पैरों वाली तथा क्षण भर में ही एक भी पांव से रहित हो जाती थी ।१४।

कालरात्रिरियं नेति मयाऽनुमितदेहका ।
काली भगवती सेयमितिनिर्णीतसज्जना ।१५
ज्वालापूर्णारघट्टोग्रखाताभनयनत्रया ।
ज्तलद्धरेन्द्रनीलाद्रिसानूपमललाटभूः ।१६
लोकालोकेन्द्रनीलोग्रश्वभ्रभीमहनद्वया ।
वातस्कन्धगुण प्रोततारामुक्ताकलापिनी ।१७
नृत्यादभुजलतापुष्पैन खशुभ्रामामण्डलैः ।
पूर्णचन्द्रशतानीव भ्रामयन्ती नभस्तले ।१८
ततोनृत्तवशावेशाद्वर्द्ध मानशरीरिणी ।
मया दृष्टावधानेन गगनोभोगभूरिणा ।१६
यावत्तयाऽऽवृता देहे हेलावलनसारया ।
माला मलयकैलाससह्यमन्दरमेरुभिः ।२०

तस्या अंगेषु दृष्टानि पुराणि नगराणि च।
ऋतवश्च त्रजो लोका मासाँहोरात्रमालिका:२१

उसका वह रूप देखकर मैंने अनुमान किया कि यह कालरात्रि हो सकती है। सज्जनों ने इसे काली भगवती निर्णीत किया है।१४। उसके तीन नेत्रों की समानता अरघट्ट यन्त्र के शिर में तीन गर्तों की ज्वालाओं सहित होने से की जाती है। उसका ललाटभू मानो इन्द्र नील पर्वत का वह प्रस्थ भाग है, जहाँ पृथ्वी धधक रही हो।१६। उसके दोनों जबड़े मानो लोकालोक पर्वत के इन्द्रलोक के उग्रगर्त जैसे भीषण हों, क्योंकि उसके कण्ठ में वात स्कन्द रूपी धागे में पिरोए हुए तारे रूपी मोतियों की माला सुशोभित थी।१७। नृत्य करती हुई उसको भुजालता रूप फूलों सहित नखों की शुभ आभारूपी मेघमण्डल से आकाश तल में शतशः पूर्ण चन्द्रों का नाच नाचती हुई लग रही थी।१८। फिर आकाश में विद्यमान अनन्ताकाश के समान व्यापक रूप वाली उस भगवती को अपने योग-बल से मैंने देखा कि नृत्य के आवेश में उसका शरीर उड़ता चला जा रहे हैं।१९। फिर मुझे दिखाई दिया कि विकास पूर्बक नृत्य करती हुई उस काली ने मलय, कैलाश, सह्य मन्दर और सुमेरु आदि पर्वतों की माला को बनाकर अपनी देह में धारण कर रही थी।२०। फिर मैंने उसके अङ्गों में नगर, ग्राम, ऋतु, मास, अहोरात्र और त्रैलोक्य रूपी मालाओं को विभूषित हुए देखा।२१।

मुक्तालतादिकं नद्यः कालिन्दी त्रिपथादिकः।
धर्माधर्माबुभौ कर्णभूषणे चान्यकर्णयो।२२
स्तनास्यस्यास्तु चत्वारः श्रवद्धर्मपयोलवाः।
वेदाः सकलशास्त्रार्थचतु:संस्थानचूचुकाः।२३
त्रिशूलैः पट्टिशैः प्रासैः शरशक्त्यृष्टिद्गरैः।
नियदायुधजालानि स्रग्दामानि विभर्ति सा।२४
चतुर्दशविधाभूतलातयो या सुरादिकाः।
तस्याः शरीरशालिन्यास्ता लोमा वलय स्थिताः।२५

तस्याश्चनगरग्रामगिरयो देहशायिनः ।
नृत्यन्त्या सह नृत्यन्ति पुनर्जन्ममुदेव ते ॥२६

कलिन्दी, त्रिपथगा (गंगा) आदि नदियाँ उसके मुक्ताहार के रूप में और धर्म अधर्म उसके अन्य कानों के आभूषण रूप में शोभित हो रहे थे ।२२। चारों वेद उसके धर्म रूपी दूध के देने वाले चार स्तन थे और सम्पूर्ण शास्त्रार्थ रूपी उसके चूचूक थे ।२३। त्रिशूल, पट्टिश प्राश, बाण, शक्ति, खड्ग और मुद्गर और जितने प्रकार के भी शास्त्रास्त्र थे, वह सब पुष्पमालों के रूप में उसने धारण कर रखे थे ।२४। सुरादिक रूपी जो चौदह प्रकार की भूत जातियाँ हैं, ये सब देहधारी उसकी रोमाबली थीं ।२५। उसकी देह में विद्यमान नगर, ग्राम पर्वत आदि इस प्रकार नृत्य कर रहे थे, मानो वह अपने पुनर्जन्म की प्राप्ति के आनन्द में नृत्य कर रहे हो ।२६।

तहती भैरवी देवी नृत्यन्त्यापूरिताम्बरा ।
तस्य कल्पान्तरुद्रस्य सा पुरो भैरवाकृतेः ॥२७
शिरोमन्दाश्रिताग्राग्निदग्धस्थाणुवनावनिः ।
कल्पान्तवातव्याधृता वनमालेव नृत्यति ॥२८
कुद्दालोलूखलवृसीफलकुम्भकरण्डकैः ।
मुसलोदञ्चनस्थालीस्तम्भैः स्नग्दामधारिणी ॥२९
एवंविधानां सग्दामजालानां कुसुमोत्करम् ।
किरन्ती संसृजन्तीव नृतक्षुब्ध क्षयक्षतम् ॥३०
वन्द्यमानस्तया सोऽपि तथैवाकाशभैरवः ।
तथैव वितताकारस्तदोच्चैः परिनृत्यति ॥३१
डिम्बंडिम्ब सुडिम्बं पचपच शहसा ह्यम्यझम्यं प्रझम्यं
नृत्यन्ती शब्दवाद्यैः स्रजमुरसि शिरःशखर ताक्ष्यंणक्षैः ।
पूर्णं रक्तासवानां यममहिषमहाश्रृंगामादाय पाणी ।
पायाद्वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितयाः भैरवः कालरात्र्या ॥३२

हे राम ! सम्पूर्ण आकाश मण्डल को परिपूर्ण करने वाली वह महती कालरात्रि रूपी भैरवी उन भैरव रूप में स्थित कल्पान्त रुद्र के सामने नाच रही थी ।२७। कल्पान्तकालीन उन महारुद्र के ललाट की आश्रित तृतीय नेत्राग्नि से दग्ध होने के कारण स्थाणु रूप में अवशिष्ट वनों से सम्पन्न भूमि वाली एवं कल्पान्तवात से काँपती हुई वनमाला के समान ही वह नाच रही थी ।२८। कुदाल, उलूखल का हल का फल, कुम्भ करण्डक, मूसल, सूप, स्थाली और स्तम्भ आदि की मालाओं को धारण किये हुये वह नृत्य कर रही थी ।२९। इस प्रकार माला में पिरोये हुये विभिन्न भाँति के पुष्पो, जो नाचने में क्षुब्ध होते हुये टूट कर गिर रहे थे, उन्हें बिखेर कर नवीनता प्रदान करती हुई नृत्य में लीन थी ।३०। इस प्रकार उस भीषण रूप वाली कालरात्रि द्वारा वन्दित हुये, वैसा ही भयङ्कर रूप एवं आकार धारी अनन्ताकार भगवान् रुद्र भी उसके समान महानृत्य में उन्मय थे ।३१। रक्त और आसवों से युक्त यम के भैंसे का सींग हाथ में लेकर डिम्ब-डिम्ब और झम-झम आदि शब्द वाद्यों के सहित नृत्य करती हुई वह देवी कण्ठ में मुण्डमाल और शिर में गरुड़-पंख धारण किये उस प्रलय काल में जगत् को भक्षण कर अत्यन्त आनन्दित हुई कल्पान्त रुद्र रूपी भैरव को नमस्कार कर रही थी । इस प्रकार नर्तन शील एवं प्रसन्नता उस काल रात्रि द्वारा वन्द्यमान वह भगवान् भैरव आपका मंगल करें ।३२।

९१—स्वरूपज्ञान से परम शान्ति

किमेतद्भगवन्सर्वनाशे नृत्यति केन सा ।
किं शूर्पफलकुम्भाद्यैस्तया: स्रग्दा!मधारणम् ।।१
किं नष्टं त्रिगद्भ्रूय: किं काल्या देहसंस्थितम् ।
परिनृत्यति निर्वाणं कथं पुनरुपागतम् ।।२

नासौ पुमान्न चासौ स्त्री न तन्नृत्तं द ताावुभौ ।
तथाभूते तथाचारे आकृती न च ते तयोः ।३
अनादिचिन्मात्रनभो यत्तत्कारणकारणम् ।
अनन्तं शान्तमाभाँसमात्र मव्ययमातरम् ।४
शिवं तत्सच्जिवं साक्षाल्लक्ष्यते भैरवाकृति ।
तथास्थितो जगच्छान्तौ परमाकाश एव सः ।५
चेतनत्वात्तथाभूतस्वभावविभवादृते ।
स्थातुं न युज्यते तस्य यथा हेम्ना निराकृतिम् ।६

श्रीराम बोले—हे भगवान् ! जब उस प्रलय में सर्वनाश ही हो गया तब वह भगवती किस अङ्ग से नृत्य कर रही थी । उस समय रूप, उलूखल, कुम्भ आदि सब नष्ट हो चुके थे तो उनकी माला उसने कैसे धारण की हुई थी ? यह सब आप मेरे प्रति कहिए ।१। त्रिजगत् का क्या नष्ट हुआ ? उस काली के शरीर में क्या स्थित रहा और निर्वाण में लीन हुआ जगत् पुनः आकर कैसे नृत्य करने लग गया ? ।२। वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! वह रुद्र भगवान् न तो स्त्री ही हैं और न पुरुष और न उन्होंने कोई नृत्य ही किया है । यथार्थ में तो उन काली और रुद्र कारणों का भी कारण, आदि रहित, चिन्मात्र, आकाशरूप, अनन्त, शांत अभासमात्र और अव्यय है, वह सर्वव्यापी हैं ।४। वही शिव, सदाशिव ब्रह्म ही प्रलयाकाल में भैरव रूप से साक्षात् दिखाई देते हैं, क्योंकि जगत् के शान्तिकाल में वही परमाकाश भैरवाकार दिखाई देता है ।५। वह ब्रह्म चेतन होने के कारण अपने स्वरूपात्मक वैभव का परित्याग कर उस प्रकार स्थित नहीं कर सकता, जिस प्रकार कि सुवर्ण अपनी आकृति को नहीं छोड़ता ।६।

कथमास्तां वद प्राज्ञ चिन्मात्रं चेतनं बिना ।
कथमास्तां वद प्राज्ञ मरिचं तिक्ततां धिना ।७

विना तिष्ठति माधुर्यं कथयेक्षु रसः कथम् ।
निर्माधुर्यश्च यस्त्विक्षु रशो नहि स तद्रसः ।८
अचेतन यच्चिन्मात्रं न तच्चिन्मात्रमुच्यते ।
न च चिन्माचनभसो नष्टं क्वचन युज्यते ।९
स्वसत्तामात्रकादत्यन्किक्रिचत्तस्य न युज्यते ।
अन्यत्वमुररीकर्तुं व्योमानन्यमसौं किल ।१०
तस्मात्तस्य यदक्षुब्धं सत्तामात्रं स्वभासनम् ।
अनादिमध्यपर्यन्तं सर्वशक्तिमयात्मकम् ।११
तदेततिजगत्सर्गकल्पान्तौ व्योम भूर्दिशः ।
नाश उत्पादनं नाम बिना माभासन नभः ।१२

हे प्राज्ञ ! बताओ तो सही कि चेतन के बिना चिन्मात्र की स्थिति कैसे रह सकती ? बताओ तिक्तता के बिना मिरच की स्थिति कैसे होगी ? बताओ माधुर्य के बिना ईख का रस कैसे रहेगा ? क्योंकि बिना मिठास के ईख का रस हो ही नहीं सकता ।८। जो अचेतन है, वह चिन्मात्र कभी नहीं कहा जा सकता । चिन्मात्र आकाश का कुछ नष्ट होने की बात कहनी भी युक्त संगत नहीं है ।९। उस ब्रह्म की स्वसत्ता मात्र से भिन्न कुछ भी कहा जाना अयुक्त ही होगा । यथार्थ में तो वह जगदाकार से अन्य रूप होने के लिये प्रथम अपनी आत्मा को आकाश से अभिन्न बना लेता है ।१०। इसलिये उस अक्षुब्ध अनादि शान्त शून्य और सर्वशक्तिमयात्मक ब्रह्म की जो स्वसत्तामात्र स्थित है, वही इस त्रिजगत् का सृष्टि और कल्पान्त है । यही आकाश, पृथ्वी और दिशा स्वरूप है। उनमें नाश और उत्पत्ति का आभास अविद्या से ही है ।११–१२।

जननं मरणं मायामोहमान्द्यमवस्तुता ।
वस्तुता च विवेकश्च वन्धो मोक्षः शुभाशुभे ।१३
विद्याविदेहत्वं सदेहत्वं क्षणश्चिरम् ।
चञ्चलत्वं स्थिरत्व वात्वं चाह चेतरश्च तत् ।१४।

सदसच्चार्थं सदसन्मौर्ख्यं पांडित्यमेव च ।
देशकालक्रियाद्रव्यललनाकेलिकल्पनम् ॥१५
रूपालोकमनस्कारकर्मबुद्धीन्द्रियात्मकम् ।
तेजोवार्यनिलाकाश पृथ्व्यादिकमिद ततम् ॥१६
एतत्सर्वमसौ शुद्धचिदाकाशो निरामयः ।
अजहद्व्योमतामेव सर्वात्मैवैवमास्थितः ॥१७

जन्म, मरण, माया, मोह, मान्द्य, अवस्तुता, विवेक, बन्ध, मोक्ष शुभ अशुभ, विद्या, अविद्या, विदेहत्व, त्रण, चिरकाल चपलता स्थिरता तुम, मैं यह, वह, सत्, असत्, मूर्खता पाण्डित्य, देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कलना, केलि, कल्पना, रूप, आलोक, कर्म बुद्धि, तेज, जल, पवन, आकाश और पृथ्वी आदि जो कुछ भी है, यह सब निरामय चिदाकाश है और अपने रूप का कभी परित्याग न करता हुआ सदैव सर्वात्म रूप होकर ही अवस्थित है ।१३-१७।

चिन्मयः परमाकाशो य एव कथितो मया ।
एषोऽसौ शिव इत्युक्तौ भवत्येस सनातनः ॥१८
स एष हरिरित्यास्ते भवत्येष पितामहः ।
चन्द्रोऽर्कं इन्द्रो वरुणो यमो वैश्रवणोऽनलः ॥१९
अबोधौ बोध इत्येव चिद्व्योमैवाऽऽमनि स्थितम् ।
तस्माद्भेदो द्वैतमैक्यं नास्त्येवेति प्रशाम्यताम् ॥२०
तावत्तरगत्वमयं करोति
जीवः स्वसंसारमहासमुद्रे ।
यावन्न जानाति परं स्वभावं
निरामयं तन्मयतामुपेत ॥२१
ज्ञाते तु शान्तिं स तथोपयाति
यथा न सोऽब्धिनं तरगकोऽसौं ।
यथास्थितं सर्वमिदं शान्तं
भवत्वनन्तं परमेव तस्या ॥२२

हे राघव ! जिस चिन्मय परमाकाश का मैंने आप से वर्णन किया है, वही 'शिव' नाम से कहा गया सनातन पुरुष है ।१८। उपासकों की भावनानुसार वही, हरि वेश में, वही पितामह ब्रह्मा रूप में, वही चन्द्र, सूर्य, इन्द्र वरुण, यम कुवेर अग्नि रूप में स्थित होता है।१६। वेही चिदाकाश ब्रह्म अबोध रूप से सर्ग रूप में और बोध रूप से निज स्वरूप में स्थित रहता है। इसलिये द्वैत-अद्वैत का कोई भेद नहीं है, यह जानते हुए आप शान्त हो जाइये ।२०। यह जीव अपने परब्रह्मात्मक स्वभाव को न जानता हुआ संसार-सागर की जन्म-मरणादि रूपी तरंगों की कल्पना करता है और अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर तन्मयता युक्त होकर अपने उसी निरामय स्वरूप में अवस्थित हो जाता है ।२१। स्वरूपज्ञान होने पर जीव को वह शान्ति मिल जाती है जिसमें न तो सागर ही रहता है न तरंग ही, यथावस्थि यह संम्पूर्ण विश्व शान्त और अनन्त रूप ही हो जाता ।२२।

९२–शिव और काली चिन्मात्र ही हैं

चिन्मात्ररपमाकाश एषः य कथितो मया ।
एषोऽसौ शिव इत्युक्तस्तदा रुद्रः प्रनृत्यति ॥१

याऽसो यस्याऽऽकृतिर्नासावाकृतिः कृतिनांवर ।
तच्चिन्मात्रघनं व्योम तथा कचति तादृशम् ॥२

मया दृष्टातदाकाशभेव शान्तं तदाकृतिः ।
मयैव तत्परिज्ञातं नान्यः पश्यति तत्तथा ॥३

यथा नाम स कल्पान्तः स रुद्रः सा च भैरवी ।
मायामात्रं तथा सर्वं परिज्ञातमलं मया ॥४

चिद्व्योमेव परं शून्यं सन्निवेशेन तेन तत् ।
तथा संलक्ष्यते नाम भैरवाकारता गतम् ।५

वाच्यवाचकसम्बन्ध बिना वोधो न जायते ।
यस्मात्तस्मात् त्वयि मयो दृष्टमेव प्रवर्णितम् ।६
यदेव वाच्यपारूढमेतद् राम सदैवे ते ।
रूढाधिभौद्विकदृशः क्षणान्मायात्मतां गतम् ।७

वसिष्ठ जी बोले—हे राम ! मेरे द्वारा कहा गया यह चिन्मात्र परमाकाश ही है । विश्व रूप से कहा जाने वाला यह प्रलयकाल में रुद्र रूप से नृत्य करता है ।१। हे कृतियों में श्रेष्ठ ! रुद्र की भयङ्कर आकृति यथार्थ में उसकी अपनी नहीं है, अपितु उस प्रकार से वह चिन्मात्र घनाकाश ही स्फुरित होती है ।२। मैंने उस भयङ्कर मूर्ति को परम शान्त चिदाकाश रूपी ही देखा । जिस रूप में मैंने उन्हें जाना उस रूप में कोई अतात्विक व्यक्ति नहीं देख सकता ।३। जो वेह कल्पान्त, वह रुद्र, और वह भैरवी है, यह सब मायामात्र ही है । सात्विक बुद्धि से मैंने भले प्रकार जान लिया ।४। वह परमशून्य चिदाकाश ही उस आकृति विशेष को धारकर भैरवाकार दिखाई देती हैं ।५। क्योंकि वाच्य वाचक सम्बन्ध के बिना बोध नहीं हो सकता, इसलिये कल्पना से परिवर्तित रूप में मैंने जो कुछ देखा, वह आपसे कह दिया ।६। अधिभौतिक दृष्टि दृढ़ होने से आपकी वाणी को दृढ़ता प्राप्त हुई है यह क्षण भर में ही मायात्मक हो जाती है ।७।

न भैरवी सा नैवाऽसौ भैरवी नैव संक्षयः ।
समस्तमेव तद्भ्रान्तिमात्रं जिद्व्योम् भासते ।८
स्वप्ननिर्माणपुरवत् सांकसांकल्परणवेगत् ।
कथार्थसार्थरसवन्मनोराज्यविलासवत ।९
चिन्मात्रकाशमेवाऽछ कचति स्वात्मनाऽऽत्मनि ।
तथा नाम यदाभाति तदात्मैव जगत्तद्वा ।१०
शिवयोरेवमाकारो निराकारोऽगं वर्णित ।
अधुना श्रृणु ते वक्ष्पे नृत्यस्याऽनृत्ततास्थितिम् ।११

यन्नाम चेतनं यत्र यदवश्यं स्वभावतः।
स्पन्दधर्मि भवत्येव वस्तुता हि स्वभावजा ।१२
यः स्पन्दश्चिद्घनस्याऽस्य शिवस्याऽस्य स एव नः।
स्ववासनावेशवशान्नृत्यमेव विराजते ।१३
सतः स कल्पान्त शिवो रुद्रो रौद्राकृतिद्रुतम्।
यन्नृत्यति सि तद्विद्धि चिद्घनस्पन्दन निजम् ।१४

यथार्थ में तो वह न भैरवी है, न भैरव और न प्रत्यक्ष काल ही हैं अपितु सब भ्रान्ति है। वस्तुतः यह चिदाकाश ही आसमान हैं।८। स्वप्न में निर्मित हुये सागर के समान सङ्कल्पित सागर के वेग जैसा कथा के अर्थ में जो सोमरस है, वैसा अथवा मनोराज्य के तुल्य जो भ्रम स्वरूप में प्रकाशित रहता है और अबोध अवस्था में प्रतीत होता है।१०। इस प्रकार यथार्थ में निराकार ब्रह्म का भैरव भैरवी से मैंने वर्णन किया है अब उस अमृत्यस्वरूप की नृत्यस्थिति को कहता हूं, उसे सुनियें।११। जिस चेतन में चेतत्व का स्वभाव है, वह स्पन्द धर्मो ही हैं, वस्तुतः स्वभाव से ही स्थित होती हैं।१२। चिद्घन का स्पन्द ही शिव का स्पन्द है और वही वासना के वशीभूत होकर नृत्यरूप से निराला हैं।१३। कल्पान्त में जो शिव भयानक रुद्र रूप में द्रुति वेग से नृत्य करते हैं उसके चिदघ्न का अपना स्पन्द ही जानिए।१४।

यच्चेद चेत्यते नाम तत्स्वभावोऽस्य क्लगति।
चित्स्वभावस्य शान्तस्य स्वसत्तायामवस्थिते ।१५
यथा स्वप्ने चिदेवाऽन्तः पुरपत्तनवद्भवेत्।
पुरादि न तु तत् किञ्चिद्विज्ञानाकाशमेव तत् ।१६
आत्मनाऽऽत्मनि चिच्छन्यं ज्ञात्वा च ज्ञेयमप्यलम्।
तथा च सर्गादारभ्य वेत्ति स्वं कचनं च तत् ।१७
तस्मान्न द्वैतमस्तीह न चैक्यं न च शून्यता।
न चेतनाचेतनं वै ज्ञौनमेव न तच्च वा ।१८

न चेतति क्वचित् किञ्चित्कश्चिच्चेत्यात्मभावतः।
तेन चेतापि नास्तीव मौनमेवाऽवशिष्यते ।१९
क्वेन्निजं प्रकृतमेव यथाप्रवाह-
माचारजालमचलः परमार्थमौनात् ।
निर्मानमोहमदभेदमनगजीव-
माकाशकोशविशदाशयशान्तमास्स्व ॥२०

और यह जो चेतित है वही रुद्र, काली और नृत्य रूप में ही जाता है, भित्स्वभाव और शान्त रूप यह ब्रह्मजनित सत्ता में ही अवस्थित रहता है।१५। जिस प्रकार स्वप्न में चिति ही अन्तःकरण में ग्राम या नगर रूप हो जाता है वस्तुतः वहाँ नगर आदि की शून्यता ही है वह जो कुछ विज्ञानाकाश के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं हैं ।१६। ज्ञेय का ज्ञान करके चिति आत्मा से आत्मा में सदा ही ज्ञेय समझती है और सर्ग से प्रलय पर्यंत जो स्थिति हैं उसे अपना स्फुरण मानती है।१७। इसलिये द्वैत-अद्वैत, चेतन, अचेतनादि कुछ भी नहीं हैं, केवल मौन ही है या फिर मौन भी नहीं है।१८। चिति के चेत्य स्वरूप होने से कुछ चेतनता नहीं इसलिये चैत्य और चेतन क्रिया के अभाव में चैत्यता भी नहीं हो सकती है। केवल मौन ही शेष रहता हैं।१९। हे राम ! आप भी अपने प्रकृत कार्यों को यथाक्रम चलने दीजिये और परमार्थ दृष्टि से मौन रहकर उससे मान, मोह मद आदि अभेद अङ्गों और जीवाभिमान से रहित होकर आकाश शोक के समान विशद आशय एव शान्त हो जाइये।२०।

९३—काली का शिव में विलीन होना

इति नृत्यति सा देवी दीर्घदोदण्डमण्डलैः।
परिस्पन्दात्मकैर्व्योम कुर्वाणा घनकाननम् ॥१

क्रियाऽसौ नृत्यति तथा चितिशक्तिरनामया।
अस्या विभूषण शुपकु द्दालपटलादिकम् ॥२
चित्स्पन्दोन्तर्लगद् ध्ऽत्ते कल्पनेव पुरं हृदि।
सैवा वा जगदित्येव कल्पनैव यथापुरम् ॥३
पवनस्य यथा स्पन्दस्तथैवेच्छा शिवस्य सा।
यथा स्पन्दोऽनिलस्याऽन्तः प्रशान्तेच्छस्तथा शिवः ॥४
नृत्यन्त्याऽथ यदा तत्र तथा तस्मिम् पराम्बरे।
काकतालीययोगेन संरम्भवशतः स्वयम् ॥५
निकटस्थः शिवः स्पृष्टः स मनागभ्रभन्तिकम्।
वाडवोग्निः स्वनाशायाऽऽवहन्त्येवाऽम्बुलेखया ॥६
स्पष्टमात्रै शिवे तस्मिंस्ततः परमकारणे।
प्रवृता प्रकृति गन्तु सा शनैस्ततुतां तथा ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! यह कालरात्रि रूपिणी जो काली नृत्य करती है उसने तो अपनी परिस्पन्दनात्मक दीर्घ भुजाओं से सम्पूर्ण आकाश को एक घना अरण्य ही बना दिया हैं ।१। क्रिया रूप हुई वह चितिशक्ति ही वहाँ नाचती है परन्तु यथार्थतः उसमें नर्तनादि विकार का अभाव ही है। यह सूप, कुदाल और पटलादि तो उस क्रियात्मक चिति के ही आभूषण हैं ।२। जिस प्रकार हृदय की कल्पना ही नगर रूप हो जाती है उसी प्रकार चिति का स्पन्दन जगद्रूप हो जाता है। जैसे कल्पना नगर है वैसे ही चिति जगत् है ।३। वायु के स्पन्दन के समान ही कालरात्रि रूप में यह शिव की इच्छा है। जैसे स्पन्द वायु से भिन्न नहीं है वैसे ही शिव की इच्छा शिव से भिन्न नहीं है।४। समुद्र की प्रवाहित जलरेखा का बड़वानल से छूने के समान ही चिदाकाश में नाचती हुई उस कालरात्रि ने काकतालीय योगवश प्रेम सहित रुद्र ने समीप वाले रुद्र को छुआ, तभी उसका आवरण रूप शक्ति अंश न्यूनता को प्राप्त हो गया ।६। शक्ति अंश के कम होने पर शिव

स्पर्श की प्राप्त हुई वह कालरात्रि शनैः-शनैः अपने अव्यक्त भाव और लघुत्व को प्राप्त होने लगी ।७।

अनन्ताकारतां त्यक्तवा सम्पन्नागिरिमात्रिका ।
ततो नगरमात्राऽसौ ततश्च द्रुमसुन्दरी ।८
ततो व्योमसमाकारा शिवस्यैवाऽऽकृति ततः ।
सा प्रविष्टा सरिच्चान्तर्भरम्भेव महार्णवम् ।९
एक एवाऽभवदथो शिवया परिवर्जितः ।
शिव एव शिवः शान्त आकाशे शमनोऽभितः ।१०
भगवच्छिवसंस्पृष्टा सा शिवा परमेश्वरी ।
किमर्थं मागता शान्तिमितिमे ब्रूहि तत्वतः ।११
सा रामः मकृति प्रोक्ता शिवेच्छ पारमेश्वरी ।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ।१२
स परः प्रकृतेः प्रोक्तः परुषः पवनाकृति
शिवरूपधरः शान्तः शरदाकाशशान्तिमान् ।१३
संविन्मात्रै कधर्मित्वात् काकतालीययोगताः ।
संविद्देवी शिव स्पृट्वा तन्मयीव भवत्यलम् ।१४

उसने अपने अनन्ताकार का परित्याग कर दिया और पर्वताकार हो गई, फिर नगराकार मात्र होकर वृक्ष सुन्दरी रूप हो गई ।८। फिर वह आकाश के आकार वाली हो गई उसके पश्चात् जैसे नदी समुद्र में मिल जाती है, वैसे ही सब आकृतियों का परित्याग कर शिव में लीन हो गई ।९। तब तो शिवा-रहित एक मात्र शिव ही वहाँ रह गये । अब चिदाकाश, स्वप्न, शान्त और सब उपद्रवों काश मन करने वाले शिव ही स्थित थे ।१०। श्रीराम ने पूछा—हे भगवान् ! शिवजी का स्पर्श करते ही वह परमेश्वरी शिवा शान्ति को किस प्रकार प्राप्त हो गई वह मुझे बताइए ।११। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! जो प्रकृति कही गई है, वही जगन्माया नाम से प्रसिद्ध स्वाभाविक स्पन्दन शक्ति है ।१२। वह प्रकृति से परे, पवनाकृति पुरुष शिव रूप धारण किये हैं, शरत्कालीन आकाश के समान

स्वच्छ शान्ति धारण करने वाले एवं शान्त वही है।१३। चिति शक्ति की आश्रयभूत होने से प्रकृति को चितिशक्ति ही जानो। काकताली योग से यही शिवजी का स्पर्श करके शिव रूप हो जाती है।१४।

पुंसश्छायां निजच्छाया प्रविष्टस्य शरीरकम्।
यथाऽऽशु प्रविशत्येव प्रकृतिः पुरुषं तथा।१५
चेतित्वा चिन्निजं भाभं पुरुषाख्यं सनातनम्।
भूयो भ्रमति संसारे नेह तत्तां प्रयाति हि।१६
साधुर्वसति चोरौघे तावद्यायदसौ न तम्।
परिजानाति विज्ञाय न तत्र रमते पुनः।१७
द्वैते तावदसद्रूपे रमते भ्रमते चितिः।
परं पश्यति नो यावत्त दृष्टा तन्मयी भवेत्।१८
चितिनिर्वाणरूपं यत्प्रकृतिः परमं पदम्।
प्राप्यं ततमवाप्नोति सरिदब्धाविवाऽब्धिताम्।१९
तावद्विमोहवशतश्चितिराकुलेषु
सर्गेषु संसरति जन्मदशासु तासु।
यावन्न पश्यति परं तमयाऽऽशु दृष्ट्वा।
तत्रैव मज्जति घनं मधुनीव भृंगी।२०
सम्प्राप्य कस्त्यजति नाग तदात्मतत्त्वं
प्राप्यानुऽभूय च जहाति रसायनं कः।२१
शाम्यन्ति येन सकलामि निरन्तराणि
दुःखानि जन्म मृतिमोहमयानि राम।२२

छाया में प्रविष्ट पुरुष की छाया जैसे उसी के देह में लीन हो जाती हैं, वैसे ही पुरुष में लीन हुई प्रवृत्ति पुरुष रूप ही हो जाती है।१५। अपने सनातन पुरुष रूप को प्रकाशित करके फिर न तो इस संसार में भ्रमता और न प्रकृतित्व को प्राप्त होता है क्योंकि उसके पुनर्जन्म रूपी

अज्ञान का नाश हो जाता है ।१६। साधु पुरुष चोरों के समाज में रहता हुआ जब तक उसके कुकृत्य को नहीं जानता, तभी तक उसमें रहता है और जब उसके कर्म का ज्ञान कर लेता है तब उसके मध्य नहीं रहता ।१७। जब तक चिति आत्म रूप को प्रत्यक्ष नहीं देखतीं, तब तक असद् रूप द्वैत प्रपंच में रमती और भ्रमती हैं । जब उसे देख लेती है तभी तन्मय हो जाती हैं ।१८। चिति में निर्वाण रूप होने पर प्रकृति उसको पाकर नदी के समान रूप होने के समान तत्‌रूप हो जाती है ।१९। जब तक चिति ब्रह्म को नहीं देख लेती, तब तक मोहवश प्रतिकूल सृष्टि आदि में भटकती है और जब देख लेती है, तब मधु में भृंगी के डूबने के समान ही ब्रह्म में लीन हो जाती हैं ।२०। निरन्तर प्राप्त जन्म-मरण आदि के मोहमय कष्टों की जिससे शान्ति होती है उस आत्मा को प्राप्त कर कौन त्याग देगा ? क्या कभी कोई रसायन को प्राप्त कर उसका अनुभव कर लेने पर भी उसका परित्याग कर सकता है ।२१।

९४–धराधारणा से भूपीठ हो जाना

असदेवेदमाभाति ह्यद्यैव जगदाततम् ।
सङ्कल्पनमनोराज्य यथा स्वप्नपुरादिवत् ॥१

पार्श्वसुप्तजनस्वनस्तच्चित्तावेशनं बिना ।
यथा न किञ्चित्तावेशनादनुभूयते ॥२

तथा जगत्तद्दृषद सम्प्रविश्याऽनुभूयते ।
आदर्शविम्बिताकारं दृष्ट्मप्यन्यथाऽप्यसत् ॥३

आधिभौतिकभावेन नेत्रेण यदि लक्ष्यते ।
तत्तन्न दृश्यते किञ्चिन्दगिरिदेव प्रदृश्यते ॥४

अतिवाहिकदेहेन परं बोधदृशा यदि ।
प्रेक्ष्यते दृश्यते सर्गः परमात्मैव च ऽमलः ॥५

यथा खामावृतं सर्गस्तथा भूरिति बुद्धवान् ।
तदाऽहमभवं ध्याता धराधारणयाऽन्वितः ।३
धराधारणया चैव धराधानूदण गतः ।
द्वैपाद्रितृणवृक्षादिदेहोऽहमनुभूतवान् ।७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! यह असद्रूप जगत अन्तःकरण में उसी प्रकार व्याप्त हैं, जिस प्रकार कि संकल्पित मनोराज्य का स्वप्न में देखे गये नगरादि व्याप्त रहते हैं ।१। जैसे निकट होते हुए पुरुष के स्वप्न का तव तक अनुभव नहीं हो सकता, जब तक कि उसके चित्त में प्रवेश न कर लिया जाय, वैसे ही जगत् रूपी कल्पना के आश्रयभूत चितिशिला में प्रविष्ट हुये बिना दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान जगत् का अनुभव नहीं होता। क्योंकि दृश्यमान होते हुये भी यह असत् ही है ।२-३। आधिभौतिक दृष्टि से शिला के भीतर स्थिर ब्रह्माण्डों को आप नहीं देख सकते केवल लोकालोक पर्वत को ही देख सकते हैं ।४। परन्तु अतिवाहिक देह से और बोध दृष्टि से वह सम्पूर्ण सृष्टि स्वच्छ परमात्मरूप ही दिखाई देगी ।५। जब मैंने अपनी योग दृष्टि से जान लिया कि समय से व्याप्त आकाश के समान ही पृथ्वी भी सृष्टिमयी है तब मैं पृथ्वी की धारणा वाला ध्याता रूप से स्थित हुआ ।६। उस धरा की धारणा के कारण पृथ्वी के अभिमानी जीवरूपता को मैं प्राप्त हो गया और तब द्वीप, पर्वत, तृण और वृक्षादि के शरीर का मै अनुभव करने लगा ।७।

सम्पन्नोऽस्म्यथ भूपीठं नानावनतनूरुहम् ।
नानारत्नावलीव्याप्त नानानगरभूषणम् ।८
ग्रामग्रह्वपपर्वाढ्य पातायसुषिरोदरम् ।
खुलाचलभुजाश्लिष्टद्वीपाब्धिवलयान्वितम् ।९
हिमवद्विन्हयसुस्कन्ध सुमेरूदारकन्धरम् ।
गंगादिसरिदापूरमुक्ताहारणत्तनुम् ।१०
नित्यं कृषोवलैः कृष्टं बीजितं शिशरानिलैः ।
तापितं तपनैस्तैरुक्षित प्रावृडम्बुभिः ।११

भूपीठेन सता तत्र मया तदनु मानव ।
अनुभूतं नदनदीस्वसंवेदनसंस्थितेः ।१२
क्वचिन्मरणसाक्रन्दनारोकनणवेदनम् ।
क्वाचिदुत्ताण्ऽवस्त्रैणमहोत्सवमहासुखम् ।१३
क्वचिद् दुर्वारदुर्भिक्षदुराक्रन्दं दुरीहितम् ।
क्वचित्मत्मकलसस्यौ वसंपन्नघनसौहृदम् ।१४
क्वचिदग्निमहादाहृदग्धदेहोग्रवेदनम् ।
क्वचिज्जलप्लवालूनपुरपत्तनखण्डनम् ।१५

तब मैं विभिन्न प्रकार के वन और वृक्ष रूप रोमों से सम्पन्न, नाना रत्नावलियों से व्याप्त और अनेक प्रकार के नगररूपी भूषणों से विभूषित हो गया ।८। अनेक ग्राम और गुफारूपी पर्वतों और पाताल बिल रूपी उदर युक्त तथा सात कुलाचल रूपी भुजाओं से आश्लिष्ट और द्वीप समुद्रों रूपी वलयों से समन्वित भूपीठ बन गया ।९। हिमालय और विन्ध्याचल रूपी मेरे श्रेष्ठ कन्धे हो गये सुमेरु रूपी कंधर बन गया और गङ्गा तथा अन्य सरिताओं के प्रभाव मेरे शरीर के झनझनाते हुए मुक्ताहार बन गये ।१०। कृषक नित्य प्रति मुझ पर हल जोतने लगे, वायु पङ्खा रूप हो गए, सूर्य की किरणें मुझे तपाने और वर्षा के जल मुझे सींचने लगे ।११। हे मानव ! हे राम मैंने जिस प्रकार कहा है उस प्रकार मैं स्वयं ही भूपीठ बन गया और भूधर्मी हुई अपनी देह को देखता हुआ नद-नदी, समुद्र आदि आकार विशेषो के जानने की इच्छा से मैंने अनुभव किया ।१२। कहीं भूपीठ हुए मुझमें किसी बांधव के मरण के विलाप करती हुई नारियों की करुण वेदना सुनाई दे रही थी और कहीं महोत्सव के आनन्द में ताण्डव नृत्य करती हुई स्त्रियाँ महासुख मना रही हैं ।१३। कहीं दुर्वार दुर्भिक्ष का क्रन्दन सुनाई देता था दुष्टों की कुचेष्टाएँ चल रही थीं और कहीं वर्षा होने से उत्पन्न अनाजों के घन से ऐश्वर्य विखर रहा था ।१४।

निमीलितेक्षणनन्दतनूनामसमाक्रमम् ।
क्वचित्सूक्ष्मत रोल्लेखममकुरोल्लासनंनवम् ।१६
मक्षिकायौकमशकनिधाससदृशं क्वचित् ।
कुड्ययलेशकुभृंगारिहलहेलानिकर्षणम् ।१७
शीतंशीतविशीर्णागजर्जरत्वग्विकीर्णवत् ।
पाषाणीभूतसलिल क्वचित् परूषमारुतम् ।१८
उद्दालीभूतमद्धं गमज्दन्तःक्रमिव्रजम् ।
क्वचिदुद्भवदंगादिमूल जललिमज्जनम् ।१६
शनैरन्तर्निलीनाम्वुकृताह्लद बहिश्चर ।
सोम्नामांकुररामौघ क्वचिद् वर्षविजृम्भितम् ।२०
तनुतरपवनविकम्पितकोमलनलिनीदलास्तरणैः ।
विहरणदिव मे विहितं सरोभिवगेषु निर्वाणम् ।२१

(कहीं अग्नि के महादाह की वेदना थी तो कहीं जल की बाढ़ से पुरों और ग्रामों के कुछ भाग नष्ट हो रहे थे ।१५। कहीं नेत्र मूँदे हुए समाधिस्थ संत आनन्द से मग्न है, उनके उस आनन्दोल्लास से प्रतीत होता था कि वह सूक्ष्मतरसत्ता का अनुभव प्राप्त कर रहे हैं ।१६। कहीं मक्खी जुएँ और मच्छरों के निवास वाला भूखण्ड था तो कहीं भित्तिखंडों और प्रमादवश कमलकोश में सुप्त भौंरों को मर्दित करने वाले उनके शत्रु गणों को क्रीड़ा से हल के समान कर्षण हो रहा था ।१७। शीत, ठण्ड से विदीर्ण अङ्ग वाले जीवों की त्वचा को व्याप्त किये हुए था तो कहीं जल को ही पत्थर के समान जमाये हुए था और कहीं कठोर वायु का प्रकोप हो रहा था ।१८। कहीं कोमल अङ्गों में कीड़े प्रविष्ट थे, कहीं अङ्ग आदि उद्भव को प्राप्त हो रहे थे और कहीं जल में निमज्जन हो रहा था ।१६। मैंने अपने भूपीठ रूपी देह में कहीं बीजों में अतिवृष्टि का अनुभव किया, जिससे शनैः उनमें प्रविष्ट जलकणों से प्रथम तो आह्लाद हुआ और फिर अंकुर रूपी रोम बढ़ने लगे ।२०।

हे राम ! मेरे उस पृथ्वी रूपी देह अङ्गों में कहीं सरोवरों ने मद समीर के झोकों से हिलाये गये, कमलनियों के आस्तरण द्वारा आनन्द रूपी क्रीड़ा को मानो मेरे लिये ही समुद्भव किया हो ।२१।

९५—सम्पूर्ण जगत् मनोमात्र है

पार्थिवी धारणां वृद्धा जगन्ति समवेक्षितुमम् ।
संपन्नस्त्वमसौ भूमिलोकः किमुत मानसः ।१
इदं च मानसं चाऽहं सम्पन्नः पृथुभूतलम् ।
नेदंन मानसं नैव सम्पन्नो वस्तुतस्त्वहम् ।२
अमानसं महीपाठ न संभतति किंचन ।
यदसद्वे त्सि यसगा तनोसीमात्रकमेव तत् ।३
चिदाकाशमह शुद्धं तस्य मे तत्पदात्मनः ।
यच्चिन्मात्रात्मकचनं तत्संकल्पाभिध स्तृतम् ।४
तन्मनस्तन्मपृष्ठं तज्जगत्स पितामहः ।
संकल्पपुरवद्वयोम्नि कचत्येतन्मनोनभः ।५
एवं संकल्पमात्र मे मनोमात्रं तदाततम् ।
धारणाभ्याससंपुष्ट भूमण्डलतिति स्थितम् ।६
नेदं भूमंडल तद्वै तदन्यद्धि ममयम् ।
आकाशमात्रकचमनचेत्यं कचन चितेः ।७

श्रीराम बोले—हे ब्रह्मन् ! अपने आत्मा में सब जगतों को देखने में प्रवृत्त आप पार्थिव धारणा बाँधकर जैसे हम इस भूमिलोक को देख रहे हैं, उसी के समान हो गये कल्पनारूप पृथ्वी का ही अनुभव करते रहें । ।१। वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! काल्पनिक दृष्टि से तो आपका यह जो भूमण्डल है, यह मन का विचार होने से मान सही तो हैं इसलिए मैं मानस और वह प्रसिद्ध और यह प्रसिद्ध दोनों ही युक्त में हो गया ।

परन्तु वस्तुतः तो मैं न मानस पृथ्वी रूप हुआ और न प्रसिद्ध पृथ्वी रूप ही हुआ ।२। सत् मानो चाहे असत् यह भूपीठ अमानस तो किसी प्रकार भी नहीं हैं । मन के अस्ति नास्ति की कल्पना निहित होने से यह सब मन की कल्पना ही है ।३। मैं विशुद्ध चिदाकाश हूं, ऐसे मुझ में चिदात्मा का स्फुरण हो तो संकल्प कहा जाता है ।४। वह मन, वह भूपीठ वह जगत् और वह ब्रह्म यह सभी आकाश में संकल्प नगर के समान, चिदाकाश में मन रूपी आकाश ही स्फुरित होता हैं इसलिये यह सब कुछ मनोरथ ही है ।५। इस प्रकार वह जो कुछ भी मैं हो गया, वह सब मेरा संकल्प ही होने से मनोमात्र ही तो हुआ । केवल धारणा के अभ्यास से सम्पुष्टि को प्राप्त होकर ही भूमण्डल रूप से अवस्थित हो गया ।६। वह मानस भूमण्डल, यह भूमण्डल नहीं है, वह तो उससे विलक्षण और मनोमय है । चिदाकाश और चित्ति का चेत्य से भिन्न स्फुरण है ।७।

इदं स्थिरम् सुकठिनं विततं भूमिमंडलं ।
अस्तीति जायते बुद्धिर्व्योम्नीव चिरवेदनात् ।८
यथा स्वप्ने पुःत्वेनं चिदेव व्योम्नि भासते ।
तथा चिदेव सर्गादाविदं जगदिति स्थितम् ।९
विद्धि चिद्रूपवालस्य मनोराज्यं जगत्त्रयम् ।
मह तलादिक दृश्यमिदं सर्वं च सर्वदा ।१०
यतो न किंचित्कुरुते न च रूपं समुज्झति ।
तस्मान्न मानस नेद किं चदस्ति महीतलम् ।११
महीतलमिवाऽऽभाति चिगयोमैव निरन्तरम् ।
आत्मन्येवाऽतलं व्योम यथाऽमलतलं स्थितम् ।१२
स्वभावमात्रकचमं तत्तदेव यथास्थितम् ।
भूमंडलमिबाऽत्यच्छ खमेव विशतान्तरम् ।१३

यह भूमण्डल स्थिर अति कठिन और विस्तीर्ण हैं ऐसी बुद्धि आकाश में नीलत्व के समान, चिरकाल तक अभ्यास करने से प्राप्त हो सकती

प्रकार स्वप्न नगर के रूप में चिदाकाश ही भासित है, वैसे ही इस जगत् रूप के सर्ग के आदि काल में चिदाकाश ही चिदाकाश में स्थिर रहता है ।९। यह त्रिजगत् और यह पृथ्वी आदि सम्पूर्ण दृश्य चितिरूपी बालक का मनोराज्य ही समझो ।१०। चेतन स्वरूप आत्मा न कुछ करता है और न अपने रूप का ही परित्याग करता है इसलिये न तो मिट्टी और पाषाण वाला यह महीतल कुछ है और न मानस महीतल ही कुछ है ।११। महीतल के समान चिदाकाश ही प्रतीत होता है और अतल चिदाकाश ही अपने स्वरूप में निर्मल तल होकर स्थित रहता है ।१२। यह यथास्थित जगत् और धारणा से कल्पित जगन् दोनों ही केवल आत्मा का प्राकृतिक स्फुरण है। अति स्वच्छ चिदाकाश ही भेद में प्रविष्ट स्वभाव से भूमण्डल के समान स्थित है ।१३।

इदं भूमडलं तच्च द्वयमेतन्महाचितेः ।
स्वरुपमेव कचति तव स्वप्नपुर वथा ।१४
इदमाकाशमात्रात्म तदप्याकाशमात्रकम् ।
अज्ञानात्म परिज्ञानाज्ज्ञानानान्नेदं तत्क्वचित् ।१५
त्रैलोक्यभूतजालानाँ कालत्रितयभाविनाम् ।
संभ्रमः स्वच्नसंकल्पो मनोराज्यदशास्थितौ ।१६
भूतान्यथो भविष्यंति वर्तमानानि यानि च ।
भूमण्डलानितान्यग सत्ता सामान्यताँ मता ।१७
अहमेव समग्राणि तेषामन्तर्गतान्यपि ।
तेन तान्यनुभूतानि तथा दृष्ठानि चाऽखिलम् ।१८
चिन्मात्रमैतदजरं घजमात्मतत्व
शुद्धात्मतामजहदंगगतं विभर्त्ति ।
सर्वं यथास्थितमिदं जगदात्तभेदं
वुद्धं सदंगननिभर्त्तितृकिंचनाऽपि ।१९

यह दोनों ही भूमण्डल महाचिति के स्वरूप भूत हुए आपके स्वप्न नगर के समान ही स्फुरित होते हैं ।४। यह दोनों ही चिदाकाशमात्र रूप

है परन्तु अज्ञान से उपहित आत्मज्ञान के कारण ही वह भासित है। आत्मज्ञान होते ही इन दोनों भूमण्डलों की कहीं भी स्थिति नहीं रहती।१५। भूत, भविष्यत्, वर्तमान—इन तीनों काल में स्थित त्रिलोकी का सब भूतजाल भ्रान्ति रूप ही है। वह सभी स्वप्न संकल्प और मनोराज्य के समान ही है।१६। तीनों काल के सभी भूमण्डल सर्वाधिष्ठान होने से सामान्यता को प्राप्त आत्मसत्ता के स्वरूप हैं।१७। सामान्य होने के कारण वे और उनमें विद्यमान जितनी सभी वस्तुएँ हैं, वे सब मैं ही हूँ। इस प्रकार की धारणा करके मन से मैंने उसका अनुभव किया और साक्षी रूप से देखा।१८। चिन्मात्र और अजर परमात्मत्व ही आज्ञानावस्था में भी अशुद्धता को प्राप्त न करता हुआ यथास्थित इस जगत् को धारण करता है। परन्तु ज्ञात होने पर वह कुछ भी धारण नहीं करता।१९।

९६—कुन्ददन्तोपाख्यान (१)

इमं मे संशयं छिन्धि भगवन्भास्करं तमः।
भुवनस्येव भावनाँ सम्यग्रूपानुभूतये।१
कदाचिदहमेकाग्रो विद्यागेहे विपश्चिताम्।
संसदि स्थितवान्यावत्तापसः कश्चिदागतः।२
विद्वान् द्विजवरः श्रीमान्विदेहजनमंडलात्।
महातपाः कान्तियुतो दुर्वासा इव दुःसह।३
स प्रविश्याऽभिवाद्याऽऽशु सभामाभास्वरद्युतिम्।
उपविश्याऽऽसने तिष्ठन्नस्माभिरमिवादितः।४
वेदान्तसांख्यसिद्धान्तवादान् संहृत्य सत्तदितमः।
सुखोपविष्टं विश्रान्तं तमहं पृष्टवानिदम्।५
दिर्घाध्वा परिश्रान्तः संयत्न इव लक्ष्यसे।
बदाऽद्य वदता श्रेष्ठ कुत आगमनं कृतम।६

एवमेतन्महाभाग सुमहायत्नवानहम् ।
यदर्थ मागतो भागतोऽस्मीह तस्याऽऽकर्ण निर्णयम् ।७

श्रीराम ने कहा—हे भगवन् जैसे भगवन् भास्कर सांसारिक वस्तुओं की सम्यग् अनुभूति के लिये अन्धेरे को नष्ट करता है, वैसे ही आप मेरे संशय को नष्ट करिये ।१। किसी समय की बात है कि मैं एक विद्यागृह स्थित विद्वत्ससभा में बैठा था, तभी कोई एक श्रेष्ठ, विद्वान्, तपस्वी तेजस्वी एव दुर्वासा ऋषि के समान दुःसह श्रेष्ठ द्विज वहाँ विद्रोह जनपद से आ गया ।३। उसने उस सभा में प्रविष्ट होते ही सबको प्रणाम कर आसन ग्रहण किया । उस समय मैंने भी उठकर उसका अभिवादन किया ।४। हे प्रकरण वश उपस्थित वेदान्त सांख्यादि सिद्धांतों के बाद की समाप्ति पर सुख से बैठे हुए उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से मैंने प्रश्न किया ।५। हे विद्वजन् ! बहुत दूर से चले आने के कारण परिश्रांत हुये आप किसी अर्थ की प्राप्ति में प्रयत्नवान प्रतीत होते हैं । यह बताइये कि आप कहाँ से आये हैं ।६। ब्राह्मण बोला—हे महाभाग ! आपका अनुमान सत्य है । जिस कार्य के लिये मेरा यहाँ आगमन हुआ है उस निर्णय को श्रवण कीजिये ।७।

बैदेहो नाम देशोऽस्ति सर्वसौभाग्यसंयुतः ।
स्वर्गस्याऽम्वरसंस्थस्य प्रतिबिम्बमिवाऽवनौ ।८
तत्राऽहं ब्राह्मणो जाता प्राप्तविद्याश्च संस्थितः ।
कुन्दावदातदन्तत्वात्कुन्ददन्त इति श्रुतः ।९
अथाऽहं जातवैरग्यः प्रविहर्तुं प्रवृत्तवान् ।
देवद्विजमुनीन्द्राणां सभमाज्छ्रमशास्तये ।१०
श्रीपर्वतमखडेहं कदाचित्प्राप्तवानहम् ।
तत्राऽवसं चिर कालं मृदु दीर्ण तपश्चरन् ।११
तत्राऽस्ततरण्य विदितं मुक्तं तृणातनादिभिः ।
त्यक्ततेजस्तमोभ्रादि भूमाविव नभस्तलम् ।१२

तत्राऽस्ति मध्ये विटपी लघु पेलवपल्लवः
स्थित एषोऽम्बरे शून्ये मन्दरश्मिश्मिरिवांऽशुमान् ।१३
लम्बते तस्य शाखायां पुरुषः पाबनाकृतिः ।
भानुर्भानाविव रश्मिगृहीतो ग्रथिताकृतिः ।१४

जिस प्रकार आकाश में सूर्य का प्रतिबिम्ब स्थित है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर वैदेह नामक एक अत्यन्त ऐश्वर्यशाली देश है।८। उसी देश में मैं ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हुआ हूँ। विद्याध्ययन आदि से परिपूर्ण होकर मैं वहाँ स्थित रहा। मेरे दाँत कुन्द के पुष्प के समान उज्ज्वल हैं, इसलिये मेरा नाम ही कुन्ददन्त पड़ गया।९। फिर मेरे हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया और मैं भ्रान्तिकाल जगत् के दुःखों से छुटकारा पाने के लिये देव, द्विज और मुनिवरों की ओर जाने में प्रवृत्त हुआ।१०। चलता हुआ मैं एक बार श्री पर्वत पर जा पहुँचा और वहाँ मैंने चिरकाल तक घोर तपस्या की।११। वह तृण, वन आदि से रहित एक ऐसा अरण्य है जो पृथ्वी में होता हुआ भी आकाश के समान तेज, तम घन आदि से शून्य ही है।१२। उस अरण्य के मध्य एवं मृदु पल्लवों से समन्वित लघु वृक्ष आकाश में मन्द रश्मियाँ वाले सूर्य के समान स्थित हैं।१३। उस वृक्ष की शाखा में एक पुण्यकार पुरुष रस्सी में बँधा हुआ ऐसे लटका हुआ था, जैसे कि सूर्य अपनी रश्मियों को पाद से बाँधकर लटक रहा हो।१४।

माञ्जादामनि वद्धोर्ध्वपादो नित्यमवाक्शिराः।
अठीलत्वं दधदिव महाष्ठीलस्य शाल्मलेः।१५
दृष्ट प्राप्तेन तं देशं स कदाचिन्मया पुमान्।
विचारितो निकटतो वक्षस्थाञ्जलिसम्पुटः।१६
यावज्जीवात्यसौ दिप्रो निश्वसित्यहताकृतिः।
शीतवातातपस्पर्शान्विसर्वान्वेत्ति च कालजान्।१७
अनन्तरमसावेकी नोपचर्य मया वहून्।
दिवसातपखेदेन विश्रम्भे पातितः शनैः।१८

पृष्टश्च कोऽसि भगवनिकमर्थं दारुणं तपः ।
करोषीदं विशालाक्ष लक्ष्यालक्ष्यात्मजीवितः ।१९
अथ तेनोक्तमर्थस्ते क इवाऽनेन तापस ।
अर्थेनाऽतिविचित्रा हि भवन्तीच्छाः शरीरिणाम् ।२०
इत्युक्तवान्प्रयत्नेन सोऽनबन्धेन वे मया ।
यदा पृष्टस्तदा तेन ममोक्तमिदमुत्तरम् ।२१

उसके पैर मूंज की रस्सी से ऊपर की ओर बँधे थे और सिर नीचे को लटक रहा था। यह बड़ी-बड़ी गांठों वाले शाल्मलि वृक्ष के गाँठ-गँठीले पन को धारण किये लगता था ।१५। घूमता हुआ उस प्रदेश में पहुँचा हुआ मैं वृक्ष-स्थल अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करता हुआ उसे देखने लगा और फिर उसके पास आकर सोचने लगा।१६। यह ब्राह्मण निरन्तर अहताकृति होकर श्वांस लेता और शीत. वात, धूप आदि के स्पर्श का अनुभव करता हुआ जीवित है ।१७। तब मैं अनेक दिवसों तक धूप आदि सहकर उसकी उपचर्या करने लगा, जिससे यह मेरे प्रति विश्वस्त हो गया ।१८। फिर मैंने पूछा—हे भगवन् ! हे विशालाक्ष ! आप कौन हैं ? चिरकाल के दीर्घोच्छ्वासों से लक्ष्य-अलक्ष्य होते हुए जीवन में इस प्रकार की घोर तपस्या क्यों कर रहे हैं ।१९। उसने उत्तर दिया हे तपस्वी ! मेरे कुल देश और तपस्या के तात्पर्य को जानने से आपका क्या प्रयोजन है ? क्योंकि देहधारियों की सभी इच्छायें किसी न किसी कारण से ही होती है ।२०। उसके यह कहने पर मैंने प्रयत्न और विनययुक्त आग्रह किया, तब उसने मुझे इस प्रकार उत्तर दिया ।२१।

मथुरायामहं जातो वृद्धि यातः पितुर्गृहे ।
बाल्ययौवनयोर्मध्ये स्थितः पदपदार्थवित् ।२२
समग्रसुखसंभारकोशो भवति भूमिपः ।
इत्यहं श्रुतवांस्तत्र भोगार्थी नवयौवनः ।२३

अथसप्तमहाद्वीपविस्तीर्णाया भुवः पतिः ।
स्यामित्यहमुदारात्मा परिविम्बतवांश्चिरम् ।२४
इत्यर्थेन समागत्य देशमित्थमहं स्थितः ।
अत्र द्वादश वर्षाणि समतीतानि मानव ।२५
तदकारणमित्रत्व गच्छेष्ट देशमाशुगः ।
अहं चाऽभितप्राप्तेरित्मेवदृढस्थितिः ।२६
इति तेदाऽहमुक्तः संस्तमित्थं प्रोक्तवान्ध्रुण ।
आश्चर्यश्रवणे चेतः खेदमेति न धीमतः ।२६
साधो यावत्वया प्राप्तो न नामाऽभिमतो वरः ।
त्वद्रक्षापरिचर्यार्थमिह तावदह स्थितः ।२८

वह बोला--मैं मथुरा में उत्पन्न हुआ और अपने पितृगृह में ही प्रवृद्ध हुआ तथा मुझे अपने बाल्यकाल और यौवनावस्था के मध्य ही पदत्पदार्थ का ज्ञान हो गया ।२२। मैंने सुना है कि सम्पूर्ण भोग पदार्थों का आश्रय राजा होता है तथा भोग की इच्छा वाला नवयौवन होता है ।२३। यह सुनने के कारण ही मन में यह इच्छा चिरकाल तक बलवती रही कि मैं सप्तमहाद्वीपों के विस्तार वाली इस पृथ्वी का स्वामी हो जाऊँ ।२४। इस देश में मैं इस प्रयोजन से आकर रहा हूँ और हे मानव ! इस प्रकार मेरे यहाँ पर बारह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ।२५। हे अकारण मित्र ! तुमने जो पूछा वह मैंने बता दिया अब तक तुम जिस देश में जाना चाहो वहाँ चले जाओ, मैं भी अपनी काम्य तपस्या में लगता हूँ ।२६। उसके ऐसा कहने पर मैंने उससे जो कहा, अब उसे सुनिये । क्योंकि विस्मयपूर्वक वृतान्त को सुनकर किस समझदार को खेद नहीं होगा ? ।२७। मैंने उससे कहा हे साधो ! जब तक तुम्हें इच्छित वर की प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक मै तुम्हारी रक्षा और परिचर्या करता हुआ यहीं स्थित रहूँगा ।२८।

मयेत्युक्ते स पाषाणमौनवानभवच्छमी ।
निमीलितेक्षणः क्षीणरुपस्त्वकलनो बहिः ।२९

तथाऽहं पुरतस्तस्य काष्ठमौनव्रतोऽवसम् ।
षण्मासान्विगतोद्वेग वेगान्कालकृतान्सहन् ।३०
अर्कविम्बाद्विनिष्क्रम्य तत्प्रदेशांतरे स्थितम् ।
एकदा दृष्टवनस्मि पुरुषं भानुभास्वरम् ।३१
स तेन पूज्यते यावन्मनसा कर्मणा मया ।
उवाच तावद्वचनममृतस्यन्दसुन्दरम् ।३२
शाखाप्रलम्बनपुर हे ब्रह्मन्दीर्घतापस ।
तपः सहर सहारि गृहाणाऽभिमतं वरम् ।३३
सप्ताब्धिद्वीपवलयां पालयिष्यसि मेदिनीम् ।
सप्तवर्षसहस्राणि देहेनाऽनेन धर्मतः ।३४
एवं समीहितं दत्वा स द्वितीयो दिवाकरः ।
गन्तुमस्तमथऽर्काब्धितविशत्प्रोदितो यतः ।३५

मेरे इस प्रकार कहने पर वह पाषाण के समान मौन हो गया, उसके नेत्र बन्द हो गये और वह बाहर से हिलने-डुलने से निवृत्त होकर मृतक जैसा हो गया ।२६। तब उस काष्ठ के समान मौनावलम्बी के समक्ष में भी समयानुसार प्राप्त उष्ण आदि वेगों को सहता हुआ छः महीने तक वहाँ अवस्थित रहा ।३०। इसी मध्य एक दिन सूर्य बिम्ब से प्रकट होकर उस प्रदेश में सूर्य के समान प्रकाशमान एक पुरुष मुझे दिखाई दिया ।३१। तब उस तपस्वी ने उसका मानसिक पूजन किया और मैंने भी अर्घ्यादि के दान द्वारा उसकी अभ्यार्चना की । फिर वह पुरुष अमृतद्रव के समान रसमय वाणी में कहने लगा ।३२। हे ब्रह्मन् ! आप वृक्ष की शाखा में दीर्घकाल से लटके हुये अपना इच्छित वर प्राप्त कर लो ।३३। तुम अपने इस शरीर से सात समुद्रों से वेष्टित पृथ्वी का सात सहस्र वर्ष तक धर्मपूर्वक पालन करने वाले होओगे ।३४। इस प्रकार इच्छित वर प्रदान कर वह द्वितीय सूर्य के समान पुरुष जहाँ से प्रकट हुआ था वहीं सूर्यमण्ल में समा गया ।३५।

तस्मिन् याते मुया प्रोक्तं तस्य शाखातपस्विनः ।
श्रुतदृष्टानुभताग्रयवरदस्य विवेकिनः ।३६
सप्राप्ताभिमतं ब्रह्मंस्तरुशाखावलम्बनम् ।
तपस्त्यक्त्वा यथाप्राप्तं व्यवहारं समाचार ।३७
एवमंगीकृतवतः पादौ तस्य मया ततः ।
मुक्तो विटपिनस्तस्मादालानात्कालभाविव ।३८
स्नातः पवित्रहस्तोऽसौ चक्रे जप्त्वाऽघमर्षणम् ।
फलेन पुण्यलब्धेन विटपाद् व्रतपारणम् । ३९
तत्पुण्यवशतः प्राप्तैः स्वादुभिस्तैस्तरो, फलैः ।
समश्वस्तावसक्षुब्धावावाँ तत्र दिनत्रयम् ।४०
सप्तद्वीपसमुद्रीतदिश भोक्तुं समग्राँ महीं ।
विप्रःपादपलम्बितेन वपुषा तप्त्वोर्ध्वपादस्तपः ।
सप्राप्याऽभिमतं वरं दिनकृतो विश्वस्य चाऽह्नं त्रयं
सार्घ मत्सुहृदा स्वमेव सदनं गन्तुं प्रवृतोऽभवत् ।४१

उसके अदृश्य होते ही जैसा मैंने सुनाया, उसी रूप से उस सूर्य पुरुष को देखने और वरदान प्राप्त करने वाले उसी विवेकी तापस से मैंने कहा ।३६। हे ब्रह्मन् ! वृक्ष की शाखा का अवलम्बन करके आपने जो तप किया, उसका फल आपको मिल चुका है अब आप तपस्या को त्यागकर घर जाने आदि के यथोचित कार्य में लगिये ।३७। उसने वह स्वीकार कर लिया तो मेंने उसे वृक्ष से इस प्रकार खोल दिया, जिस प्रकार कि गजशावक के पाँवों को बन्धन स्तम्भ से खोल देते हैं ।३८। तब उसने स्नान किया और हाथों को स्वच्छ कर तप की सिद्धि से उसी वृक्ष के फलों द्वारा उसने मेरे साथ अपने व्रत को धारण किया ।३९। उसी के पुण्य फलस्वरूप उस तरु के सुस्वादु फलों से तृप्त हुए हम दोनों वहाँ तीन दिन तक सुखपूर्वक रहे ।४ । सप्त और समुद्रों से व्याप्त दिशाओं से समन्वित सम्पूर्ण मही के उपभोग कामना वाला वह तपस्वी वृक्ष में पैर लटका कर घोर तप करके सूर्य पुरुष से इच्छित वर को प्राप्त हो गया

और तीन दिन तक उसी वृक्ष के नीचे विश्राम कर थकान से निवृत्त होता हुआ मुझ सुहृद को साथ लेकर अपने गृह मथुरा के लिये चल पड़ा।४१।

६७—कुन्ददन्तोपाख्यान (२)

आवासमन्तरे गन्तुं प्रवृत्तौ मुदिताकृती ।
मथुरानगरी चन्द्रसूर्याविन्द्रपुरीमिव ।१
प्राप्य रोधाभिध ग्राम विश्रम्याऽऽम्रवणाचले ।
उषितौ द्वे दिने तस्मिन्सालीसे नगरे सुखम् ।२
प्राप्तावावाँ तृतीयेह्नि अब्जषण्डकमण्डितम् ।
जगलं जनविच्छेदविभक्तं खमिवाऽऽकृतम् ।३
तत्र स प्रकृत मार्ग परित्यज्य वनान्तनम् ।
प्रविसन्स मुवाचेदमकार्यकरणं वचः ।४
गच्छावोऽत्राऽऽश्रमे गौर्या मनिमण्डलमण्डिते ।
भ्रातरो मे स्थिताः सप्त वनेष्वेवमिवार्थिनः ।५
भ्रातरोष्टौ वयमिमे जातामेकतया तथा ।
एक संविन्मया जाता एकसंकल्पनिश्चयाः ।६
तेन तेऽप्यत्र तपसे स्वनिश्चयसमाश्रयाः ।
स्थिता आगत्य विवधैस्तपोभिः क्षपितैनसः ।७

कुन्ददन्त बोला—हे भगवान्, जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य इन्द्रपुरी में जाने के लिये सायंकाल में विश्राम करते हैं वैसे ही हम भी मुदित मुख से मथुरा नगरी को जाते हुए मध्य मार्ग में विश्राम करने लगे।१। रोध नामक ग्राम में पहुँच कर वहाँ आम्र वन वाले पर्वत पर विश्राम किया, और फिर सालीस नामक नगर में दो दिन सुखपूर्वक व्यतीत किये।२। फिर तीसरे दिन कमलों और लताकुञ्जों से समन्वित अरण्य में, जिसे लकड़हारों ने काट-काट कर पूर्ण रूप से विभाजित कर दिया था, इसलिये मेघखण्डों के समान प्रतीत होता था उसमें हम जा

पहुँचे ।३। तब हम प्रकट मार्ग से हटकर अन्य वन में प्रविष्ट होने लगे उस समय उस तापस ने समय के विलम्ब से उपस्थित घर जाने में बाधक अकार्य कारणरूपी वचन कहा ।४। वह बोला हम यहाँ गौरी के आश्रम में चलते हैं, जो कि मुनिमण्डली से युक्त है। मेरे समान भूपति बनने के इच्छुक मेरे सात भाई यहाँ स्थिर हैं ।५। इस प्रकार हम आठ भाई हैं। सात द्वीपों के भोगों से जनित मनोरथों वाले होकर हम सब एक ही निश्चय पर पहुँचे ।६। इसलिये वे मेरे सातों भाई अपने निश्चयानुसार गौरी वन में तप करते हुये सब पापों से मुक्त हो चुके हैं ।७।

तेनेत्युक्ते च तावावाँ प्राप्तौ प्राप्तौ मुन्याश्रम च तम् ।
यावत्तत्र महारण्ये पश्यावश्चाऽरूपिणम् ।८
न वृक्षं नोटज किंचिन्न गुल्म न च मानवम् ।
न मुनिं नाऽर्भक नाऽन्यत्र वेदि न च विजम् ।९
केवलं शून्यमेवाऽति तदरण्यमनन्तकम् ।
तापोपतप्तमभितो भूमौ स्थितमिवाऽम्वरम् ।१०
हा कष्टं किमिदं जातमिति तस्मिन्वदत्यथ ।
आवाभ्यां सुचिर भ्रान्त्वा दृष्ट एकत्र वृक्षकः ।११
स्निग्धच्छविधनच्छायः सीतलोऽपधरोपमः ।
तले तस्य समाधाने संस्थिती वृद्धतापसः ।१२
आवामग्रे मुनेस्तस्यच्छायायां शाद्वलस्थले ।
उपविष्टौ चिर यावन्नाऽसौ ध्यानान्निवतते ।१३
ततश्चिरेण कालेन मयौद्वेगेन चापलात् ।
उक्त मुने प्रवृध्यस्व ध्यानाद्रित्यच्चकैर्वचः ।१४

उसके इस प्रकार के कहने पर हम दोनों ही मुनियों के उस आश्रम में गये, परन्तु उस महारण्य में वह आश्रम हमें अन्त हुआ दिखाई दिया ।८। उस समय वहाँ कोई वृक्ष, गुल्म, कुटी, मनुष्य, मुनि, बालक वेदी या

अन्य कुछ भी हमें दिखाई न दिया ।९। वह अनन्त बन नितान्त शून्य था और सब ओर सूर्य ताप से तप्त होकर पृथ्वी में ही आकाश के ही समान प्रतीत हो रहा था ।१०। यह देखकर उस तपस्वी के मुख से निकल पड़ा । हाय यह कैसा कष्ट उत्पन्न हो गया । इसके पश्चात् बहुत समय तक भटकने के पश्चात् हमें एक स्थान पर एक वृक्ष दिखाई दिया ।११।वह शीतल वृक्ष घनी छाया से युक्त. मेघ जैसा श्याम एवं आकर्षक था, उसके नीचे एक वृद्ध तपस्वी समाधि में लीन था ।३। उस मुनि के आगे हरी घास वाली पृथ्वी पर छाया में बैठकर हम उसकी ध्यान निवृत्ति की प्रतीक्षा करते रहे । चिरकाल तक प्रतीक्षा करने में मुझमें उद्वेग उत्पन्न हुआ और मैंने चञ्चल स्वभाव से उच्च आवाज में कहा- हे मुने ! चेत कीजिये ।१३—१४।

शब्देनोच्चैर्मदीयेन संप्रबुद्धोऽमवन्मुनिः ।
सिहोऽक्ष्वुदरवेणेव जृम्भां कृत्वाऽभ्युवाच च ।१५
कौ भवन्ताविदौ साध क्वासौ गौर्याश्रितो यतः ।
केन वा हमिहाऽऽनीतः कालोऽथ कश्च वर्तते ।१६
तेनेत्यु ते मयाऽप्युक्तं भगवन्विद्धि चेदृशम् ।
न किंचिदावां वुद्धोऽपि कस्माज्जानासि न स्वयम् ।१७
इति श्रुत्वा स भगवान्पुनर्ध्यानमयोऽभवत् ।
ददर्शोदन्तमखिलमस्माक स्वात्मनस्तथा ।१८
मुहूर्तमात्रेणोवाच प्रतृध्य ध्यानतो मुनिः ।
श्रूयतामिदमाश्चर्यमार्यो हि कार्यवेदिनौ १९
यमिमं पश्यथः साधू कदम्बतरूपुत्रकम् ।
मदास्पदमरण्यान्या धम्मिल्लमिव पुष्पितम् ।२०
केनाऽपि कारणेनाऽस्मिन्सतो वागीश्वरी सती ।
अवसद्दय वर्षाणि समस्ततु निषेविता ।२१

मेरे उस उच्च वाणी से मुनि का ध्यान भङ्ग हो गया तब वे सिह तथा मेघ के समान गम्भीर ध्वनि सहित जँभाई लेते हुये बोले हे साधो !

आप कौन हैं ! वह गौरी आश्रम कहाँ गया। मुझे इस निर्जन वन में कौन लाया ? अब कौन युग वर्तमान है ? ।१५-१६। उनके ऐसा कहने पर मैं बोला—हे भगवान् ! हमें यह क्या मालूम ! आप सर्वज्ञ हैं—इसीलिए अपने योगबल से सब कुछ आप स्वयं ही क्यों नहीं जान लेते ।१७। यह सुनकर वह सिद्ध तपस्वी ध्यान मग्न हुए और तब उन्होंने हमारा और अपना सम्पूर्ण वृत्त जान लिया।१८। मुहूर्त भर में ही ध्यान छोड़कर वे बोले हे कार्य ज्ञाता आर्यो ! अब आप इस आश्चर्यमय वृत्तांत को सुनिये ।१६। हे साधुओ ! मेरे रहने का स्थान यह जो वन देवी की चोटी के समान दिखाई देता हुआ कदम्ब-पुत्र यहाँ किसी कारण वश भगवती सती ही सरस्वती बनकर सब ऋतुओं से सेवित हुई दस वर्ष तक निवास करती रही ।२०—२१।

तदा तेनेह विस्तीर्णमभवद्वनकाननम् ।
गौरीवनमिति ख्यातं भूषितं कुसुमर्तुभिः ।२२
तस्मिन्नेव कदम्बेऽस्मिन्तत्र आः [illegible]च्छया दश ।
स्थित्वा गौरी जगामाऽथीकृत्य [illegible]धर्ममन्दिरम् ।२३
तत्स्पर्शामृतशिक्तोऽयं कदम्बतरुपत्रकः ।
उत्सर्गः इव चासीनो न यात्येव पुराणताम् ।२४
ततो गौर्या प्रयातायां तद्वनं तादृश महत् ।
सामान्यवनता यातं जनवृन्दोपजीवितम् ।२५
मालवो नाभ देशोऽस्ति तत्राऽह पृथिवीपतिः ।
कदाचित्यक्तसज्यश्रीर्मुनीनामश्रमान्भ्रमन् ।२६
इम देश मतुप्राप्त इनु चाश्रमवासिभिः ।
पूजितोऽस्य कदम्बस्य ध्याननिष्ठस्तले स्थित ।२७
केनचित्त्वथ काले भ्रातृभिः सप्तभिः सह ।
भवानभ्यगतः पूर्वं तपोर्थमिममाश्रमम् ।२८

उनके यहाँ निवास करने के कारण ही यहाँ विस्तृत अरण्य हो गया और पुष्पित ऋतुओं से सुशोभित यह वन गौरी वन के नाम से प्रसिद्ध हुआ

।२२। भगवती गौरी इसी कदम्ब के नीचे स्वेक्षा पूर्वक दस वर्ष तक रह कर फिर शिवजी के बामार्ध मन्दिर को चली गई ।२३। उनके स्पर्शामृत से सिंचकर यह कदम्ब वृक्ष पुत्र के समान गोद में बैठा हुआ जैसा कभी पुरानेपन को प्राप्त नहीं होता ।२४। उन देवी गौरी के यहाँ से चले जाने के पश्चात् यह ऐश्वर्यवान् महारण्य सामान्य बन के समान ही लोगों की जीविकोपार्जन का साधनरूप हो गया ।२५। मैं मालव नामक देश का राजा था अपने राज्य को छोड़कर मुनियों के आश्रम में भ्रमण करता हुआ मैं जब यहाँ आया तब आश्रमवासियों से सत्कारित होता हुआ यहाँ ध्याननिष्ठ हो गया ।२७-२८। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर तुम अपने सात भाइयों के साथ तपस्या करने के विचार से प्रथम इसी आश्रम में आये ।२८।

तपस्विनोऽष्टाविह ते तथा नाम तदाऽवसम् ।
यथा तपरिवोऽन्ये ते तेषां मान्यास्तपस्विनः ।२९
कालेनाऽनन्तरमसावेक,वासौ गौ[illegible] गतः ।
स्वामिन कार्तिकेय च [illegible]यस्तपसे गतः ।३०
वाराणसीं तृतीयस्तु चतुर्थोऽगाद्धिमाचलम् ।
इहैव ते परे धोराश्चत्वारोन्ये परं तपन् ।३१
सर्वेषाशामेव चैतेशां प्रत्तेक त्वेतदीप्सितम् ।
यथा समस्तबीद्वीपाया भुवोऽस्याःस्या महिपतिः ।३२
अथ संपादितं तेषाँ सर्वेषामेतदीप्सितम् ।
तपस्तुष्टाभिरिष्टाभिदेवताभिर्वरर्वरैः ।३३
तपस्ते ततो याता भ्रातरः सदनं निजम् ।
भूमो धर्मपुगं भुक्त्वा वेधा ब्रह्मपुरीमिव ।३४
तैर्भवद्भ्रातृभिर्भव्यवरदानविधौ तदा ।
इदं वरोद्यता यत्नात्प्रार्थिताः स्वेष्टदेवताः ।३५

वे तुम आठों यहाँ तपस्यारत हो गये और जो तपस्वी यहाँ पहले से थे, उनके लिये भी सामन्य हो गये ।२९। कुछ समय के पश्चात् उन

आठों में से श्रीपर्वत पर चले गये, तुम्हारा दूसरा भाई स्वामी कार्तिकेय के सपीपस्थ क्रौंच पर्वत पर, तीसरा भाई काशी में और चौथा भाई हिमाचल पर्वत पर गया शेष चार भाई यहीं रहकर तप करने लगे ।३०-३१। उनमें से सभी की एक ही इच्छा थी कि मैं समस्त द्वीपों से युक्त पृथ्वी का महीपति हो जाऊँ ।३२। इनके अनन्तर उनके इष्टदेव उनकी तपस्या से सन्तुष्ट हो गये और उन्होंने श्रेष्ठ वर प्रदान द्वारा उनका इच्छित पूर्ण किया ।३३। तब आपके अतिरिक्त अन्य सब भाई उस प्रकार अपने गृह को चले गये, जिस प्रकार कि पृथ्वी पर सतयुग का उपयोग करने के पश्चात् ब्रह्माजी अपने लोकों को चले जाते हैं ।३४ श्रेष्ठ वरदान के समय तुम्हारे उन भ्राताओं ने वर देने के लिये प्रस्तुत अपने इष्टदेव से इस प्रकार प्रार्थना की ।३५।

देव्यस्माकमिमे सर्वे सप्तद्वीपेश्वरस्थितौ ।
सत्याः प्रकृतयः सन्तु सर्व आश्रमवासिनः ।३६
तमिष्टदेगतासार्थमुररीकृत्य सादरम् ।
तेषामस्त्वेवमित्युक्त्वा जगामांऽतर्द्धिश्वरी ।३७
ते ततः सदन यातास्तेषामाश्रमवासिनः ।
सर्व तब गताः पश्चादेक एवाऽस्मि नोगतः ।३८
अहं केवलमेकास्ते ध्यानैकगतमानसः ।
बागीश्वरीकदम्बस्य तले तिष्ठामि शैलवत् ।३९
अथ काले वहत्यस्मिन्नतुसंवत्सरात्मनि ।
इदं सर्व वनं छिन्नं जनैः पर्यन्तवासिभिः ।४०
इदं कदम्बमम्लानं जनताः पूजयन्त्यलम् ।
बागीश्वरीगृहमिति मा चैवेकसमाधगिम् ।४१
अथैनं देशमायातौ भवन्तौ दोर्घतपसौ ।
एतत्तत्कथितं सर्वं ध्यानष्टं मयाऽखिलम् ।४२

वे बोले-हमारी सप्तद्वीपेश्वरत्व में स्थिति के समय समस्त प्रजा सत्य और स्वाभाविक व्यवहार में रत रहे, यह सब आश्रमवासी भी इसी प्रकार

हों ।३६। वह इष्टदेवी इच्छित कामना को सादर स्वीकार करती हुई 'ऐसा ही हो' कहकर अन्तर्धान हो गई ।३७। फिर वे अपने घर को गये और आश्रमवासी भी चले गये, केवल मैं ही अकेला यहाँ रह गया ।३८। मैं ही इस एकान्त स्थान में वागीश्वर कदम्ब के नीचे ध्यानावस्थित एवं शिला के समान मौन रहता हूँ ।३९। इसके पश्चात् ऋतु सम्वत्सर आदि क्रम वाले समय के व्यतीत होते-होते आसपास में निवास करने वाले जनों ने यह समस्त वन छिन्न-भिन्न कर दिया ।४०। कभी भी म्लान न होने वाले इस कदम्ब को वागीश्वरी भवन समझते हुए जन इसका और मुझ मुक्त समाधिस्थ का भले प्रकार पूजन करते हैं ।४१। अब तुम दोनों दीर्घ तपस्वी इस देश में आये ही हो । ध्यान से देखा हुआ यह वृत्तान्त मैंने पूर्णरूप से कह दिया है ।४२।

तस्मादुत्थाय हे साधू गच्छतं गृहमागतौ ।
तत्र ते भ्रातरः सर्वे संगता दारबन्धुभिः ।४३
अष्टनां भवतां भव्य सदने स्वे भविष्यति ।
महात्मनां ब्रह्मलोके वसनामिव संगमः ।४४
इत्युक्ते तेन स मयाः पृष्टः परमतापसः ।
संदेहादिदमाश्चर्यमार्यास्तद्दणयाम्यहम् ।४५
एकैव सप्तद्वीपाऽस्ति भगवन्भूरिय किल ।
तुल्यकालं भवन्त्यष्टौ सप्तद्वीपेश्वराः कथम् ।४६
असमञ्जसमेतावदेव नो यावदुच्यते ।
इदमन्यदसवद्धतरं सश्रूयतां मम ।४७
एतेऽष्टौ भ्रातरस्तत्र तापसा देहसंक्षये ।
सप्तद्वीपेश्वराः सर्वे भविष्यन्ति गृहोदरे ।४८
अस्त्येतेषां किलाऽष्टानां भार्याष्ट् कमनिन्दितम् ।
दिगन्तराणां नियतं ताराऽष्यकमिवोज्जवलम् ।४९

इसलिये हे साधुओ ! अब तुम उठकर अपने घर चले जाओ । वहाँ तुम्हारे सभी भाई अपनी स्त्रियों और बांधवों से मिल चुके हैं । ब्रह्मलोक

में हुए अष्ट वसुओं के भव्य समागम के समान ही यह तुम आठों का भव्य समागम होगा ।४३-४४। उसके इस प्रकार कहने पर उस परम समान से मैंने सन्देहवेश जो आश्चर्य वृत्तान्त पूछा वह कहता हूँ ।२५। हे भगवन् ! यह सप्तद्वीप वाली पृथ्वी तो एक ही सुनी जाती है, तब यह आठों एक ही सप्तद्वीपा पृथ्वी के राजा कैसे हो सकेगें ? ।४६। इस पर उन कदम्ब तपस्वी ने उत्तर दिया—इनके विषय में यही एक असम्बद्ध वृत्तान्त नहीं है, अपितु जो दूसरा इससे भी अधिक असम्बद्ध है, उसे सुनिये ।४७। यह आठों तपस्वी भ्राता शरीर नष्ट हो जाने पर घर के भीतर रहते हुये ही सातद्वीपेश्वर हो जायेंगे ।४८। इन आठों की पूर्वादि दिशाओं को नियत आठ तारिकाओं के समान आठ भार्याएँ हैं ।४९।

तद्भार्याष्टक मेतेषु यातेषु तपसे चिरम् ।
वभूव दुखितं स्त्रीणां यद्वियोगे हि दुःसह ।५०
दुखिता प्रत्यये तेषां चक्रस्ता दारुणं तपः ।
शतचान्द्रायणं यासां तुष्टाऽभूतेन पार्वती ।५१
अदृश्योवाच सा तासां वचोऽन्तः पुरमन्दिरे ।
देवी समर्यावसरे प्रत्येकं पृथगीश्वरी ।५२
भर्त्रर्थमथ चाऽऽसार्थं गृह्यतां बालिके वरः ।
चिरं किल्ष्टाऽसि तपसा निदाघेनेव मञ्जरी ।५३
इत्याकर्ण्य वोच देव्या दत्तपुष्पाचिरंटिका ।
स्ववासनासुरेण कुर्वानैवेश्वरस्तयम् ।५४
आनन्दमन्थरोवाच वचनंमृदुभाषिणी ।
आकाशसस्थितां देवीं मयूरीवा भ्रमालिकाम् ।५५
देवि देवाधिदेवेन यथा ते प्रेम शम्भुना ।
भर्त्रा मम तथा प्रेम स भर्तास्तु ममाऽभारः ।५६

इनके तपस्या हेतु चले जाने पर वे आठों चिरकाल तक अत्यन्त सन्तप्त ही थीं क्योंकि स्त्रियों के लिये वियोग दुःख असहनीय होता है

।५०। उन दुःखिताओं ने वार-बार अपने पतियों का स्मरण करते हुए शत चान्द्रायण व्रतादि के रूप में घोर तपस्या की, जिससे पार्वती जी अत्यन्त प्रसन्न हो गईं ।५१। अन्तःपुर मन्दिर में पूजा के समय अदृश्य-रूप के स्थित है । वह ईश्वरी उनमें से प्रत्येक से पृथक्-२ कहने लगी ।५२। देवी बोली—हे बालिके ! उष्णता से मञ्जरी के चिरकाल पर्यंत क्लेश पाने के समान ही तुमने कठिन तप करके अत्यन्त दुःख पाया है अतः अपने पति के लिये और अपने लिए भी वर मांग लो ।५३। यह सुनकर उक्त मृदुभाषिणी ने देवी को पुष्पांजलि समर्पित की और आनन्द विभोर होकर अपनी इच्छानुसार मेघमालिका से मोरनी के बोलने के समान आकाश में स्थित भगवती से निवेदन किया ।५४—५५। वह बोली—हे देवि ! देवाधिदेव भगवान शम्भु के साथ जैसा आपका प्रेम है वैसा ही प्रेम मेरा भी अपने भर्ता के साथ रहे और मेरे स्वामी अमरत्व को प्राप्त हों ।५६।

आसृष्टेनियनेर्दाडयद्दिमरत्व न लभ्यते ।
तपोदानैरतोऽन्यं त्वं वरं वरय सुव्रते ।५७
अलभ्यमेतन्मे तन्मद्भर्तुर्गृहान्तरात् ।
मृतस्य मा विनिर्यातु जीवो ब्राह्ममपि क्षणात् ।५८
देहपातश्च मे भर्तुर्यदास्यादत्ममन्दिरे ।
तदेतदस्त्विति वरो दीयेतामम्बिके नमः ।५९
एवमस्तु सुते त्वं च पत्यौ लोकान्तरास्थिते ।
भविष्यसि प्रिया भार्या देहान्ते नाऽत्र संशयः ।६०
इत्युक्त्वा तिररमाऽसौ गौर्या गौर्गगनोदरे ।
मेघमालाध्वनिरिव निरवद्यसमुद्यता ।६१
देव्यां गतायां भर्तारस्तासां कालेन केनचित् ।
ते ककुब्ध्यः समाजग्मुः सर्वे प्राप्तमहावराः ।६२
अद्याऽयमपि संयतु भार्याया निकटं पतिः ।
भ्रातॄणां बान्धवानां च भवत्वन्योन्यसंगमः ।६३

देवी ने कहा—हे सुव्रते ! आदि सृष्टि के आरम्भ से निर्यात पर्यन्त दान आदि के द्वारा अमरत्व की प्राप्ति सम्भव नहीं है, अतः तुम किसी अन्य वर की याचना करो ।५७। वह बोली–हे देवी ! यदि मेरे लिये पति का प्राण घर से क्षण भर के लिये भी बाहर न जाय ।५८–५९। देवी ने कहा—हे सुते ! ऐसा ही हो जब तुम्हारा पति मरकर सप्तद्वीप के अधिपति में स्थित हो जायगा तब तुम उनकी प्रिय पत्नी रहोगी, इसमें संशय नहीं है ।६९। जिस प्रकार निर्दोष रूप से उद्यत मेघमाला की ध्वनि मौन धारण कर लेती है, वैसे ही कल्याणोद्यत देवी पार्वती भी मौन हो गयीं ।६१। भगवती के चले जाने पर उन ब्राह्मणियों के सब पति महान् वर को प्राप्त करके दिशाओं से घर लौट आये ।६२। जब यह पति भी अपनी पत्नी के निकट पहुँचे तब सब भ्राताओं तथा बांधवी का परस्पर मिलन हो गया ।६३।

इदमन्यदथैतेषामसमञ्जसमाकुलम् ।
शृणु किवृयमाश्चर्यमार्यकार्योपरोधकम् ।६४
त यतां तप एतेषां पितरौ तो वधूयुतौ ।
तीर्थ मुन्याश्रमश्रेणी द्रष्टु दुःखान्विततौ गयौ ।६५
शरीरनैरपेक्ष्येण पुत्राणां हितकाम्यया ।
गन्तुं कलापग्रामं तं यत्नवन्तौ वभूवतुः ।६६
तौ प्रयातौ मुनिग्राममार्गे ददृशतुः सितम् ।
पुरुषं कपिलं ह्रस्वं भस्मांगं चोर्ध्वमूर्धजम् ।६७
धूलीलवमनादृत्य तं जरत्पान्यशङ्कया ।
यदा तौ जग्मतुस्तेन स उवाचाऽन्वितः क्रुधा ।६८
सवधूकं महामूर्क तीर्थार्थो दारसंयुतः ।
मां दुर्वाससमुल्लंघय् गच्छस्यस्यविहितानतिः ६९
बधूनां ते सुतानां च गच्चतस्तपपसार्जिता ।
विपरीता भविष्यन्ति लब्धा अपि महावराः ।७०

अब तुम इनके सत्कर्म के फलों की प्राप्ति में बाधक रूपी अन्य असमंजस और आश्चर्ययुक्त घटना का श्रवण करो ।६४। जब यह आठों भाई तपस्या कर रहे थे, तब वियोग-दुःख से व्याकुल इनके माता-पिता इनकी पत्नियों को साथ लेकर तीर्थों और मुनियों के आश्रमों में गये । ।६५। वे अपने देह-सुख से निरपेक्ष रहते हुए अपने पुत्रों की हितकामना से कलापग्राम नामक तीर्थ को जाने लगे ।६६। मार्ग में एक मुनियों के आश्रम में पहुँचते-पहुँचते एक उज्ज्वल पुरुष को देखा वह कपिल वर्ण का लघुकाय, शरीर में भस्म रमाये हुए और ऊर्ध्व मूर्धा वाला था ।३७। उन्होंने उसे कोई वृद्ध पथिक समझकर उसकी उपेक्षा की ओर उस पर अपने पाँवों की धूल उड़ाते हुये बढ़ चले । इससे कुपित होकर उस वृद्ध ने कहा ।६८। अरे अवधूत ! हे महामूर्ख ! तू पत्नी सहित तीर्थाटन की इच्छा वाला होकर भी मुझ दुर्वासा की उपेक्षा करके चला जा रहा है ।६९। इस प्रकार चले जाते हुए तुम्हारे बहुओं और पुत्रों के तप से अर्जित महान् वर भी विपरीत हो जायेंगे ।७०।

इत्युक्तबन्टं यावत्सदारोऽथ बधूयुतः ।
सन्मानं कुरुते तावन्मुनिरन्तर्धिमासयौ ।७१
अथ तौ पितरौ तेषां सबधूकौ सुदुःखितौ ।
कृशीभूतौ दीनमुखौ निराशौ गृहमागतौ ।७२
अतो वपाम्यंह तेषां नैकं नामाऽसमञ्जसम् ।
असमञ्जसलक्षाणि गण्डै स्फोटाः स्फुटाहुव ।७३
चिद्व्योमसंकल्पमहापुरेऽस्मिन् ।
नित्थं विचित्राण्यसमञ्जसानि ।
निःशून्यरूपेऽपि हि समवन्ति ।
दृश्ये यथा व्योमनि दृश्यजृम्भाः ।७४

तब तो वह अपनी पत्नी और बहुओं सहित मुनि का सम्मान करने के लिये प्रवृत हुआ, परन्तु उसके ऐसा करने से पूर्व ही दुर्वासा मुनि

अन्तर्धान हो गये ।७। यह देखकर बहुओं और पत्नी सहित यह अत्यन्त दुःखित होता हुआ सूखकर दुबला हो गया। म्लान मुख किये हुए वह निराश होकर घर को लौट गया ।७२। इसलिये मैं कहता हूँ कि इनका वृत्त एक ही असमंजस नहीं है, अपितु गले पर हुये बड़े फोड़े पर अनेक फोड़े होकर फूटते हों जैसे लाखों ही असमंजस हैं ।७३। जिस प्रकार कि उपद्रववश आकाश में गन्धर्व पर, उल्का आदि विचित्र दृश्य रूप विकसित होते हैं उसी प्रकार चिद्व्योम के संकल्प भूत नितान्त शून्य दृश्य रूप इन महान् पुर में लाखों ही असमंजस भरे पड़े हैं ।७४।

—:●:❊:●:—

६८—सप्तद्वीपेश्वरता की प्राप्ति

ततः पूरो मया तत्र स गौर्याश्रमतापसः ।
तापसशुष्कदर्भाग्रजराजर्जरमूर्धजः ।१
एककैन सप्तद्वीपाऽस्ति वसुधा यत्र तत्र ते ।
सप्तद्वीपेश्वरा अष्टो भवन्ति कथमुत्तमाः ।२
यस्य जीवस्य सदनान्नास्ति निर्गमव बहिः।
स करोति नथ सप्तद्वपेशत्वेन दिग्जयम् ।1
यैर्वरावरदैर्दत्ताः शोपैस्ते तद्विरुद्धताम् ।
कथं गच्छन्ति गच्छन्ति कथं छाया हितापताम ।४
संपश्यसि किमेतेषां भो साधो श्रृण्वनन्तरम् ।
अष्टमेऽस्मिन्सुसंप्राप्ते तप्रदेशं सबान्धवम् ।५।
इतो भवन्तौ तं देशमासाद्य सुखसंस्थितौ ।
स्वबन्धुसुखसंस्थानौ कंचित्कालं भविष्यतः ।६
ततस्तेऽष्टौ मरिण्यन्ति भ्रातरः क्रमशो गृहे ।
वन्धवौऽथ करिष्यन्ति तेषां देहास्तदग्निसात् ।७

कुन्ददन्त बोला—फिर वहाँ वृद्धावस्था से कुशों के अग्रभाग के समान जर्जर वालों वाले उस गौरी आश्रम के तपस्वी से मैंने पूछा ।१। हे भगवन् ! जहाँ सप्तद्वीप वाली एक ही पृथ्वी है, वहाँ वे आठों श्रेष्ठ पुरुष सप्तद्वीपेश्वर कैसे हो सकते हैं ? ।२। जीव घर से बाहर ही नहीं निकलेगा, यह सप्तद्वीपेश्वर रूप से दिग्विजय किस प्रकार करेगा ? ।३। वरदाताओं द्वारा प्रदत्त वर शापों के कारण किस प्रकार फलप्रद हो सकते हैं, शीतल छाया धूप कैसे हो सकती है ? ।४। गौरी आश्रम का वह तपस्वी बोला—हे साधो ! इन आश्चर्यों को क्या देखते हो ? इसके पश्चात् की जो घटना सुनोगे, उससे तुम्हारे संशय की निवृत्ति हो जायेगी । जब से आठवें दिन तुम दोनों बन्धुबांधवों से परिपूर्ण अपने प्रदेश में पहुँचोगे और कुछ काल तक उनके साथ सुखपूर्वक रहोगे ।६-६। फिर उन आठों भाईयों की मृत्यु घर पर ही होगी और बांधवगण फिर शरीरों का अग्नि-संस्कार करेंगे ।७।

तेषाँ ते संविदःकाशाः पृथक्पृथगवस्थिताः ।
मुहूर्तमात्रं स्थास्यन्ति सुषुप्तस्था जडा इव ।८
एतस्मिन्नन्तरे तेषाँ तानि कर्माणि धर्मतः ।
एकत्र संघटिण्यन्ति वरशापात्मकानि खे ।९
कर्माणि तान्यधिष्ठातृदेवरूपाणि पेटकम् ।
वरशापशरीराणि करिष्यति पृथक् पृथक् ।१०
वरास्तेऽत्र गमिष्गन्ति सुभगाः पद्मपाणयः ।
ब्रह्मदण्डायुधाण्चन्द्रथवलांगाश्चतुर्भुजाः ।११
शापास्तत्र भभिष्यन्ति त्रिनेत्रा शूलपाणयः।
भीषणाः कृष्णमेधाभा द्विभुजा भ्रकुटीमुखाः ।१२
सुदूरं गम्यताँ शापाः कालीऽस्भाममुपागतः ।
ऋतूनामिब तन्नाम कः समर्थोऽतिवर्तितुम् ।१३
गम्यताँ हे वरा दूरं कालोऽस्माकमुपागतः ।
ऋतूनामित्र तन्नाम कः समर्थोऽतिवर्तितुम् ।१४

तदन्तर पृथक्-२ अवस्थित हुए वे जीव मुहूर्तमात्र के लिए सुषुप्ति में समान रहेंगे ।८। इसी अवसर में उनके वे वरदान या शापरूपी कर्म-फल आकाश में एक स्थान पर एकत्र हो जायेंगे ।६। वे कर्म अपने-अपने फल देने वाले देवता के रूप में होकर अपनी अनुकूलता से पृथक-पृथक संपुट रूप होकर वर और शाप रूपी शरीरों का पृथक-पृथक ही निर्माण करेंगे ।१०। यहाँ वे वरदान सुभग पद्मपाणि, ब्रह्म दण्डायुध विभूषित, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और चार भुजाओं से सम्पन्न होंगे ।११। वहाँ वे शाप त्रिनेक्ष शूलपाणि. भीषणाकार, मेघ जैसे काले दो भुजाओं से युक्त तथा मुख पर भृकुटी चढ़ाये हुये होंगे। ।१२। वे वर कहेंगे कि हे शापो ! तुम दूर चले जाओ। ऋतुओं के समान हमारा समय आ गया है इसके उल्लंघन में कौन समर्थ है ? ।१३। इस पर पाप कहेंगे—हे वरो ! तुम दूर भागो। ऋतुओं के समान हमारा सयय उपस्थित है, इसके उल्लङ्घन में कौन समर्थ है ? ।१४।

कृता भवन्तो मुनिना वयं दिनकृता कृताः ।
मुनीनां चाऽधिको देवो भगवन्तं पुरा यतः ।१५
प्रवदत्सु वरेष्वेव शापाः क्रुद्धधियो वरान् ।
विवस्ता कृता यूयं रुष्टशतःकृताः ।१६
देवानामधिकी रुद्रो रुद्रांशप्रभो मुनिः ।
इत्युक्त्वा प्रोद्यता तेषां चक्रः शृंगाण्यगा इव ।१७
शापेषूद्यतश्शृंगेषु वरा इदमरातिषु ।
विहसन्तः प्रवक्ष्यान्ति प्रमेयोकृतनिश्चयम् ।१८
हे शापाः पापतां त्यक्त्वा कार्यस्यान्तौ विचार्यताम् ।
यत्कार्य कलहस्याऽन्ते तदेवाऽऽदौ विचार्यताम् ।१९
पितामहपुरीं गत्वा कलहान्ते विनिर्णयः ।
कर्तव्योऽस्माभिरेतत्किमादौ नेह विधीयते ।२०
शापवरोक्तमाकर्ण्य वाढमित्युररीकृतम् ।
को न गृह्णाति मूढोऽपि वाक्य युक्ति समन्वितम् ।२१

शापों की बात सुनकर वर कहेंगे—तुम्हें दुर्वासा मुनि ने बताया है और हमें सूर्य ने। भगवान सूर्य, मुनियों से पहले उत्पन्न होने के कारण अधिक श्रेष्ठ हैं।१५। यह सुनकर शाप क्रोधित हो उठे और बोले तुम सूर्य से उत्पन्न हुये हो और हम रुद्रांश से हुये हैं। देवताओं में श्रेष्ठरुद्र के अंश से दुर्वासा की उत्पत्ति है। यह कर वे वरों की ओर अपने त्रिशूलों की नोंक उस प्रकार उद्यत करेंगे जिस प्रकार पर्वत शिखरों को उद्यत करते हैं।१६–१७। शापरूपी शत्रुओं का त्रिशूल साधते हुये देखकर उनका उपहास करते हुये अपने कर्तव्य का निश्चय करते हुए कहेंगे।१८। हे शापो ! दुष्टता को छोड़कर अपने कार्य को निश्चय करने का विचार कर लो।१९। कलह के अन्त में हमें ब्रह्म पुरी में जाकर ही निर्णय लेना पड़ेगा, इसलिये पहले ही हम वैसा क्यों नहीं कर लेते ?।२०। शापों ने उनकी बात मानते हुये कहा—अच्छी बात है, ऐसा कौन मूर्ख होगा जो युक्तिमय वाक्य को न मानेगा ?।२१।

ततः शापा बरै सार्धं यास्यन्ति ब्रह्मणः पुरम्।
महानुभाव हि गतिः सदा सदेहनाशने।२२
प्रमाणपूर्व तत्सर्व यथावृत्तं परस्मरम्।
ब्रह्मणे कथयिष्यन्ति श्रुत्वा तेषां स वक्ष्यति।२३
वरशापाधिपा भो भो यतः सारा जयन्ति ते।
केऽन्तः सारा इति मिथो नूनमिन्वण्यतां स्वयम्।२४
इति श्रुत्वा प्रविष्टास्ते सारतां समवेक्षितुम्।
वराणां हृदयं शापाः शापनां हृदयं वराः।२५
ते परस्परमन्विष्य स्वयं हृदयसारताम्।
ज्ञात्वा च समवायेन प्रवक्ष्यन्ति पितामहम्।२६
जिताः प्रजानाथ ययं नाऽन्तः सारा वयं यतः।
अन्तः सारा वरा एव वज्रस्तम्भा इताऽचलाः।२७

बयं किलेमे भगवन् वराः शापाश्च सर्वदा ।
ननु सविन्मया एव देहोऽध्रोऽस्माकमस्ति नो ।२८

इसके पश्चात् वरों के साथ शाप ब्रह्मलोक को ऐसे ही जायेंगे जैसे सन्देह निवृत्ति के लिये सज्जन ज्ञानी की शरण लेते हैं ।२२। वहाँ जाकर ब्रह्माजी को प्रणाम करके वे अपने विवाद को प्रस्तुत करेंगे जिसे सुनकर ब्रह्माजी कहेंगे ।२२। हे वराधियो ! हे शापाधियो ! जिनके पक्ष में सार होगा, उन्हीं की विजय होगी । इसलिये तुम में कौन पक्ष सारयुक्त है, इसका स्वयं ही अन्वेषण करो ।२४। यह सुनकर सारता देखने के उद्देश्य से वरों के हृदयों में शापों ने और शापों के हृदयों में वरों ने प्रवेश किया ।२५। वे परस्पर हृदयों में सारता का अन्वेषण करके ब्रह्माजी से समवाय रूप में कहेंगे ।२६। शाप कहेंगे हे प्रजानाथ ! हम अन्तः सार से रहित हैं, इसलिए हम हार गये । वज्र स्तम्भों के सदृश अचल वर ही अन्तःसार से सम्पन्न हैं ।२७। हे भगवन् ! वर और शापस्वरूप हम सविनय है इसके अतिरिक्त हम कुछ भी नहीं है ।२७।

वरदस्य हि या सदिद्वरो दत्त इति स्थिता ।
सैवार्ऽथिनि मया लब्धो वरोऽयमिति तिष्ठति ।२६
विज्ञप्तिमात्रकनं देह सैव फल ततः ।
पश्यत्यनुभवत्यत्ति देशकालतभ्रमैः ।३०
वरदात्मगृहीत्वाच्चित्कालान्तरस्मृताः ।
यदा तदाऽन्तसाराऽसौ दुर्जया न तु शापजा ।३१
समेनोभयकोटिस्थ मिश्रं वस्तु भवेत्समम् ।
वरशापविलासेन क्षीरमिश्र यथा पयः ।३२
शिक्षित त्वत्त एवेतियत्तदेव तय प्रभो ।
पुनः प्रतीपं पठितं शीघ्रं यामो नमोऽस्तु ते ।३३
इत्युक्त्वा स स्वयं शापः क्वाऽपि शापगणो ययौ ।
प्रशान्ते तितिष्ट दृष्टे व्योम्नि केशोण्डूकं यथा ।३४

आथाऽन्यो वरपूगोऽत्र गृहनिमर्गरोधकः।
स्थानिस्थानमिवाऽऽदेशः समानार्थोऽभ्यपूरयत् ।३५

वर देने वाला मैंने वर प्रदान किया इस प्रकार की संवित् ही वर पाने वाले में 'मैंने यह वर प्राप्त किया इस प्रकार जब स्थित होती हैं। ।२६। उस वर का फल सुख-भोग का घर जो शरीर है, उसका विज्ञप्ति मात्र स्फुरण ही है, इसलिये विज्ञप्ति ही शरीराकार होकर देश—काल रूपी सैकड़ों भ्रमों से भोगों को देखती, अनुभव करती और भोजनादि की अवस्था से पूर्ण परिपुष्टि को प्राप्त होती है उत वही अन्तः सरता को पाकर दुर्जन हो जाती है, परन्तु शाप से उत्पन्न चित्त अन्तःसार वाली नहीं होती ।३१। जिस प्रकार दूध मिला जल होता है उसी के समान बलवान वर और शाप के विलास से शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की जो समान रूप के मिश्रित वस्तु है वह देह ही हैं ।३२। हे प्रभो ! हमने आपसे ही जो शिक्षा प्राप्त की थी उसका पुनः परायण हमारी धृष्टता ही है, अतः हमारे अपराध को क्षमा कीजिये। हम आपको नमस्कार करके अब अपने स्थान को जा रहे हैं ।३३। जिस प्रकार नेत्र से तिमिर रोग के हट जाने पर आकाश से कशोण्ड्रक कहीं चला जाता है, वैसे ही ब्रह्माजी से उस प्रकार कहकर स्वयं शापरूप वह शापगण कहीं चला गया ।३४। उसके चले जाने पर ब्राह्मणियों को भगवती गौरी द्वारा प्राप्त वरगण ने वैसे ही शापों के स्थान की पूर्ति की, जैसे वैयाकरण प्रक्रिया में आदेश स्थानों को पूर्ण करता है ।३४।

सप्तद्वीपेशजीवानां निर्याण शवसद्मनः।
देवेश विद्मो न वयमन्धकूपादिवाऽम्भसाम् ।३६
सप्तद्वीपेश्वरानेतानिमे द्वीपेषु सद्मसु।
कारयन्ति वरावर्यावीपा दिग्विजयैरणे ।३७
तदेवमनिवार्येऽस्मिन्विरोधे विबुधेश्वर।
यदनुष्ठेयमस्माभिस्तदादिश शिवाय नः ।३८

सप्तद्वीपेश्वरवरा गृहरोधवराश्च हे ।
कामः सम्पन्नः एवेह भवतां भवतामपि ।३९
व्रजतैतदपेक्षत्वं यावन्नेष्टावपि क्षणात् ।
चिरं चिराय सदने सप्तद्वीपेश्वराः स्थिताः ।४०
कुतो भूमण्डलान्यष्टौ सप्तद्वीपानि भूतयः ।
एकमेवेह भूपीठं श्रुतं दृष्टं च नेतरत ।४१
कथं चैतानि तिष्ठन्ति कस्मिमश्चिद् गृहकोशके ।
पद्माक्षकोशके सूक्ष्मे कथ मान्ति मतंगजाः ।४२

तब शापों का स्थान ग्रहण किये हुये वर ब्रह्माजी कहेंगे—हे देवेश ! जैसे अन्धे कूपों से जल बाहर निकले, वैसे उन सप्तद्वीपेश्वर जीवों को शवसदन से बाहर निकालना हमें ज्ञात नहीं है, क्योंकि वहिर्गमन हमने रोका हुआ है ।३६। वर श्रेष्ठ वीर है, यहीं हम इन सप्तद्वीपाधिपतियों को घररूपी द्वीपों के युद्ध में दिग्विजय प्राप्त कराते हैं ।३७। अतः यह जो अनिवार्य विरोध उपस्थित हो गया है, उसमें हमारा क्या कर्तव्य है, यह हमारे कल्याणार्थ आप बताने की कृपा करें ।३८। ब्रह्माजी बोलेंगे हे सप्तद्वीपाधिपतियों के निर्माता वरो ! गृहरोध करने वालो ! तुम्हारी इच्छा तो पूर्णरूप से सम्पन्न हो चुकी है ।३९। अब तुम निर्लेप हो जाओ, क्योंकि तुम्हारी इच्छा के बिना भी वह आठों अपनी मृत्यु के अन्तिम क्षण में दीर्घ काल से ही सप्तद्वीपेश्वर बनकर अपने घर में स्थित हैं ।४०। इस पर वर कहेंगे । हे प्रभो ! सप्तद्वीपमय आप भूमण्डल और उनके ऐश्वर्य कहाँ है ? यहाँ तो एक ही भूपीठ के अतिरिक्त अन्य कोई सुनने या देखने में नहीं आया है ।४१। किसी एक ही गृह में सात द्वीप वाले में भूमण्डल किस प्रकार रह सकते हैं ? कहीं छोटे से कमलगट्टे में हाथियों का रहना सम्भव है ?

युक्तं युष्माभिरस्याभिः सर्वं व्योमात्मकं जगत् ।
स्थितं चित्परमाणवन्तरन्तःस्वप्नोऽनुभूयते ।४३

माति यत्परमस्यऽणोरन्तस्थवगृहोदरे ।
स्फुरितं तत्किमाश्चर्यं कः मय. कृते क्रमे ।४४
मृतेरन्तर भाति यथास्थितमिद जगत् ।
शून्यात्मैव घनाकारं तस्मिन्नेव क्षणे चितः ।४५
अणावपि जगन्माति यत्र यत्र गहोदरे ।
सप्तद्वीपा वसुमती कचन्तीति किमद्‌भुतम् ।४६
यद्‌भातीदं च चित्तत्व न जगत्कचित् ।
चिन्मात्रमेघ तद्‌भाति शून्यत्वेन यथाऽम्वरम् ।४७
इति ते ब्रह्मजा प्रोक्ता वरदेन वरास्ततः ।
तानाधिभौतिकभ्रांतिमयाम् संत्यज्य देहकान् ।४८
प्रणम्याऽज सर्क्षां जग्मुरानिवाहिकदेहिनः ।
सप्तद्वीपे च देवानां गृहकोशान्कचञ्जनान् ।४९

इस पर ब्रह्माजी कहेंगे—हे वरगण ! हम और तुम संचित परमाणु में स्थित व्योमात्मक सम्पूर्ण जगत् का स्वप्न में ही अनुभव करते हैं इसलिये परमाणु में विद्यमान अपने मुँह में जो स्फुरत होकर समाया हुआ है, उनमें आश्चर्य ही क्या है ? प्रकृति क्रम से विस्मय ही कैसा ? ।४३-४४। माने के पश्चात् तत्क्षण शून्यरूप होता हुआ वह घनाकार जगत् यथावत् स्फुरित होता है । जहाँ सत्‌चित् परमाणु में भी जगत् समा सकता हूँ तो उस घर में सप्तद्वीप वाली पृथ्वी का स्फुरण कौन सी विचित्रता हुई ।४५-४६। यह जगत् रूप है वह सब चित तल ही है । शून्यरूप आकाश से स्फुरित होने के समान ही जगत् रूप से चिन्मात्र ही स्फुरित है ।४७। ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर अपने आधिभौतिक भ्रांतिमय देहों को छोड़कर अतिवाहिक देह होकर ब्रह्माजी को प्रणाम करते हुये विरोध रहित होकर सब साथ-साथ विविधजनों युक्त उन-उन देवताओं के घरों को चले गए ।४८—४९।

यावत्ते तत्र सपन्नाः सप्तद्वीपांधिनायकाः ।
अष्टावपीपुष्टनाँ दिनाष्टकमहीभुजाम् ।५०

ते परस्परमज्ञाता अज्ञाश्चान्योन्यबन्धवः ।
अयोन्यभूमण्डलया अन्योन्याऽभिमते हिताः ।५१
तेषां कश्चिद् गृहस्याऽन्तरेव तारुण्यसुन्दरः ।
उज्जयिन्यां महापुर्या राजधान्यां सुखे स्थितः ।५२
शाकद्वीपास्पदः कश्चिन्नागलोकजिगीषया ।
विचरत्यब्धिजठरे सर्वदिग्विजयोद्यतः ।५३
कुशद्वीपपराजधान्यां निराधिः सकलप्रजाः ।
कृतदिग्विजयः कश्चित्सुप्तः कान्तावलम्वितः :५४
शाल्मलिद्वीपेषशैलेन्द्रशिरःपुर्याः सरोवरे ।
जललीलारतःकश्चित्सह विद्याधरीवर्णै ।५५

तदनन्तर उस गृह में सम्पन्न रूप से अवस्थित आठ जगतों के विभाग से ब्रह्माजी के आठ दिनों पर्यन्त सप्तद्वीप वाली पृथ्वी के वे अधिपति बन गये ।५। उनमें से प्रत्येक ही भाई के सहित होने की कल्पना वाला होने से अन्योन्य बन्धु प्रत्येक के पृथक्-पृथक् राज्य कल्पित होने से एक दूसरे को अधिपति न समझने वाले होने के कारण अन्योन्य के अभिमत में हितैषी रूप से स्थित हुए ।११। उनमें से एक तरुण सुन्दर भ्राता घर में ही उज्जयिनी महानगरी रूपी राजधानी में सुखपूर्वक रहता है दूसरा भाई शाकद्वीप में रहकर सब दिशाओं को जीतने को प्रयत्नशील होकर नाग लोक विजय के लिये समुद्र के गर्भ में भ्रमण करता है। तीसरा भाई, अपनी सब प्रजा को सुखी रखता हुआ सव दिशाओं को जीतकर कुशद्वीप की राजधानी में अपनी पत्नी के साथ सो रहा है। चौथा भाई शाल्मलि द्वीप के शैल-शिखर पर स्थित पुरी के सरोवरों में विद्याधारियों के साथ जल बिहार कर रहा है ।५२—५५।

कौञ्चद्वीपे हेमघेपुरे सप्तद्वीपविवर्धिते ।
प्रवृत्तो वाजिमेन कश्चिद्यष्टुं दिनाष्टकम् ।५६
उद्यतं शाल्मलिद्वीपे कश्चिद्द्वीपान्तचारिणा ।
याद्ध मुद्धुतदिग्दन्तिदन्ताकृष्टकुलाचलः ।५७

गोमेदद्विपकः कश्चित्पुष्करद्वीपराट् सुताम् ।
समानेतुं वशाद्याति कषत्से तोऽष्टमोऽभवत् ।५८
पष्करद्वीपकः कश्चिल्लोकालोकाऽद्रिभूभुजः ।
दूतेन सह निर्यातो धनभूमिदिद्रक्षया ।५९
प्रत्येकमित्थसेतेषां द्वीपद्वीपाधिनाथताम् ।
कुर्वतां स्वंगहाकाशे दृष्ट्वा स्वपतिभौचिताम ।६०
त्यक्ताभिमानिकाकारा द्विविधास्ते वरास्ततः ।
तत्सविद्भिगृहेष्वन्तरेकतां खानि खैरिव ।६१
यास्यस्ति ते भविय्यन्ति संप्राप्ताभिमतश्चिरम् ।
सप्तद्वीपेश्वरास्तुष्टा मन्वष्टावपि तुष्टिमत् ।६२
इत्येते प्रविकसितोदितक्रियार्थाः ।
प्राप्स्यन्ति प्रविततनबुद्धयतपोणोभिः ।
अन्तर्यंत्स्फुरति विदस्तदेव वाह्यं
नाऽऽप्तं कैस्तदुचितकर्मभिः किलेति ।६३

पाँचवा भाई क्रौंचद्वीप में सप्तद्वीप से प्राप्त महान् ऐश्वर्य से सम्पन्न हेमपुर में ब्रह्माजी के आठ दिन पर्यन्त अश्वमेघ यज्ञ में प्रवृत्त है । छटवाँ भाई शाल्मलिद्वीप में उत्पादित दिग्गजों के दाँतों से कुलाचलों को खींचता हुआ अन्त द्वीपाधिपति से रण करने के लिए तत्पर है । आठवाँ भाई गोमेद द्वीप में रहता है, वह काम के वशीभूत होकर पुष्करद्वीप के भूपति की कन्या को जीतने के विचार से शत्रु—देशों का मर्दन करने वाली सेना से सम्पन्न हो गया है ।५६-५८। पुष्करद्वीप का निवासी जो साँतवाँ भाई है, वह लोकालोक पर्वत के राजदूत के साथ धनमयी भूमियों को देखने के विचार से अपने गृह से चला गया है ।५९। इस प्रकार अपने घर रूपी आकाश में पृथक-पृथक स्थित इनमें से प्रत्येक की अपने प्रतिद्वीप-द्वीपेश्वरता को देखकर दोनों प्रकार के वे वर आतिवातिक शरीर रूप में भी अभिमानिक आकार को छोड़कर उस आठों के साथ वैसे ही एकाकार हो जायेंगे जैसे कि आकाश आकाशों के साथ एकाकार हो जाते

हैं। चिरकाल में इच्छित सप्तद्वीपाधिपतिता वाले वे आठों ही मनःतुष्टि वाले राज्य में स्थित होकर सन्तुष्ट हो जायेंगे।६०-६१। वेररूपी विकसित क्रियार्थ वाले, वितत बुद्धि वे आठों भाई सप्तद्वीपेश्वरता को तपों से प्राप्त होंगे। जिसका स्फुरण प्रत्येक चैतन्य में होता है वह बाह्य रूप से अनुकूल कर्मों द्वारा कौन प्राप्त नहीं कर सकता है ? ।६३।

—:●:—

९९—चिन्मात्र ही जगत्रूप से भासित है

इत्युक्तवानसौ पृष्टः कदम्बतलतापरः।
सप्तद्वीपा भुवोऽष्टौ ताः कथं भाता गृहेष्विति ।१
चिद्धातुरीदृगेवाऽयं यदेपब्योमरूप्मपि ।
सर्बणो यत्र यत्राऽऽस्ते तत्र तत्राऽऽत्मनि स्वयम् ।२
आन्मानमित्थं त्रैलोक्यरूपेणाऽऽन्यन वा निजम् ।
परिपश्यति रूपं स्वमत्यजन्नेव खात्मकम् ।३
एकस्मिन्विमले शान्ते शिवे परमकारणे ।
कथं स्वभावसंसिद्धा नानाता वास्तबी स्थिता ।४
सर्व शान्त चिदाकाशं नानाऽस्तीह न किंचन ।
दृश्यमानभपि स्फारमावर्तात्मा यथाऽम्भसि ।५
अमत्स्वेपु पदार्थेषु पदार्था इति भान्ति यत्।
चित्स्व स्वप्नसुषुप्तात्म तत्तस्याऽच्छ निजं वपुः ।६
सस्पन्दोऽपि हि नि स्पन्दः पर्बतोऽपि न पर्वतः।
यथा स्वप्नेषु चिद्भावः स्वभावोऽर्थगतस्यथा ।७

कुन्ददन्त ने कहा—जब मैंने उस कदम्ब के नीचे वाले तपस्वी से यह पूछा कि घरों के स्वल्प आकाश में उन सप्तद्वीप वाले आठ लोकों को भान कैसे हुआ ? तब उसने उत्तर दिया।१। वह बोला-यह चिदाकाश सर्वव्याप्त एवं प्रपंच रहित होकर भी जहाँ स्थित है, वहाँ निज स्वरूप को

त्रैलोक्य रूप से अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को छोड़े बिना ही देखता है ।२-३। कुन्ददन्त बोला—एक, विमल, शान्त, शिव परम कारण में स्वभाव से सिद्ध वास्तविक नानात्व किस प्रकार स्थित है ।४। तपस्वी ने कहा—जल में दिखाई देता हुआ आवर्त जैसे जल से भिन्न नहीं है वैसे ही यहाँ सर्वशान्त चिदाकाश ही विस्तृत रूप से दिखाई देता हुआ भी अनेक नहीं है ।५। इस सब पदार्थों की असत्ता में पदार्थ रूप से भासमान, स्वप्न-सुषुप्ति के समान अपने रूप को भूला हुआ है ।६। स्पन्दयुक्त होकर भी वह स्पन्दहीन है, पर्वत रूप होने पर भी पर्वत नहीं है । स्वप्न में चिद्धात्र के परार्थगत होने के समान ही स्वभावार्थगत है ।७।

न स्वभावान चैवाऽर्याः सन्ति सर्वाऽत्मकोचिते ।
सर्सादौ कचितं रूतं यद्यथा तत्तथा स्थितम् ।८
यवत्संकल्पित तावद्यथा संकल्पितं तथा ।
यथा संकल्पनगर कचतीदं जगत्तथा ।९
संकल्पनगरे यावत्सांकल्पं सकला स्थितिः ।
भवत्येवाऽप्यमद्रूपा सतींवाऽनुभवे स्थिता ।१०
प्रवहत्येव नियतिर्नियतार्थं प्रदायिनी ।
स्थावरं जङ्गमं चैव तिष्ठष्येव यथाक्रमम् ।११
जायते जगमं जीवात्स्थावरं स्थावरादपि ।
नियत्याऽधो वहत्यम्बु गच्छत्पूर्ध्वमथाऽबलः ।१२
वहन्ति देहयन्त्राणि ज्योतीषि प्रतपन्ति च ।
वायवो नित्यगतयः स्थिता शैलादय स्थिराः ।१३
ज्योतिमयं निवृत्तं तु धारासाराम्वराकृतं ।
युगसंवत्सराद्यात्म कालचक्रं प्रवर्तते ।१४

सर्गादि स्वभाव या सृष्टि स्वभाव से किये पदार्थ सर्वात्मा के अनुरूप नहीं है । सर्ग आदि में स्फुरित रूप अब भी इसी प्रकार स्थित है ।८। जिस प्रकार संकल्प के अनुसार ही संकल्प नगर का स्फुरण है, वैसे

यह जगत् भी जब जिस प्रकार संकल्प किया जाय, तब उसी प्रकार से स्फुरित होता है ।९। असद्रूप होने पर भी सत्-रूप में संकल्पनगर की स्थिति तब तक रहती है, जब तक संकल्प रहते हैं ।१०। नित्य अर्थ के देने वाली ब्रह्माणी की संकल्परूपा नियति अब भी प्रवाहित है और भविष्य में भी प्रवाहित रहेगी, उसी से स्थावर जङ्गम आदि जीवों की क्रम पूर्वक स्थिति है ।११। स्फुट जीव वाली उस नियति द्वारा जङ्गम से जङ्गम और स्थावर से स्थावर की उत्पत्ति है। उसी से जल का प्रभाव नीचे की ओर और अग्नि की ज्वालाएँ ऊपर की ओर जाती हैं ।१२। उसी के कारण सूर्य, चन्द्रमा रूपी ज्योतियाँ साकार होकर तपती, पवन स्पन्दशील और पर्वतादि स्थिर रहते हैं ।१३। उसी से ज्योतिर्मय युग, संवत्सर आदि रूप वाला कालचक्र वर्षाऋतु में आकाश की वर्षा से व्याप्त करता हुआ बर्तता है ।१४।

प्राग्दृष्ट स्मृतिमायाति तत्स्वसंकल्पनान्यतः।
भाति प्रथमसर्गे तु कस्य प्राग्दृष्टभासनम् ।१५
अपूर्वदृश्यते सर्वं स्वमरणं यथा।
प्राग्दृष्ट इष्टमित्येव तत्रैवाऽभ्यासतः स्मृतिः ।१६
चित्वाच्चिद्योम्नि कचति जगत्संकल्पपतनम्।
न सन्नाऽसदिद तस्माद भाताभात यतः स्वतः ।१७
चित्प्रसादेन संकल्पस्यप्नाद्याद्यनुभूयते।
शुद्धं चिदव्योम सांकश्पुरं मा स्मर्यतां कथम् ।१८
हर्षामषविनिर्मुक्तौ दुःखेन च सुखेन च।
प्रकृतनैव वार्गेण ज्ञैश्चकैरिव गम्यते ।१९
निद्राव्यपगमे स्वप्नगरे यादृश स्मृतौ।
गिदब्योमात्म परं विद्धि त्रिजगद्भ्रमम् ।२०

कुन्ददन्त बोला—जो वस्तु देखी जाती है वह स्मृति में स्थिर होती है उसके अनुसार ही संकल्प होते हैं और उन्हीं संकल्पों से सृष्टि का आभास

होता है। यह सभी कल्पों में सर्ग में सम्भव है ।१५। तपस्वी ने कहा– स्वप्न में अपनी मृत्यु के समान ही सर्व कुछ दिखाई देता है, उसमें प्रथम देखा हुआ है, इस प्रकार अभ्यास से स्मृति में आता है।१६। चित् होने से चिदाकाश में जगत्-रूपी संकल्पनगर का स्फुरण होता है। कभी भासित होने और न होने के कारण वह सत् या असत् नहीं है ।१७। चित् के प्रसाद से अब भी संकल्प और स्वप्नादि का अनुभव होता है। शुद्ध चिदाकाश रूपी संकल्प पुर का स्मरण कैसे नहीं होगा ।१८। हर्ष और अमर्ष से रहित ज्ञानी पुरुष दुःख मिले या सुख चक्र के समान प्रकृत मार्ग से ही गमन करते हैं।१९। जैसे निन्द्रा से जागने पर स्वप्न नगर का अधिष्ठान ही स्मृति में शेष रहता है, वैसे ही त्रिजगत् का भ्रम भी परम चिद्व्योमात्मक ही है।२०।

संविदाभासमात्रै यज्जगदित्यभिशब्दितम्ः।
तत्सविदव्योम संशान्तं केवल विद्धि नेतरत् ।२१
यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यत्सर्वं सर्वतश्च यन्।
सर्वं सर्वतया सर्वं तत्सर्वं सर्वदा स्थितम् ।२२
यथेय ससृतिर्ब्राह्मी भवतो यद् भविष्यति।
यथा भानं च दृश्यस्य तदेतत्कथित मया ।२३
उत्तिष्ठत ब्रजतमास्पदमसिह पद्मं
भृङ्गाविवाऽभिमतममाशु विधीयतां स्वम्।
तिष्ठामि दुःखमलमस्तसमाधिसस्थ।
भूपः समाधिमहमङ्ग चिरं विशामि ।२४

संवित् का जो आभास है, वही 'जगत' शब्द से प्रसिद्ध है, परन्तु उसे भी तुम शान्त चिदाकाश के अतिरिक्त और कुछ भी न समझो।२१। जिसमें सब कुछ है, जिससे सब कुछ है जो सब कुछ है और जो सब ओर से है, वही सब कुछ, सब प्रकार, सदैव एवं सर्वत्र स्थित ब्रह्म है।२२। जिस प्रकार से यह ब्राह्मी सृष्टि वर्तमान हैं और भविष्य में जो होगी

तथा जैसे इस दृश्यमान जगत् का भान होता है, वह सब मैंने कह दिया है ।२३। हे ब्राह्मणो ! उठो जैसे प्रातःकाल होने पर भौंरे कमल के समीप जाते हैं, वैसे ही अपने इच्छित शुभ कर्मों का शीघ्र विधान करो। मैं भी समाधि भङ्ग होने के कारण दुःखी हो रहा हूँ, अतः पुनः चिर समाधि में प्रविष्ट होता हूँ ।२४।

—:●:※:●:—

१००—कुन्ददन्त का मोह नाश

जरन्मुनिरपीत्युक्त्वा ध्यानमीलितलोचनः ।
आसीदस्पन्दितप्राणमनाश्चित्र इवार्पितः ।१
आवाभ्यां प्रणयोदारै प्रार्थितोऽपि पुनः पुनः ।
वाक्यै संसारमविदन्न क्वो दद्यवान्पुनः ।२
आदाँ प्रदेशतस्माच्चलित्वा मन्दमुत्सुको ।
दिनैः कतिपयैः प्राप्तां गृह मुदितवान्धवम् ।३
अथ तत्रोत्सवं कृत्वा कथाः प्रोच्य चिरंतनीः ।
स्थितास्तावद्वयँ यावत्सप्ताऽपि भ्रातरोऽथ ते ।४
क्रमेण विलय प्राप्ताः व्रलयेष्वर्णवा इव ।
मुक्तोऽसौ मे सखैवैक एकार्णव इवाऽद्दकः ।५
ततः कालेन नोऽप्यस्तं दिनान्तेऽर्क इवाऽऽष्टतः ।
अहं दुःखपरीतात्मा परं वैधुर्यमागतः ।६
ततोऽहं दुखितो भूयः कदम्वतरूतापसम् ।
गतो दुःखोपघातय तज्ज्ञान प्रष्टुमाहृतः ७

कुन्ददन्त बोला—उस वृद्ध मुनि ने वह कहकर ध्यान से नेत्र बन्द किये और प्राण तथा मन के स्पन्दन-शून्य होने पर वे चित्रलिखित के समान गये ।१। हम दोनों ने विनीत वचनों से बारम्बार प्रार्थना की, किन्तु

फिर उसने उत्तर नहीं दिया ।२। मुनि के मौन होने से हम उदास हो गये और उस प्रदेश से चल पड़े तथा कुछ दिनों में ही मुदित बांधवों से सम्पन्न घर में जा पहुँचे ।३। फिर कुल देवता के आराधन आदि उत्सव करके विभिन्न प्राचीन कथाओं को कहते हुए हम उस घर में तब तक रहे, जब तक सातों भाई क्रम से सातों समुद्रों के समान प्रलय में विलीन न हो गये । तब एक मात्र मेरा वह सखा ही आठवें समुद्र के समान विलीन होने से शेष रहा आया ।४-५। फिर कुछ काल के पश्चात् मेरा वह सखा भी, जैसे दिन की समाप्ति पर सूर्य अस्त हो जाता है वैसे ही मरण को प्राप्त हो गया तब मैं उसके वियोग में दुःखी हुआ ।६। तब मैं अपने उस दुःख की शान्ति का उपाय रूप ज्ञान को सादर पूजने के निश्चय से उसी कदम्ब के नीचे वाले तपस्वी के पास पहुँचा ।७।

तत्र मासत्रयेणांऽसौ समाधिविरतोऽभवत् ।
प्रशतेन मया पृष्टः सन्निदं प्रोक्त वानथ ।८
अह समाधिविरतः स्थातुं शक्नोमि न क्षणम् ।
मामाधिमेव प्रविशाम्यहमाशु कृतत्वरः ।६
पदमार्थोषदेशस्ते नाऽभ्यासेन विनाऽनघ ।
लगत्यत्र परां युक्तिमिमां श्रृणु ततः कुरू ।१०
अयोध्या नाम पूरस्ति तत्राऽस्त वसुधाधिपः ।
नाम्ना दशरथस्तस्यपुत्रो राम इति श्रुतः ।११
सकाशं तत्र गच्छ त्वं तस्मै कुलगुरुः किल ।
वसिष्ठख्यो मुनिश्रेष्ठः कथयिष्यति सांसदि ।१२
मोक्षोपायकथां दिव्यां तांश्रुत्वा सुचिर द्विज ।
विश्रान्तिमेष्यसि परे पदेऽहमिद पावने ।१३
इत्युक्त्वा स समाधान रसायनमहार्णवम् ।
विवेशाऽहमिमं देशं त्वत्सकाशमुपागतः ।१४

तीन मास तक प्रतीक्षा करने पर उसकी समाधि भङ्ग हुई-तब मैंने उससे विनय पूर्वक पूछा जो उसके उत्तर में उसने कहा ।८। मैं समाधि-

रहित अवस्था में एक क्षण भी रहने में समर्थ नहीं हूँ इसलिये शीघ्रता पूर्वक मुझे उसमें प्रवेश करना है।९। हे अनघ ! अभ्यास के बिना मेरा परमार्थिक उपदेश भी तुम्हारे लिये व्यर्थ ही होगा, इसलिये मैं तुम्हें अन्य युक्ति बताता हूँ उसे श्रवण करो।१०। अयोध्या नाम की जो पुरी है, उसके पृथ्वी पति राजा दशरथ हैं उनके पुत्र का नाम 'राम' प्रसिद्ध है।११। तुम उन्हीं के समीप जाओ। हे द्विज ! उनके कुलगुरु मुनिवर वसिष्ठजी वहाँ की सभा में जो दिव्यकथा कहेंगे, उसे बहुत समय तक सुनकर तुम मेरे ही समान उस परम पावन पद में विश्रान्ति पाओगे।१२-१३। यह कहकर वह तपस्वी समाधान रूपी रसायन के महासागर में निमग्न हो गया और मैं इस देश में आपके समक्ष उपस्थित हो गया हूँ।१४।

एषौहष्मेतद् वृत्त मे सर्व कथितवानहम्।
यथावृत्तं यथादृष्टँ यथाश्रतमखण्डितम्।१५
मकुन्द दन्त इत्यादिकथाकथनकोविदः।
स्थितस्तःप्रभृत्येव मत्समीपगतः सदा।१६
स एष कुन्ददन्ताख्यो द्विजः पाश्व समास्थितः।
श्रुतवान्सांहिमेतां मोक्षोपायाभिधामिह।१७
स एष कुन्ददन्ताख्यो मम पार्श्वगतो द्विजः।
अद्य निःसांशियो जातो न वेति परितृच्छ्यताम्।८
इत्युक्ते राघवेणाऽथ प्रोवाच वदतांवर।
स बसिष्ठो मुनिश्रेष्ठः कुन्ददन्तं विलोकयन्।१९
कुन्ददन्त द्विजवर कथ्यतां किं त्वयाऽनघ।
बुद्धँ श्रुतवता ज्ञेयं मदुक्तं मोक्षदँपरम्।२०
सर्बसांशयविच्छेदि चेत एव जयाय मे।
सर्वसशयविच्छेदो ज्ञातं ज्ञेयमखण्डितम्।२१

यही मैं कुन्ददन्त हूँ, मैंने अपना सम्पूर्ण घटित एवं देखी-सुना वृत्तान्त पूर्ण आपको सुना दिया है।११। श्रीराम बोले—हे ब्रह्मन् ! जैसा

कथाओं के कहने में कुशल वह कुन्ददन्त उस दिन से मेरे पास ही रहता है ।१६। मेरे पार्श्व में जो यह द्विज बैंठा है । यह कुन्ददन्त ही है । इस सभा में इसने मोक्षोपाय नामक इस सम्पूर्ण संहिता को भले प्रकार सुना है ।१७। वह यह कुन्ददन्त नामक द्विज मेरे पास बैंठा है, यह संशय-शून्य हुआ अथवा नहीं, यह इससे पूछिये ।१८। बाल्मीकिजी बोले—श्रीराम के इस प्रकार कहने पर वक्ता श्रेष्ठ मुनिवेर बसिष्ठजी ने कुन्ददन्त की ओर देखते हुए कहा ।१९। हे निष्पाप ! हे द्विजवर कुन्ददन्त ! मेरे इस मोक्षदायक शास्त्र को सुनकर तुम किस ज्ञातव्य बिषय को जान पाये, यह बताओ ।२०। कुन्ददन्त बोला—सब संशयों का नाशक मेरा जो चित्त है यही मेरी जीत के निमित्त है । मेरे सब संशय मिट चुके हैं और ज्ञेय तत्व को मैंने जान लिया है ।२१।

ज्ञात ज्ञानव्यममलं दृष्टं द्रष्टव्यमक्षतम् ।
प्रान्तं प्राप्तव्यमखिल विश्रान्तोऽस्मि परे पदे ।२२
बद्धेयंत्वदिदं सर्वं परमार्थघनं धनम् ।
अनन्येनाऽऽत्मनो व्योम्नि जगद्रूपेण जृम्भितम् ।२३
सर्वात्मकतया सर्वरूपिण: सर्वगात्मन: ।
सर्वं सर्वेण सर्वदा संभवत्यलम् ।२४
सम्भवन्ति जगन्त्यन्त: सिद्धार्थकणकोटरे ।
न संभवन्ति च यथा ज्ञातमेतदशेषत: ।२५
गृहेऽन्त: संभवत्येव सप्तद्वीपा बसुन्धरा ।
गेहं च शून्यमेवाऽऽस्ते सत्यमेतदस शयम् ।२६
यद्यद्यदा वस्तु यथोदितात्म
भातीह भूतैरनुभूयते च ।
तत्तत्तदा सर्वघनस्तथाऽऽस्ति
ब्रह्मे त्थमाद्यन्तविमुक्तस्ति ।

जानने योग्य निर्मल ब्रह्म को मैंने जान लिया, क्षय न होने वाले द्रष्टव्य को देख लिया और सब प्राप्तव्य को पाकर मैं इस परमपद में विश्रान्ति पाये हुए हैं । इस आत्मचित का ज्ञान मुझे आपसे मिल गया

है। यह सर्व परमार्थ धन आकाश में आत्मा से अनन्य, जगद्रूप होकर स्थित है।२३। सर्वात्मक होने से सर्वरूप, सर्वव्याप्त आत्मा का सब कुछ सब भाँति, सब स्थान पर, सदैव पूर्णरूपेण सम्भव है।२४। सरसों कण में भी सर्व कल्पना वाली अधिष्ठानभूत चित्त की सत्ता होने से, उससे भी अनन्त जगत् है और चित्त का पूर्णज्ञान होने पर कहीं कोई जगत् नहीं रहता।२५। घर के भीतर इस सप्तद्वीप वाली पृथ्वी का उत्पन्न होना सम्भव है और यह असंशय एवं सत्य है कि घर शून्य ही है।२६। जिस-जिस वस्तु का जैसा भान होता है और प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाता है। वह सब उस-उस रूप से सर्व धन आत्मा ही है। इस प्रकार आदि अन्त से रहित ब्रह्म ही सब कुछ है।२७।

—:●:—

१०१–ब्रह्म ही सब कुछ है

कुन्ददन्ते वदत्येवं बसिष्ठो भगवान्मुनिः।
उवाचेदमनिन्द्यात्मा परमार्थोचितं वचः।१
वनं विज्ञान वश्रान्तिरस्य जाता महात्मनः।
जरामलकवद्विश्व ब्रह्मेति परिपश्यति।२
किलेदं भ्रान्तिमात्रात्म विश्वं ब्रह्मेति भात्यजम्।
भ्रान्तिर्ब्रह्मैव च ब्रह्म शान्तमेकमनामयम्।३
यद्यथा येन यत्राऽस्ति यादृग्यावद्यदा यतः।
तत्तथा तेन तत्रास्स्ति तादृक्तावत्तदा ततः।४
शिवं शान्तमज मौनममौनमजरं ततम्।
सुशून्याशन्यमभवमनादिनिधनं ध्रुवम्।५
यस्या यस्यास्त्वरस्थायाः क्रियते सांविदा भरः।
सा सा सहस्रशाखत्वमेति सैकैर्यथा लता।६
परो ब्रह्माण्डमेवाऽणुश्चिद्व्योम्नोऽन्तः स्थितो यतः।
परमाणुरेव ब्रह्माण्डमन्तः स्थित जगद्यतः।७

वाल्मीकिजी ने कहा—कुन्ददन्त के इस प्रकार कहने पर अनिन्द्यात्मा भगवान् वसिष्ठ मुनि ने इस प्रकार परम अर्थ वाले उचित वचन कहे ।१। वे बोले अब यह महात्मा शास्त्र-ज्ञान से विश्रान्ति को प्राप्त हो गया और सम्पूर्ण विश्व को, करामलक के समान, ब्रह्म ही देखता है ।२। भ्रान्ति मात्रात्तक यह संसार इसे जन्मादि रहित ब्रह्म ही प्रतीत होता है और भ्रान्ति भी शान्त, एक और अनामय ब्रह्म ही ज्ञान होती है ।३। जो जिस प्रकार जिसके द्वारा, जब तक जिस काल में होता है वह उस प्रकार उसके द्वारा, तब उस काल में शिव, शान्त अजन्मा मौन अमौन अजर, शून्य, अशून्य, आदि अन्त रहित सत्य ब्रह्म ही है ।४-५। मामा-शवल चित् जिस-जिस अवस्था का संकल्प करती है, उस अवस्था में जल से सींची हुई लता के समान हजारों शाखाओं की प्राप्ति हो जाती है ।६। चिदाकाश के मध्य में स्थित होने से ब्रह्माण्ड ही परमाणु है और पर-माणु मे सम्पूर्ण जगत् के विद्यमान रहने से वही ब्रह्माण्ड है ।७।

स्वयं द्रश्यं स्वयं द्रुष्ट्र स्वयं चित्वं स्वयं जडम् ।
स्वयं किंचिन्न किंचिच्च ब्रह्मात्सन्येव संस्थितम् ।८
यथा यत्र जगत्येतत्स्वयं ब्रह्म खमात्मानि ।
स्वरूपमजहच्छान्तंयत्र संपद्यते तथा ।९
दृश्येमेव परं ब्रह्म परं ब्रह्मैव द्रश्यता ।
एतन्न शान्त नाऽशान्तं नाऽनाकारं न चाऽऽकृतिः ।१०
यादृक् प्रवोधे त्वप्नादिस्तादृग्देहो निराकृतिः ।
सविन्न त्रात्मा प्रतिघः स्वानुभूतोऽप्यसन्मयः ।११
संविन्मयो यथा जन्तु निंद्रात्गाऽऽस्ते जडोऽभवन् ।
जडीभूता तथैषाऽऽस्ते संवित्स्थावरनामिका ।१२
स्थावरत्व ज्जडाच्चित्वं जङ्गमात्म प्रयातिचित् ।
जीवः सुषुप्तात्मा स्वप्नं जाग्रच्चैव जगच्छतैः ।१३
आमोक्षमेषा जीवस्य भुव्यम्भस्यनिलेऽनले ।
खेखात्मभिर्जगल्लक्षैः स्वप्नाभैर्भासते स्थितिः १४

वह स्वयं ही दृश्य है, स्वयं ही द्रष्टा है स्वयं ही चेतन और जड़ है स्वयं सब कुछ हैं और कुछ भी नहीं है। यथार्थ में तो वह ब्रह्मात्म में ही स्थित है।८। यह ब्रह्म जगद्रूप आत्म-चिदाकाश में जहाँ जिस रूप को ग्रहण करता है, वहाँ अपने रूप का परित्याग न करता हुआ ही इसी रूप में रहता है।९। यह दृश्यमान जगत् ही परब्रह्म है और परब्रह्म ही दृश्यता है यह शान्त अशान्त निराकार या साकार कुछ भी नहीं है।१०। जैसे जागने पर स्वप्नादि निराकार लगते हैं, वैसे ही ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर यह शरीर भी निराकार ही लगता है। क्योंकि सवित रूप साकार और अनुभव में आने पर भी स्वप्नादि के असत् होने के समान ही शरीर भी असत् ही है।११। जैसे चेतन स्वरूप जीव निद्रा में जड़ हो जाता है, वैसे ही स्थावर नाम वाली यह सवित् भी जड़ीभूत हो जाती हैं।२। जैसे सुषुप्तात्मा स्वप्न और जगतों की कल्पना वाला होता है वैसे ही चित्त स्थावर रूपी जड़त्व से जङ्गम रूपी चित्व वाली होती है।१३। जीवों को यह स्थिति, जब तक मोक्ष नहीं हो जाती पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि और आकाश में स्वप्न के समान आकाश रूपी लाखों संसारों के सहित भासित होती है।१४।

चिञ्चिनोति तथा जाढ्यं नरो निद्रास्थितिर्यथा।
चिनोति जडतां चित्वं न नाम जडतावशात्।१५
चिता वेदनवेत्तारं स्थावरं क्रियते वपुः।
चिता वेदवेत्तारं जङ्गमं क्रियते वपुः।१६
यथा पुसो नखाः पादावेकमेव शरीरकम्।
तथैकमेवाऽपतिघचितः स्थावरजंगमम्।१७
प्रलयस्थितिसर्गादि दृश्यमानँतविद्यते।
एतन्न चाऽऽमनश्चाऽन्यच्चित्रे चित्रवधूर्यया।१८
प्रलयोऽयमियं सृष्टिरय स्वप्नो घनस्त्वयम्।
भासोऽप्रतिघरूपस्य चित्सहखरूचेरिति।१९

चित्तं देवासुराद्यात्म चिन्निद्रा स्वात्मदर्शनम् ।
कियत्प्रमाण भगवन्कथमस्योदरे जगत् ।२०

मनुष्य के निन्द्रा में स्थित होने के समान चित्त भी जडत्व में स्थित होती है फिर भी वह अव्याहत चित्व वाली ही रहती है वह अध्वस्त जडत्व से स्वयं में जडत्व का आरोप नहीं करती इसलिए जडत्व को प्राप्त नहीं होती ।१५। जाड्यवेदवेत्तार जीव के प्रति चित् जिस प्रकार स्थावर देहों का निर्माण करती है वैसे ही उसके प्रति अगम देहों को भी बनाती है ।१६। जैसे पुरुष के नख, पाँव आदि अवयव उसका एक ही देह है, वैसे ही चित् का स्थावर और जङ्गम रूप से एक ही देह है ।१७। इस दृश्यमान सर्ग, स्थिति और प्रलय की विद्यता नहीं है । जैसे चित्र में चित्रित दूध चित्र से पृथक् नहीं है, वैसे ही दिखाई देता हुआ यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं है ।१८। यह प्रलय है यह सर्ग है, यह स्वप्न है इस प्रकार के सब प्रजानघनत्व स्वरूप आत्मा रूपी सूर्य के विभिन्न प्रकार एव स्फुरण है ।१९। श्रीराम ने कहा—हे भगवन् ! देव, असुर आदि भेद वाला चित्त कितना बड़ा है ? उसके उदर में कितना बड़ा और कितने काल तक रहने वाला जगत् है और अपने आत्मा का दर्शन किस प्रकार होता है ।२०।

विद्वि चिक्तँ नर देवमसुरं स्थावरं स्त्रियम् ।
नागं नगं पिशाचादि खगकीटादि राक्षसम् ।२१
प्रमाणं तस्य चाऽनन्त विद्धि तद्यत्र रेणुताम् ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगद्याति सहस्रशः ।२२
यदेतदादित्यपथादर्ध्वा सयाति वेदनम् ।
एतच्चितँ भूतमेतिपदपर्यन्तामलाकृति ।२३
एतदुग्रं चितो रूपमस्याऽन्तर्भुवनर्द्धय ।
यदाऽऽयान्ति तदा सर्गश्चित्तादागत उच्यते ।२४
चित्तमेव विदुर्जीवं तदाद्यन्तविवर्जितम् ।
खं घटेष्विव देहेषु चाऽऽस्चे नास्ति तदिच्छया ।२५

निम्नोन्नतान्भुवो भागान् गृहणाति च जहातिच।
सरत्प्रवाहोऽङ्ग यथा शरीराणि तथा मनः।२६
अस्य त्वात्मपरिज्ञानादेष देहादिसंभ्रमः।
शाम्यत्याश्ववबाधेनमरुवाः प्रत्ययो यथा।२७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! तुम चित्त को ही मनुष्य, सुर, असुर स्थावर, स्त्री, नाग, पर्वत, पिशाच विहंग कीट और राक्षस आदि सब कुछ समझो। उसका अनन्त प्रमाण है, जिसमें परमाणु से ब्रह्मा पर्यन्त हजारों संसार समाए हुए हैं।२१-२२। ऊपर की ओर देखने पर जो यह आदित्य मार्ग से भी ऊर्ध्व प्रदेश में दृष्टि जाती है, इतने प्रमाण वाला चित्त है, इस प्रकार असीम और निर्मल आकृति वाला होना सिद्ध होता है।२३। यह चित् का उग्र रूप है, ऐसी चिद्रूप के भीतर जब भुवन की ऋद्धियाँ ब्रह्माण्ड कल्पना से उदित होती है तब उत्पत्ति होती है, वह चित्त से आगत कही जाती है।२४। ज्ञानीजन चित्त को ही जीव मानते हैं। वह आदि-अन्त रहित होने के कारण घट में आकार के समान सभी शरीरों में रहते हैं और व्यष्टि से शरीर से उत्क्रमित होने के कारण विधाता की इच्छा से शरीरों में स्थित नहीं रहते।२५। जैसे सरिता का प्रवाह नीचे ऊँचे स्थलों में जाता और उन्हें छोड़ भी देता है, वैसे ही मन शरीरों में जाता और उसका परित्याग भी कर देता है।२६। जैसे मरुभूमि में जल का आभाव विषयक ज्ञान होने से वहाँ जल होने का भ्रम नहीं रहता, वैसे ही आत्मा विषयक ज्ञान से देहादि रूपी सम्भ्रम नष्ट हो जाता है।२७।

जगत्यन्सरणुर्यत्र तत्प्रमाण हि चेतसः
तदेव च पुमास्तस्मात्पु सामन्तः स्थितं जगत्।२८
यावत्किंचिदिदं दृश्यँ तच्चित्त स्वप्नभूष्विव।
तादेवार्य्य पुमांप्तास्मात्का भेदो जगदात्मनोः।२९
चिदेवाऽयपदार्थोघो नाऽस्त्यन्य स्मिन्पदार्थता।
व्यतिरिक्ता स्वप्न इव हेम्नीव कटकादिता।३०

यथैकदेशे सर्वत्र स्फुरन्त्यापोऽम्बुधौ पृथक् ।
बह्मण्यनन्या नित्यस्थाश्चितो दृश्यात्मिकास्तथा ।३१
यथा द्रवत्वमम्भोधावापो जठरकोशगाः ।
स्फुरन्त्येवं विदाऽनन्याः पदार्थौघास्तथा परे ।३२

संसार में सूर्य रश्मियों के जाल में जो अत्यन्त सूक्ष्म अणु है, चित्त का परिमाण उतना ही है । इस प्रकार पुरुषों के भीतर ही संसार स्थित है ।२८। स्वप्न भूमियों में जो दृश्य है वह सब चित्त ही है । उसी के समान जागृत का दृश्य भी चित्त ही है और वही जीव भी है, अतः जगत में और जीव में कौन सा भेद हो सकता है? ।२६। स्वेप्न है जिस प्रकार सब पदार्थ चित् है अथवा स्वर्ण में कुण्डल अथवा कनकता भी स्वर्ण ही है, वैसे ही यह सब चित् ही है । यदि इसे भिन्न कहें तो सत्ता और स्फुर्ति के अभाव से इसमें व्यतिरेक की सिद्धि नहीं हो सकती ।३०। जिस प्रकार समुद्र से एक स्थान पर एकत्रित हुई जल राशि, फेन, तरंग एवं आवर्त्त आदि पृथक् स्फुरण को प्राप्त होती है, उसी प्रकार ब्रह्म में मैं भी अभिन्न दिखाई पड़ने वाली चित्तयाँ पृथक् स्फुरित होती हैं ।३१। जैसे सागर के जठरकोश की जलराशि प्रवत्व से स्फुरण को प्राप्त होती हैं, वैसे ही अभिन्न पदार्थ परम ब्रह्म में स्फुरित हो जाता है ।३२।

यथास्थितजगच्छा लभंजिकाकाशरूपधृक ।
चित्स्तम्भोऽयमपस्पन्दः स्थित आद्यन्तवर्जितः ।३३
यथास्थितमिद विश्वं सां विद्व्योम्नि व्यवस्थितम् ।
स्वरूपमत्यजच्छान्तं स्वप्वभुमाविवाऽखिलम् ।३४
समता सत्यता सत्ता चैकता निर्विकारिता ।
आधाराधेयताऽन्योन्यं चैतयोर्विश्वसां विदोः ।३५
स्वप्नसांकल्पसां सारवरशापदृशामिह ।
सरोऽब्धिसरिदम्बुनामिवाऽयत्वं न वाऽथवा ।३६
वरशापार्थसांवित्तौ कार्यकारणता कथम् ।
उपादानं बिना कार्यं नाध्स्त्येव किल कथ्यताम् ।३७

यथास्थित जगद्रूप साकारता की अत्यन्त शून्यता को ग्रहण करने वाला यह आदि-अन्त रहित चिद्रूप स्तम्भ निश्चल हुआ स्थित है।३३ स्वप्न भूमिके समान संविदाकाशमें यथा स्थित यह सम्पूर्ण जगत् अपनी शान्त एवं स्वच्छ आकृति को छोड़े बिना ही अवस्थित है ।३४। इस संसार और सवित् की परम्परा समानता, सत्यता, सत्ता, एकता और विकार-रहितता का भेद से रहित होने से शान्त है और आधाराधयता से किंचित भेदाभास होने पर भी वह अपने स्वरूपको नहीं छोड़ता।३५ स्वप्न-संसार मनोरथमय सृष्टि के समान वर या अभिशाप से विभिन्न दृष्टियों द्वारा सर सागर और सरिता के समान जो व्यवहार है, वही भेद है, यथार्थ में तो कोई भी भेद नहीं है ।३६। श्रीराम ने कहा—हे भगवन्! वरदान और अभिशाप रूपी अर्थसंवित् में कार्यकारणता किस प्रकार होगी ? क्योंकि उपदान के बिना कार्य का होना सम्भव नहींहै । अतः इस विषय में कहिए ।३७।

स्वदातचिदाकाशचकनं जगदुच्यते।
स्फुरणेपयसामब्धावावर्तचलन यथा ।।३८
द्रवनन्तोऽब्धिजलानीव भान्ति भावाश्चिदात्मकाः ।
संकल्पादीनि नामानि तेषामाहुर्मनीषिणः ।।३९
कालेनाऽभ्यासयोगेन विचारेण समेन च ।
जातेर्वा सात्विकत्वेन सात्त्विकेनाऽमलात्मना ।।४०
सम्यग्ज्ञानवतो ज्ञस्य यथाभूतार्थदर्शिनः ।
बुद्धिर्भवति चिन्मात्ररूपा द्वैतैक्यवर्जिता ।।४१
निरावरणविज्ञान मयी चिद् ब्रह्मरूपिणी ।
सवित्प्रकाशमात्रैकदेहा देहविवर्जिता ।।४२
सोऽयं पश्यत्यशेषेण यावत्संकल्पमात्रकम् ।
स्वमात्मकचन शान्तमनन्यन्परगाथैतः ।।४३

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! समुद्र में जल राशि के स्फुरण उत्पन्न आवर्त के समान ही चिदाकाश के अत्यन्त अवदात एवं स्वच्छ सत्य

संकल्प के अनुसार जो स्फुरण है, वही जगत् कहा गया है ।३८। समुद्र में जल राशि के समानचिदात्मरूपी जगद्दृश्य का जो भान होता है उसे ज्ञानी महर्षिगण संकल्प आदि नामों से पुकारते हैं ।३९। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से, विचार से, सब के समान देखने से, सात्विकता से तथा सात्विक स्वच्छ स्वरूप से ज्ञानी पुरुष की बुद्धिद्वैत अद्वैत रहित चिन्मात्र ही होती है ।४०-४१। आवरण विहीन ब्रह्मस्वरूप चित्त का केवल संवित् प्रकाश ही देह है, उसके अतिरिक्त उसका अन्य कोई देह नहीं है ।४२। आवरण विहीन ज्ञान से सम्पन्न शान्त पुरुष अपने आत्मा रूपी संकल्पात्र को शाकल्यसे देखता हुआ परमार्थ से सभी को अभिन्न पाता है यह उत्पत्ति उसके संकल्प की सत्यता से ही होता है ।४३।

अस्या इदं हि संकल्पमात्रमेवाऽखिलं जगत् ।
यथा संकल्पनगरं यथा स्वप्नमहापुरम् ॥४४
आत्मास्वसङ्कल्पवरः स्ववदातो यथा यथा।
यद्यथा संकल्पयति तथा भवति तस्य तत् ॥४५
सङ्कल्पनगरे बालः शिलाप्रोड्डयन यथा ।
सत्यं वेत्यनुभूयाऽऽशु स्वविधेयनियन्त्रणम् ॥४६
स्वसंकल्पान्मभूतेऽस्मिन्परमात्मा जगत्त्रये ।
वरशापादिक सत्यं वेत्यनन्यत्तथाऽऽत्मः ॥४७
स्तसंकल्पपुरेतैलं यथा सिद्धयति सैकतात् ।
कल्पनात्सर्गसंकल्पैर्वरादीह तथाऽऽत्मवः ॥४८
अनिरावणज्ञप्तेर्यतः शान्ता न भेदधीः ।
ततः संकल्पनाद् द्वैताद्वराद्यस्य न सिद्धयति ॥४९
ब्रह्मण्यवयवोन्मुक्तं द्वितैकत्वे यथा स्थिरे ।
यथा सावयवेतत्वे विचित्रावयवक्रमः ॥५०

हमारे संकलपमात्र के संकल्पनगर अथवा स्वप्ननगरकी सृष्टि होनेके समान ही आवरणहीन ज्ञानी का सर्वत्र दिखाई देता हुआ यह विश्वभी

संकल्पमात्र ही है ।४४। इसी प्रकार अपने संकल्प में आवरणहीन अन्य आत्मा भी जिसका जिस प्रकार संकल्प करता है,उसके लिए उसीप्रकार की उपलब्धि होती है ।४५। जिस प्रकार स्वाधीननियन्त्रणयुक्त संकल्प-नगर में बालक शिलाओं को उड़ाने का अनुभव करता हुआ उसे सत्य मान लेता हैं उसीप्रकार हिरण्यगर्भादि आवरण-रहित आत्मा भी अपने सङ्कल्परूपी त्रैलोक्य में वरदान और अभिशाप आदि को अपने अपृथक् एवं सत्य मान लेता है ।४६-४७। जिस प्रकार स्वसङ्कल्प से मनोरथ नगर में बालु से तेल निकालने का अनुभव होता है, उसी प्रकार ब्रह्मके मनोरथ रूपी संसार में वर, शाप आदि अर्थ की सिद्धि, उपादानकारण के बिना ही हो जाती है ।४८। ज्ञानावरण के न खुलने पर भेदबुद्धि का शमन नहीं होता, इसलिए द्वैत-भावना से अज्ञानी पुरुषके वर एवं शाप आदि की अर्थसिद्धि नहीं हो पाती ।४९।अवयव रहित ब्रह्ममें द्वित्वऔर एकत्व की स्थिति उसी प्रकार है, जिस प्रकार कि अवयव युक्त वस्तुओं में अद्भुत अवयवों के क्रम की स्थिति रहती है ।५०।

अनिराबरज्ञाना: केवलं धर्मचारिण: ।
शापीदीन्सप्रयच्छन्ति यथा ब्रह्म वद ।।५१
सङ्कल्पयति यन्नाम सर्गादौ ब्रह्म ब्रह्मणि ।
तत्तदेवाऽनुभवति यस्मात्तत्ताऽस्मि नेतरत् ।।५२
ब्रह्म वेथिपदात्मानं स ब्रह्मोऽयं प्रजापति: ।
स न चो ब्रह्माणो भिन्नं द्रवत्वमिव वारिण: ।।५३
सङ्कल्पयति यन्नाम प्रथमोऽसौ प्रजापति: ।
तत्तदेवाऽऽशु भवति यस्येदंकल्पनं जगत् ।।५४
निराधारं निरालम्ब व्योमात्म व्योम्नि भासते ।
दुर्दृष्टेरिव केशोण्ड्र दृष्टमुक्तावलीव च ।।५५
सङ्कल्पित: प्रजास्तेन धर्मो दानतपो गुणा: ।
वेदा शास्त्राणि भूतानि पञ्च ज्ञानोपदेशना: ।।५६

श्रीराम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आवरण-रहित ज्ञान से हीन एवं तस्यादि धर्माचार मैं रत रहने वाले पुरुष कोध से शाप देते और कृपा से वरदान आदि प्रदान करते है,उस विषयमें मुझे बताइए ।५१।वसिष्ठ जी बोले–प्रारम्भिक सर्ग में ब्रह्म जो संकल्प ब्रह्म करता है, उसका ही अनुभव करता है इसीलिए सबका ब्रह्मत्व है, इसके अतिरिक्त नहीं है ।५२। प्रजापति ब्रह्मा के स्वयं को ब्रह्म जानने के कारण वह ब्रह्म ही है जैसे द्रवता जल से अलग नहीं है वैसे ही ब्रह्मता ब्रह्मता ब्रह्म से पृथक नहीं है ।५३। प्रजापति ब्रह्मा प्रारम्भ में जो संकल्प करता है, उसी के अनुसार होता है. इस प्रकार यह संसार उसीका मनोरथ मात्र है ।५४। निराधार, निराश्रय चिदाकाशही निज स्वरूप में वैसे ही जगद्रूप भासित होता है, जैसे कि दृष्टि दोष से आकाशमें शोण्ड्क दिखाई देता है ।५। उस प्रजापति ने ही प्रजा, धर्म, दान, तप, गुण और ज्ञानोपदेशक वेदशास्त्र आदि तथा पंचभूतों का संकल्प किया ।५३।

तपस्विनोऽथ वादश्च यद् ब्रूयुरविलम्वितम् ।
यद्यद्वेदविदस्तत्स्यादिति तेनाऽथ कल्पितम् ॥५७
इदं चिद् ब्रह्मच्छिद्रं खं वायुश्चेष्टाग्निरुष्णता ।
द्रवोऽम्भः कठिनं भूमिरिति तेनाऽथ कल्पिया: ॥५८
यद्यथा वेत्ति चिद्व्योमं तत्तथा तद्भवत्यलम् ।
स्वप्ने त्वमहमादीव सदात्माऽप्यसदात्मकम् ॥५९
शिलानृत्तं यथा सत्यं संकल्पनागरे यथा ।
जगत्सङ्कल्पनगरं सत्यं ब्रह्मण ईप्सितम् ॥६०
चित्स्वभावेन शुद्धे न यद्बृद्ध यच्च सादृशम् ।
तदशुद्धोस्न्यथा कर्तुं न शक्तः कीटको यथा ॥६१

उसी प्रजापति की यह भी कल्पना थी कि तपस्वीगण वाद द्वारा अथवा स्वाभाविक रूप से कुछ भी मुख से वचन निकाले वही शीघ्र ही फलवान हो जाय ।५७। ब्रह्म की चेतनता, आकाश की छिद्रता, वायुकी

चेष्टता, तेज की उष्णता, जल की द्रव्यता और पृथिवी की कठिनता वह सब उस प्रजापति की रचना है ।५८। चिदाकाश जिस पदार्थ को जैसा जानता है, वह पदार्थ वैसा ही होता है। जैसे स्वप्न में, मैं, तुम आदि साकार हो जाते हैं, वैसा ही सदात्मा भी असद्रूप हो जाता है ।५९ जिस प्रकार संकल्प अन्य नगर में शिला का नाचना सत्य हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मा के प्रारब्ध भोग दिखाने वाले अधिकार के कारण इच्छित संकल्पपुर स्वरूप यह संसार भी सत्य हो जाता है।६६ चित्स्वभावके कारण प्रजापति आदिका जाना हुआयथावत हैं, उसे कीट के समान अशुद्ध कोई भी पुरुष मिथ्या नहीं कर सकता ।६१।

सदा चिद्वयोय चिद्वयोम्नि कचदेकमिदं निजम् ।
द्रष्टा दृश्यात्मकं रूपं पश्यदाभाति नेतनत् ॥६२
एकं द्रष्टा च दृश्यं च चिन्नभः सर्वंग यतः ।
तस्माद्यथेष्टं यत्तत्र दृष्टं तत्तत्र सत्सदा ॥६३
वारुवङ्गस्यन्दनवज्जलाङ्गद्रवभाववत् ।
यथा ब्रह्मणि ब्रह्मत्वं तणाऽजस्याऽङ्गजं जगत् ॥६४
ब्रह्मै वाऽह विराटात्मा विराटात्मवनुजगत् ।
भेदो न ब्रह्मजगतोः शून्यत्वाव्वरयोरिव ॥६५
यथा प्रपाते पयसो विचित्राः कणपङ्क्तया ।
विचित्रदेशकालन्ता निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥६६
निपत्यैबैकया कल्प मनोबुद्धयादिवर्जिताः ।
आन्मन्येवाऽऽत्मनौ भान्ति तथा या ब्रह्मसंविदः ॥६७

चिदाकाशमें स्फुरित हुए इस अपने दिखाई पड़ते स्वरूप को देखता हुआ चिदाकाश सदा प्रकाशित रहता है, क्योंकि यह उससे भिन्न नहीं ।६२। चित्सता के एक ही उपजीवी होने से द्रष्टा और दृश्य में कोई भेद नहीं हैं। चिदाकाश सर्वव्यापी होने से जहाँ, जो इच्छित वस्तु दिखाई दे वहाँ वह सत्व ही है, ।६३। देह से वायु के स्पन्द के समान

एवं जल द्रवता के समान जैसे ब्रह्म में ब्रह्मता है, वैसे ही अजन्मज विराट् के अङ्ग से यह विश्व उत्पन्न हुआ है।६४। विराटरूप ब्रह्मही मैं हूँ विराटात्माका शरीर ही यह जगत् हैं। इस प्रकार ब्रह्म और जगत् में शून्यता एवं आकाश के समान अभेद हैं ।६५। जिस प्रकार गिरि से पतित होने वाले झरने के द्वारा जो जल के अद्भुत कण गिरते हुए उछलते हैं, वैसे ही यह विचित्र देश और काल इस ब्रह्म में ही प्रकट होते हुए तथा लीन होते हुए देखे जाते है।६६। जैसे एक धार से कल्प पर्यन्त पतित होने वाले, मन बुद्धि-विहीन जलकण करोड़ोंभेदों में बँटकर भी अपने ही एक प्रवाह रूप से जान पड़ते है वैसे ही अद्भुत ब्रह्मसंविद भी आत्मा से निर्गत होकर कोटिशः भेदों में बँटकर भी अपने ही आत्मा में भासित होती हैं।६७।

ताभिः स्वयं स्वदेहेषु बहुध्याादिपरिकल्पनाः ।
कृत्वोररीकृता सर्गरद्भिर्द्रवता यथा ॥६८
तदेवं जगदित्यस्ति दुर्बोधेन मम त्विदम् ।
अकारणमद्वैतजात कर्म केवलम् ॥६९
अस्तस्थितिः शरीरेऽस्मिन्यादृग्रूपाऽनुभूयते ।
उपलादौ जडा सत्ता तादृशी परमात्मनः ॥७०
यथैकस्यां सुनिद्रायां सुषुप्तस्वप्नकौ स्थितौ ।
तथैते सर्गसंहारभासौ ब्रह्मणि संस्थिते ॥७१
सुषुप्तस्वप्नयोर्भातः प्रकाशतमसी यथा ।
एकस्यामेव निद्रायां सर्गासर्गौ तथा परे ॥७२

वे जलकण मन बुद्धि आदि से विहीन हैं किन्तु ब्रह्संविद् स्वयं ही अपने-अपने देह में मन बुद्धि आदि की कल्पना करती हुई जलों में जैसे द्रवत्व होता है वैसे ही सृष्टि रूपी श्री को भोग्य रूपसे स्वीकार करती है।६८। इस प्रकारमन-बुद्धि आदि के दुर्बोध से यह संसार स्थित है ।६८। इस प्रकारमन-बुद्धि आदि के दुर्बोधसे यह संसार स्थित है मेरी अज्ञान बिहीन दृष्टि तो समस्त जगद्रूप कर्म को कारण-रहित

अद्वैत और उत्पत्ति से रहित केवल ब्रह्म ही स्वीकार करती है ।६९। जैसे इस देहमें मरणावस्था मन और बुद्धि आदिसे रहित भासित होती है । जैसी जड़सत्ता उपलादि में है, वैसी ही परमात्मा की मन—बुद्धि आदि से हीन तथा विक्षेप-रहित सत्ता होती है ।७०। जिसप्रकार प्रगाढ़ निद्रा में सुषुप्ति और स्वप्न दोनों ही स्थिति है, उसी प्रकार ब्रह्म में सर्ग और प्रलय दोनों ही अवस्थित है ।७१। जैसे एक ही निद्रावस्था में स्वप्न और सुषुप्ति में प्रकाश और अँधेरे दोनों का मान होता है, वैसे ही ब्रह्म में सर्ग और असर्ग दोनों की प्रतीति होती है ।७२।

यथा नरोऽनुभवति निद्रायां दृषदः स्थितिम् ।
परमात्माऽनुभवति तथैतज्जडसंस्थितिम् ॥७३
अङ्गुष्ठस्याऽथवाङ्गुल्या वाताद्यस्पर्शने सति ।
योऽन्चित्तस्यानुभवो दृषदादौ स आत्मनः ॥७४
व्योमोपलजलदीनां यथादेहानुभूतयः ।
तथाऽस्माकमचित्तानामद्य नानाऽनुभूतयः ॥७५
काले कल्पेषु भान्त्येता यथाऽहोरात्रसंविदः ।
तथाऽसंख्या. परे भान्ति सर्गसंहारसंविदः ॥७६
आलोकरूपमननानुभवैषणेच्छा ।
मुक्तात्मनि स्फुसति वारिघने स्वभावत् ।
आवर्तवीचिवलयादि यथा तथाऽयं
शान्ते परे स्फुरित संहृतिसर्गपूगः ॥७७

जैसे सोते हुए मनुष्य को पाषाण की स्थिति का अनुभव होता है, वैसे ही ब्रह्म भी जड़ वस्तुओं की स्थिति का अनुभव करता है ।७३। जैसे मनुष्य को अँगूठा या अंगुली से वायु गर्मी धूल का स्पर्शभी अन्य विषयों में मन होने के कारण अस्पर्श जैसा लगताहै अर्थात् अन्य विषय में चित्त लगा हो तो किसी स्पर्श का अनुभव नहीं होता वैसे ही पाषाणादि के रूप में विद्यमान होना भी अविद्यमान जैसा होता है ।७४।

नभ उपल जल आदि को जिस प्रकार विराट् के शरीर भाव का या उन-उन अधिष्ठात् देवताओं के शरीर भाव का अनुभव होता हैं उसी प्रकार प्रलयकाल में चित्तादि से रहित हुए हमको आज अर्थात् सर्ग काल में विभिन्न भांति का अनुभव होता हैं ।७५। ब्रह्मा के दिन-भेद आदि से जो कल्प है, उसमें हमारे जैसे असंख्य दिन-रात्रि के भाव के समान परमब्रह्म में भी असख्य सर्ग और प्रलय की प्रतीति होती है जैसे केवल जल स्वभाव से सम्पन्न सागर स्वभाववश ही आवर्त एव तरङ्गादि का स्फुरण होता है,वैसे ही विषय-दर्शन मनन और भोगयुक्त अनुभव तथा उनकी इच्छा एवं प्राप्ति की कामना आदि विक्षेपों से विमुक्त रूप शान्ति परमपदमें यह संहार और सर्गका पुञ्जभी स्वभाव वश ही भासित होता है, किन्तु तत्व का दर्शन होने पर उसका स्फुरण नहीं होता ।७७।

१०२- जीवत्व प्राप्ति के हेतु और ब्रह्मशुद्धता

विचित्राणामसख्यानां भावानां नियतिः कुतः ।
कथस्वभावो भावानामेकरूप स्थितोऽचलः ॥१
सत्स्वसंख्येषु देवेषु सूर्य एवोग्रभाः कथम् ।
दीर्घत्वमथ ह्रस्वत्व दिवसानां तु किकृतम् ॥२
काकतालीयवद्भानं यत् परे नियतं स्वतः ।
यथास्थितंयथारूपस्थितं तज्जगदुच्यते ॥३
सर्वशक्तेर्यथा यद्यद्भाति तत्तथैव सत् ।
सैवित्सारतया यायात्कथं भावमभातताम् ॥४
यथास्थितं यथा भाति चित्वाद् ब्रह्म चिराय यत् ।
तस्य भानमभागाभ नियत्यभिधमेव तत् ॥५

श्रीराम ने कहा-हे ब्रह्मन् ! असख्य अद्भुत पदार्थों का कार्यकारण भाव, नियति और स्वभावादि किस हेतु से अचल एवं एक रूपसे जगत् में स्थित हैं? क्योंकि इसकी स्थितता स्वप्न और संकल्प मिथ्या वस्तुओं में प्रतीत नहीं होती ।१। देवगण असंख्य हैं, किन्तु उनमें सूर्य की प्रभा ही इतनी अग्र कैसेहो गई और दिनोंका बड़ा या छोटा होना भी किसने सम्भव किया ? ।२। वसिष्ठ जी बोले-हे राम ! उस निश्चल परब्रह्म में स्वभाव से ही जो काकतालीय योगवत् आदि सृष्टिमें नियतका भाव हुआ, वह जिस प्रकार का था तथा जिस प्रकार के भाव में स्थित था वैसा ही आज भी अवस्थित वह जगत् कहा जाता है ।३। सर्वशक्तिमान् ब्रह्म जिसका जैसा भान करता है उसका वैसा ही होना सत् है । सत्य संकल्प संवित्-सार है उसे जिसका भान होता है; वह भाव रहित किस प्रकार हो सकता है ? ।४। स्व-स्वरूप में यथास्थित ब्रह्म का चित् होनेसे चिरकाल तक किस प्रकार का स्फुरण होती है, उसी का सर्ग-काल में भान होता है और अन्तकाल में, सूक्ष्म होने से वही अभान के समान हो जाता है । वही नियति है और वही आदि-रहित सब पदार्थों की अर्थ क्रिया शक्ति भी ह ।५।

इदमित्थमिदं चेत्थां बृहोति भाति यत् ।
तन्नियत्यभिधं प्रोक्तं सर्गसंहाररूपधृक ॥६
जाग्रतास्वप्नसुषुप्ताख्यं यत्स्वतः कञ्चन चिति ।
तत्ततोऽनन्यदेकाच्छं द्रवत्वमिव वारिणि ॥७
यथा शून्यत्वमाकाशे कर्पूरे सौरभ यथा ।
यथौष्ण्यमातपे नाऽन्यज्जाग्रदादि तथा चिति ॥८
सर्गद्रलयनाक्ष्न्येकप्रवाहान यसत्तया ।
चिन्मात्रगगनात्मैकब्रह्मात्मन्येव संस्थितम् ॥९
सर्गोऽयमिति तद् बुद्ध क्षण तत्कंचनं चितः ।
कल्पोऽयमिति तद्बुद्धं क्षणं तत्कञ्चन चितः ॥१०

यह ऐसा है, यह वैसा हैं इस प्रकार से स्वयं ब्रह्म का स्फुरण सर्ग और प्रलयका रूप धारण करता है तथा वही नियति संज्ञक है ।६।

जागृत स्वप्न और सुषुप्ति का चित्में स्वतः स्फुरण होना अत्यन्त और उससे उसी प्रकार अभिन्न है, जिस प्रकार कि जल से द्रवता भिन्न नहीं होती ।७। आकाश में शून्यता, कर्पूरमें सुगन्ध और धूप में उष्णता जैसे उन-उन से अभिन्न हैं, वैसे ही चितिसे जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाएँ अभिन्न हैं, ।८। बीज और अंकुर के समान सर्ग और प्रलय के आदि रहित होने के कारण चिन्मात्र गगन रूपी सर्ग और प्रलय संज्ञक यह प्रवाह की अभिन्न सत्ता से ब्रह्मस्वरूप में स्थिर है ।९। चित् का क्षणिक स्फुरण ही इस सर्ग को जाना गया तथा उसी की कल्प भी जाना गया है ।१०।

तत्कालस्तत्क्रिया तत्ख देशद्रव्योदयादि तत् ।
यत्स्वप्न इव चिन्मात्रकचन स्वस्वभावतः ॥११
रूपालोकमनस्कारादेशकालक्रियादि तत् ।
चित्वं क्वचति चिद्व्योम्नि यन्नामाऽनाकृति स्वतः ॥१२
यद्यथा कचित काल यत्किल्पितं तथा ।
तेनैवेय हि नियतिरित्यप्याकाशरूपकम् ॥१३
आकल्पाख्य निमेषं यत्कचनं चैकरूपकम् ।
स्वाभाविकाः स्वभावं तप्राहुः पृसृतबुद्धयः ॥१४
एकस्व सविन्मात्रस्य पदार्थशतता तथा ।
एकस्य संविदंशस्य रूपं सर्वं स्वमनुज्झतः ॥१५

स्वप्नवत् निज स्वभाव से चित् का जो स्फुरण है, यही काल, क्रिया, आकाश, देश तथा द्रव्य आदि आविर्भूत होता है ।११। चिदाकाश में निराकार चित् का स्वभाविक स्फुरणही बाह्यदर्शन, आन्तरिक मनन तथा देश, काल, क्रिया आदि है ।१२। जिस समय जो स्वकल्पित पदार्थ, जिस प्रकार चित् से स्फुरण को प्राप्त होता है, वह नियत आकाशरूप से भिन्न कदापि नहीं है, ।१३। ब्रह्म के कल्प संज्ञक निमेष पर्यन्त पदार्थों का जो एक जैसा स्फुरण है, वही बुद्धिमानों द्वारा स्व-

भाव चित्स्वरूप ही है, वैसे ही एकही संवित् से अपने स्वरूप का त्याग न करने वाले पदार्थों के सैकड़ों भेद हो जाते हैं ।१५।

सविन्मये संविदो याः कचन्तीव परे तथा ।
ताभिस्तेषां स्वदेहानां यासां सा कलना कृता ॥१६
चिदुर्वी सलिल तेजः स्पन्दः शून्यत्वमेव च ।
प्रत्येकमाकरस्त्वेषां तानि स्वप्न इवाऽम्वरम् ॥१७
तत्र सप्रतिघस्याऽस्य कठिनस्याऽऽकरो महान् ।
भपीठं जनताधारो राजन्नाजेव राजते ॥१८
अपामब्धिः प्रधानाना तेजसामेष भास्करः ।
स्पन्दस्य पवनो व्योम शन्यताया जगुद्गतम् ॥१९
पञ्चानामिति भूतानामाकरत्वेन सं विदः ।
पञ्च तान्युदिता ब्राह्मयः प्रश्नः किं भास्करं प्रति ॥१०

चिदाभास संविदों का सविन्मय वृत्तियों में जो स्फुरण होता हैं, वह उनका स्वभावत्व ही है । वृत्ति विषयो के भेद से वृत्याभास सँविदों द्वारा स्वदेह के जिन विभिन्न आकारों की कल्पना की जाती है, वह आकार उसके स्वभाव से ही होते हैं ।१६। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश के जो-जो अनुगत स्वभाव हैं, उन-उन सभी का स्वप्न के समान ब्रह्म ही आकाश स्वरूप है ।१७। हे राजन् ! समूर्त हुए इस कठिन भाग की खान यह पृथिवी है, यही जनता के लिए आश्रय तथा राजा के समान पालन करने वाली है ।१८। जलों की खान समुद्र है, तेजों की खान सूर्य, स्पन्द की खान रूप वे पंच महाभूत ब्राह्मी संवित् से ही आविर्भाव को प्राप्त हुए हैं, इससे ब्रह्मही अनुगत होकर उनका स्वभाव सिद्ध होता है । जब स्वभाविक रूपसे ही समाधान हो गया तो सूर्य-विषय प्रश्न भी पृथक रूप से नहीं उठता ।२०।

बुधा संविच्चिदित्युक्ता सर्वगा सर्वरूपिणी ।
सर्वत्र स्वमहिम्नैषा सर्वणैवाऽनुभूयते ॥२१

ब्रह्मात्मा ब्रह्मबालोऽप्यं स्वसदित्स्फुरणामिमाम् ।
व्यामात्मक्षौमभूनाम्नीं स्फारयत्म्बराकृतिः ॥२२
सा यदैतत्तर्थेतच्च चिरमत्यजसविदा ।
तदा तदङ्गस्याऽकांऽदेर्नातो नोत्पादि चच्चलम् ॥२३
संकल्प पूर्वमशकजालवद्धिष्णय चक्रकम् ।
आवर्तवर्तिना भति चिद्व्योमेद च दृश्यवत् ॥२४
तत्र प्रभास्वराः केत्रित् केचिदप्यल्पभास्कराः ।
केचिच्चाभिस्वरा भाताः पदार्थाश्चिरूपिणः ॥२५

चित को ही संवित कहते हैं। सर्व प्रकाशिका होने से सर्वज्ञ सर्वरूपा, सर्वत्र गमन करने वाली अपने ही प्रकाश से ज्योतिर्मयी अपनी ही महिमासे परमाकार तथा नियति रूपसे सभीके द्वारा अनुभव की जाती है।२१। ब्रह्मात्मा यह बालक ब्रह्म अपनी ही सवित् के स्फुरण रूप आकाशावरण युक्ति भूमिका स्वयं ही अम्बराकृति होकर स्वयं में विस्तार करता है।२२। जब हम सर्वज्ञ संवित् के साथ स्थूल और सूक्ष्म प्रपंच का स्वयं में लय करते हैं, तब ब्रह्म संवित् अङ्गभूत भास्करादि के चंचल रूपकी उत्पत्ति वह नहीं करती।२३। मकड़ीके जालके समान ब्रह्म के सकल्पों से बने हुए ग्रह, नक्षत्र आदि का गृहभूत ज्योतिष चक्र सर्वज्ञात है। उसी के दक्षिणायण और उत्तरायण मार्गो पर सूर्यके गमन करने से दिनोंका छोटा बड़ा होना निश्चितहै और वह चिदाकाश दृश्य के समान ही भासित होता है।२४। उनमें कोई अत्यन्त भास्कर, कोई अल्प भास्कर और कोई अभास्कर भी है। इस प्रकार विभिन्न रूप से पदार्थों का भास होता हैं।२५।

पदार्थजात त्वेतावन्न जात न च दृश्यते ।
ज्ञस्यश्ऽजातिमद भाति खमात्मा स्वप्नदृश्यवत् ॥२६
चिन्मात्रमात्मा मर्वेशः सर्व एवाऽतिप्रश्यवत् ।
नश्यतीव विदेहे स्वे न च भाति न नश्यते ॥२७

स्वप्नदर्शनद्भाति यच्चिद्व्योम चिदम्बरे।
चिद्व्योमत्वादृने रूपं तदस्य जगतः कुतः ॥२७
यद्यथा स्फुरित तस्य यावत्मत्तं स्फुरद्वपुः।
तत्स्वभावनियत्याख्यैः शब्दैरिह निगद्यते ॥२९
गगनाङ्गस्य सत्ताऽन्तः शब्दतन्मात्रकल्पया।
कुशूलबीजाङ्कुरवत्तिष्ठत्याशान्तरूपिणी ॥३०

यथार्थ में तो यह सभी पदार्थ न तो उत्पन्न हुए और न दिखाई ही देने वाले है। यह सभी ज्ञानीजन, के लिए तो स्वप्न में देखे हुए के समान चिदाकाश की ही प्रतीति होती है।२६। जो चिन्मात्र सर्वेश्वर है, वह आपके मेरे तथा अन्य सब रूपों से अति दृश्योंके समान स्फुरण को प्राप्त होता है। किन्तु पदार्थ में न उसका स्फुरण होता है और न नाश ही होता है।२७। चिदाकाश का स्फुरण स्वप्नमें देखे हुए दृश्य के समान ही चिदाकाशमें होता है तो फिर इस संसारका पारमार्थिक रूप चिदाकाशता के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है?।२८। अध्यस्त मेंजल एक घटादि की विद्यमानता है तक वह पारमार्थिक सद्रूप ही उस रूप में स्फुरित होता हैं। और विविध शब्दों में जो कहा जाता है वह सब उसका स्वभाव और नियत आदि ही है।२९। वह ब्रह्मवेत्ता अपने आकाशरूपी देह के अङ्गमें शब्दतन्मात्र होकर स्थित कुठीला में रखे बीजों में अंकुरों के उत्पन्न न होने के समान पवनादि विश्व की बीजभूत सामर्थ्य रूप से अनुत्पन्न हुई रहती है।३०।

संपद्यते ततः इदमितीयं रचनेह या।
कृता सा मुग्धबोधाय मूर्खविरचिता मुधा ॥३१
नाऽस्तमेहि नोदेति तत्कदाचन किंचन।
शिलाजठरवच्छान्तमिदं नित्यं सदप्यसत् ॥३२
यथाऽवयविनो नाऽन्तः सदैवाऽऽवयवाणवः।
नाऽस्त यान्ति चोद्यन्ति जगन्त्यत्मपदे तथा ॥३३

ब्रह्मव्योम्नि जगद्व्योम व्योम्नीव विद्यते ।
तत्कथं किल संशुद्धमस्तमायात्युदेति वा ॥३४
तस्याऽनन्त प्रकाशात्मरूपस्याऽऽततचिन्मणे: ।
सत्तामात्रात्मकचनं यदजस्रं स्वभावत: ॥३५
तनात्मा स्वयं किंचिच्चेन्यतामिव गच्छति ।
अगृहोतात्मकं संविद्दामर्शनसूचकम् ॥३६

उससे इस पंचभौतिक संसार के क्रम से उत्पन्न होने की कल्पना, अज्ञानियों के प्रबोधार्थ सर्ग प्रतिपादन के लिए मनीषियों ने की है । उसका प्रतिपादन सृष्टि को वास्तविक बताने के लिए नहीं किया गया है । क्योंकि सृष्टि की सात्विकता का प्रतिपादन मूर्खों द्वारा रचित कथा के समान ही मिथ्या है जो कि न तो शास्त्रों में सुना जाता है और न लोक में ही देखा जाता है ।३३। वह यहाँ उदय या अस्त नहीं होता शिलागर्भ जैसा यह नित्य शान्त तथा सत्-असत् दोनों प्रकार का है । क्योंकि जो वास्तविक ब्रह्म है उसका उदय-अस्त को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार आत्मपद में अनन्त विश्व भी उदय वाला नहीं होता ।३३। आकाश के आकाश में रहने के समान ही ब्रह्माकाश में जगदाकाश की स्थिति है । इस प्रकाश संशुद्ध विश्वका विनाश या उदत कैसेहो सकता है ।३४।इस अनन्त प्रकाशत्मक चिन्तामणिका जो स्वाभाविक सत्तामात्र आत्मस्फुरण है वह अज्ञात होने से अन्यथाभाव के कारण उहाविमर्श सूचक रूप से स्वयं ही कुछ चेत्य-भाव को पा लेता है ।३५-३६।

भाविनामार्थ कलनै: किंचिदूहितरूपकम् ।
आकाशदणु शुद्धं च सर्वस्मिन्नभाविधनम् ॥३७
तत: सा परमा सत्ता सती तच्चेतनोन्मुखी ।
चिन्नामयोग्या भवति किंचिल्लभ्यतया तया ॥३८
घनसंवेदतात्पश्चाद् भाविजीवादिनामिका ।
सा भवत्यात्मकलना यद्भवन्ती परं पदम् ॥३९

गर्भीकृत्य स्थिताऽनाख्या चिदाकाशापिधागतात् ।
सप्रति त्वतिशुद्धस्य पयस्याऽनन्यरूपिणो ॥४०
स्वतैकभावनामात्रसारसरणौन्मुखी ।
तदा विनाभावकृता अनुतिष्ठन्ति तामिमाः ॥४१

भावी नाम और अर्थ की कल्पनाओं से ऊहित (तके युक्त) रूप वाला, आकाश से सूक्ष्म एवं शुद्ध वह सभी में भावी प्रपंच का बोध करने वाला होता है ।३७। फिर उस कुछ चैत्यता से वह परमसत्ता रूपी पदार्थको चेतनोन्मुखी (चेतन बनाती हुई) चित् संज्ञा के योग्य हो जाती हैं ।३८। घनसंवेदन के पश्चात् जीवादि संज्ञिका वह आत्म कल्पना जीवादि रूपों में परिवर्तित होती हुई देह प्राप्त करने के पश्चात् परम पदमें वह परमसत्ता चिदाकाशको ढूढ़ने वाली अविद्या को धारण कर लेती है इसलिए उस समय उसका जो परमपद वाला स्वभाव है वह अप्रकट रहता है किन्तु ज्ञान की उपलब्धि होने पर वही परम सत्ता परमपद की अनन्य रूपिणी हो जाती है ।४०। वह अविद्या से आवृत रहने की अवस्था में एक मात्र भावनामय साररूपी शरीर इन्द्रिय आदि के द्वारा जगतोन्मुखी होकर अपने ही रूप की विरह-जन्म ग्लानि से होने वाली विभिन्न चेष्टाएं करती है ।११।

शून्यरूप स्वसत्तै का शब्दादिगुणगर्भिणी ।
चिद्भावनाभिसंपन्ना भविष्यदभिधार्थता ॥४२
अहन्तोदेति तदनुसह वै कालसत्तया ।
भविष्यदभिधार्थे ते बीजं मुख्यं जगत्स्थितेः ॥४३
चितिशक्तेः परायास्तु स्वसंम्वेदनमात्रकम् ।
जगज्जालमसद्रूपँ चेतनात्सदिव स्थितम् ॥४४
एवंप्रायात्मिका सा चिद्बीजंसंकल्पशाखिनः ।
अहन्तां भाव त्यन्तः सैवेह क्षणात् ॥४५
जीवाभिधाना सैषाऽद्य भावाभावाप्लदभ्रमैः ।
भ्रमत्यात्मपदे वीचिरूपैर्वारीव वारिणि ॥४६

शून्यरूपा वह स्वसत्ता विकल्पयुक्त, चिद्भावन की भ्रान्ति से शब्दादि गुणों से युक्त गर्भिणी होकर भावी पंचभूतों की भूतात्मिका होती है।४२। तब लिंगशरीर में विद्यमान प्राणक्रिया से होने वाली कालसत्ता के सहित अहन्ता उदित होती है और भावी व्यवहारके उद्देश्यभूत वे दोनों विश्व की स्थित में मुख्य बीजभूत होते हैं।४३। परम चितिशक्ति का यह स्वसँवेदन असद्रूप जगज्जाल उसके चेतन होने से ही सत् के सदृश्य स्थित है।४४। इस प्रकार की सँकल्पावृक्ष की बीज भूता वह चित् स्वयं में अहन्ता की भावना करती हुई क्षणभण में ही अहंतारूप हो जाती है।४५। वही अब जीवाभिधान रूप से उत्पत्ति नाशरूपी भ्रान्तियों से प्रेरित हुई, जल, में लहरों के समान ब्रह्म में भ्रमण करती है।४६।

चिदेवभावनवती व्योम तन्मात्रभावनाम् ।
स्वतो घनाभूय शन: खतन्मात्रं प्रचेतति ॥४७
भाविनामार्थरूपं तद्बीजं शब्दौघशाखिनः ।
पदवाक्यप्रमाणाढगवेदार्थादिविकारि च ॥४८
तस्माद्देष्यत्यखिला जगच्छ्री शब्दतत्वतः ।
शब्दोधनिर्मितार्थोघपरिणामविसारिणी ॥४९
चिदेवऽयवसाया सा जीवशब्देन कथ्यते ।
भाविशब्दार्थजालेन बीजं भूतौघशाखिनः ॥५०
चतुर्वशविध भूतजातमावलिताम्वरन् ।
जगज्जठरकर्णोघ तस्मात्सप्रसरिष्यति ॥५१

इस प्रकार की भावना वाले चित् आकाश तन्मात्र वाली भावना को शनैः शनैः घनी बनाती हुई स्थूल आकाश की भावना करने लगती है।४७। तब स्थूल, आकाशरूपा हुई वह चित्भावी नाम-अर्थ रूपी शब्दराशिलक्षण की बीजभूता और पद, वाक्य तथा प्रमाणोंसे वेदार्थकी अश्रायभूता होतीं है।४८। और तब उसी शब्द सार से निर्मित और विस्तृत हुई इस अखिल विश्व की शोभा का प्राकट्य होता है।४९। इस प्रकार के व्यवहार वाली देह चित् ही 'जीव' शब्द से कहलाती

हैं, यह भावी शब्दों और उनके अर्थों से भूतसमुदायरूप महावृक्ष की बीजभूता होती है ।५०। चौदहों प्रकारका भूत-समुदाय और आकाशको व्याप्त करने वाले जगद्रूप जीर्णपत्रोंकी राशि हिरण्यगर्भरूपी चित्से ही उत्पन्न होती है ।५१।

असम्प्राप्ताभिधाचारा जीवत्वाच्चेतनेन चित् ।
काकतालीयवत्स्पन्दचिन्मात्रं चेतति स्वयम् ।।५२
पवनस्कन्धरूपस्य बीजं त्ववस्पर्शशाखिः ।
सर्वभूतक्रियास्पन्दस्तमात्ससप्रसरिष्यति ।।५३
तत्र यच्चिद्विलासस्य प्रकाशानुभवो भवेत् ।
रूपतन्मात्रक तद्वद्भविष्यदभिधार्थ दम् ।।५४
प्रकाशचेतनं तेजो न तेजोऽन्यकृतं भवेत् ।
स्पर्शसवेदनं स्पर्शो नेतरस्पर्शसंफवः ।।५५
शब्दसंवेदनं शब्दःस्वत एवाऽनुभूयते ।
खं खेनेव स्वयं कोशे नाऽन्यच्छब्दकृदस्ति हि ।।५६

उपपोक्त चित् जब होने के कारण, शब्दों के तथा देहादि के व्यवहारों को प्राप्त न हो कर काकतालीय न्याय से, चेतन से स्वयं स्पन्दचिन्मात्रकी कल्पना करने लगती है ।५२। वही चित् पवन रूपी वृक्षकी बीजभूजा भी है, क्योंकि उसमें सब जीवों की क्रिया सञ्चालन करने वाला पवन उत्पन्न होता है ।५३। वैसे ही उसमें चिद्बिलास के प्रकार से जो अनुभव होता है, वह रूपतन्मात्र एवं भावी तेजादि भूतों को स्वरूप देने वाला है ।५४। प्रकाश रूप चेतन ही तेज है, क्योंकि तेज शब्द का आविर्भाव स्वयं ही होताहै । जैसे आकाश अपने कोशमें अवकाश पाकर आकाश से ही स्थित होता है, किसी अन्य से नहीं होता वैसे ही शब्द संवेदन शब्द से ही शब्दको ग्रहण करता है, अन्य से नहीं करता ।५६।

किल तस्यामवस्थायां कोऽपरः शब्दकृद्भवेत् ।
यथा तथा तदाऽद्यापि द्वैतैक्यस्यात्यसम्भवात् ॥५७
एवं हि रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमेव च ।
असत्यमेव सदिव स्वप्नाभमिव चेत्यते ॥५८
तेजः सूर्यादिजृम्भाभिर्वीजमालोकशाखिनः ।
तस्माद्रूपविभेदेन संसारः प्रसरिष्यति ॥५९
भविष्यदभिधस्याऽथ खतः स्वतः इवाऽसतः ।
स्वदनं तस्य संघस्य रसतन्मात्रमुच्यते ॥६०
भविष्यद्रूपसङ्कल्पनामाऽसौ सकलो गणः ।
सङ्कल्पात्माऽथ तन्मात्रं गन्धाद्यमनुचेतति ॥६१
भाविभूगोलकत्वेन बीजमाकृतिशाखिनः ।
सर्वाधारात्मनस्तस्मान्संसारः प्रसरिष्यति ॥६२

उस अवस्थामें अन्य शब्द करने वाला कौन होता ? जैसे उससमय द्वैत अद्वैत की आन्यिकता सम्भव नहीं थी, वैसे ही अब भी असम्भव ही है ।५७। इस प्रकार सत् के समान असद्रूप रसतन्मात्र और गन्ध–तन्मात्र भी स्वप्न के समान ही कल्पित है ।८५। सूर्य आदि के जृम्भण से प्रकाश-महावृक्ष की वीजभूत तेज है, उसी में रूपभेद के द्वारा संसार का आविर्भाव होता हैं ।५९। निर्विकार आकार से जो भविष्य में होगा उस अन्नपानादि का स्वयं ही माधुर्य श्रवित होता है–वही रसतन्मात्र कहा गया है ।६०। फिर भविष्य जिसका रूप और संकल्प नाम होनेको है, ऐसा यह कार्य कारण राशि स्वरूप जीव संकल्पात्मक गन्ध आदि तन्मात्र की कल्पना करने लगते हैं ।११। भावी भूगोलात्म आश्रयरूप महातरु का बीजभूत सभी के आश्रयभूत उस गन्धतन्मात्र से विश्व-विस्तार को प्राप्त होगा ।५२।

अजात एवं संजातस्तन्मात्राणां गणस्त्विति ।
अनाकारोऽपि साकारः सम्पन्न कल्पनावशात् ॥६३

एष तन्मात्रकगण: काकतालीयवत्स्वयम् ।
रूप येन प्रदेशेन वेत्यक्षीति तदुच्यते ॥६४
शब्दं येन प्रदेशेन वेत्ति श्रोत्रं तदुच्यते ।
स्पर्शं येन प्रदेशेन तत्तु त्वगिन्द्रयम् ॥६५
रस येन प्रदेशेन वेति तद्रसनेन्द्रियम् ।
गन्धं येन प्रदेशेन वेति घ्राणेन्द्रियं तु तत् ॥६६
दिक्कालभेदाज्जीवोऽयं नियतामाकृति मत: ।
सर्वेणाऽङ्गेन नो सर्व वेत्यसर्वात्मत्तावशात् ॥६७
इति कलननन्तमात्मनोऽन्तर्गतमनुमेतमन्यदात्मभूतम् ।
नतदुदयमुपैति नाऽस्तमेति स्थितमुपलोदरवद्घनं सुमौनम्।६८

यथार्थमें तो उत्पन्न हुए शब्द स्पर्श आदि स्वरूपजो तन्मात्र समूह है, वह निराकर होता हुआ भी कल्पनावश साकार रूप से उत्पन्न हो गया है ।६३। यह तन्मात्रगण काकत्तालीय योग के समान जहाँ रूप को जानता है वह अवयव नेत्र हैं,जिससे सुनता है वह कान है जिससे स्पर्श का अनुभव करता है वह जिह्वा है और जिससे गन्ध सूँघता है वह, घ्राण या नासिका है ।६४-६५। नियत आकृति में अवस्थित हुआ दोष के वशीभूत होकर सभी अङ्गों से सब कुछ नहीं जान सकता (अर्थात् आँख से सुत नहीं सकता या कान से देख नहीं सकता आदि ।६६। इस प्रकार प्रत्येक जीव में कहा गया भी अनन्त लौकिक कल्पना आत्मान्तर्गत ही अनुमेय है । अनन्त होने से पृथक्-पृथक् प्रत्येक के विषय में नहीं कहा जा सकता और वे अनन्त कल्पनाएँ आत्मभूत ही हैं,इसलिए तो वे न उदय को प्राप्त होती हैं न अस्तको । शिलागर्भ के समान मौन रूप से ही अवस्थित हैं ।६८।

१०३-देहभ्रान्ति से उत्पत्ति की प्रतीति

आदिमत्वमिदं प्रोक्तोमेतस्य कलनस्य यत् ।
परस्मादद्वितीयं तत्वद्वोधाय न वास्तवम् ॥१

एवंविधं तत्कलनमात्मनोऽङ्गमकृत्रिमम् ।
चेत्योन्मुखचिदाभासं जीवशब्देन कथ्यते ॥२
कलनस्याऽस्य नामानि बहूनि रघुनन्दन ।
शृणु तानि विचित्राणि चेत्योन्मुखचिदात्मनः ॥३
जीवनाच्चेतनाज्जीवो जीव इत्येव कथ्यते ।
चेत्योन्मुखतया चित्तं चिदित्येव निगद्यते ॥४
इदमित्थमिति स्पष्टबोधाद्बुद्धिरिहोच्यते ।
कल्पनान्मननज्ञत्वान्मन इत्यभिधीयते ॥५

वसिष्ठजी ने कहा—हे राम ! इस चिद्भासात्मक जीव की जो उत्पत्ति कही है, उसका तात्पर्य जीव के ब्रह्म से अभिन्नत्व का बोध कराना ही है । उसका आशय यह नहीं है कि जीव की उत्पत्ति यथार्थ रूप से होती ही है ।१। वह चिदाभास ब्रह्म का औपाधिक अङ्ग होनेसे कृत्रिम नहीं है । चेत्य की और उन्मुख चिदाभास ही जीव शब्दसे कहा चेंत्योन्मुख चिदात्मा के उन विचित्र नामों को सुनिए ।३। जीवन से और चेतन से ही जीव कहा जाता है अर्थात् प्राणेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के धारण करने पर जीव संज्ञक होताहै । अतीत और भावी चेत्यों की ओर उन्मुख होने से चित्त और समीपवर्ती चेत्यों की ओर उन्मुख होने से चित्त कहा जाता है ।४। यह ऐसा है, इस प्रकार का स्पष्ट ज्ञान होनेसे बुद्धि और कल्पना यथा मनका ज्ञान होने से मन कहाता है ५।

अस्मीति प्रत्ययादन्तरहंकारश्च कथ्यते ।
चेतनाढ्यमृतं चित्तमिति शास्त्रविचारिभिः ॥६
प्रौढसङ्कल्पजालात्स पुर्यष्टकमिति स्मृतम् ।
संसृतेः प्रकृतत्वेन प्राथम्यात्प्रकृतिः स्मृताः ॥७
बोधादविद्यमानत्वादविद्येत्युच्यते बुधैः ।
इत्यादिकलनस्याऽस्य नामानि कथितानि ते ॥८

एतत्कलनमाद्य तमनाकारमानयम् ।
आतिवाहिकदेहोत्तया समुदह्रियते बुधैः ॥९
इत्येवं स्वप्नसङ्कल्पपुरवत्त्रिगदद्भ्रमः ।
भात्यर्थकार्यप्यवपः शून्यमप्रतिघात्मकम् ॥१०

मैं हूँ ऐसा अहकार करने से ही उसे अहंकार कहते है । शास्त्र विचारकों ने चेतना से पूर्ण परमार्थ वस्तु जो आत्मा है उसे चित्त कहा है ।६। प्रौढ संकल्पों के जालसे वह पुर्यष्टक कहा है । सर्गारम्भमें प्रथम होने से वह प्रकृति और उपाधि रूप से अविद्यमान होने से अविद्या कहलाता है । इस प्रकार मैंने उस चिदाभास रूपी जीव के बहुत से नाम कह दिये हैं ।७-८।वह चिदाभास रूप जीव निराकार और निर्विकाम होते हुए भी आतिवाहिक शरीर के कारण ज्ञानियों द्वारा आदि और अन्त वाला कहा गया है ।९। इस प्रकार स्वप्नपुर और सङ्कल्पपुर के समान त्र्यलोक्य रूपी भोग तथा मुक्ति रूपी अर्थ का करने वाला होकर भी स्वरूप रहित, अप्रकट तथा शून्य रूपही ज न पडता है।१७।

इत्यातिवाहिकः प्रोक्तो देहो देहभृतां वर ।
चिन्नभश्चित्तदेहोऽसौ शून्य आकाशतोपि च ॥११
नाऽस्तमेति न चोदेति जगत्यामोक्षसंविदः ।
चतुर्दशविधस्यैका भूतसर्गस्य चित्तभूः ॥१२
अत्र संसारलक्षाणि भविष्यति भवन्ति च ।
भूतानि च फलानीव यथा कालव्यवस्थया ॥१३
एष चित्तमयो देहो जगन्त्यन्तर्बहिस्त्वपि ।
प्रतिविम्वमिवाऽऽदर्शः शून्यः एव नभो यथा ॥१४
महाकल्पस्य पर्यन्ते सर्वनाशे स्थिरे स्थिते ।
महाशून्यपदे प्रौढे ब्रह्मात्मनि निरामये ॥१५

हे शरीरधारियों में श्रेष्ठ! इसप्रकार यह आतिवाहितक देहचिदाकाशभूत चित्तदेह युक्त तथा आकाश शून्य कहा जाता है ।११। यह आतिवाहिक देह मोक्षसवित् तक अस्त या उदय को प्राप्त नहीं होता । यह चोदह प्रकार के जीवों का प्ररोहस्थल कहा है ।१३। इस चित्त-

रूपी स्थल में काल (ऋतु) की व्यवस्था जैसे वृक्षों में फल लगते हैं वैसे ही लाखों जगत् हो चुके, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे।११। उन जगतों को वह चित्तमय देह भीतर और बाहर उसी तरह धारण करता है, जिस तरह कि दर्पण प्रतिबिम्बों को।१४। महाकल्प पर्यन्त जब संहार स्थित हो जाता है, तब वह शून्यपद प्रौढ़ एवं निरामय ब्रह्मात्मा ही स्थित रहता है।१५।

स्वतश्चितीघनोऽचित्वाच्चिद्भानमिदमात्मनः।
आतिवाहिकदेहाभक्रमेणाऽनेन चेतति ॥१६
स आतिवाहको देहस्तदालोकप्रवर्तितः।
कश्चिद् ब्रह्मे ति कथितः स्मृतः कश्चिद्विराडिति ॥१७
कश्चित्सनाभिख्यः कश्चिन्नारायणाभिधः।
कश्चिदीश इति ख्यातः कश्चिदुक्तः प्रजापतिः ॥१८
काकतालीयवद्भाताः पञ्च स्वेन्द्रियसंविदः।
यत्र यत्र तथा तेषां स्थितास्तत्र तथा स्थिताः ॥१९
एवमत्वन्तवितते सम्पन्ने दृश्यविभ्रमे।
न किंचिदपि सम्पन्नं सर्वशून्यं तत यतः ॥२०

उस समय चैतन्यघन ब्रह्म, चैतन्य को ढक लेने वाले अज्ञान के निमित्त से, उपरोक्त क्रम से आत्मा से आतिवाहिक शरीर के समान चिदभान की स्वयं कल्पना करताहै।१६। उस आतिवाहिक शरीर वाले जीव के आलोक से प्रवर्तित कोई अंशमें मैं ब्रह्मा हूँ, और कोई अंश मैं विराट् हूँ' ऐसा कहा है।१७। कोई अंश सनातन है, कोई नारायण है, कोई ईश है तो कोई प्रजापति कहा गया है।१८। जिस-जिस अंश में अपनी पंचेन्द्रिय संवितों का काकतालीय योग के समान भान होने पर उस-उस अंश में उन-उन इन्द्रियों के विषय व्यवस्थित हो जातेहैं।१९। अत्यन्त विस्तृत यह दृश्य भ्रमसम्पन्न होनेपर भी किंचित सम्पन्न नहीं होता, क्योंकि उस रूप में सभी दृश्यों से रहित आत्मा ही विस्तार को प्राप्त होती है।२०।

अनादिमत्परं ब्रह्म न सद्यन्नाऽसदुच्यते ।
तदेवेदमनाद्यन्तं तथा स्थितमवेदनम् ॥२१
रातिवाहिकदेहस्य तस्याऽनुभवतः स्वयम् ।
यति व्यसनिनः स्वप्न कान्तेन परिपुष्टताम् ॥२२
शून्योऽप्यनाकृतिरपि घटाकारोऽनुभूयते ।
स्वप्नसङ्कल्पयोःस्वस्य देहस्य जगतो यथा ॥२३
भवत्यर्थकरोऽत्युच्चैस्तच्चित्खस्वप्नवस्तुवत् ।
आकाशात्मक एवोग्रः पदार्थ इव भासते ॥२४
आतिवाहिकदेहोऽसौ स्वतोऽनुभवति क्रमात् ।
अनाकारोऽपि शून्योऽपि स्वप्नाभोऽसन्नपि स्थितः ॥२५

अनादि अनन्त परब्रह्म न कभी आविर्भाव को प्राप्त है, नतिरोभाव को । स्वरूप के साक्षात्कार से रहित होने पर वह सत् और आकारयुक्त होने पर असत् होता है ।२१। आतिवाहिक शरीरके धारण करने वाले ब्रह्म के निजी अनुभव से यह जगत प्रपञ्च उसी प्रकार परिपुष्ट होता हैं जिस प्रकार कि संकल्प स्वप्न में साकार हो जाता हैं ।२२। स्वप्न और संकल्प में शून्य और निराकार होने पर घट का आकार प्रत्यक्ष होता हैं, इसी के समान अपने शरीर और जगत् के विषय में समझो ।२३। यह गत्-पञ्च चिदाकाशरूप एवं स्वप्न की वस्तु के समान अर्थ और क्रिया से युक्त होता है । आकाशात्मक होकर भी यह ठोस पदार्थ जैसा लगता हैं ।२४। यह आतिवाहिक देह वाला जीव आकार रहित, शून्य और स्वप्न के समान असत् होता हुआ भी क्रम पूर्वक स्तदेहादि रूप आकाश का अनुभव करता है ।२५।

चेतत्यस्थिगणैः स्थूलं कराद्यवयवावलिम् ।
त्रिकलोमिशरास्नापुसंनिवेशतया स्थितम् ॥२६
जन्मकर्महितस्थानं परिणामवयः स्थितम् ।
देशकालक्रमाभोगभावार्थायोद्भवभमम् ॥२७

जरामरणमाधानदशदिङ् मण्डलक्रमम् ।
ज्ञानज्ञेयज्ञातृभावमादिमध्यान्तवेदनम् ॥२८
क्षितिजलगगनदिवाकर
जनताण्यहारनगरशिखरात्मा ।
स्वथाराधेयमयं
पश्यति वपुषः पुरातनः पुरुषः ॥२६

वह अतिवाहिक जीव अस्थि आदि से स्थूल और हाथ पांव आदि अवयवों वाले देह की, जो जन्म कर्म और कामना का आदि से भोगको परिणाम की दशा में अवस्थित हैं देश, काल काम आदि से भोग की कल्पना करता हुआ, देह की उत्पत्ति के भ्रम में पड़ जाता है।२६-२७। तब वृद्धावस्था,मृत्यु गुण-दोष आदि का आधान, दश-दिशाओं में भ्रमण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञातृभाव तथा आदि, मध्य और अन्त का ज्ञान भी कल्पित करता है।२८। इसप्रकार उस रूपमें वह पुराण पुरुष ही स्वकल्पित व्यष्टि समष्टि रूप स्थूल देह से स्वय पृथिवी जल गगन, दिवाकर,जन-व्यवहार नगर और शिखर रूप में, 'यह सब मेरे आधार हैं, मैं इनका आधेय हूँ ऐसी भ्रान्ति वाले इस जगद्रूप स्वरूप को देखता है।२६।

१०४—भ्रमरूप आधिभौतिकता

आतिवाहिकदेहोऽसौ तस्याऽऽद्यस्य प्रजापतेः ।
काकतालीयवच्चित्त्वाद्यथेत्यादि चेतति ॥१
तत्तथा स्थितिमायाति चिरं संवित्स्वभावतः ।
बत विश्वमिदं भातमत्राऽसत्ये कुतः स्मयः ॥२
द्रष्टाऽसत्यमसत्यं दृगसत्यं दर्शनं ततम् ।
सत्यमेवाऽथवा सर्वं ब्रह्मैवाऽऽत्मतया तया ॥३
इत्तातिवासिकालोकः स तस्याद्यप्रजापतेः ।
कठिनत्वं कथ वातः कथं स्वप्नस्य सत्यता ॥४
आतिवाहिकः आलोकः स्वतं एवाऽनुभूयते ।
सदाऽपवरत तेन स एवाऽऽभाति पुष्टवत् ॥५

यथा स्वप्नस्य पुष्टत्वं चिरानुभवनोचितम् ।
अतिसत्यमिवाऽऽभाति स्वातिवाहिकता तथा ॥६

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! उस आद्य प्रजापति का आतिवाहिक देह चित् होने के कारण जैसी-जैसी कल्पना करता है वह काकतालीय के समान चिरकाल तक उसी-उसी में स्थित होता है । सत्य संकल्प वाली संवित् इस जगत् के भाग के कारण है तो जगतके असत्य होने में विस्मय ही क्या है ? ।१-२। इसलिए द्रष्टा दृश्य और दर्शन यह तीनों ही सत्य नहीं है ।३। श्रीराम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार आद्य प्रजापति का आतिवाहिक देह यदि भ्रान्ति ही है तो वह कठिनत्व को कैसे प्राप्त हो गया ? पारलौकिक फल की क्रिया का स्वप्न में होना किस प्रकार सम्भव है ।४। वसिष्ठजी बोले—राम ! आतिवाहिक देह के भ्रमात्कम होने की अनुभूति स्वय ही हो जाती है । अनवर भान और चिराभ्याससे वह घनीभूत जैसा प्रतीत होता है ।५। जैसे देखे हुए स्वप्न की चिरानुभूति पुष्ट होती है, वैसे ही अपनी आतिवाहिकता प्रजापति को भी सत्य जैसी लगती है ।६।

आतिवाहिकदेहस्य चिरस्वानुभवोदये ।
आधिभौतिकता बुद्धि रुवेति मृगवारिवत् ॥७
जगत्स्वप्नभ्रमाभासं मृगतृष्णाम्बुवत्स्थितम् ।
असदेवेदमाभाति सत्यप्रत्ययकार्यपि ॥८
आतिवाहिकरूपाणामाधिभौतिकता स्वयम् ।
असयी सत्यवद्दूरमर्वाग्दर्शिभिरर्थिता ॥९
अयं सोऽहमिदं तन्म इमा गिरिनभोदिशः ।
इति मिथ्याभ्रमो भाति भास्वरस्वप्नशैलवत् ॥१०
आतिवाहिकदेहोऽसौस्रण्टुराद्यस्य भावितः ।
आधिभौतिकतां चैतत्पिण्डाकारं प्रपश्यति ॥११

आतिबाहिक देह जब अपने अनुभव में आरूढ़ होताहै तब मरुभूमि है मृगतृष्णा के समान उसमें आधिभौतिकता वाली बुद्धि उत्पन्न भी हो

जाती है ।७। स्वप्न और भ्रम के समान आभासित तथा मृगतृष्णाम्बु के समान स्थित यह जगत सत्य सा लगने पर भी असत् रूप से ही स्फुरण है ।८। आतिवाहिक रूप वाले पदार्थों की आधिभौतिकता सत्य न होते हुए भी अज्ञानी जनों ने सत्य के समान ही मान ली हैं ।६। यह मैं हूँ,यह मेरा हैं और मुझसे भिन्न यह गिरि, नभ, दिशाएं आदिहैं इसका चमकता हुआ मिथ्या भ्रम स्वप्नशैलके समान ही प्रतीत होताहै ।१०।ब्रह्म का यह आतिवाहिक देह आधिभौतिकता के भाव को प्राप्त होकर पिंडाकार रूप देखता है ।११।

चिन्नभश्चेतनं त्यक्त्वा ब्रह्माऽहमिति पश्यति ।
अयं देहोऽयमाधार इति बध्नाति भावनाम् ॥१२
असत्ये सत्यबुद्धयैव बद्धो भवति भावनात् ।
बहुशो भावयत्यन्तर्नानात्वमनुधावति ॥१३
शब्दन्करोति संकेतं संज्ञाश्च स्पन्दनानि च ।
ओमित्युक्ते ततो वेदाञ्छब्दरासीन्प्रगायति ॥१४
तैरेव कल्पत्यत्याशु व्यवहारमितस्ततः ।
मनोह्यसौ कल्पयति यच्चेतति तदेव हि ॥१५
यो हि यन्मय एवाऽसौ स न पश्यति तत्कथम् ।
असत्यैव जगद्भ्रान्तिरेवं प्रोढिमुपागता ॥१६

वह चिदाकाश मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार की वास्तविक चेतना को त्याग कर यह देह मैं हूँ यह मेरा आधार है इस प्रकार देखता हुआ तदनुसार ही धारणा बना लेता है ।२१। असत्य में सत्य की भावना वाली बुद्धि से जीव बन्धक को प्राप्त होता है तथा अपने भीतर जो भावना बारम्बार करता है, उसी से वह अनेकत्व का अनुगमन करता हैं ।१३। वह शब्द रूपी संकेत करता है, उस संकेत से ही नाम और स्पन्दन करता हूँ ओम का उच्चारण करता हुआ शब्दरूप वेद वान में तन्मय होता है ।१४। उन वेदों से ही समस्त व्यवहारों की कल्पना करता हैं क्योंकि मन रूप प्रजापति की कल्पना के अनुसार ही सब कुछ हो जाता है ।१५। क्योंकि जिसकी जिसकी जिससे अत्यन्त आशक्ति

होगी वह उसे क्यों न देख पाएगा ? इस प्रकार यह असद्रूप जगत भ्रांति प्रौढ़ हो गई ।१६।

आब्रह्मणो मुधा भाति चिरस्वप्नेन्द्रजालवत् ।
इत्यातिवाहिकस्येयमाधिभौतिकतोचिता ॥१७
आधिभौतिकता नास्ति काचित्किंचिदपि क्वचित् ।
आतिवाहिकतैवैनामभ्यासाद्याति भावनाम् ॥१८
मूलादैववमायातो मिथ्यानुभवनात्मकः ।
मोहों ब्राह्मण एवाऽयभित्यस्त्येष महात्मनाम् ॥१९
एवंमित्थ दशा राम पिण्डबन्ध क्व विद्यते ।
भ्रान्तिरेवदमिखल ब्रह्मैवाऽऽभातमेव वा ॥२०
न शाश्वतादन्यदिहाऽस्ति कारणान् ।
न कारणं तत्खलु कार्यतां विना ।
न कार्यताकारणतादिसम्भवो ।
ऽस्त्यनामये तत्किमपीदमाततम् ॥२१

ब्रह्म से कीटाणु पर्यन्त यह जगत् चिरस्वप्न और इन्द्र काल के असत्य स्फुरण को ही प्राप्त होता है । अतः आतिवाहिक का आधिभौतिक होना उचित ही है।१७। आधिभौतिकता किंचित् भी कहीं नहीं हैं, अभ्यास से आतिवाहिकता इस भावना को प्राप्त हो गई है ।१८। मूल-भूत प्रजापति ब्रह्मा से ही मिथ्या अनुभव रूप यह मोह चल रहा है, इसलिए प्रारब्ध के क्षय न होने तक इस भ्रम की विद्यमान महात्माओं में रहती है ।१९। हे राम ! इस प्रकार की दशा ब्रह्म में विद्यमान कहाँ रह सकती है ? यह सम्पूर्ण भ्रान्ति ही है अथवा जगदादि से यह सब ब्रह्म ही साकार हो गया हैं ।२०। इस जगत् के समस्त कारण का कारण ब्रह्मके अतिरिक्त कोई नहीं है क्योंकि कार्यता नहीं तो कारण भी नहीं रहता । जो अधिकारी और अद्वितीय ब्रह्म है उसमें कार्यता और कारणतादि असम्भव है, अतः यह जगद्रूप में जो है, वह नितान्त भ्रान्ति ही विस्तार को प्राप्त हो गई है ।२१।

१०५—ज्ञेयता की शान्ति ही मोक्ष है

ज्ञानस्य ज्ञेयतापत्तिर्बन्ध इत्यभिधीयते ।
तस्यैव ज्ञेयताशान्तिर्मोक्ष इत्यभिधीयते ॥१
ज्ञानस्य ज्ञेयतशान्तिः कथ ब्रह्मन्प्रवर्तते ।
सा रूडा बन्धताबुद्धिः कथं वाऽत्र निवर्तते ॥२
सम्तग्ज्ञानेन बोधेन मन्दबुद्धिर्निवर्तते ।
निराकारा निजा शान्ता मुक्तिरेव प्रवर्तते ॥३
बोधः केवलतारूपः सम्यग्ज्ञानं किमुच्यते ।
येन बन्धादयं जन्तुशेषेण विमुच्यते ॥४
ज्ञानस्य ज्ञेयता नास्ति केवल ज्ञानमव्ययम् ।
अवाच्यमिति बोधोऽन्यः सम्यग्ज्ञनमिति स्मृतम् ॥५

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! ज्ञानकी ज्ञेयता की उत्पत्ति ही बन्धन और ज्ञान की ज्ञेयता शमन ही मोक्ष कही गई है ।१। श्रीराम बोले-हे ब्रह्मन् ! यहां ज्ञानकी ज्ञेयता किस प्रकार शान्त होती है और उसका दृढ़ अभ्यास होने पर बन्धन-बुद्धि का निवारण किस प्रकार होता है ? ।२। वसिष्ठजी ने कहा-सम्पर्क ज्ञान का प्रबोध होने पर मन्द बुद्धि का निवारण होता है और तभी वह अपने निराकार शान्त रूप मोक्ष में प्रवृत्त होती है ।३। श्रीराम ने कहा—हे भगवान् (कैवल्यात्मक ज्ञान युक्त वह बोध क्या कहा जाता है ? जिस बोध के द्वारा बन्ध आदि से जीव अशेष रूप से मुक्त हो जाता है ।३। बसिष्ठजी बोले—चिन्मात्र ज्ञान की ज्ञेयता कभी नहीं है ज्ञान के अव्यय केवल और अवाच्य होने से यह सम्पक ज्ञान कहा गया है ।५।

ज्ञानस्य ज्ञेयता भिन्ना त्वन्तः केति मुने वद ।
उत्पाद्यो ज्ञानशव्दश्च भावे वा करणेऽथ किम् ॥६
बोधमात्रं भवेत्ज्ञानं भावसाधनमात्रकम् ।
न ज्ञानज्ञेययोर्भेदःपवनस्पन्दयोरिव ॥७

एवं चेत्तत्कथमय ज्ञानज्ञेयादिविभ्रमः ।
सिद्ध शशविषाणाभो भविष्यद्भूतभव्यः ॥८
बाह्यार्थभ्रान्तितो ज्ञेया भ्रमबुद्धिरिहोदिता ।
बाह्यश्चाऽभ्यन्तरश्चाऽर्थो न सम्भवति कश्चन: ॥९
योऽयं प्रत्यक्षदृश्योऽर्थो मुने त्वमहमादिकः ।
भूतादिरनुभूतात्मा स कथं कथं नाऽस्ति मे वद ॥१०

श्रीराम ने कहा—हे मुने ! आत्मा में उससे भिन्न ज्ञेयता क्या है यह बतलाइए । ज्ञान शब्द की उत्पत्ति भाव में करनी चाहिए या करण में ? ।६। वसिष्ठजी बोले—जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं है, उस प्रकार ज्ञान और ज्ञेय में भेद नहीं है । भाव का साधन मात्र ज्ञान केवल बोधमात्र ही है ।७। राम ने शंका की—हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो ज्ञान और ज्ञेय आदि के रूप में विभ्रम कैसे उत्पन्न हो गया । क्योंकि वह तो शश के सींगों के समान मिथ्या है । फिर वह भविष्यत् भूत और वर्तमान के विभागों से व्यवहार-योग्य कैसे हुआ ?।८।वसिष्ठ जी बोले–बाह्य पदार्थों की भ्रान्ति से ही भ्रम बुद्धि उत्पन्न हुई समझो । यथार्थ तो बाह्य अथवा आन्तरिक कोई भी पदार्थ नहीं हैं ।९। रामने कहा-हे मुने ! तुम और मैं आदि के रूप में यह भूतादिक जो प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है वह कैसे नहीं है ? यह बतलाइये ।१०।

आदिसर्गाविनावेव विराडात्मादिकोऽनघ ।
जातो न कश्चिदेवार्थो ज्ञेयस्याऽतो न सम्भवः ॥११
महाप्रलयसम्पत्तौ शिष्टं यदजमव्ययम् ।
तत्कथं नाम संगस्य न भवेत्कारणं मुने ॥१२
यदस्थित कारणे कार्यं तत्तस्मात्संप्रवर्तते ।
न त्व सञ्जायते राम न घटाज्जायते पटः ॥१३
कार्यकारणताभायद् भावाभावौ स्त एव नो ।
इदं च चेत्यते यद्यस्वात्मा चेतति चेतितम् ॥१४
द्रष्टा न याति दृश्यत्वं दृश्यस्याऽसंभवादतः ।
दृष्टैव केवलो भाति सर्वात्मैकघनाकृति ॥१५

वसिष्ठजी ने कहा—हे अनघ ! सर्ग के आदिमें विराटात्मक आदि कोइ पदार्थ ही उत्पन्न नहीं हुआ तो ज्ञेय का भी सम्भव नहीं है ।११। राम बोले हे मुनिवर ! महाप्रलय होने पर जो अजन्मा एवं अव्यय ब्रह्म रहता है, वह सर्ग का कारण क्यों नहीं हो सकता ? ।१२। वसिष्ठ बोले--हे राम ! कारण से विपरीत कार्य नहीं हो सकता है, उसकी उत्पत्ति उसी से होगी। कारण से विपरीत कार्य नहीं हो सकता जैसे कि घट से पट कभी उत्पन्न नहीं होता ।१३। ब्रह्म कार्य—कारता का अभाव होने से भाव या अभाव नहीं है। यह भासम न जिसे जिस रूप में भासता है, वह केवल अपनी आत्मा ही है ।१४। दृश्य का सर्वथा अभाव होने से दृष्टा दृश्यत्व को प्राप्त नहीं होता। सर्वात्मा एक घना-कृति के रूप से केवल द्रष्टा ही भासमान होता है ।१५।

कारणाभावतो राम नास्त्येव खलु विभ्रमः ।
सर्वं त्वमहमित्यादि शान्यमेकमनामयम् ।।१६
अकारणत्वात्सर्वत्र शान्तत्वाद् भ्रान्तिस्ति नो ।
अनभ्यांसवशादेव न विश्राम्यति केवलम् ।।१७
अनन्तत्वादनन्तस्य भ्रान्तिर्नाऽस्ति च सम्प्रति ।
अभ्यासभ्रान्तिरखिलं महाघिद्घनमक्षतम् ।।१८
स्वप्नादो कल्पनादो च यददृश्यमनुभूयते ।
तज्जाग्रद्रूप संस्काराद्रनुष्ठानानुभूतित ।।१९
किं जाग्रद्रूपमाहोस्विदन्यत्स्वप्नेऽभूयते ।
सङ्कल्पे च मनोराज्ये इति मे वद राघव ।।२०

हे राम ! कारण का अभाव है, इसलिए रूप विशिष्ट विभ्रम कुछ है ही नहीं। तुम यह मैं आदि यह जो कुछ है वह सब एक अनामय ब्रह्म ही है ।१६। कारण के न होने और सर्वत्र शान्त ब्रह्म की ही सत्ता होने से दृश्यादि की भ्रान्ति भी कुध नहीं है। अनाभ्यास के कारण ही आप परमपद में विश्रान्ति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं।१७। वास्तव में तो

भ्रान्ति का अस्तित्व ही नहीं है। यद्यपि अनन्त अपनी माया से ही अनन्त प्रतीत होता है, उसी में क्षयको प्राप्त न होने वाली सम्पूर्ण महा चिद्घन अभ्यास भ्रान्ति स्थित है।१८। रामने कहा–हे ब्रह्मन् ! स्वप्न आदि में जो कल्पनादि दृश्य का अनुभव होता, उसकी उत्पत्ति जगत् रूप संस्कार से है तो वह जगत् रूपी संस्कार किस से अनुभव में आता है ? ।१९। वसिष्ठजी बोले हे राघव ! स्वप्न हो या जाग्रति, संस्कार से अर्थ का अनुभव होता है या नहीं ! वैसे ही स्पप्न हो या मनोराज्य उसमें जाग्रत अर्थ का अनुभव होता है अथवा नहीं ? यह यह मुझे बताओ।२०।

स्वप्नेषु कल्पनाद्येषु जाग्रदेवाऽवभासते ।
संस्कारात्मतयानित्य मनोराज्यभ्रमेषु च ॥२१
तदेव जाग्रत्संकारात्स्वप्नश्चेदवभासते ।
तत्स्वप्ने लुठितं गेह कथं प्रातरवाप्यते ॥२२
योऽयं ससरणस्वप्नः स किंकारणको भवेत् ।
कार्यान्न कारण भिन्नमिति दृष्टं विचारय ॥२३
चित्तं स्वप्नोपलम्भानां हेतुस्तस्मात्तदेव ते ।
विश्वं चाऽऽद्यन्तरहितमनासारमनामयम् ॥२४
एवं चित्तं महाबुद्धेमहाचिद्घनमेव तत् ।
तथा स्थितं न स्वप्नादि किंचनाऽस्तीतरात्मकम् ॥२५

श्रीराम ने कहा–हे मुने ! स्वप्नादिकल्पनाओं में जो संस्कार रूप जगत में नित्य अनुभव होता हैं, वही मनोराज्य और भ्रम में होता है ।२१। वसिष्ठजी ने कहा-यदि जाग्रत के संस्कार से स्वप्न में जाग्रत् के अर्थ का अनुभव होता है जो घर स्वप्न से गिरा हुआ दिखाई देता हैं, वह प्रातः जागने पर ठीक अवस्था में कैसे मिल जात है ? ।२२। जो यह जगद्रूपी स्वप्न हैं, उसका कारण कौन–सा है ? कार्य और कारण में भिन्नता, नहीं होती ऐसी देखी हुई बात पर आप विचार करिए ।२३। राम ने कहा—जैसे चित्त के कारण होने से स्वप्न का अनुभव भी चित्तरूप है, वैसे ही आदि अन्त-रहित असार, अनामय संसार भी

चित्त होना चाहिए।१४। वसिष्ठ जी ने कहा—हे महायते ! यह चित्त ही महाचिद्धन हैं और यही इस सर्गरूप में स्थित है। ऐसा होने पर स्व-आदि कुछ भी तो ब्रह्म से भिन्न नहीं है।२५।

एकैव चित् त्रयं भूत्मासर्गादौ भाति सर्गवत्।
एष एव स्वभावोऽस्या यदेवं भाति भासुरा ॥२६
एतत्त स्वप्नसंकल्पननघरेष्वनुभूयते।
इत्थ नाम तपन्येषा चिद्दीप्तिः प्रथमोदिता ॥२७
नभस्यैव नभोरूपा यदिदं भासते जगत्।
अनाद्यन्तमिदं तस्याः सर्गात्मभासनम् ॥२८
यत्स्वमेव वपुर्वेति जगवित्यजगन्मयम्।
चिन्मात्रव्योम सर्गादावित्थं भाति विकासनम् ॥२९
यदिदं जगदित्येव शून्यत्वाम्वरयोरिव ॥३०
बुद्ध्वा च यावत्स्वनुभूतियुक्त
स्थातव्यमेतेन विकल्पमुक्तम्।
पाषाणमौनं कुजनेन तूक्तं
न ग्राह्यमज्ञेन हि भुक्तमुक्तम् ॥३१

एक चित् द्रष्टा दृश्य और दर्शक तीनों रूप से सर्ग के आदि में स्फुरित होती है। इस प्रकार के देदीप्यमान रूप से भासित होने इसका स्वभाव है।२६। स्वप्न और संकल्पनगर के रूप में भी यही अनुभव में आती है। प्रथम बदय को प्राप्त हुए चित् की दीप्ति इस प्रकार प्रकाशित होती है।२७। वह चिदाकाशरूपता अपने चिदाकाशरूप में ही जगद्रूप से भासित है। इसका सर्गरूप में जो आदि-अन्तरहित भान हैं, वही सर्ग है।२८। चिदाकाशरूप जो परमात्मा अपने जगत् रहित रूप को जगद्रूप से जानता है, वही सर्गारम्भ में सृष्टि रूप से भासता है। यह जो जगत् वह शून्यत्व और आकाश के समान ब्रह्म ही है।२९-३०। हे राम ! जब तक अपने श्रेष्ठ अनुभव से ज्ञान दृढ़ नहीं हो जाता तब तक आप विकल्पों से युक्त होकर पाषाणवत

मौन रहिए। अज्ञानी और दुर्जन पुरुषों के द्वारा इसके भोग का उपदेश करने पर भी ग्रहण न करना चाहिए।३१।

१०६—दारुवैवधिकोपाख्यान

एवमेतन्महाबाहो न शास्त्रं ज्ञानकारणम्।
नानाशब्दमयं शास्त्रमनाम च परं पदम् ॥१
तथापि राघवश्रेष्ठ यथैतद्धेतुतां गतम्।
पास्त्राद्युत्तमबोधस्य तत्समामेन मे शृणु ॥२
सन्ति क्वचिद्वैवधिकाः कीरकाश्चिरदुर्भगाः।
दुःखेनाऽभ्यागताः शीर्षं ग्रीष्मेणेव जरद्द्रुमाः ॥३
दारिद्र्येण दुरस्तेन कन्या संस्थानकारिणा।
दीनाननाशयाः पद्मा निर्गतेनेव वारिणा ॥४
दौर्गत्य परितप्तास्ते जीवितार्थमचिन्तयन्।
जठरस्य कया युक्त्य वयं कूर्मः प्रपूरणम् ॥५
इति संचिन्त्य विधिना दिनान्तेन दिनं प्रति।
दारुभारेण जीवामो विक्रीतेनेति संस्थिताः ॥६
इति संचिन्त्य ते जग्मुर्दार्वर्यं विरिनान्तरम्।
ययैवाऽऽजीव्यये युक्त्या सैवाऽऽपदिविराजते ॥७
इति ते प्रत्यहं गत्वा कानन भवचारिणः।
दारुण्यानीय विक्रीय चकुर्देहस्य धारणम् ॥८

वसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो ! यद्यपि ज्ञान का कारण शास्त्र नहीं है क्योंकि शास्त्र विभिन्न शब्दमय और पद अनाम हैं।१। हे राघव श्रेष्ठ ! फिर भी यह शास्त्र आदि श्रेष्ठ ज्ञान और फल मोक्षके लिए कारणरूप हो गया है, उसे संक्षेप में सुनो।२। कहीं चिरकाल से दुर्भाग्य से व्याप्त बँहगी ढोने वाले कीकर थे, वे ग्रीष्ममें सूखे हुए पुराने वृक्षों के समान दुःखों से सूख गये थे।३। फटे वस्त्रों की कन्या से परिधान बनवाने वाले तुरन्त दारिद्रत्य के कारण ऐसे दीन-हीन मुख वाले

हो गए थे, जैसे बांध तोड़ कर निकल जाने वाले जल से कमल मुर्झा जाते हैं ।४। दरिद्रता से अत्यन्त सन्ताप को प्राप्त हुए वे लोग अपनी उदर-पूर्ति के लिए आजीवका के प्रयत्न पर विचार करने लगे ।५।अन्त में वे इस निर्णय पर पहुँचे कि हम दिन भर के परिश्रम पूर्वक प्राप्त लकडी को बेचकर अपनी जीविका कमायेंगे ।६। ऐसा निश्चय करके वे वन में लकड़ियां काटने के लिए गए, क्योंकि जिस वृत्ति से आजीविका चलती है, आपत्ति काल में वही वृत्ति अच्छी लगती है ।७। नित्यप्रति को आजीविकासे नित्य उदर पूर्ति करने वाले लोग, वनमें जाकर लकड़ियाँ लाते और उन्हें बेचकर अपना निर्वाह कर पाते ।८।

यत्प्रयान्ति वनान्तं ते तस्मिन्सन्सत्यखिलानि हि ।
गुप्तागुप्तानि रत्नानि दारूणि कनकानि च ॥९
तेषां भारभृतां मध्यात्केचित्कतिपयैर्वनात् ।
जातरूपाणि रत्नानि तानि सप्राप्नुवन्ति हि ॥१०
केचिच्चंदनदारूणि केचित्पुष्पाणि मानद ।
केचित्फलादि विक्रीय जीवन्ति चिरकींरकाः ॥११
केचित्सर्वमनासाद्य दुर्दारूण्येव दुर्धियः ।
नीत्वा वीक्रीय जीवन्ति वनवीथ्युपजीविनः ॥१२
दार्वर्थनुद्यताः सर्व ते सं प्राप्य महावनम् ।
केचित्प्राप्य स्थिताः सर्वे झटिव्येवं गतज्वरम् ॥१३
इति यावदस्रं ते सेवन्ते तन्महवनम् ।
प्रदेशात्तावदेकस्मात्प्राप्तश्चिन्तामणिर्मणिः ॥१४
तस्माच्चिन्तामणेः प्राप्ताः समग्रा विभवश्रियः ।
परम सुखमायातास्तत्र ते संस्थिताः सुखम् ॥१५

वे जिस वनखण्ड में जाते थे, उनमें प्रकट और अप्रकट रत्न, स्वर्ण आदि तथा लकड़ियाँ मिलती थीं ।९। उनमें से कुछ लोग ऐसे भाग्य, वान् निकले जिन्होंने कुछ दिनों में ही वन में स्थित रत्नों और स्वर्ण को प्राप्त कर लिया और उनमें से कुछ की काकर लोंग, चन्दन,केवड़ा,

चम्पा और कुछ फलों के विक्रय द्वारा चिरकाल तक अपना जीवन निर्वाह करते रहे।१०-११। उनमें कुछ अल्प बुद्धि वाले ऐसे भी थे, जो श्रेष्ठ वस्तुओं को खोजनेमें असफल रहे। वे बेचारे जलानेकी लकड़ियाँ बेचकर ही आजीविका चला पाते।१२। वे सभी उद्योगी व्यक्ति लकड़ियाँ लाने के लिए वन में गए थे, परन्तु उनमें से कुछ की रत्नादि की प्राप्ति से दरिद्रता रूपी ज्वर से शीघ्र ही मुक्ति मिल गई।१३। इस प्रकार ये लोग नित्य प्रति वन में आते-आते रहे, इसी अवसर में इन्हें एक स्थान पर मणियों में श्रेष्ठ एक चिन्तामणि प्राप्त हो गई।१४।उस चिन्तामणि के द्वारा वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होकर परम सुख पूर्वक रहने लगे।१५।

ये ते वैवधिका राम ते एते मानवा भुवि।
तेषां दारिद्र्यदुःखं यत्तदज्ञाणं महातपः ॥१६
यत्तन्महावन प्रोक्तं गुरुशास्त्रक्रमादि तत्।
यदुद्यतास्ते ग्रासार्थं जना भोगार्थिनो हिते ॥१७
भोगौघाः सिद्धिमायान्तु मम निष्कृपणो जनः।
अनपेक्षितकार्यार्थः शास्त्रादौ संप्रवर्तते ॥१८
दार्वर्थमुद्यतो भावी यथा संप्राप्तवान्मणिम्।
भोगार्थमात्तशास्त्रोऽयं तथाऽऽप्नोति जनः पदम् ॥१९
किं स्याच्छास्त्रविचाराभ्यामिति सदेहलीलया।
कश्चित्प्रवर्तते पश्चादाप्नोति पदमुत्तमम् ॥२०
अदृष्टोत्तमत्वार्थः शास्त्रादौ संप्रवर्तते।
स देहनाऽर्थभोगार्थं जनः प्राप्नोति तत्पदम् ॥२१

हे राम! महातप! आपसे जिन वैवाहिकों का मैंने वर्णन किया है उन सबको आप पृथिवीमें स्थिति मनुष्य समझिए और उनके दरिद्रता रूपी दुःख को अज्ञान जानिए।१६। जिस महावन के विषय में मैंने कहा है, उसे उप गुरु शास्त्र आदि जानिये। जो उन्हें भोजन के लिए उद्यत हुआ कहा उसे भोगार्थी जीव समझिए।१७। कृपण मनुष्य अपने भोगों की पूर्ति के लिए शास्त्रोंमें बुद्धि वाला होता है।१८। जिसप्रकार

बँहगी ढोने वाला वन में गया और सार-असार की अन्वेषणात्मक बुद्धि से मणि पा गया, वैसे ही भोग के निमित्त शास्त्रको ग्रहण करता पुरुष विवेक से परमपद को पा लेता हैं ।१९। प्रथम वह सन्देह में रहताहै कि शास्त्र-विचार से क्या लाभ होगा ? फिर कौतूहल वश शास्त्रावलोकन में प्रवृत्त होकर श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है ।२०। जिसे श्रेष्ठ तत्वार्थ का बोध नहीं हुआ, वह सन्देह पूर्वक भोगों की प्राप्तिके उद्देश्य से शास्त्रों में प्रवृत्त होता हूँ, परन्तु ज्ञान पाकर (भोगों की उपेक्षा) परमपद को पा लेता है ।२१।

साध्वाचारवशाल्लोको भोगसंप्राप्तिशङ्कया ।
संदेहश्चाऽप्यतत्वज्ञः शास्त्रादो संप्रवर्तते ॥२२
त्रिवर्गमात्रसंसिध्द्यै यन्न मोक्षाय च तच्छ्रुतम् ।
विपुलश्रुतचर्चासु तुच्छमश्रुतमेव तत ॥२३
तच्छ्रुतं यत्किल ज्ञप्त्यै सा ज्ञप्तिः समता यया ।
तत्साम्यं यत्र सौषुप्ती स्थितिर्जाग्रति जायते ॥२४
एवं हि सर्वमेतत्तच्छास्त्रादेः समवाप्यते ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन शास्त्राद्यभ्यासमाहरेत् ॥२५
शास्त्रार्थ भावनवशेन गिरा गुरूणां ।
सत्सङ्गमेन नियमेन शमेन राम ।
तत्प्राप्यते सकलविश्वपदादतीतं
सर्वेश्वरं परममाद्यमनादिशर्म ॥२६

साधुजनों के आचरण के कारण ही अज्ञानी शास्त्र से मिलने वाले लाभ को सन्देह से देखते हुए भी, भोगों के पाने की आशा से शास्त्र आदि में प्रवृत्त होते है ।२२। जिस शास्त्र के सुननेका फल त्रिवर्ग-सिद्धि ही है अर्थात् धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति ही हो सकती है, मोक्ष नहीं मिल सकता, वह शास्त्र-श्रवण मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, क्योंकि मित्रता विषयों की सिद्धि देने वाला होनेके कारण वह तुच्छ ही है ।२३। ज्ञान-प्राप्ति के लिए शास्त्र का सुनना ही यथार्थ श्रवण है, वही समता वाला ज्ञान है और समता है, जिसमें जागृति में भी सुषुप्ति जैसी अवस्था रहती है ।२४। यह सम्पूर्ण ज्ञान समता और निर्विकल्प

रूप से अवस्थित शास्त्रार्थ के द्वारा प्राप्त होता है, इसलिए प्रयत्न पूर्वक शास्त्रार्थ का अभ्यास करना चाहिए।२५। ब्रह्मलोक के ऐश्वर्यो से भी उत्कृष्ट परम पावन मोक्ष संज्ञक सुख की प्राप्ति गुरुओं के उपदेश वचनों से प्राप्त शास्त्र-ज्ञान से ही सम्भव है और शास्त्र ज्ञान की स्थिरता सत्सङ्ग, नियम और शम से ही रह सकती है।२६।

१०७–समदर्शन से सर्व प्राप्ति

भूयो निपुणबोधाय शृणु किञ्चिद्रघूद्वह।
पुनः पुनर्यत्कथितं तदज्ञेप्यवतिष्ठते ॥१
राघव प्रथमं प्रोक्तं स्थितिप्रकरणं मया।
येनेदमित्थमुत्पन्नमित्ति विज्ञायते जगत् ॥२
प्राप्तप्रात्येन तज्ज्ञेन यथा संसारदृष्टिषु।
विहर्तव्यं हि नः किंचित्स्वल्पं श्रोतव्य मस्ति ते ॥३

समतासुभगेहानां कुर्वतां प्रकृतं क्रमम्।
सर्वैवेयं जगल्लक्ष्मीभृत्यमेति राघव ॥४
यत्करोति यदश्नाति यदाक्रामति निन्दति।
समदृष्टिस्तदस्येय स्तौति नित्यं जनावलिः ॥५
यच्छुभं वाऽशुभं यच्च यच्चिरेण यदद्य वा।
समदृष्टिकृतं सम्यगभिनन्दति तज्जनः ॥६
सुखदुःखेषु भीमेषु संततेषु महत्स्वपि।
मनागपि न वैरस्यं प्रयान्ति समदृदयः ॥७

बसिष्ठ जी बोले—हे राम ! अब आप ज्ञान को दृढ़ करने वाली निरपेक्षता की सिद्धि वाले रहस्य का पुनः श्रवण करिये।१। प्रथम जो स्थिति प्रकरण मैंने आपसे कहा उससे उत्पन्न इस संसार की भ्रांति मात्र होने का ही ज्ञान होता है।२। ज्ञेय ब्रह्म को प्राप्त किए हुए

तत्वज्ञानी को सांसारिक दृष्टि से जो व्यवहार करना चाहिए, वह कुछ रहस्य कहना शेष है। (उसे आप सुनिए)।३। हे राघव ! सब जीवों की हितकारिणी समता से आचरण करते हुए महापुरुषों की यह सम्पूर्ण जगत्-लक्ष्मी भृत्यता को प्राप्त हो जाती है।४। समदृष्टि वाला पुरुष जो कार्य करता है, जो भोजन करता, जिस पर आक्रमण करता था। जिसकी निन्दा करता है, उस-२ पर भी जन-मण्डली उसकी स्तुति ही करती है।५। समदृष्टि में किया हुआ कार्य शुभ,अशुभ कैसा भी हो देर में किया हुआ हो या आज किया गया हो, उस सबकी प्रशंसा ही की जाती है।६। निरन्तर घोर दुःखों और श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति होने पर भी समदृष्टि पुरुष उद्वेलित नहीं होता (अर्थात् दुःख से दुःखी या सुख से सुखी नहीं होता)।७।

शिर्बिभूपः कपोताय मांसमङ्गविकर्तनम् ।
ददौ मुदितया बुद्धया समदृष्टितयाऽनया ॥८
प्राणेभ्योऽपि प्रियत्तमां कान्तामग्रे विकालिताम् ।
दृष्ट्वाऽच्यङ्ग महोमालो न मुमोह ममाशयः ॥९
मनोरथशतप्राप्तं तनयं समया धिया ।
राक्षसाय त्रिगर्तेशो ददौ स्वपणहारितम् ॥१०
नगर्या दह्यमानया भूषितायां तथोत्सवे ।
सम एव महीपाल जनको भूभृतां वरः ॥११
न्यायतः परिविक्रीतं साल्वराट समदर्शनः ।
स्वमेव विचकर्ताऽऽशु शिरः पद्मदलं यथा ॥१२
कुन्दप्रकरनिर्भासं यज्ञे पाण्डुमिवाऽचलम् ।
जहौजरत्तृणमिव सौवीरः समया धिया ॥१३
समयैव धिया नित्यं निजमभ्याहरत्क्रमम् ।
मातङ्ग कुण्डपो नाम प्राप वैमानिकस्थितिम् ॥१४

इसी समदृष्टि से युक्त राजा शिवि ने अपनी शरण में आए हुए कपोत की रक्षा के निमित्त उसके बदले में अपना मांस काट-काट कर प्रसन्नता से दे दिया था।८। समान आशय वाले युधिष्ठर ने अपने

सामने ही शत्रुओं द्वारा अपनी प्रियतमा द्रौपदीके केशपाश और वस्त्रों के खींचे जाने पर भी मोह नहीं किया।९। समान बुद्धि वाले त्रिगर्त-देशाधिपति वे सैकड़ों मनोरथों से प्राप्त हुए अपने एकमात्र पुत्र को राक्षस को दे दिया। क्योंकि वह राक्षस द्वारा वाग्द्यूत में हराया जा चुका था।१०। उत्सव के लिए अत्यन्त सजायी हुई अपनी नगरी के जल जाने पर भी राजाओं में श्रेष्ठ महाराज जनक समचित वाले ही रहे।११। समदर्शी साल्वराट् ब्राह्मण को मुँह माँगी दक्षिणा देने के वचन द्वारा क्रीत हुआ और उसने कमल-पत्र के समान ही अपना सिर धड़ से पृथक कर डाला।१२। समबुद्धि के कारण ही राजा सौवीर ने कुन्दपुष्पों के समान श्वेत और कैलास के समान बृहत् ऐरावत हाथी इन्द्र से जीतकर भी यज्ञ में ऋषियों के कहने से इन्द्र को ही दे दिया।१३। समबुद्धि से अपने सभी देह-यात्रा-पादहारों को करते हुए कुण्डप नामक शूद्र ने ब्राह्मण की कीचड़ में फँसी पाँच गौएँ निकालकर अपने श्रम की निष्क्रयभूत एक गौ को पुष्कर तीर्थ में ब्राह्मण को प्रदान कर दिया इसके फलस्वरूप वह तुरन्त विमान द्वारा देवत्व को प्राप्त हो गया।१४।

सर्वभूतक्षयकरीं साम्याभ्यासेन भूरिणा।
तत्याज राक्षसीं वृत्तिं कदम्बवनराक्षसः ॥१५
वालचन्द्राभिजातोऽसि समबुद्धितया जडः।
गुणमोदकवन्नयायप्राप्तमग्निमभक्षयत् ॥१६
समबुद्धितया क्रूरव्यवहारपरोऽपि सन्।
धर्मव्याधस्तनुं त्यक्त्वा जगाम पदम् ॥१७
नन्दनोद्यानसंस्थोऽपि पुरुषोऽपि कपर्दनः।
लुलुभे न सुरस्त्रीषु नूनं प्रणयिनीष्वपि ॥१८
समचित्ततयाऽस्पन्दः करञ्जगहनेष्वपि।
विन्धयकान्तारकछेषु राज्यं त्यक्त्वाऽवसच्चिरम् ॥१९
राजानः प्राकृताश्चैव धर्मव्याधादयोऽपरे।
समदृष्टिपदाभ्यासान्महतां पूज्यतां गताः ॥२०

अभिवाञ्छेन मरणमभिवाञ्छेन्न जीवितम् ।
यथाप्राप्तसमाचारो विचरेदविहिंसकः ॥२१
समकलितगुणागुणैकभावः ।
समसुखदुःखपरावरो विलासी ।
प्रविचरति समावमानः ।
प्रकृतवरव्यवहारपूतमूर्तिः ॥२२

कदम्बवन के निवासी राक्षस ने समानता के अभ्यास द्वारा ही सब भूतों को नष्ट करने वाली अपनी राक्षसीवृत्तिको छोड़ दिया ।१५।बाल चन्द्र के समान सौन्दर्य वाले जड़ भरत ने अपनी समानमति के कारण ही भिक्षा से प्राप्त अग्नि को गुड़ के लड्डू के समान ही भक्षण कर लिया । ।१६। क्रूर व्यवहार में परायण धर्म व्याध भी अपनी समदृष्टि से कारण शरीर त्यागने पर परमपद को प्राप्त हो गया ।१७। अप्सराओं का प्रेम पात्र राजर्षि कपर्दन नन्दनकान जैसे परम उद्दीपक स्थान में रहता हुआ, एव पुरुष होने के कारण रमण-सामर्थ्य से युक्त था, फिर भी सम दृष्टि के कारण ही देवनारियों के प्रणय-जाल में नहीं पड़ा ।१८। वह राजर्षि कपर्दन समचित्तता के कारण ही अपने विशाल राज्य का परित्याग कर विन्ध्य पर्वत के दुर्गम प्रदेशों और करजबनों में चिरकाल तक तपस्या करता रहा ।१९। बड़े-बड़े राजा महाराजा तथा अन्यान्य धर्म व्याध आदि भी समदृष्टि में अध्यस्त होकर महापुरुषों के लिए भी पूजनीय हो गये ।२०। किसी को, किसी भी प्रकार से पीड़ित न करने वाला पुरुष मरने या जीनेकी इच्छाका त्याग करता हुआ यश प्राप्त स्थिति के अनुसार ही सम आचार वाला होकर विचरण करे ।२१। गुणों, अवगुणों, सुखों, और ऊँची-नीची योनियों को समान समझने वाला तथा मान अपमानमें सम-भाव रखने वाला जीवनमुक्त प्राकृत व्यवहारों में भी आसक्त होने से तेज-सम्पन्न एवं पावन मूर्ति होकर लोक कल्याण के लिए सर्वत्र भ्रमण करता है ।२२।

१०८-अनासक्ति से तत्वज्ञान की प्राप्ति

नित्यं ज्ञानेकनिष्ठत्वादात्मारामतया तथा ।
मुक्तै कर्मपरित्यागः कस्मान्न क्रियते मुने ॥१
हेयोपादयदृष्टी द्वे यस्य क्षीणे हि तस्य वै ।
क्रियात्यागेन कोऽर्थं स्यात्क्रियासंश्रयणेन वा ॥२
न तदस्तीह यत्जाज्यं ज्ञस्योद्वेगकरं भवेत् ।
न वास्ति यदुपादेयं तज्ज्ञसंश्रेयतां गतम् ॥३
ज्ञस्य नाऽर्थः कर्मत्यागैर्नाऽर्थः कर्मसमाश्रयैः ।
तेन स्थितं यथा यद्यत्तत्तथैव करोत्यसौ ॥४
यावदायुरियं राम निश्चितं स्पन्दते तनुः ।
तद्यथाप्रातमव्यग्रं स्पन्दतामपरेण किम् ॥५

श्रीराम बोले— हे मुने ! जीवन्मुक्त पुरुष आत्मक्रीड़ा और ज्ञान में ही तल्लीन रहते हैं, इसलिए वे कर्मों का त्याग नहीं करते ! ।१।वसिष्ठ जी ने कहा—हे राम! जिस महापुरुष की हेय और उपादेय रूपी दोनों दृष्टियाँ क्षीणता को प्राप्त हो चुकी हैं, उनके द्वारा नित्य नैमित्तिक क्रिया का त्याग करने का क्या अर्थ है ? अर्थात् उसके लिए तो कर्मका त्याग और कर्म का संश्रयण दोनों ही एक जैसे हैं ।२। ज्ञानी के लिए कष्ट देने वाली हेय वस्तु अथवा अनुष्टातव्य उपादेह वस्तु यह दोनोंही नहीं हैं। परब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु उसे तो दिखाई नहीं देती ।३। उसका कर्म के त्याग अथवा आश्रय से भी कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो अपने आश्रम के अनुरूप ही जो उचित प्रतीत होता है,उसे करता है ।४। हे राम ! यह शरीर जब तक आयु है तब तक चेष्टा शील रहता है, अतः उसे यथा प्राप्त चेष्टा करनी चाहिए, चेष्टा का त्याग करके किसी अन्य चेष्टा के प्रयास से उसे क्या लाभ होता है ?५

अन्यथाऽन्यत्र चेत्कार्या क्रिया त्यक्त्वा निजं क्रमम् ।
समाने हि क्रियास्पन्दे को दोषः सत्क्रमे किल ॥६

समया स्वच्छया बुद्धया सततं निर्विकारया।
यथा यत्क्रियते राम तददोषाय सर्वदा ॥७
इह मह्यां महाबाहो बहवो बहुदृष्टयः ।
बहुधा बहुदोषेषु विहरन्ति विचक्षणाः ॥८
गतस तया बुद्धया विहरन्ति यथा स्थितेः ।
गृहस्थारम्भिणः केचिज्जीवन्मुक्ताः स्थिता भुवि ॥९
तज्ज्ञा राजर्षयश्चाऽन्ये वीतरागा भवादृशाः ।
असमक्तधियो राज्यं कुर्वन्ति विगतज्वराः ॥१०

अपना घर दोष रहित हो तो पराये घर नहीं बैठा जाता वैसे ही जब अन्यत्र भी किसी कर्म को करना ही है तो शास्त्रीय अशास्त्रीय कर्मों के क्रम की समानता होने पर भी सत्कर्म करने में ही क्या दोष है, जिसके कारण अपने कम को छोड़कर विपरीत कर्म किया जाये ? ।६। हे राम ! विषमता के दोष से सर्वदा नियुक्त एवं विचार रहित बुद्धि के द्वारा जो निरन्तर कार्य किया जाता है वह सदा दोष रहित होता है ।७। हे महाबाहो ! इस भूतल में सभी शास्त्रों और लोक रहस्य के ज्ञाता अनेक बिचक्षण पुरुष-प्रचुर दोषों में भी अपनी अपनी सम दर्शितावश विहार करते रहते हैं ।८। पृथिवी में स्थित कुछ गृहस्थ जीवन मुक्त विगतसङ्ग होने से बुद्धि द्वारा जैसा प्राप्त, वैसा ही वर्णाश्रम के अनुकूल व्यवहार करते हैं।९। अनेक तत्वज्ञ राजर्षि तथा आपके समान वीतराग पुरुष आसक्ति-रहित बुद्धि बाले हैं, इसलिए सभी सन्तापों से निर्मुक्त रहते हुए पृथिवी पर राज्य करते हैं ।१०।

केचित्प्रकृतवेदार्थव्यवहारानुसारिणः ।
यज्ञशिष्टाशिनो नित्यमग्निहोत्रे व्यवस्थिताः ॥११
केचिच्चतुर्षु वर्णेषु ध्यानदेवार्चनादिकाम् ।
स्वक्रियामनुतिष्ठन्तः स्थिताः विविधयेहया ॥१२
केचित्सर्वपरित्यागमन्तः कृत्वा महाशयाः।
सर्वकर्मपरा नित्यं तज्ज्ञा एवाऽज्ञवत्स्थिताः ॥१३

स्वप्नेऽप्यदृष्टलोकासु मुग्धमुग्धमृगासु च।
वनावनीषु शून्यासु केचिद्ध्यानपरायणाः ॥१४
पुण्यवद्भिः सदा जुष्टे पुण्योपचयकारिणि।
शमशालिसमाचारे केचिदायतने स्थिता ॥१५

उनमें से कोई अपने वर्णाश्रमों के अनुरूप उपलब्ध वेदार्थ का अनुसरण करने वाले एव देवताओं और पितरों के अवशिष्ट अन्न का भक्षण करने वाले अग्निहोत्रादि कर्म में लगे रहते हैं चारों वर्णोंमें कोई नित्य ध्यान, देवताओं के पूसक आदि अपने अनुरूप कर्म को करते हुए विविध चेष्टा में अवस्थित रहते हैं।११-१२। कोई महाशय अपने मन में फल की इच्छा-रहित होये हुए नित्य-नैमित्तिक कर्मो में लगे रहकर तत्वज्ञानी होकर भी अज्ञानी के समान ही रहते हैं।१३। कुछ लोग ऐसे निर्जन वनों में, जहाँ स्वप्न में भी कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता, केवल रमणीय मृगशावक ही रहते हैं, वहाँ ध्यान में तत्पर रहते हैं।१४। कोई पुरुष पुण्यात्मकों से परिपूर्ण पुण्य बढ़ाने वाले श्रमयुक्त सदाचारी पुरुषों से परिवेष्टित पुण्य तीर्थो और मुनियों के आश्रम आदिमें निवास करते है।१५।

रागद्वेषप्रहाणार्थं त्यक्त्वा देश समाशयाः।
केचिदन्यत्र देशे च पदमालम्व्य संस्थिताः ॥१६
वनाद्वन पुराद्ग्रामं स्थानात्स्थानं गिरेर्गिरिम्।
भ्रमन्तः सस्थिताः कचित्संसारोच्छित्तये बुधाः ॥१७
वाराणस्यां महापुर्या प्रयागे चैव पावने।
श्रीपर्वते सिद्धपुरे बदर्याश्रमके तथा ॥१८
शालग्रामे महापुण्ये कलापग्रामकोटरे।
मथुरायां च पुण्याया तथा कालञ्जरे गिरौ ॥१९
महेन्द्रवनगुल्मेषु गन्धमादनसानुषु।
दर्दुराचलवप्रेषु सह्यकाचल भूमिषु ॥२०

कोई समान हृदय वाले पुरुष राग द्वेष से बचने के लिए बांधवों से युक्त अपने देश को छोड़कर अन्य देश में जाकर निवास करते हैं ।१६। कोई ज्ञानवान् संसार से युक्त होने के उद्देश्य से एक वन से दूसरे वन, एक नगर से अन्य नगर, एक स्थान से दूसरे स्थान और एक पर्वत से दूसरे पर्वत में विचरण करते रहते हैं ।१७। कोई महापुरी वाराणसी में कोई पवित्रतम प्रयाग में कोई सिद्ध पुरुषों के स्थन श्री-पर्वत में और बदरिकाश्रम में रहते है ।१८। किसी का निवास शाल-ग्राम में किसी का परम पावन कलापग्राम के किसी का पुण्यनगरी मथुरा में तो किसी का कालञ्जर पर्वत में है ।१९। कोई महेन्द्रवन के गुल्मों में कोई कोई गन्धमादन के शिखरों में कोई दर्दुराचल की चोटियों में तो कोई सह्य पर्वत के वनखण्डों में तपस्या करते हैं ।२०।

विन्ध्यशैलस्य कच्छेषु मलयस्योदरेषु च ।
कैलासवनजालेषु ऋक्षवत्कुहरेषु च ॥२१
एतेष्वन्येषु चाऽन्येषु वनेष्वायतनेषु च ।
तपस्विनस्तथा रामबहवो बहुदृष्टयः ॥२२
केचित्यक्तनिजाचाराः केचिच्च क्रमसंस्थिताः ।
केचित्प्रबुद्धमतयो नित्यमुन्मत्तचेष्टिताः ॥२३
केचित्स्वदेशरहिताः केचित्यक्तनिजास्पदाः ।
एकस्थानरताः केचिद् भ्रमन्तः केचिदास्थिताः ॥२४
एतेषां महतां मध्ये नभस्तलनिवासिनाम् ।
पाताल निरतानां च दैत्यादीनां महामते ॥२५
दिज्ञातलोकपर्यायाः सम्यग्दर्शननिर्मलाः ।
केचित्प्रबुद्धमतयो दृष्टदृश्यपरावराः ॥२६

कोई विन्ध्यगिरि के जलयुक्त प्रदेश में कोई मलयाचल के बीच कोई कैलाश पर्वत के बीहड़ वन भाग में और कोई ऋक्षवान् पर्वत की गुहाओं में रहते हैं ।२१। इनके अतिरिक्त बहुत से मोक्षकामी बहुदृष्टा

पुरुष अन्यान्व तपोवनों में तथा तपस्वियों के आश्रमों उ रहते हैं।२२ उनमें से कुछ ने अपने पूर्व आश्रय का त्याग करके विधिवत् सन्यास ले लिया है कुछ अभी ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का पालन करते हैं, कुछ की बुद्धि जागृत हो गई है और कुछ उन्मत्त जैसी चेष्टा करते रहते हैं। ।२३। किसी ने अपना देश छोड़ दिया, किसी ने एक ही स्थान में रहना ठीक समझा है। और किसी ने इधर-उधर भ्रमण करना ही अपना क्रम बना लिया है।२४। हे महामते ! इन महान् पुरुषों में आकाश में रहने वाले देवगण और पाताल में निवास करने वाले दैत्य आदि भी हैं, जो संसार के रहस्य को जानने वाले तथा निर्मल बुद्धि से समदर्श युक्त प्रबुद्ध मति से सम्पन्न और परतत्व का सन्क्षात्कार किए हुए हैं। ।२५-२६।

अप्रबुद्धधियः केचिद्दोलान्दोलितचेतसः।
निवृत्ताः पापकाचारात्सुजनानुगता स्थिताः ॥२७
अर्द्ध प्रबुद्धमतयः केचिज्ज्ञानाबलेपतः।
परित्यक्तक्रियाचारा उभयभ्रष्टतां गताः ॥२८
इत्थमस्मिञ्जनानीके जन्मसंतरणार्थिनः।
वहवः संस्थिता सा राम बहुधा बहुदृष्टयः ॥२९
संसारोत्तरणे तत्र न हेतुर्वनवासिता।
नापि स्वदेशवासित्वं न च कष्टतपः क्रियाः ॥३०

इनमें जो अप्रबुद्ध मति वाले हैं वे सन्देह के वशीभूत होकर झूले के समान कभी इस पक्ष का और कभी उस पक्षका समर्थन करते हुए, पापाचरण का परित्याग कर सज्जन पुरुषों के अनुगत हो गये हैं।२७। जिस किसी की आधी बुद्धि जाग्रत हुई है वे अपने तत्व ज्ञानी होने के मिथ्याभिमान में सदाचरण का परित्याग कर दोनों (लोकों) से ही भ्रष्ट हो जाते हैं।२८। हे राम ! इस प्रकार इस असंख्य जन-समुदाय

में जन्म-मरणरूप भवसागर से तरने की इच्छा वाले और प्रारब्ध भोग के अनुकूल अनेक दृष्टि वाले बहुत से पुरुष अनेक प्रकार के आचरणों में अवस्थित हैं।२६। परन्तु संसार से पार होने में न तो वनवास सहायक है, न अपने देश में रहना ही उसका हेतु है और न कष्ट साध्य विविध तपक्रियायें ही इसमें कारण रूप हैं।३०।

न क्रियाया: परित्यागो न क्रियाया: समाश्रय: ।
नाऽऽचारेषु समारम्भविचित्रफल पालय: ॥३१
स्वभाव: कारणं नाम संसारोत्तरण प्रति ।
असंसक्त सनो यस्य स तीर्णो भवसागरात् ॥३२
शुभाशुभा: क्रिया नित्यकुर्वन्परिहरन्नपि ।
पुनरेति न संसारमसंसक्तमना मुनि: ॥३३
शुभाशुभा: क्रिया नित्यमकुर्वन्नपि दुर्मति: ।
निमज्जत्येव संसारे परित्यक्तमना: शठ: ॥३४
मक्षिकेवाऽन्त सारज्ञा दु:खादु:खप्रदायिनी ।
न निवारियतुं शक्या न च मारयितुं मति: ॥३५

कर्म का परित्याग भी संसार से मोक्ष प्राप्त नहीं करा सकता तथा सत्कर्मों से उपलब्ध यश की प्राप्ति ऐश्वर्य तथा बरदान-अभिशाप के सामर्थ्य-रूप फल से भी मुक्ति संभव नहीं हैं।३१। संसार से पार होने का एक मात्र कारण तत्वज्ञान रूप जो स्वभाव है वह ही यथार्थ है। उस स्वभाव की प्राप्ति मन की आत्यन्तिक अनासक्ति से ही हो सकती है जिसके मन आसक्ति नहींहै, उसके विषय में समझलो कि वह संसार सागर पार हो चुका है।३२। जिसका मन अनासक्त है वह यदि नित्य शुभ अथवा अशुभ कर्म भी करे तो उनका परिहार करता हुआ पुनः संसार को प्राप्त नहीं होता।३३। जिसका मन विषयों में लगा है, वह कुमति वाला शठपुरुष यदि शुभ या अशुभ कर्मों को कभी करे, तो भी भवसागर में अवश्य गिरता है।३४। विषयों के स्वाद में अभिभूति

बुद्धि अत्यन्त दु:खदायिनी हो जाती है वह मधु घट पर चिपकी हुई मक्खी के समान न तो हट पाती है और न मारी ही जाती है ।३५।

काकतालीययोगेन कदाचित्स्वस्य चेतसः ।
प्रवृत्तिर्जायते सिद्धयै स्वयमात्मावलोकने ॥३६
अवलोकनतो लब्ध्वा तत्व नैर्मल्यमागतम् ।
चेतो भवति निर्द्वन्द्वमसंसक्तपनामयम् ॥३७
अचित्तत्वंप्रयातेन सत्वरूपेण चेतसा ।
समो भूत्वा सुखं तिष्ठ पराकाशाशरूपभृत् ॥३८
अधिगतपरमार्थस्त्यक्तरागादिदोषः
सममतिरुदितात्मा त्वं महात्मा महात्मन् ।
रघुतनय विशोकस्तिष्ठ निःशंकमेको ।
जननमरणमुक्तं पावनं तत्पदं त्वम् ॥३९

वह बुद्धि कभी भाग्यके उदय होने पर ही साधन चतुष्टय के योग से, काकताली योग द्वारा श्रवणादि उपायों को करती हुई स्वयं ही आत्माबलोकन में लग जाती है ।३६। आत्मावलोकन से चित्त स्वच्छ हो जाता है,उसे द्वन्द्व-रहितता की प्राप्त हो जाती है, इसलिए वह आसक्ति और भलों से रहित ब्रह्मरूप ही हो जाता है ।३७। हे राम ! अचित्य को प्राप्त हुए सत्यस्वरूप चित्तके द्वारा सम होकर आप भी, जो पराकाश स्वरूप चित्त आदि सब प्रपच्च-प्रधिष्ठानांश है, उसके समान वनकर सुख से स्थित हो जाइए ।३८। हे राघव ! हे महात्मन् ! जिसने परमार्थतत्व का ज्ञान पा लिया है जो रागादि दोषों को छोड़ चुका है और जिनमें आत्मज्ञान का उदय हो चुका है,ऐसे आप समान दुद्धि वाले, शोक-शून्य एवं महान आत्मा होकर निःशंक अवस्थित होइये क्योंकि जन्म-मरण से मुक्त परम पावन वह ब्रह्मपद आप ही हैं । ।३९।

१०६-गुरु पूजा महोत्सव

निर्वाणवाक्यसंदर्भ समाप्तौ मुनिनायके।
पाश्चात्यवाक्यविरतिं कुर्वति क्रमपालिताम् ॥१
निर्विकल्पसमाधानसमतां समुपागते।
शान्तस्वच्छमनोवृत्तौ सर्वस्मिंश्च संभाजने ॥२
सत्वकोटिमुपारूढे परां पावनता गते।
सवित्तत्वे समगस्य जनस्य श्रुतशालिनः ॥३
झटित्येवाऽरहता पूर्वमुक्तधियां मुखात्।
सिद्धानां साधुवादेन व्योमकोटरवासिनाम् ॥४
तथा सभास्थितानां च मुनीनां भवितात्मननाम्।
गाधेयप्रमुखानां स साधुवादगिरोच्चया ॥५
कोलाहलः समुद्भूद् भूरिपरितदिङ्मुखः।
मधुरः पवनात्ताना कीचकानामिवाऽरबः ॥६
सिद्धानो साधुवादेन सह व सहसा ततः।
देवदुन्दुभयो नेदुः प्रतिश्रुत्पूरिताचलाः ॥७

वाल्मीकजी ने कहा—हे भरद्वाज ! इस प्रकार निर्वाण वाक्य सन्दर्भ की समाप्ति कर मुकिवर वसिष्ठजी अन्तिम वाक्य कहकर मौन हो गए सभा में उपस्थित जन एवं आकाशचारी देवगण आदि उन वचनों के सुनने से शान्त और स्वच्छ मन वाले होकर निर्विकल्प समाधि के द्वारा ब्रह्म से एक रसता को प्राप्त हो गये, इससे प्रत्यगात्मा सत्वकोटि से आरूढ़ होकर परम पवित्र होगया तब सिद्ध पुरुषों के आकाश व्यापी साधुवाद से और सभा में स्थित मुनियों की प्रशस्ति से दिशाओं को पूर्ण करने वाला कोलाहल वायु से परिपूर्ण रन्ध्र वाले कीचकों की ध्यनि जैसा मधुर था। सिद्धों के साधुबाद से युक्त उस वातावरण में सहसा देवता की दुन्दुभियाँ बज उठीं, जिसकी गहन प्रतिध्वनियों से पर्वत भी परिपूर्ण हो गये ।७।

देवदुन्दुभिभिः सार्धं तुषारासारसुन्दरी ।
दिग्भयः स्थगितदिक्चक्रा पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥८
तस्मिन्विबुधसंरम्भे क्षणेन समये गते ।
वाक्यानीमानि सिद्धनामभिव्यक्तिमुपाययुः ॥९
आकल्पं सिद्धसंघेषु मोक्षोपायाः सहस्रशः ।
व्याख्याताश्च श्रुताश्चाऽलमीदृशास्तु न केचन ॥१०
तिर्यञ्चो वनिता बाला व्यालाश्चाऽनेन निर्वृतिम् ।
मुनेर्वाक्यविलासेन यान्ति नास्त्यत्र संशयः ॥११
अनेन मोक्षोपायेन तिर्यञ्चोऽपि गतामयः ।
स्थिता मुक्ता भवि यन्ति के नाम भुवि नो नराः ॥१२
श्रवणाञ्जलिभिः पीत्वा ज्ञानामृतमिदं वयम् ।
परां पूर्णनवीभूतसिद्धयः श्रियमागताः ॥१३
इति शृण्वन्सभां लोको विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
कुसुमासारसंपूर्णा राजीवानां ददर्श ताम् ॥१४

उन देव दुन्दुभियों के साथ ही तुषार-वर्षा के समान सुन्दर पुष्प-बर्षा दशों दिशाओं से होने लगी, उससे सम्पूर्ण दिङ्मण्डल ही आच्छादित हो गया ।८। फिर उस दुन्दुभि-वादन और पुष्पवृष्टि आदिके क्षण भर में शान्त हो जाने पर सिद्ध पुरुषों की वाणी अभिव्यक्ति को प्राप्त हुई ।९। सिद्धगण बोले—हमने सिद्धों के समाज में सहस्रों वार कल्प पर्यन्त मोक्षोपायों को कहा और अन्यों के द्वारा सुना, परन्तु उनमें से ऐसा (प्रभावशाली) कोई भी नहीं था ।१०। तिर्यकयोनि वाले जीव, स्त्रियाँ, बाल और सर्प आदि सभी मुनिवर वसिष्ठके इस वाक्य-विलास से निःसन्देह परम शान्ति को प्राप्त होते हैं ।११। इस मोक्षोपायसे जब त्रिर्यक् योनि वाले जीव ही विविध तापों से रहितहो जाते तब पृथिवी में सुनने वाले कौन कौन से मनुष्य ऐसे होंगे जो मुक्त न हो जायेंगे।१२ इस ज्ञानामृत को कानरूपी अञ्जलि के द्वारा पीकर हम परिपूर्ण एवं नवीन सिद्धियों से सम्पन्न और ऐश्वर्यशाली हो गए हैं ।१३। इस

प्रकार सिद्धों के उस साधुवाद को सुनते हुए अयोध्यावासियों ने उस सभा को कमल पुष्पों की वर्षा से परिपूर्ण हुई अपने विस्मित नेत्रों से देखा ।१४।

इति पश्यन्सभां लोकः साधुवादेव भूरिणा ।
तत्कालोचितवाक्येन तेन तेन तथोद्यः ।१५
वसिष्ठं पूजयामास सर्वेन्द्रियथगणानतः ।
कुसुमाञ्जलिमिश्रेण प्रणामसहितेन च ।।१६
नृपप्रणाममालासु किंचिच्छान्तासु तास्वथ ।
मुनिमापूजयन्नाहसार्ध्यपात्रकरो नृपः ।।१७
क्षयातिशयमुक्तेन परमेणाऽऽत्मवस्तुना ।
पराऽन्तः पूर्णतोत्पन्ना बोधेनाऽरुन्धतीपते ।।१८
आत्मना सकलत्रेण लोकद्वयशुभेन च ।
राज्येनाऽखिलभृत्येन भवन्तं पूजयाम्यहम् ।।१९
एतत्सर्वं तव विभो स्वायत्तं स्व इवाऽऽश्रमः ।
नियोजय यथाऽऽदेशं यथाभिमतयेच्चया ।।२०
प्रणाममात्रसंतुष्टा ब्राह्मणा भूपते वयम् ।
प्रणामेनैव तुष्यामः स एव भवता कृतः ।।२१
पातुं त्वमेव जानासि राज्यं भाति तथैव च ।
भवत्वेतत्तवैवेह ब्राह्मणाः क्व महीभृतः ।।२२

इसप्रकार की अद्भुत शोभाको देखते हुए लोगों ने अत्यन्त विनीत साधुवाद से उद्योगित होकर पुष्पांजलियों से वसिष्ठजी का पूजन किया ।१५-१६। फिर जब राजाओं के प्रणाम व्यवहार शान्त हुए तब हाथ में पूजन सामग्री लिए राजा दशरथ ने वसिष्ठ जी का पूजन करते हुए निवेदन किया ।१७। राजा दशरथ बोले—हे ब्रह्मन् ! आपके सदुपदेश से जो क्षय वृद्धि से रहित निरतिशय आनन्दरूपी आत्म वस्तु प्राप्त हुई है, उससे मुझमें पूर्ण उत्कृष्टता की उत्पत्ति हो गई है ।१८।दोनों लोकों के भोग के लिए सोचते मेरे सुकृत में पुत्रकलत्र युक्त अपने देह से तथा

भृत्य सामन्तादि रहित सम्पूर्ण राज्य से आपको इनका समर्पण करता हुआ, आपका पूजन करता हूँ ।१९। हे विभो ! यह जो कुछ मैंने समर्पित किया है, उस सबके आप अपने आश्रम के समान ही स्वामी है । अब आप इसके अधिपति रूप से मुझे आदेश दीजिए ।२०। वसिष्ठ जी बोले—हे राजन् ! हम तो प्रणाममात्र से सन्तुष्ट हो जाने वाले ब्राह्मण है और प्रणाम आपने किया ही है ।२१। राज्य की रक्षा करने का ज्ञान आपको है और राज्य की शोभा आपसे ही है, हम तपस्वी ब्राह्मण कहीं राजा हो सकतेहैं ? इसलिए आपका राज्य आपके पास ही रहे ।२२।

कियन्मात्र तु राज्य स्यादिति लज्जामहामुने ।
प्रकर्षेणाऽत्र तेनेश यथा जानासि तत्कुरु ॥२३
इत्युक्तवति भूपाले रामः पुष्पाञ्जलिं ददत् ।
उवाच प्रणतो वाक्यं पुरस्तस्य महागुरोः ॥२४
निरुत्तरीकृतमहाराज ब्रह्मन्प्रणौमि ते ।
प्रणाममात्रसारोऽहं रामः पादाविमौ प्रभो ॥२५
इत्युक्त्वापादयोस्तस्य शिरोवन्दनपूर्वकम् ।
तत्याजाऽञ्जललिपुष्पाणि हिमानीव वनं गिरेः ॥२६
शत्रुघ्नो लक्ष्मणश्चैव तथाऽन्ये तत्सामाश्च ये ।
निकटस्थास्तथैवाऽऽशु ते प्रणेमुर्मुनीश्वरम् ॥२७
प्रणामानन्तरं तस्मिन्रामाद्यैः स्वसभाजने ।
शान्तवात इवाऽम्भोदे जने सोम्यत्वमागते ॥२८
आकर्णयन्साधुवादं विश्वामित्रं मृदुस्वनम् ।
उवाचेदमनिन्द्यात्मा वसिष्ठो मुनिनायकः ॥२९

दशरथजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिस मोक्षरूपी आनन्द सागर में यह राज्य जल के एक कणके समान है, इसलिए इसे देता हुआ हुआ मैं अत्यन्त लज्जित हो रहा हूँ अतः इस विषय में आप जैसा समझें, वैसा ही करें ।२३। वाल्मीकिजी बोले—राजा दशरथ ने ऐसा कहकर मौन

हो जाने के पश्चात् उन महागुरु वसिष्ठजी के चरणों में कुसुमांजलि समर्पित करते हुए श्रीराम ने नतमस्तक होकर निवेदन किया ।२४। हे ब्रह्मन् ! आपके वचन से महाराज निरुत्तर हो गये हैं । मेरे पास प्रणाम मात्र ही है, उसके सहित मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ ।२५।यह कहकर राम ने नतमस्तक होकर मुनिकी वन्दना की ओर उनके चरणों पर वैसे ही पुष्पांजलि समर्पितकी वैसे वन पर्वत, पादों पर पत्तोंमें लगी ओस की बूँदें अर्पित करता हूँ ।२६। शत्रुघ्न, लक्ष्मण और श्रीराम के अन्यान्य सहचर जो समीप में स्थित थे,उन सबने भी उसी प्रकार मुनि को प्रणाम किया ।२७। प्रणाम के अनन्तर उनका पूजन करने वाले सभी सभाजन आदि शान्त वायु युक्त मेघ के समान सौम्यतामें आ गए तब उस साधवाद को सुनते हुए मुनिवर वसिष्ठजी से विश्वामित्र ने मृदु वाणी में कहा ।२८-२९।

मुने गाधिकुलाम्भोज वामदेव निमेक्रतो ।
भरद्वाज पुल त्याऽत्रे घृत्रे घृष्टे नारद शाण्डिले ॥३०
हे भासभृगुभारण्डवत्सवात्स्यायनादयः ।
मुनयस्तुच्छमेतत्तु भवद्भिमद्वचः श्रुतम् ॥३१
यदत्राऽनुदितं किंचित्तदनुग्रहतोऽधुना ।
दुरर्थं विगतार्थं वा भवन्तः कथयन्तु मे ॥३२
वसिष्ठवचने ब्रह्मन्परमार्थैकशालिनि ।
दुरर्थो भवतीत्यद्य नवैव खलुगीः श्रुता ॥३३
यत्संभृतमनन्तेन जन्मदोषेण नो मलम् ।
तत्प्रमुष्टं त्वयेहाऽद्य हेम्नामिव हविर्भुजा ॥३४
सर्वसत्वमहाबोधदायिनं मुनिनायकम् ।
भवन्तमेकान्तगुरुं प्रणमास इमे वयम् ॥३५

हे गाधिकुल कमलरूपी मुनिश्रेष्ठ! हे रामदेव! हे निमि! हे क्रतो! हे भारद्वाज ! हे पुलस्त्य! हे अत्रे ! हे घृष्टे ! हे नारद ! हे शाण्डिलि! हे भास ! हे भृगु ! हे भारण्ड ! हे वत्स ! हे वात्स्यायन आदि ऋषि

गण मेरे जिस तुच्छ वचन को आपने सुना, उसमें जो न्यूनता, त्रुटि, निरर्थकता या विगतार्थता हो, वह सब कृपाकर मुझे बतादे ।३०-३२। तब वे सभ्यजन बोले--हे ब्रह्मन् ! एकमात्र परमार्थशाली मुनिवर वासिष्ठ के वचनों में भी कोई दुरर्थ हो सकता है, यह तो नई बात ही सुनी है ।३३। हमारा जो अनन्त जन्म दोषों से युक्त पाप था,वह आपके द्वारा अग्निसे स्वर्ण के मल का परिमार्जन होनेके समान ही परिमार्जित हो चुका है ।३४। हे सर्वसत्य का महान बोध देने वाले मुनिनायक! हम केवल आप गुरु को ही प्रणाम करते हैं ।३५।

इत्युक्ता मुनिनाथाय नमस्ते इति ते पुनः ।
वदन्त एकशब्देन तारेणाऽब्दरवौजसा ॥३६
अर्वाक्पुष्पांजलिव्रातैः खात्सिद्धैः सगमुज्झितैः ।
बसिष्ठं पूरयामासुर्हिमैरब्दा इवाऽचलम् ॥३७
इत्थं दशरथंभूपंशशंश्चाऽथ राघवम् ।
माधवं चतुरात्मानं राघवोदन्यकोविदाः ॥३८
नमाम चतुरात्मानं नारायणमिवाऽपरम् ।
राम सभ्रातरं जीवन्मुक्तं राजकुमारकम् ॥३९
चतुरब्धिनिखातान्तधरावलपालकम् ।
त्रिकालंस्थमहीपालचिह्नं दशरथं नृपम् ॥४०

वाल्मीकिजी ने कहा—हे मुने ! मुनिनाथ वसिष्ठ से यह कह कर और उन्हें वारम्बार नमस्ते करके उन मुनियों ने आकाश से सिद्ध गणों के सहित पुष्टवृष्टि की जिससे हिमवृष्टि से हिमालय के आच्छादित होने के समान वे मुनिवर पुष्पोंसे ढक गये ।३६-३७। फिर उन मुनियों ने महाराज दशरथ की प्रशंसा करके चार रूप वाले भगवान् राम को विष्णु रूप से जानने वाले उन विद्वानोंने उनकी प्रशंसा की ।३८। सिद्धों ने कहा—चार रूप वाले नारायण के समान भाईयों सहित स्थित जीव न्मुक्त राजकुमार आपको हम नमस्कार करते हैं ।३९। इसके पश्चात् उन्होंने महाराज दशरथ की प्रशंसा करते हुए—चार समुद्र पर्यन्त

भूमण्डल का पालन करने वाले और तीनों काल में कभी भी लोप न होने वाले राज चिन्हों से विभूषित महाराज दशरथ सौभाग्यशाली हैं। ।४०।

मुनिसेनाधिपं भूपं भास्वरं भूरितेजसम् ।
वसिष्ठं सुप्रवादाढ्यं विश्वामित्रं तपोनिधिम् ॥४१
एषामेव प्रभावेण ज्ञानयुक्ति परामिमाम् ।
श्रुतवन्तो वयं सर्वे भ्रान्तिसरम्भनाशिनीम् ॥४२
इत्युक्त्वा गगनात्सिद्धाः भूयः पुष्पाणि चिक्षिपुः ।
सभायामथ तूष्णीं च तस्तुर्मुदितचेतसः ॥४३
तथैव व्योमगाः सिद्धाः शसंमुस्तं जन पुनः ।
तथैव सभ्यास्तांस्तत्र समानर्चुर्घनस्तवम् ॥४४
नभश्चरा धरणिचरा मुनीश्वरा ।
गहर्षयो बिबुधगणा द्विजा नृपाः ।
अपूजयन्निति जनमोजसैव ते ।
गिरोच्चया सह कुसुमार्घ्यदानया ॥४५

इसके पश्चात् उन्होंने मुनिरूपी सेनाओं के अधिपति और सूर्य के समान तेजस्वी वशिष्ठजी ने फिर महाशय वाले तपोनिधि विश्वामित्र जी की प्रशंसा में उन्होंने कहा कि इनके प्रभाव से ही हम भ्रांति को नष्ट करने वाली ज्ञानदायिनी वसिष्ठ वाणी को सुन सके हैं ।४१-४२। बाल्मीकिजी ने कहा—यह कहकर सिद्धोंने पुनः आकाशमें पुष्प वृष्टिकी और फिर सभास्थल में मुदित चित्त से स्थित हो गए ।४३। आकाश में स्थित सिद्धों ने जैसे वसिष्ठजी का पूजन किया वैसे ही सभा में स्थित लोगों ने उन सिद्धों की स्तुति और पूजा की ।४४। आकाश में स्थित सिद्ध देवादि तथा भूमि में अवस्थित मुनीश्वरों, महर्षियों, ब्राह्मणोंऔर राजाओं ने अपने सामर्थ्यानुसार पुष्प और अर्घ्यदान आदि सहित जय घोष करते हुए प्रत्येक पुरुष का पूजन किया ।४५।

११०—पूर्णानन्द में विश्रान्ति

ग्रहीतुमर्चा भक्तानां मानितार्थजनो मुनिः ।
तूष्णीं क्षणमिव स्थित्वा प्रोवाचाऽनाकुलाक्षरम् ॥१
स्वकुलाकाशशीतांशो राम राजीव लोचन ।
किमन्यदिच्छसि श्रु तु' कथयाऽभिमतेच्छया ॥२
त्वत्प्रसादेन यातोऽस्मि परां निर्मलतां प्रभो ।
शान्ताशेषकलंकांकं शरदीव नभस्तलम् ॥३
सर्वा एवोपशान्ता मे भ्रान्तयो भवभंगदाः ।
स्वरूपेणाऽवदातेन तिष्ठाम्यच्छमिवाऽमिवाऽम्बरम् ॥४
अन्यच्छ्रोतुमथाऽहर्तु' शान्तं नेच्छति मे मनः ।
परां तृप्तिमुपायातं सुषुप्तमिव संस्थितम् ॥५
शान्तशेष परामर्श विगताशेषकौतुकम् ।
संत्यक्तामेषसंकल्पं शान्तं मम मुने मनः ॥६
नोपदेशेन नाऽर्थेन शास्त्रैर्न च बन्धुभिः ।
त्यागेन च न चैतेषामधुना मम कारणम् ॥७

वाल्मीकिजी ने कहा हे मुने ! इस प्रकार अपने भक्तों की पूजा ग्रहण करते हुए मुनिवर वसिष्ठजी क्षणभर मौन रहकर धीरे-धीरे कहने लगे ।१। हे अपने कुलरूपी आकाश के चन्द्र ! हे राजीवलोचन आप और क्या सुनना चाहते हैं वह मुझसे कहिए ।२। श्रीराम बोले—हे प्रभो ! आपके प्रसाद से मैं कलंक रहित चन्द्रमा और शरद् कालीन आकाश के समान निर्मल हो चुका हूँ ।३। संसार दुःख वाली मेरी सभी भ्रान्तियों का शमन हो चुका है और अब मैं आकाश के समान स्वच्छ अपने रूप में अवस्थित हूँ ।४। मेरा शान्त मन अब कोई अन्य उपदेश सुनने या किसी कर्म का सम्पादन करना नहीं चाहता । अब वह परम बृत्ति रूप से सुषुप्त के समान हो चुका है ।५। परम शान्ति में लीन मेरे मन के मन के सभी राग आदि और अनेक कौतुक नष्ट हो गयाहै

और वह सब विषय संकल्पों का त्याग कर चुका है ।६। उपदेश से या उपदेश से प्रयुक्त किसी अन्य प्रयोजन से शास्त्रों से, बांधवों से अथवा उनके त्याग से भी मेरा कुछ प्रयोजन नहीं हैं ।७।

सर्वस्योपर्यपि सुखी सुखं नेहामि मे प्रभो ।
जनसाम्येन तिष्ठामि यथेच्छं मां नियोजय ॥८
बालो लीलामिव त्यक्तशंकं संसारसंस्थितिम् ।
यावद्देहमिमां साधो पालयामलैकदृक् ॥६
अहो बत महापुण्यं पदमासादितं त्वया ।
अनादिमध्यपर्यन्तमिदं यत्र न शोच्यते ॥१०
सम्यक्समसमाभोगे शीतले स्वात्मनि स्वयम् ।
नभसीव नभः शान्ते विश्रान्तिमसि लब्धवान् ॥११
दिष्ट्या रघूणां तनय संज्ञः पावितवानसि ।
भूतभव्यभविष्यस्थां बोधेन कुलसंतितम् ॥१२
अधुना मुनिनाथस्थ विश्वामित्रस्य राघव ।
पूरयित्वाऽर्धितां भुक्त्वा पित्रा सह महीमिमाम् ॥१३
त्वयाऽन्विताः सतनयभृत्यबान्धवाः ।
पदातयः सरथगजाश्वमण्डलाः ।
निरामया विगतभयाः स्थिरश्रियः
सदोदयाः सुभग भवन्तु राघवाः ॥१४

हे प्रभो, सर्वानन्द से भी उच्च जो ब्रह्मानन्द हैं, उसमें सुखी रहता हुआ मैं विषय सुख की इच्छा से रहित हूँ । बाह्यरूप से सामान्य जन के समान ही हूँ आप अपनी इच्छा के अनुरूप मुझे कोई भी काम सोंप दीजिए ।८। हे साधो, मैं एक मात्र निर्मल ब्रह्म का देखने वालाहूँ । जब तक इस देह में स्थित हूँ तब तक संसार स्थिति की शंका रहित रूपसे उसी प्रकार पालन करूँगा जिस प्रकार बालक क्रीड़ा किया करताहै ।६ वसिष्ठजी बोले—हे राम, अहा, आप उस महापावन पद में आसीनहो गये हो, जिसमें आदि मध्य और अन्तरहित पद से पुरुष शोक नहीं

रहता ।१०। अहा, आप भले प्रकार सम शीतल अपने आत्मा में वैसे ही विश्रान्ति को प्राप्त हो चुके हैं जैसे आकाश शान्त आकाशमें विश्राम करता ।११। हे सुत ! आपने तत्वज्ञानी होकर अपने ज्ञान से रघुकुल की त्रिकाल में उत्पन्न सन्तति को पावन कर दिया है ।१२। हे राघव! अब आप मुनिनाथ विश्वामित्रजी के यज्ञमें जो विघ्न उपस्थितहो गया हैं उसे दूर करने वाली इच्छा को पूरी कर अपने पिताजी के सहित इस पृथिवी का उपभोग कीजिए ।१३। हे सुभग ! हे राघव ! आप जैसे सुपुत्र से युक्त भृत्य, बांधव पदाति, रथ, हाथी और घोड़ों से सम्पन्न हुए सब रघुवंशी निरोग, निर्भय, स्थिर ऐश्वर्य युक्त और श्रेष्ठ अभ्युदय वाले हों ।१४।

१११—स्वात्म नमन

एतच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्य वचः संसदि मार्थिवाः ।
सिक्ता इवाऽमृतापूरैरन्तः शीतलतां ययुः ॥१
रामः कमलपत्राक्षो रराज वदनेन्दुना ।
क्षीरोद इव सम्पूर्णः सुधापूरेण चारुणा ॥२
वामदेवादयः सर्वे तत्वज्ञानविशारदाः ।
अहो भगवता ज्ञानमुक्तमित्यूचुरादरात् ॥३
शान्तान्तः करणो राजा मुदा दशरथो वुभौ ।
तुष्ट्यैव संप्रहृष्टांगो नवांद्युतिमुपागतः ॥४
ज्ञातज्ञेयेषु बहुषु साधुवादकथास्वथ ।
उवाच गलिताज्ञानो रामो वाक्यमिदं पुनः ॥५
भगवन्भूतभव्येश त्वयाऽस्माकमलं मलम् ।
संप्रमृष्टमिदं हेम्नः श्यामत्वमिव वह्निना ॥६

वाल्मीकिजी बोले—हे मुने ! सभा स्थान में मुनिवर वसिष्ठजी का यह वचन सुनकर सब राजा और अन्यान्य व्यक्ति उस वचन रूपी

अमृत प्रवाह से सींचे हुए के समान अत्यन्त आन्तरिक शीतलता को प्राप्त हुए ।१। उस समय कमल-पत्र जैसे नेत्र वाले श्रीराम अपने सुन्दर चन्द्रानन से वैसे ही सुशोभित हुए जैसे कि सुधा से परिपूर्ण चन्द्रमा से क्षीरसागर सुशोभित होता है ।२। वामदेव आदि सभी तत्वज्ञान विशारदों ने सादर कहा—अहो ! भगवान् वसिष्ठजी ने कैसा श्रेष्ठ ज्ञान कहा है।३।शान्त अन्तःकरण वाले महाराज दशरथ अत्यन्त सन्तुष्ट और रोमांचित देह सहित अत्यन्त शोभा को प्राप्त कर रहे थे ।४।फिर साधुवाद कथाओं प्रवृत्त होने पर अज्ञान से विरत हुए श्रीराम ने पुनः इस प्रकार कहा ।५। हे भगवन् ! हे भूत भव्येश ! जैसे अग्नि स्वर्ण के मैल को दूर कर देता है, वैसे ही आपने हमारा अज्ञान दूर कर दिया ।६।

अभूम वयमात्मीयकायमात्रदृशः पुरा ।
प्रभो संप्रति सम्पन्ना विश्वग्विश्वाबलोकिनः ॥७
स्थितोऽस्मि सर्वसंपूर्णः सम्पन्नोऽस्मि निरामयः ।
जातोऽस्मि विगताशंको बुधो जागर्मि संप्रति ॥८
आनन्दितोऽस्म्यखेदाय सुखितोऽस्मि चिराय च ।
स्थितोऽनस्तमयायैव शाश्वतार्कोदयो मम ॥९
अहो बत पवित्रेण शीतेन ज्ञानवारिणा ।
त्वया सिक्तोऽस्मि हृष्यामि पद्मवद्धृदये स्वयम् ॥१०
इयमद्य मया लब्धा पदवी त्वत्प्रसादतः ।
यस्यां स्थितस्य मे सर्वमसृतत्वं गतं जगत् ॥११
अन्तः प्रसन्नमतिरस्तसमस्तशोकः
शोभां गतोऽहममलाशय एव शान्त्या ।
आनन्दमात्मनि गतः स्वयमात्मनैव ।
नैर्मल्यमभ्युपगतोऽस्मि नमोस्तु मह्यम् ॥१२

हे प्रभो ! पहले हम अपने देह में ही आत्म दृष्टि रखते थे परन्तु अब आपकी कृपा से सर्वत्र सर्वात्म-दृष्टि वाले हो गये हैं ।७। अब मैं

सर्वात्म रूप से सम्पूर्णतः स्थित होता हुआ निरामय और शंका रहित हो गया हूँ और प्रबुद्ध तथा जागा हुआ हूँ। अस्त-रहित रूप से स्थित एवं परम पुरुषार्थ के आविर्भाव से सम्पन्न हूँ।९। अहो ! आपने पवित्र, शीतल ज्ञान रूपी जल से मेरा सिंचन किया है, इसलिए मैं अपने हृदय में कमल के समान ही विकसित हूँ।१०। आपकी कृपा से मुझे दिव्य पदवी प्राप्त हुई है, उसमें अवस्थित हुए मुझको यह सब संसार अमृत हो हो गया है।११। मुझ पूर्ण प्रसन्न मति वाले के सब लोक मिट चुके हैं और मैं अलौकिक शान्ति से निर्मल आशय रूप अपनी आत्मा में अत्यन्त आनन्दित हूँ। भले प्रकार देखे गए आत्मा से ही स्वयं सिद्ध अमलता को प्राप्त होने के कारण मेरे लिए ही नमस्कार है।१२।

११२—ऐक्य की उपलब्धि

इत्थं विचारपरयोर्मुनिराघबयोस्तयोः।
भास्करः श्रवणायेव व्योममध्यमुपाययौ ॥१
तीक्ष्णतामाजगामाऽऽशु सर्वदिक्कमथाऽऽतपः।
पदार्थौघविकासार्थं रामस्येव महामतिः ॥२
उत्फुल्लहृदयाम्भोजस्फाराकारतया तदा।
लीलापद्माकरा रेजुस्तत्रस्थाः पार्थिवा इव ॥३
जालंमुक्ताकलापानन्तरमाक्रान्तभास्करम्।
ननर्तेव तरद्व्योम विज्ञानश्रवणादिव ॥४
पुस्फुरुः पद्मरागेषु लग्नार्कतणत्विषः।

बालमीकिजी बोले—इस प्रकार श्रीवसिष्ठजी और श्रीराम में परस्पर विचार-विमर्श चल रहा था तब मानो भगवान भास्कर उनकी बातें सुनने के लिए आकाश के मध्य पहुँच गये।१। फिर श्रीराम की भमान् भक्ति के समान पदार्थ-राशि के विकासार्थ धूप भी शीघ्र ही तीक्ष्ण हो गई।२। उस समय, जैसे विकसित कमलों के कारण उद्यान के जलाशय विशालकाय प्रतीत होते हैं वैसेही हृदय-कमल के प्रफुल्लित

होने से विकसित आकार वाले हुए वहा दैठे हुए राजाओं के समान अत्यन्त शोभायमान हुए ।३। मुक्ता झालरों से युक्त स्फटिकमणि से निर्मित जिस झरोसे में भगवान भास्कर का प्रतिबिम्ब आक्रान्त था, मानो आकाश में तैर रहा हो ।४। आक्रान्त सूर्य की दीप्ति वाणी आकाश में विस्तृत हुए किरणें पद्मराग मणियों में इस प्रकार से स्फुरित हो रही हैं, जिस प्रकार कि स्वच्छ उपदेश वाली ज्ञान कला स्फुरण को प्राप्त होती है ।५,

एवं निर्वृ तिमायाते रामे स्वकुलकैरवे ।।५
मुनीन्द्रवदनालोकात्सविकासमिव स्थिते ।।६
रवावौर्वोपमे व्योम !महाब्धेर्नाभितां गते ।
तेज: पुञ्जलसज्ज्वाले समग्ररसपायिनि ।।७
नभोनीलोत्पले नीले गलद्रजसि राजति ।
धर्मांशुकर्णिकाक्रन्ते स्फुरत्किरणकेसरे ।।८
अवतसे जगल्लक्ष्म्यास्त्रिलोकीकर्णकुण्डले ।
अन्तर्लीनस्फुरत्ताराररत्नराजिविराजिते ।।९
दिग्वधूभिर्बृहिच्छृगपाणिफिर्मुकुरेष्विव ।
घृतेषु तापभिन्नेषु महाभ्रेषुनिरम्बुषु ।।१०
सूर्यकान्तवरोत्थेन वह्निनेव समेधिते ।
द्विगुणं प्रज्वलत्वर्कशून्ये गगनधामनि ।।११
विनेदुर्मेदुरोद्दाममुखमारुतपूरिता: ।
मध्यानशङ्खा: कल्पान्तवातपूर्णा इवाऽर्णवा: ।।१२

मुनीन्द्रों की मुख-कान्ति रूपी चन्द्रगा से विकसित अपने कुल के कैरव भूत श्रीराम जव इस प्रकार परमानन्द में मग्न हो गए और जब गडवाग्नि के समान तेजपुञ्ज स्वरूप, देदीप्यमान ज्वालाओं से सम्पन्न तथा सब रसों का पान करने वाले भास्कर आकाश रूपी महोदधि की नाभि के समान हो गये तथा नभ रूपी नीलकमल जो भास्कर रूपी

कर्णिका से सुशोभित और रश्मि-चपी केसरों से शोभायमान था जिसमें से रज रूपी पराग झड़ रहा था वह इतना सुन्दर लग रहा था मानो जगत्लक्ष्मी का शिरोभूषण और त्रिलोक्य रूपी नायिका के कानों का कुण्डल था। वह शितोभूषण और कर्णकुण्डल देदीप्यमान सितारों के स्वरूप के समान विविध रत्नों से शोभायमान था। जब दिशा-स्वरूपा नायिकाओं ने विशाल पर्वत की चोटी रूपी अपने हाथों से धूप-युक्त एवं जल रहित महामेघों को दर्पण के समान पकमें रखा था। जब सूर्य के बिना भी अत्यन्त श्रेष्ठ सूर्यकान्त मणियों से निर्गत अग्नि से देदीप्य मान होने के कारण वह आकाश सूर्य की उष्णता से भी द्विगुथ प्रज्वलित हो रहा था। उस मध्याह्न काल में सयव-सूचक शंख काल-वायु सें परिपूर्ण वारिधों के समान मुख की प्रचुर वायु से भर कर बजने लगे।६-१२।

प्रालेयश्रीरिवाऽब्जेषु धर्मश्रीर्वदनेष्विव।
चकार पद्माकीर्णशुद्धमुक्ताफलोपसा ॥१३
गृहभित्तिपरावृत्ता सत्वसंरम्भमांसला।
शब्दश्रीः पूरमास कर्णमर्ण इवाऽर्णवम् ॥१४
पुरन्ध्रीभिर्निदाघौघशान्तये समुदीरिता।
उल्ललास नवा पाण्डुकर्पूरजलदावलिः ॥१५
स राजा सहहामन्तः सभूपः सपरिच्छदः।
सवसिष्ठः समुत्तस्थौ सहरामः ससंसदः ॥१६
राजानो राजपुत्राश्च मन्त्रिणो मुनयस्तथा।
अन्योन्यं पूजिता जग्मुर्मुदिताः स्वं निवेशनम् ॥१७
अन्तः पुरगृहाग्रेषु तालवृन्तानिलाहृतैः।
कर्पूरधूलिभिरभून्नवैवाऽम्बुदमालिका ॥१८

जैसें अरविन्द पर ओस की बूंदें लगती है वैसे ही लोगों के मुखमंडलों हर, बिखरे हुए मोतियों के समान स्वेद-बिन्दु झपकने लगे।१३।

वर्षा और सरिता का जल जैसे समुद्र को परिपूर्ण करता है, वैसे ही ग्रह-भित्तियों से टकराकर प्रतिध्वनि हुआ शब्द जीवों के शब्द संभ्रम से पीड़ित होकर कानों को भरने लगा ।१४। मध्याह्न के समय सौभाग्य-वती स्त्रियों द्वारा उष्णता की प्रखरता का शमन करने के लिए उड़ाई जाती श्वेत कर्पूरयुक्त जल की पवन रूपी नवीन मेघमाला उल्लसित होने लगी।१५। तभी सब सामन्तों,राजाओं अङ्ग-रक्षकों,भृत्यों महामुनि वसिष्ठ और श्रीराम के सहित महाराज दशरथ उस सभा से उठ पड़े ।१६। तब सभी भूपाल, राजपुत्र, मन्त्रिगण, मुनिगण एवं अन्यान्य सभी लोग पूजा सत्कार को प्राप्त करके हर्षित हुए अपने निवास स्थान को गये ।१७। अन्त,पुर के प्रमुख घरों में पंखों द्वारा उड़ाई जाती कपूर-रज से अपूर्व मेघमाला प्रादूर्भूत हुई ।१८।

अथ मध्याह्नतूर्याणां रवे स्थूर्जति भित्तिषु ।
उवाच वचनं वाक्यकोविदो मुनिनायकः ॥१९
सर्वमेव श्रुतं श्राव्यं ज्ञेयं ज्ञातमशेषतः ।
त्वया राघव भो नास्ति ज्ञातव्यमपरं वरम् ॥२०
यथा मयोपदिष्टो हि यथा पश्यति शास्त्रतः ।
यथा ऽनुभवसि श्रेष्ठमेकवाक्यं तथा कुरु ॥२१
उत्तिष्ठ तावत्कार्याय वयं स्नातुं महामते ।
मध्याह्नसमयोऽस्माकमयमंगाऽतिवर्तते ॥२२
अपरं यत्वया भद्र स्वाकाङ्यक्षाविनिवृत्तये ।
प्रष्टव्यं तच्छुभ प्रातः प्रष्टव्यं भवता पुनः ॥२३

फिर मध्याह्न समय की तूरियों की ध्वनि भित्तियों से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगी, ऐसे ही समय में बाक्य कोविद मुनिवर वसिष्ठ कहने लगे ।१९। हे राघव! जो कुछ सुनने योग्य और जानने योग्य था, वह सब आपने सुन और जान लिया है, इसके अतिरिक्त अब इससे जानने योग्य कुछ भी नहीं हैं ।२०। हे राम ! जैसा मैंने आपको उपदेश

दिया है और जैसा आपने शास्त्रों में देखा है और जैसा आपने अनुभव किया है उस समय सबके अनुसार एक वाक्यता कीजिए अर्थात् सबको सम्मिलित करके विचार कीजिए ।२१। हे महामते, यथाप्राप्त कर्त्तव्य के पालनार्थ आप उठ पड़िए । अब हम मध्याह्न स्नानके लिए जा रहे है, क्योंकि उनका समय व्यतीत होने वाला है ।२२। हे भद्र, अपनी आकांक्षा की निवृत्ति करने के उद्देश्य से आप जो कुछ श्रेष्ठ प्रश्न करना चाहते हो उसे प्रातःकाल पूँछ लेना ।२३।

इत्युक्तो मुनिनाथेन राजा दशरथः स्वयम् ।
पूजयामास तान्सभ्यान्सर्वान्साधून्सपर्यया ॥२४
सह रामेण धर्मात्मा मुनिविप्रान्नृपांश्च सः ।
वसिष्ठाद्युपदिष्टेन क्रमेण व्योमगांस्तिथा ॥२५
मणिमुक्तागणार्थेन दिव्येन कुसुमेन च ।
मणिरत्नप्रदानेन मुक्तहारार्पणेन च ॥२६
प्रणयेन प्रणामेन प्रदानेनाऽर्थशालिना ।
वस्त्रासनान्नापानेन कनकेन तथा भुवा ॥२७
धूपेन गन्धमाल्याभ्यां यथोदितमनिन्दितः ।
पूर्वान्संपूजयामास सर्वानेव महीपतिः ॥२८
अथोत्तस्थौ सभामध्यात्सभया सह मानदः ।
सवसिष्ठादिदेवर्षिः सायमिन्दुरिवऽम्बरात् ॥२९

बाल्मीकिजी बोले—मुनिनाथ वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर महाराज दशरथ ने श्रीराम सहित सभा में उपस्थित, साधुजन, मुनियों, विप्रों, भूपालों, गगनचारी सिद्धों और देवताओं की वसिष्ठजी तथा विश्वामित्रजी आदि मुनियों के द्वारा बताई गई विधि से मणिमुक्तादि के समर्पण द्वारा तथा विनय प्रणाम ऐश्वर्य प्रदान कन्या प्रदान, वस्त्र आसन, अन्न, कनक, भूमि, धूप, गन्ध, मत्स्य आदि समर्पित करते हुए यथायोग्य पूजन किया ।२४-२५। इसके पश्चात् यसिष्ठ आदि देवर्षियों और सम्पूर्ण सभा के सहित दूसरों को मान देने वाले महाराज दशरथ

उसी प्रकार उठ पड़े जिस प्रकार कि सायंकालीन चन्द्रमा गगन में उठता है।२६।

स सभोत्थानसमय: संसारम्भो व्यराजत ।
जानुदध्नसुरोन्मुक्तपृष्पसंजातकर्दम: ॥३०
संघट्टाघट्टकेयररत्नचूर्णारुणावनि: ।
छिन्नहारसफुरन्मुक्तातारा जितनिशाम्बर: ॥३१
देवर्षिमुनिविप्रेन्द्रपार्थिवस्पन्दसंकुल: ।
व्यग्रभृत्यांगनाहस्तकेशचञ्चलचामर: ॥३२
ज्ञानप्रमेयीकरणस्पन्दमानो न दारुण: ।
शिर: करत्रिनयनजिह्वेष्वेव विराजित: ॥३३
परस्परमयाऽऽपृच्छय पूजिता: पेशलोक्तय: ।
राजानो मुनयश्चैव सर्वे दशरथादय: ॥३४
स्वाश्रमान्साधवो जग्मुस्तुष्टस्निग्धाशया मिथ: ।
लोकसप्तकवास्तव्या देवा शक्रपुरादिव ॥३५

शीघ्रता पूर्वक सभा से उठने का वह समय अत्यन्त शोभामय था, जिसमें देवताओं द्वारा वर्षित पुरुषों से सब ओर घुटनों पर्यन्त कीचड़ जैसा होगया था। परस्पर घर्षण और टकरावसे केयूरोंमें जटित रत्नो के चूर्ण से भूमि लाल हो उठी थी टूटे हुए हारों से स्फुरण को प्राप्त मुक्तारूपी तारावलि ने रात्रि के समय मानो नक्षत्रों से सम्पन्न आकाश पर विजय प्राप्त करली थी। देवर्षि मुनिगण, विप्रजन और भूपालों के इधर-उधर चलने से जो अत्यन्त पीड़ा युक्त हो रहा था, उसमें व्यग्र हुई भृत्यांगनाओं के हाथों में बालों से हिलते हुए चँवर थे। वसिष्ठजी द्वारा उपदेशित ज्ञान के मनन द्वारा प्रमेयीकरण के लिए स्पन्दित दारुणता से शून्य विनययुक्त वाणी वाले एवं शिर तक जोड़े हुए हाथ उठाये और अपने सामने और दोनों पार्श्वभागों में सातर्कता से देखते हुए तथा अपनी किसी भी भूल पर क्षमा माँगने में तत्पर नेत्र और जिह्वा वाले सभी जनों से सुशोभित था। वह स्थान उन्मुक्त, निष्ठुर

व्यक्तियों से रहित होने के कारण विषम नहीं था, इसलिए वहाँ कष्ट आदि का भी नाम नहीं था। उस स्थान से सभी के द्वारा सत्कारित कोमल वचनवाले महाराज दशरथ आदिसातों लोकोंके निवासी सज्जन पुरुष परस्पर पूँछ कर, देवगण के इन्द्रनगरी से लाने के समान,परस्पर प्रेम पूर्ण हृदय सहित अपने-अपने आश्रम को चले गये थे।३०-४५।

अन्योन्य प्रणयात्सर्वे पूजयित्वायथाक्रम।
तद्विसृष्टा स्वमागत्य गृहं चक्रुदिनक्रियाम् ॥३६
अथ सर्वे वसिष्ठाद्यास्तथा दशरथादयः।
चक्रुर्दिवसकार्याणि राजानो मुनयस्तथा ॥३७
यथाप्राप्तं क्रियां तेषु कृतवत्स्वथ दैवसीम्।
क्रमेणाऽऽकाशपथिको भास्करोऽस्तमुपाययौ ॥३८
तथैव कथया तेषां रामस्य च महामतेः।
प्रबोधवशतः शीघ्रं सा व्यतीयाय शर्वरी ॥३९
उत्सारिततमः पांसुताराकुसुमनिर्भरम्।
भुवन भवनीकुर्वन्नाजगाम दिवाकरः ॥४०
करवीरकुसुम्भाभैः करैररुणयन् दिशः।
विवेश गगनाम्भोधिमथ बालदिवाकरः ॥४१

उन्होंने यथाक्रम प्रेमपूर्वक एक दूसरे का सत्कार किया और विदा लेकर अपने घर पहुँचे, जहाँ दिन का कृत्य सम्पन्न किया।३६। इसके पश्चात् वसिष्ठजी आदि मुनिजनों एव महाराज दशरथ आदि सब राजाओं ने दिन के कृत्य सम्पन्न किये।३७। उस प्रकार उनके उस दिन से सम्बन्धित कर्म करने के पश्चात् गगन-पथिक भास्कर अस्त हो गये।३८। महामति श्रीराम की और उन सब पुरुषों की कथा-वार्ता से जागते रहने के कारण वह रात्रि शीघ्र ही व्यतीत हो गई।३९। उसके पश्चात् प्रातःकाल हुआ, घर को बुहारी से स्वच्छ करने के समान अन्धकार रूपी पाँसु तारागणरूपी पुष्प-राशियों से रहित संसार रूपी

घर को स्वच्छ करते हुए भगवान् दिवाकर उदित हो गये ।४०। तब करबीर औप कुसुम्भ के समान वर्ण वाली रश्मियों से दिशाओं को रक्तिम करते हुए बालसूर्य गगनरूपी सागर में प्रवेश करने लगे ।४१।

राजानो राजपुत्राश्च मन्त्रिणो मुनयस्तथा ।
वसिष्ठाद्याः समाजग्मुः पुनर्दाशरथोसभाम् ॥४२
यथाक्रमं यथासस्थ यथादेशं ययासनम् ।
सा विवेश सभा तत्र घिष्ण्यश्रीरम्वरे यथा ॥४३
ततो दशरथाद्येषु सुमन्त्रादिषु व ऽप्यलम् ।
वसिष्ठं संप्रशंसत्सु मुनिमासनसस्थितम् ॥४४
वसिष्ठस्य पितुश्चाऽग्रे राजीवदललोचनः ।
उवाच राघवो धीमान्मृदुवर्णमिदं वचः ॥४५
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञासमहार्णव ।
सर्वसंदेहपरशोकभयापह ॥४६
श्रोतव्यमपरं किं मे विद्यते वेद्यमेव वा ।
श्रोतव्यं विद्यते यद्वा तत्सर्वं तत्कुमर्हसि ॥४७

ऐसे समय से राजागण राजपुत्रगण, मन्त्रिगण एवं वसिष्ठ आदि मुनिजन महाराज दशरथ की उस सभा में पुनः आ गये ।४२। वे सब अपने-अपने क्रम से स्थान, देश और आसन के अनुसार बैठे गए । उस सभा-प्रवेश के समय की वह शोभा ऐसी हुई जैसे कि आकाशमें नक्षत्रों की शोभा प्रविष्ट होती हैं ।४३। इसके पश्चात दशरथ आदि राजाओं और सुमन्त्रादि मन्त्रियों द्वारा आसनपर विराजमान मुनिवर वसिष्ठजी की प्रचुर प्रशस्ति की जाने पर कमलदल-लोचन श्रीराम ने वसिष्ठजी और अपने पिताजी के समक्ष निम्न मृदु वचन कहे ।४४-४५। श्रीराम बोले—हे भगवन् ! सर्वधर्म ज्ञाता व सर्वज्ञान सम्पन्न महा सिन्धो ! हे सर्व सन्देहों के उच्छेद करने वाले कुठार स्वरूप । हे शत्रुओं को भी शोक और भय आदि से मुक्त करने वाले प्रभो ! अब जो कुछ भी

सुनने और जानने योग्य शेष रह गया हो वह सब मुझे बताइये ।४६-४७।

राम संप्राप्त बुद्धिस्त्वं श्रोतव्यं ते न विद्यते ।
कृतकृत्या तवैषा धी: प्राप्तप्राप्या स्थिताऽऽत्मनि ।।४८
त्वमेव तावत्कथय प्रविचार्य धियाऽऽत्मना ।
कीदृशोऽद्य भवानन्त: किं शेषं श्रावव्यमस्ति ते ।।४९
ब्रह्मन्नेवमहं मन्यै यथाऽहं कृतकृत्यधी ।
मिर्वाणोऽस्मि प्रशान्तोऽस्मि नाऽऽकाङ्क्षा मम विद्यते।।५०
वक्तव्यमुक्तं भवता ज्ञात्तं ज्ञेयं मयाऽखिलम् ।
तव विश्रान्तिमायातु कृतकृत्या सरस्वती ।।५१
अधिगतमधिगम्य ज्ञेयमाप्तं मयेदं ।
विगतमखिलमंक्य द्वैतमस्तं प्रयातम् ।
परिगलितमशेषं दृश्यभेदावभानं ।
ननुनिपुणमपास्ताऽशेषससारितास्था ।।५२

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! आपको बोध की प्राप्ति हो चुकी है, इसलिए अब आपके लिए सुनने के योग्य कुछ भी शेष नहीं रह गया है । आपकी बुद्धि पूर्णरूपेण कृतकृत्य हो चुकी हैं और प्राप्त करने योग्य वस्तु को पाकर आत्मा में अवस्थित हो गई है ।४८। अब आप स्वयं ही विचार कर यह बताइये कि अपने अनुभव से आप अपने लिए कैसा मान रहे हैं और आपके लिए सुनने योग्य क्या शेष रह गया है ।४९। श्रीराम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपकी मान्यता के अनुसार मैं भी अपने को कृतकृत्य ही समझ रहा हूं । मैं पूर्ण शान्त, आकाश से रहित होकर निर्वाण को प्राप्त हो चुका है ।५०। जो कुछ कहने योग्य था, वह आपके द्वारा कहा जा चुका और मैं सभी जानने योग्य को जान चुका । अब आपकी कृतकृत्य हुई वाणी विश्राम प्राप्त करे ।५१।जानने योग्य तत्व को जान लेने से मुझे ज्ञातव्य वस्तु की प्राप्ति हो चुकी है ।

अखिल विश्व एक्य को प्राप्त हो चुका और जीव तथा ब्रह्म में भेद करने वाले द्वैत का अस्त हो गया। अब मेरा दृश्य-भेद का ज्ञान नष्ट हो गया है, क्योंकि मैंने पूर्ण रूप से विचार विमर्श करके सम्पूर्ण सांसारिक आस्था का परित्याग कर दिया है।५२।

११३—चित्त में दृश्य का परिमार्जन

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
आदर्शो राजतेऽत्यर्थं पौनः पुण्येन मार्जितः ॥१
अर्थो वेदनसंकेतः शब्दो जलरवोपमः।
दृश्यमेतच्चिदाभानं स्वप्नवत्क्वाऽ भवन्जगत् ॥२
जाग्रद्वै स्वप्नसंदृष्टः स्मरणात्म स्थितं पुरः।
संविद्वै दनमात्र सत्तदन्याकारवत्ततम् ॥३
यथाऽच्छं संविदाकाशं मयि स्वप्नपुरात्मकम्।
सरूपमपि नीरूपं तदेदं भुवनत्रयम् ॥४

वसिष्ठजी ने कहा—हे महाबाहो ! मेरे इन परम वचनों को आप पुनः श्रवण कीजिए, क्योंकि वारम्बार मार्जन करने से दर्पण की शोभा बढ़ जाती है।१। यह अर्थ भ्रान्ति वेदन संकेतरूप होने के कारण जल के समान (निरर्थक ही) है क्योंकि अर्थ के परिमार्जन से ही शब्द का परिमार्जक हो जाता है इस प्रकार शब्द रूप दो अर्थ वाला दृश्य स्वप्न के समान ही चिदाभान है तो जगतकी यथार्थ में उत्पत्ति हुई ही कहां? ।२। मिथ्या होने से जाग्रत ही स्वप्न में देखी हुई वस्तु बन जाती है और स्मरणके समानही सम्मुख होती है,इसलिए संविद् ही संवेदनमात्र होती हुई अन्य आकारके समान विस्तृत है। संविद्से पृथक् उसमें कुछ भी नहीं है।३। जिस प्रकार मुझे प्रत्येक चेतन्य रूप में स्वप्न नगरमय स्वच्छ संविदाकाश साकार होता हुआ भी आकार रहित है, उसीप्रकार

सम्पन्नेयं कथं भूमिः सम्पन्नागिरयः कथम् ।
कथं सम्पन्नमम्भश्च सम्पन्न उपलाः कथम् ॥५
कथं च तेजः सम्पन्ना च कथं क्रिया ।
कथं च कालः सम्पन्नः सम्पन्नः पवनः कथम् ॥६
कथं च शून्यं सम्पन्नं चिन्नभः कथम् ।
इति ज्ञातं मया भूपो बोधाय वद मे प्रभो ॥७

ब्रूहि राघव तत्वेन स्वप्नदृष्टमहापुरे ।
सम्पन्ना भूः कथमिव सम्पन्नं कथमम्बरम् ॥८
कथं वारि च संपन्नं सम्पन्ना उपलाः कथम् ।
कथं च तेजः सम्पन्नं सम्पन्नाश्च कथं दिशः ॥९
सम्पन्नश्च कथं कालः सम्पन्नाश्च कथ क्रिया ।
कथमेतन्निमित्तादि सर्वं सम्पन्नमुच्यताम् ॥१०
केनेदं निर्मितं दग्धमानीतं रचितं चितम् ।
उत्पादितं प्रकटितं किमाचारं किमात्मकम् ॥११

श्रीराम ने कहा—हे मुने ! इस भूमि की सम्पन्नता चित् में किस प्रकार हुई ? पर्वत कैसे सम्पन्न हुए ? जल पाषाण, तेज, क्रिया, काल और पवन वह सब कैसे सम्पन्न हुए ।५-६। शून्य कैसे सम्पन्न हुआ ? चिदाकाश किस प्रकार सम्पन्न हुआ । यह सब मैंने जान लिया है,फिर भी आप मेरे बोध की वृद्धि के लिए इस सबको पुनः कहने की कृपा करें ।७। वसिष्ठजी बोले–हे राघव ! यह तो बताओ कि स्वप्न में दिखाई दिये हुए विशाल नगर में भूमि सम्पन्नता कैसे हो गई? आकाश जल, पाषाण, तेज दिशायें, काल क्रिया आदि सबके सम्पन्न होने का क्या कारण है? यह मुझसे कहो । किसने इसे बनाया किसने दग्ध किया किसने उत्पादन किया, किसने प्रकट किया ? इसका आधार और स्वरूप क्या है ।५-११।

आत्माऽस्य केवलं व्योम न सद् भूम्यचलादिकम् ।
जगत् स्वप्नरूपस्य निराकारो निरास्पदः ॥१२
आत्मैव व्योमरूपोऽस्य निराकारो निराकृतिः ।
विनाऽऽकृतेर्वा व्योम्नोऽस्य कि माधरेण कारणम् ॥१३
न किंचिदेतत्संपन्नं सद्ययैतन्न संविदः ।
एतच्चित्कचनं नाम मन एव तथा स्थितम् ॥१४
दिक्कालाद्यत्र चिद्भानमचलादिकम् ।
चिज्जलादि तथा बोधाश्चित्खं वाय्वादि तद्विदः ॥१५
संविदेव किल व्योम तिष्ठति व्योमतामिता ।
दृषतयाऽऽस्ते काठिन्याद् द्रवाज्जलमिव स्थिताः ॥१६
वस्तुतस्तु न भूम्यादि किंचित्तन्न च दृश्यताः ।
चिदाकाशमनन्तं तत्सर्वमेकं तदात्मकम् ।।१७

श्रीराम बोले—यह स्वप्न रूप जगत् निराकार और निराधार आकाश स्वरूप ही हैं । यह पृथिवी और पर्वत आदि कुछ भी सत्य नहीं है ।१२। इसका स्वरूप निराकार और आकृतिहीन आकाशरूप आत्मा ही है । आकृति न होने के कारण इसका आधार भी क्या हो सकता है ।१३। यह कुछ भी सम्पन्न नहीं हुए अतः संवित्‌के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं हैं जगत् के अकारण में चित् का स्फुरण स्वप्नवत् मन ही इस प्रकार से अवस्थित है ।१४। दिशा काल, पर्वत आदि सभी चिदभान है जल आदि चित् है तथा वायु आदि चिद्व्योम हैं ।१५। सवित् ही आकाशत्व को पाकर आकाशरूप से अवस्थित में काठिन्यरूप से पत्थर और द्रवत्व से जल समान है ।१६। यथार्थ में भूमि आदि कुछ भी नहीं है इन सब रूपों में अनन्त चिदाकाश ही स्थित है ।१७।

द्रवत्वादम्बुहृद्यब्धेनानावृत्तितया यथा ।
अनानैव भवेन्नाना चिद्व्योमाऽत्मनि वै तथा ॥१८
काठिन्यवेदनादुर्वीगिरितामागतेव चित् ।
शून्यतावेदनाच्छून्य वेत्ति व्योमेव चिद्वपुः ॥१९

द्रवत्ववेदनाद्वेत्ति वारि स्पन्दतयाऽनिलम् ।
औष्ण्यसंवित्वतो वह्निमत्यजन्ती निज वपुः ॥२०
एवस्वभाव एवाऽयं चिद्धातुर्गगननात्मकः ।
यदेवं नाम कचति निष्कारणगुणक्रमम् ॥२१
चैतद्व्यतिरेकेण किंचिन्नाऽपोहं विद्यते ।
अन्यच्छून्यत्ववरिभ्यामृते खार्णवयोरिव ॥२२
नतु चिद्गगनावन्यन्न संभवति किंचन ।
इदं त्वमहमित्यादि तस्मादाशन्तमास्यताम् ॥२३

हृद वारिधि का जल एक होते हुए भी द्रव होने के कारण तरङ्ग फेन आवर्त आदि के आकार से अनेक प्रकार का हो जाता है, उसी प्रकार चिदाकाश भी एक होकर अनेकत्व वाला हो जाता है ।१८। काठिन्यता के सङ्कल्पसे चित् ही पर्वतत्व को प्राप्त होतीहै । वह स्वयं में शून्यता के वेदन से अपने को आकाश के समान शून्य द्रवत्व के वेदन से जल, स्पन्दन के वेदन से पवन और उष्णता के वेदन से तेज को जानती है ।१६-२०। ऐसे स्वभाव वाला यह आकाशरूप चिद्धातु बिना कारण के बिना, गुण और क्रम के इस प्रकार स्फुरण को प्राप्त होता है। जगत् का तत्व उसके अतिरिक्त उसी प्रकार कुछ नहीं है, जिस प्रकार कि आकाश में शून्यता और समुद्र में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं ।२१। यह तुम और मैं इत्यादि वाला जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं है, क्योंकि उसके बिना तो कुछ सम्भव है ही नहीं । अतः आप पूर्ण शांति को प्राप्त हो जाइए ।२२-२३।

ष्वं यथाऽस्मित् गृहे कुर्वन्नग्निशैलादिकां बिदम् ।
तदेव पश्यवरेव चिद्गगनं तथा ॥२४
चिद्व्योम भाति देहाभं सर्गादौ न तु देहकः ।
अकारणत्वादसतश्चिदुदेतीत चिन्त्यताम् ॥२५
मनोबुद्धिरहकारो भूतानि गिरयो दिशः ।
शिलाजठरवन्मौनमयं सर्वं यथास्थितम् ॥२६

एवं न किंचिदुत्पन्नं नष्टं न च न किंचन।
यथास्थितं जगद्रूपं चिद्ब्रह्मात्मनि तिष्ठति ॥२७
चितौ यत्कचनं नाम स्वरूपप्रविजृम्भणम्।
तदेतज्जगदित्युक्तं द्रव एव यथा जलम् ॥२८
इदं जगद्भान्मभानमेव।
चिद्व्योम शून्य परमार्थ एव।
यथार्थसंदर्शनबुद्धबुद्धे—
परबुद्धबुद्धैस्तु यथा तथाऽस्तु ॥२९

जिसप्रकार आप इस गृहमें स्वप्न एवं मनोरथ आदिसे अग्नि और पर्वत आदि की बुद्धिके कारण अग्नि या पर्वत न होते हुए भी उन-उन पदार्थों को उस रूपमें देखने लगते हो उसी प्रकार निराकार चिदाकाश को जगत् के रूप में देखते हो।२४। सर्गारम्भ के समय चिदाकाश ही शरीर के समान ज्ञात होता है, यथार्थ में तो वैसा कुछहै ही नहीं। देह के न होने पर भी अकारण ही असप्र से देह आकार में चित् का उदय होता है, देहका नहीं होता, इस प्रकार बिचार करना चाहिए।२५। मन बुद्धि, अहंकार, पंचभूत, पर्वत और दिशायें यह सभी शिलागर्भ के समान मौन, एव यथा स्थित हैं २६। इस प्रकार न तो कुछ उत्पन्न हुआ है और न कुछ नष्ट ही हुआ है, यथा स्थित यह जगदाकार चित् ब्रह्मात्मा में अवस्थित है।२७। जिस प्रकार जो द्रव है वही जल है उन दोनों में भिन्नता नहीं है उसी प्रकार चित्में स्फुरण नामक स्वरूप का जो विजृम्भण है, उसी को संसार कहते हैं।२७। जगत् का यह भान होना यथार्थ दृष्टि से अभान अर्थात् शून्य चिदाकाश ही हैं। यहाँ प्रबुद्ध वृद्धि वाले की दृष्टि ही यथार्थ हैं, अबुद्धि वाले मूर्ख विचार क्या लेना है ? ।२६।

११४—जगत की स्थिति स्वप्न के समान

एवं यथैतद्भगवन्स्वप्ने दृश्यं परं नभः।
तथैव जाग्रतीत्यत्र न चेत्संदेहजालिका ॥१

इद मे भगवन्ब्रूहि महाप्रश्नमनुत्तमम ।
कथ भवत्यदेहा चिज्जाग्रतस्वप्ने संदेहवत् ॥२
दृश्य जाग्रत्यथ स्वप्नेखाधारं खात्मक खजम् ।
खंच नाऽन्यत्परं जातु संदेहोऽस्त्युपपत्तित: ॥३
समस्तकारणाकारप्रत्यस्तमयरूपिणि ।
सर्गादावेव भूतानि संभवन्ति न कानिचित् ॥४
पृथ्व्यादिनियतस्तेन देहोऽयं नास्ति किंचन ।
भूतान्येव किलैतानि देहस्तानि न सन्त्यलम् ॥५

श्रीराम बोले–हे ब्रह्मन् ! परमाकाश के 'स्वप्न में दिखाई देने के समान ही जाग्रतावस्था में भी यह साकार होता है यदि इस विषय में कोई शंका नहीं है तो मेरे इस उत्तम प्रश्न को बनाने का कष्ट करिए । अशरीर चित् जागरणात्मक स्वप्न में शरीर के समान कैसे होती है । ।१-२। वसिष्ठजी बोले—हे राम ! वह दृश्य जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में हेतु-रहित आकाश से उत्पन्न होता है, इसलिए शून्यधान का शून्यत्व ही सिद्ध करना होगा और शून्य परमब्रह्मके अतिरिक्त कुछ नहीं है अत: ब्रह्मके अद्वैतत्व में किसी सन्देह की उत्पत्ति नहीं होती।३। सभी कारणों के आकार के अस्तात्मक सर्गादि में किसी भूतकी उत्पत्ति नहीं होती ।४। इसलिए पृथिवी आदि की सत्ता से उत्पन्न यह देह कुछ भी नहीं है । जो देह हैं, वे सब भूत ही हैं और उन भूतों का अस्तित्व है ही नहीं ।५।

तेन स्वप्नवदाभासमिदं पश्यति चिन्नभः ।
स्वरूपमात्रकचनमाकारवदिवाऽऽकुलम् ॥६
भानमाभानमात्रत्वमिदं यत्तच्चिदात्मना ।
नभसा स्वप्नशब्देन कथ्यते जगदाकृतिः ॥७
यदेतद्वेदनं नाम चिद्वयाम्नो व्योमनिर्मलम् ।
एतदन्तश्चितो रूपं स्वप्नो जगदिति स्थितम् ॥८

एतस्मिन्नेव तेनाऽथ स्वभावकचने तते ।
चिद्रूपेण कृता संज्ञाः पृथक्पृथ्व्यादिका इमाः ॥९
चिद्भानमेव तत्स्वप्नजगच्छब्दैः प्रकथ्यते ।
भानं चाऽस्याः स्वभावः खं तत्कदाचिन्न शाम्यति ॥१०
वह्वयः सर्गदृशो भिन्ना ब्रह्मैव ब्रह्मखे च ताः ।
शून्यता नभसीवाऽतस्तिष्ठान्त च विशन्ति च ॥११

इसलिए स्वप्न के समान प्रतीत होने वाले चिदाकाश में स्वरूप-स्फुरण के समान संसारादि आकारवत् मायागुण से विक्षोभ को प्राप्त इस दृश्य को देखता है ।६। चिदात्मा का ज्ञान होना ही स्वप्न का भान है । वही संसारकृति चिदाकाश ही स्वप्न शब्दों द्वारा उच्चारित की जाती है ।७। जो यह चिद्व्योम का वेदन है, वह व्योम के ही समान स्वच्छ है । वेदनके भीतर भासमान चित् का स्वरूप जब सूक्ष्म हो तथा स्वप्न और स्थूल हो तब जगत् के रूप में अवस्थित होता है अर्थात् स्वप्न या जगत दोनों ही रूपों में एकमात्र वेदन ही स्थित है ।८। इसके पश्चात् सब ओर व्याप्त हुए स्वस्वभाव कंचन में उस चिद्रूपने ही यह पृथिवी आदि के रूप में पृथक् पृथक् संज्ञायें निर्धारित की हैं ।९। उपरोक्त चिद्भान ही स्वप्न अथवा जगत् शब्द से कहा गया है । वह चिद व्योम का भान तो भी शान्त ही नहीं होता ।१०। अनेक प्रकार के विभेदात्मक सृष्टि-दृश्य केवल ब्रह्म ही हैं । आकाश में शून्यता के अब स्थित होनेके समान ही ब्रह्मकोशमें उनकी स्थिति और प्रवेश भी है।११

सर्गाणां कोटयः प्रोक्ता भगवन्भवता किल ।
कश्चिद् ब्रह्माण्डकोशस्थाः काश्चिदण्डविवर्जिताः ॥१२
काश्चिन्महीकोशगताः काश्चिदाकाशसंस्थिताः ।
तेजः कोशगताः काश्चित्काश्चित्पववकोशगाः ॥१३
कश्चिद्व्योमस्थभूपीठा ऊर्ध्वाधस्थविनिश्चयाः ।
बधनाकाशाद्ध्वैखुरा लम्बमानवनांचलाः ॥१४

काश्चिद्वातात्मभूतौघाः काश्चिन्नित्यं तमोधराः ।
व्योमसंस्थानकाः काश्चित्काश्चित्कृमिकुलाकुलाः ॥१५
काश्चिदाकाशकोशस्थाः काश्चिच्चोपलकोशगाः ।
काश्चित्सकुण्डकोशस्थाः काश्चित्खे खगवत्स्थिताः ॥१६
तासां मध्ये यथा हीदं ब्रह्माण्ड यादृशं स्थितम् ।
अस्माकं भगवस्तन्मे ब्रूहि तत्वविदां वर ॥१७

श्रीराम बोले—हे भगवान् ! आपने पहिले करोड़ों प्रकार की जिन सृष्टियों का वर्णन किया है, उसमें से कुछ ब्रह्माण्डकोश में और कुछ आकाश कोश में कुछ तेज कोश में और कुछ पवनकोश में स्थित हैं उसके पृथक अर्थात् मन आदि में अवस्थित हैं कुछ महीकोश में कुछ ।१ २-१३। आकाश में स्थित भूपीठों में निवास करने वाले कुछ ऊर्ध्व और अधोभाग में स्थितभूलोक से कोटियों के समान लगे हुए देवता असुर आदि हम ही ऊँचे हैं इस प्रकार मानते हैं क्योंकि उन्हें पृथिवी के निचले भाग के लोग भूमि के मूलाकाश से ऊपर की ओर पांव और नीचे की ओर सिर वाले दिखाई देते हैं। इस प्रकार उन लोकों में मूल ऊपर और शाखा-शिखर नीचे होनेके कारण वन और गिरिलटकते हुए से प्रतीत होते हैं ।१४। कुछ पवनात्मकजीवों से सम्पन्न हैं, कुछ निरन्तर अन्धकार में युक्त रहने वाले हैं, कुछ आकाशत्मक शरीरधारियों से और कुछ गूलरमें प्राप्त करोड़ों कीटों से परिपूर्ण हैं ।१५।कुछ आकाशकोश में कुछ जिलागर्भ में कुछ सकुण्डकोश में, कुछ मण्डप कोशमें और कुछ आकाश में विहङ्गों के समान रहते हैं ।१६। हे भगवन्! आप तत्व ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं आप मुझे यह बताइए कि हमको आश्रय देने वाला यह ब्रह्माण्ड कैसे और किस प्रकार स्थित है ।१७।

यदपूर्वमदृष्ट्वा नाऽनुभूत न वाश्रुतम् ।
तद्वर्ण्यते सुदृष्टान्तैर्गृह्यते च तदूह्यते ॥१८

इदं तु राम ब्रह्माण्ड मागमै मुंनिभिः सुरैः ।
शतशो वर्णितं तच्च ज्ञातमेतत्वयाऽखिलम् ॥१९
यथेदं भवता ज्ञातमागमैर्वर्णितं यथा ।
स्थितं तदेतदखिलं किमन्यदिह वर्ण्यते ॥२०
कथमेतद्वद ब्रह्मन्सम्पन्नं चिन्महानमः ।
क्रियत्प्रमाणमेतद्वा कियत्काल च वा स्थितम् ॥२१
अनादिनिर्धन ब्रह्म नित्यमस्त्येतदव्ययम् ।
आदिमध्यान्तता नास्ति नाऽकाराः परमाम्बरे ॥२२
ब्रह्माकाशमनाद्यन्ममेतदव्ययमाततम् ।
एतन्मयमिदं विश्वं विष्वगाद्यन्तवर्जितम् ॥२३
परमस्याऽस्य चिद्योम्नः स्वयं यद्भानमात्मनि ।
तदेतद्विश्वमित्युक्तं स्वयं तेनैव तन्मृषा ॥२४

वसिष्ठजी बोले—हे राम! जो वस्तु अपूर्व अदृष्ट अननुभात अश्रुत तथा अनुमान और शब्द से परे हो, उसका प्रतिपादन ही गुरु द्वारा सुन्दर दृष्टान्तादि से किया जाता है और शिष्य द्वारा भी उसे मनन और ग्रहण किया जाता है ।१८। हे राम ! इस ब्रह्माण्ड का आगमों ने मुनियों ने और देवताओं ने सैकड़ों प्रकार से वर्णन किया है । यह ऐसा नहीं है कि पहले न कहा गया हो और आप तो इस विषय में जानते ही हैं ।१९। जिस प्रकार का आपको ज्ञान है तथा जैसा कि आगमों ने बताया है, यह अब भी वैसे का वैसा ही अवस्थित है तो फिर क्या वर्णन किया जाय ? ।२०। श्रीराम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! चिन्महाव्योम ऐसा कैसे बन गया? इसका परिमाण कितना है? और यह कितने समय तक स्थित रहेगा,यह मेरे प्रति कहिए ।२१। वसिष्ठजी ने कहा—हे वत्स! यह ब्रह्म आदि अन्त से रहित, नित्य और अविनाशी है, क्योंकि परमाकाश से आदिता, मध्यता, अन्तता, अथवा अकारताका नितान्त अभाव है।२२। यह ब्रह्माकाश अनादि अनन्त,अव्यय और सर्वव्यापी है,इसलिए

ब्रह्माकाशमय आदि अन्त से शून्य यह संसार सब ओर विस्तृत है।२३। इस परम चिद्व्योम का अपने आत्मा में जो स्वयं भान होता है, उसे उसने ही स्वयं विश्व कहा है, जो कि मिथ्या है।२४।

पुरुषस्य यथा स्वप्नपुरसंदर्शनं तथा।
तत्तस्य भानं पुरदत्तदिद विश्वमुच्यते ॥२५
कठिना नेह गिरयो न द्रवाणि जलानि च।
न शून्यमेतदाकाशं कालो न कलनात्मकः ॥२६
यद्यथा चाऽव्ययं यत्र स्वतः संचेतितं चिता।
तत्तथा तथा तत्र चितत्वे अलं शैलादिवत्स्थितम् ॥२७
अशिलैव शिला स्वप्ने नभ एवाऽनभो यथा।
भवेत्तथेह सर्गादिस्वप्ने दृश्यस्थितिश्रितौ ॥२८
अनाकारैव चिच्छान्ता स्वप्नवद्यत्स्वचेतनम्।
वेत्ति तज्जगदित्युक्तं तच्चाऽनाकारमेव सत् ॥२९
वायोः स्पन्दो यथाऽन्तस्थो वात एव निरन्तरः।
तथेदं ब्रह्मणि ब्रह्म न चोदेति न शाम्यति ॥३०

जैसे पुरुष स्वप्न में नगर देखता है, उसी के समान जो उसका भान हैं, वही विश्व कहा गया है।२५। यहाँ न तो काठिन्ययुक्त गिरि है, न द्रवत्व जल है, न शून्यात्मक आकाश है और न कभी करें कलेवा कर लेने वाला काल ही है।२६। चित् द्वारा जहाँ जिस प्रकार चिन्तन किया है, वहाँ उस प्रकार का ही पर्वत नदी आदि रूप में वह चित्तत्व में स्थित हो गया।२७। जैसे शिला न होते हुए भी स्वप्न में शिला हो जाती है, आकाश स्वप्न में, चेतन में आकार की स्थिति हुए समझो।२८। आकार-रहित शान्त चित् अपने जिसे स्फुरण को आकारहीन ही है, वह मैंने सैकड़ों बार कहा है।२९। जैसे पवन में स्थित स्पन्द भी पवन मात्र ही है वैसे ही ब्रह्म में स्थित यह ब्रह्म ही है, जिसका न कभी उदय होता है, और न अस्त ही होता है।३०।

द्रवत्वमम्भसि यथा शून्यत्वं नभसो यथा ।
यथा वस्तुनि वस्तुत्वं ब्रह्मणीदं जगत्तथा ॥३१
न प्रयात न वा यातमकारणमकारणात् ।
न च नास्ति न वाऽस्तीदं ब्रह्मपदे जगत् ॥३२
न चाऽनादि निराभासं निराकारं चिदम्बरम् ।
दृश: कारणम यस्या: क्वचिचद्भवितुमर्हति ॥३३
तस्माद्यथाऽवयविनोऽवयवा: स्वात्ममात्रका: ।
तथाऽनवयवे ब्रह्मऽयोम्नि व्योम जगत्स्थितम् ॥३४
सर्वं शान्त निरालम्वं ज्ञप्तिमात्रमनामयम् ।
नेह सत्ता ना वाऽसत्ता न च नानऽस्ति किंचन ॥३५
सङ्कल्पस्वप्ननगरवत्तवत्सर्वमाततम् ।
स्थितमेव समं शान्तमाकाशमजमव्ययम् ॥३६
परमचिदम्बरहृदयं
चित्वाद्यत्कचति कान्तममलम् ।
तदिदं जगदिति कलितं ।
तनैव तदात्यरूपमाकल्पम् ॥३७

जिस प्रकार जल में द्रवत्व है, आकाश में शून्यत्व है और पदार्थमें पदार्थत्व है, उसी प्रकार ब्रह्म में इस विश्व की स्थिति है।३१। न यह प्रलय-काल में विलीन होता है और न सर्गकाल में संसार के कारण-रहित बृह्म से अकारण उत्पन्न ही हुआ है। बृह्मपद में यह संसार न तो अभिन्न है और न भिन्न ही है।३२। आदि-रहित आभासहीन और आकाश-शून्य चिदन्काश अपने से भिन्न सर्ग दृष्टिका कारण कभी नहीं बन सकता।३३। जिस प्रकार अवयवी के अवयव स्वात्नमात्र होने के कारण उससे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार निरवयव-बृह्माकाश में जगदाकाश स्थित है। वह उससे पृथक् नहीं हो सकता।३४। यह जो कुछ दिखाई देता है, वह सब शान्त, निरालम्ब, अनामय ज्ञानमात्र ही है। उसमें जगत की सत्ता या असत्ता अथवा कुछ भी भेद नहीं हैं। नेहना-

नास्तिकिंचनं अर्थात् नानात्व किंचित् भी नहीं, यह श्रुति इसका अनमोदन करती है ।३५। यह सभी कुछ संकल्प से उत्पन्न स्वप्नगर के समान है, यथार्थ में तो शान्त अज एवं अव्यय आकाश ही स्थित है ।३६। परम चिदाकाश का निर्मल, उज्ज्वल, सारभूत रूप ही चित्स्वभाव होने से धर्म के कारण जिस-जिस आकार में विकास को प्राप्त होता है, अपने द्वारा कल्पित उसी आत्म स्वरूप को वह चिदाकाश ही जगद्रूपसे जानता है किसी अन्य को नहीं जानता ।३७।

११५—कुशद्वीपेश्वर का समाधान

यदकारणकं भाति भानं तन्नैव किंचन ।
तत्तथा परमार्थेन परमार्थः स्थितोऽनघ ॥१
अत्रेमं केनचित्पृष्टोऽयमहं तं महामते ।
मम्यग्बोधस्य पुष्टयर्थं महाप्रश्नं पर शृणु ॥२
अस्त्यब्धिभ्यामुभयतो व्याप्तं ख्यातं जगत्त्रये ।
कुशद्वीपमिति द्वीपं भूमौ बलयवत्स्थितम् ॥३
तत्राऽस्तीलावती नाम हैमी पूर्वोत्तरे पुरी ।
दीप्तिज्वालामयस्तम्भप्रोतावनिनभस्तला ॥४
पूर्वं तस्यामभूद्राजा प्रज्ञप्तिरिति विश्रुतः ।
अनुरक्तजगद्भूतः शक्रः सर्गं इवाऽऽरः ॥५
केनचित्कारणेनाहं कदाचित्तस्य भूपतेः ।
प्राप्तः समीपं नभसः प्रलयार्क इव च्युतः ॥६
तुष्पाघ्यीचमनीयैर्मा पूजयित्वोपविश्य सः ।
मध्ये कथायां कस्यांचिदपृच्चत्प्रणयादिदम् ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! अनघ अकारण जिस जगत् का भान होता है, वह कुछ भी नहीं है परमार्थत तो परमार्थ भूत ब्रह्म ही इस रूप में स्थित है ।१। हे महामते ! किसी समय किसी ने मुझ से जो

पूछा, उस विषय में सम्यग् बोध की पुष्टि के लिए पूछे गए उस प्रश्न को सुनिये ।२। सुरोदक और घृतोदक नामक महासमुद्रों से दोनों ओर से विलय समान, पृथिवी स्थित कुलद्वीप नामक द्वीप तीनों लोकों में विख्यात है ।३। उनके पूर्व और उत्तर के मध्य में इलागती नाम की एक स्वर्णिम नगरी है, जिसमें, प्रकाश-युक्त ज्वालामयी के स्तम्भों से पृथिवी आकाश गुँथे हैं ।४। उस नगरी के पूर्व भाग में प्रज्ञाप्ति नामक एक भूपाल हुआ । संसार के सब जीव उसमें अनुराग रखते थे, वह स्वर्ग में इन्द्र के समान ही दूसरा इन्द्र था ।५। किसी एक समय मैं प्रलयकाल में आकाश से गिरते हुए सूर्य के समान उस राजा के राजा के पास जा पहुँचा ।६ उसने उठकर पुष्य, अर्घ्य और आचमनादि दारा मेरा पूजन किया और किसी कथा के प्रसङ्ग में उसने मुझसे विनय पूर्वक प्रश्न किया ।७।

भगवन्सर्वसंहारे जाते शून्यतते स्थिते ।
अवाच्ये परमे व्योम्नि सर्वकारण संक्षये ।।८
सर्गारम्भस्य भूयः स्याद्वद किं मूलकारणम् ।
कानि वा सहकारीणि कारणानि कुतः कथम् ।।९
किं जगत्किं च सर्गादि काश्चिन्नित्यं तमोधराः ।
व्योमसपथार्णवाः काश्चित्काश्चित्क्रमिकुला कुलाः ।।१०
काश्चिदाशकोशस्थाः काश्चिच्चोपलकोशगाः ।
किंच वा भूतभूतादि कुतो बुद्धयादयः कथम् ।।११
कः कर्ता कोऽथवा द्रष्टा काऽऽधाराधेयता कथम् ।
न कदाचिन्महानाशो जगतामिति निश्चयः ।।१२
समस्तवेद शास्त्रार्थो विरोधाय समर्थितः ।
तथा संवेदनं नाम तथा नामाऽनुभूतयः ।।१३
यतस्ततो वेदनं स्यात्किमनाशमसन्मयम् ।
अन्यच्च जम्बूद्वीपादौ देशेऽद्य मुनिनायकः ।।१४

मृतानामग्निदग्धानामिह वा देहनाशिनाम् ।
नरकस्वर्ग भोगाय विदेहे देह कारणम् ।१५

हे भगवान् ! सम्पूर्ण जगत् का संहार होने ओर शून्य रूप में स्थित हो जाने पर अवाच्य परमाकाश में सर्गारम्भ का मूल कारण कौन हुआ वे कारण कहाँ से, किस प्रकार हुए ।८-९। जगत् क्या है । सर्ग से प्रलय पर्यन्त के विकार क्या हैं ? उसमें अन्धकार से आच्छादित भूमियाँ, आकाश में स्थित ब्रह्मलोक, आदि कृमि आदि से भरी नरक भूमियाँ, आकाशकोश में स्थित लोक उपलकोश में स्थित पृथ्वियाँ पञ्चभूत और उनमें स्थित जीव और उनके बुद्धि आदि पदार्थ क्या एवं कैसे है ? ।१०-११। इनका कर्त्ता और द्रष्टा कौन है ? इनकी आधार-आश्रयता क्या है ? इस जगत् का कभी महा प्रलय नहीं होता यदि ऐसी निश्चय करें तो संवेदन के अनुसार ही अनुभूतियाँ होगी, इसे देहादि कारण कहें या कुछ अन्य ? ।१२-१३। वह संवेदन स्वामी है या नाशवान ? यदि नाशवान् है तो उसका कारण क्या है ? हे मुनिनायक ! आज जम्बूद्वीप आदि देश में मरण को प्राप्त हुये और अग्नि में दग्ध किये गये देह नाश वाले प्राणियों के नरक—स्वर्ग रूपी भोग के लिये देह के कारण कौन होंगे ? ।१४—१५।

किं तत्स्यात्सहकारीणि कारणान्यथ कानि वा
धर्माधर्मावमतौ द्वौतस्याऽमूर्तस्य मूर्तता ।१६
निर्द्रव्यं कुरुते द्रव्यैर्युक्तिरित्यसमञ्जसा ।
मातापित्राद्यभावो हि बीजं किं तत्र कारणम् ।१७
अन्ये वा हेतवः के स्युः कथं द्रव्यादिसंभवः ।
परलोकोऽस्य नास्तीति यथासम्वेदनं स्थितेः ।१८
समस्तलोकवेदादिविरोधाच्चाऽसमञ्जसम् ।
अनिच्छितेहितैर्दूरदेशान्तरगतैः भलम् ।१९
प्रजा प्राप्नोत्यसम्बन्धैरभूतैरत्र कः क्रमः ।
स्तम्भो वरेण सौवर्णो विना हेमस्वमागमैः ।२०

क्षणात्सम्पद्यते तत्र सम्प्रत्तिः कथमुच्यताम् ।
विधीनां प्रतिषेधानां निर्निमित्तं विवलगताम् ।
रूढानामप्यरूढानां किं प्रयोजनमुच्यताम् ।२१
असंदासीज्जगत्पूर्वं सत्सम्पन्नमनन्तरम् ।
इति श्रुतेः कथं ब्रह्मन्कथ्यतां सङ्गतार्थतां ।२२

हे मुने ! तब क्या धर्माधर्म ही देह रूप से भूर्तें हो जावेंगे ? उन दोनों के अमूर्त होने से मूर्खता सम्भव नहीं है ? ।१६। अद्रव्य ही धर्म–अधर्म के द्वारा शरीर आदि को बनाते हैं यह मुक्ति समाञ्ज-युक्त नहीं है। माता-पिता का अभाव होने पर उपादान कारण और निमित्त कारण क्या होंगे ? द्रव्य आदि की उत्पत्ति का क्या कारण है। धर्म-अधर्म करने वाले के लिए परलोक न होने की बात करना भी उचित नहीं है, बलिक जन्म गविवेदन के अनुसार ही स्थित है।१७-१८। समस्त लोक और वेदादि के विरोध से भी न होना सिद्ध नहीं होता क्यों कि राजाज्ञा आदि से प्रजाजन जो स्वेच्छा चेष्टा आदि से अगोचर हैं, वे दण्ड रूप में मृत्यु या बन्धन प्राप्त करते हैं, इसमें क्या उपपत्ति है ? जहाँ कोई लोहे आदि का स्तम्भ, बिना कहीं जाये-आये केवल वरदान से क्षण भर में स्वर्ण का हो जाता है, उसका कारण बताइये। विधि प्रतिषेधरूपी शास्त्रों का किसी के द्वारा अनुष्ठान न होने से अप्रसिद्ध का क्या प्रयोजन हो सकता है, यह भी कहिए ।१६-२१। पहले असत् था, वह जगत् पीछे सत् हुआ अथवा पहले यह सत् ही था, यह कभी न असत् था, सत् था ऐसा जो परस्पर अन्तर है' वह एक वाक्यार्थक कैसे मान लिया गया यह बताने की कृपा करिये ।२२।

अयं भवेत्कथं ब्रह्मा भवेच्चेत्तन्महामुने ।
एवं प्रभावान्नभसः किं सर्वस्मान्न जायते ।२३
ओषधीनाममधार्धानां सर्वेषां वा स्थिति गताः ।
कथं स्वभावाः केधय यथावोध मुनीश्वरः ।२४
एकस्य जीवितं पुंसः सुहृदा मरणं द्विषा ।
मृत्वार्धितं प्रयागादौ क्षेत्रे तत्कथमुच्यताम् ।२५

खे स्यामक्षयपर्णेत्दुरिति ध्यायिचितैः फलैः ।
तुल्यकालमनुप्राप्तैः सहस्रेन्दु न किं नभः ।२६
अन्यच्च ध्यायिनां लक्षैर्ध्यातिका स्त्री यथाक्रमम् ।
जायात्वेन सम कालं लब्धं ध्यानफलं च तैः ।२७
साध्व्यसाध्वी गृहेभर्तुः संस्थिता तपसा परा ।
तेषां च जाया सम्पन्ना कथमेतन्महामुने ।२८
गृहानिर्गच्छमाकल्प नृपः स द्वीपसप्तके ।
वरत्वं वरशापाभ्यामिति अन्तः क्व तिष्ठति ।२९

हे महामुने ! सर्गारम्भ में शून्य आकाश से यह ब्रह्म किस प्रकार होगा । यदि इसे आक्रोश का प्रभाव मानें तो सब प्रदेशों में ही आकाश से ब्रह्मा क्यों नहीं उत्पन्न हो जाते ? ।२३। हे मुनीश्वर ! औषधियों के अपने बीज आदि से उत्पन्न होने के स्वभाव के अनुसार सब वस्तुओं की उत्पत्ति के स्वभाव कैसे स्थित हैं ? यह मुझे बताइये ।२४। हे मुने ! जब एक ही पुरुष के मित्र ने प्रयागादि काम्यप्रद क्षेत्र में उसके जीवन की कामना कर मृत्यु का वरण किया और उसी के शत्रु ने उसी क्षेत्र में मरते हुये उसकी मरण कामना की तो दोनों के परस्पर विरोधी फल एक ही पुरुष के लिये कैसे फलित होंगे, यह बताइये ।२५। एक समय ही मैं आकाश में पूर्णचन्द्र हो जाऊँ इस चन्द्रत्व के प्राप्त करने वाली इच्छायुक्त ध्यान वाले अनेक उपासकों के द्वारा प्रतिरूपी फलों के कारण आकाश एक साथ ही बहुत से ही अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से जब लाखों पुरुषों ने उसका ध्यान किया, तब उसके फल-स्वरूप उन सभी पुरुषों को एक ही स्त्री विभिन्न स्थानों में एक समय कैसे प्राप्त हो गई ।२७। हे महामुने ! वह एक ही नारी अपने तप से ब्रह्मचारिणी और प्रत्येक पति के घर में रहती हुई उस पति के प्रति साध्वी होती हुई भी बहुत पुरुषों की भोग्य होने से असाध्वी किस प्रकार हुई तथा वह एक ही उन सबकी पत्नी कैसे बन

सकी, यह मुझे बताइये ।२८। हे ब्रह्मन् ! मैं कल्पपर्यंत सात द्वीपों का अधीश्वर होकर भी घर से बाहर कभी न निकलूँ और घर में ही रहा आऊँ यह संभव नहीं है। किसी के वरदान और अभिशाप आदि के फल द्वारा विभिन्न स्थानों पर जाना भी होगा, तो वरदान या अभिशाप के भोग की प्राप्ति किस प्रकार होगी ।२६।

दानधर्मादितपसामौर्ध्वदेहिककर्मणाम् ।
इहस्थानामभूर्तानां मूर्त प्रीत्याऽस्ति सत्फलम् ।३०
व्यवहर्ता न मूर्तोऽत्र विद्यते लोकयोर्द्वयोः ।
देशान्तरे भृमं जीवो भृशं कालाऽन्तरेऽपि वा ।३१
फल संभयतीयत्तद्विनाऽनुभवनं मुने ।
असमजसमेवाऽति कथं स्यात्सुमन्जसम् ।३२
इत्यादिसं शयगणं गिरा शीतावदातया ।
छिन्धिमेऽभ्युदितं भासा सान्ध्यमान्ध्यमिबोडुपः ।३३
शृणु राजन्यथा स्पष्टमेतत्ते कथयाम्यहम् ।
येन ते सर्वसन्देहा यास्यन्त्पलममूलताम् ।३४
सर्वे तावज्जगद्भावा असद्रूपा सदव हि ।
सद्रूपाश्च सदैवेमे यथासनेदनं स्थितेः ।३५
इदमित्थमिति प्रोतो यत्र संवित्तदेव तत्
भवत्यवश्यं तत्वङ्ग सदेवाऽस्त्वसदेवा वा ।३६
ईदृक्स्वभावा सवित्तिस्तया देहो विभाव्यते ।
एक एव स्वरूपेण तस्याव्तेन च तद्विदा ।३७

दान, धर्म, ऊर्ध्वदैहिक कर्म आदि की जहाँ अदृष्ट क्रिया होती है यही उसकी उत्पन्नता आदि है तो यहाँ की जाने वाली क्रिया का फल उस परलोक से जहाँ उक्त क्रिया की उत्पत्ति ही नहीं है किस प्रकार का होना सम्भव है ? और यह कहे कि अदृष्ट मूर्त शरीरादि में की उत्पत्ति से सफलता है तो परलोक स्थिति शरीर में दृष्टवा अस्तित्व ही कहाँ है ।२०। यदि कहें कि उसमें और व्यवहार करने वाले प्राणी में

समवाय सम्बन्ध में उसका अदृष्ट भोग स्थान पर है तो यह कहना भी युक्त नहीं है । क्योंकि इस लोक में मूर्त पदार्थ परलोक या भिन्न काल में रह ही नहीं सकते ।३१-३२। इत्यादि संशयों का समाधान किस प्रकार होगा । इस सबको अपनी स्वच्छ वाणी से उसी प्रकार काट दीजिए जिस प्रकार सायंकालीन अन्धकार को चन्द्रमा अपनी शीतल और स्वच्छ कान्ति से छिन्न कर देता है ।३३। बसिष्ठजी बोले—हे राजन् ! मैं तुम्हारे प्रति आत्मतत्व को स्पष्ट रूप से कहता हूं उसे सुनो, इसके द्वारा तुम्हारे सब संशय नष्ट हो जायेंगे ।३४। जगत् के सब पदार्थ सदैव असद्रूप भी क्यों कि यह संवेदन के अनुसार ही स्थित रहते हैं ।३५। यह इस प्रकार का पदार्थ है, ऐसे निश्चय से ही संवित् व्याप्त है, उसका वही अंग होता है । इसके असत् या सत् होने के विषय में कोई विशिष्टता नहीं है ।३६। संवित् का यही स्वभाव हैं शरीर के द्वारा ही संवित अभिव्यक्ति होता है, इस प्रकार भोग के निमित्त शरीर के उत्पन्न करने वाले माता-पिता आदि से कौन उपादान है और कौन निमित्त है ! इसके द्वारा इसका समाधान हुआ ।७।

विदमेव विदुर्देहं स्वाप्नादावितरेतरा ।
सवित्काचित्संभवति न चाऽन्याऽस्ति शरीरता ।३८

आश्रित स्वप्नसंदर्शं स्मयेदं भास्ते जगत् ।
समस्तकारणाभावात्सर्गादावन्यतात्र का ।३९

एवं यदेव विमलं वेदनं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
तदेवेदं जगद् भाति तत्केव जगतोऽन्यता ।४०

एवं पूर्वापरं शुद्धमविकार्यं जगत्स्थितेः ।
लोकवेदमहाशस्त्रै रनुभूतमुदाहृतम् ।४१

अपलाप्र्यंव ये मूढा अन्धकूपकभेकवत् ।
समस्तभूतसंवित्तौ रूढपूर्णं महात्मभिः ।४२

वर्तमानानुभवनमात्रमोहप्रमाणका: ।
शरीरकारणा संविदिति मोहमुपागता: ।४३
उन्मत्ता एव तेऽज्ञास्ते योग्या नाऽस्मत्कथासु ते ।
अक्षीबक्षीवयोर्मूढवुद्धयो: कैव संकथा ।४४

इसीलिये स्वप्न और जाग्रत में शरीर का आत्मरूप में अनुभव करते हैं इस प्रकार भ्रान्तिरूपी संवित् ही शरीरता है, उससे अन्य नहीं है। ।३८। सर्गारम्भ में सब कारणों का अभाव होने से आश्रयीय स्वप्नद्रष्ट संविदात्मा ही जगद्रूप में भासमान है, इस अवस्था में इस संसार में स्वप्नवैधर्म्य रूपी भिन्नता कौन हो सकती है ? ।३६। इस प्रकार ब्रह्म संज्ञक विमल संवेदन ही इस जगत् रूप से भासित है, इसलिये इसमें ब्रह्मन् भिन्नता ही कैसी है ? ।४०। इस प्रकार पूर्व और अपर सदैव शुद्ध विकार रहित ब्रह्म से जगत्रूप में स्थित होने से जगत् ब्रह्म ही है लोक, वेद, महाशास्त्र रूपी प्रमाणों से अनुभव करके ही हम यहाँ ऐसा कह रहे हैं ।४१। यह जगत् संवित्मात्र है यह धारणा सब प्राणियों की बुद्धि में जड़ जमाये हुये एवं दृढ़ अनुभव से भी सिद्ध है। तो भी जगत् के नित्य संवित्मात्र का प्रलाप करते हुये-जो मूढ़ पुरुष अन्धकूप के मेढ़क के समान नाम रूप के अनुभव का ही प्रमाण मानकर अनित्य संवित् जिसका कारण देव है, उपादान और जड़ात्मा को गुण मानते हुए मोह में फँसे अज्ञानीजन उन्मत है। वे इस ज्ञान कथा में भाग लेने के सर्वथा अयोग्य हैं। क्योंकि ठीक मस्तिष्क वाले और उन्मत्तों अथवा ज्ञानियों एवं मूर्खों के मध्य में चर्चा ही कैसी ? ।४४।

इयं विपश्चित्कथया सर्वसंशयसंक्षय: ।
न भवेत् त्रिषु लोकेषु ज्ञेयानूर्खकथैव सा ।४५
प्रत्यक्षमात्रनिष्ठोऽसौ मूढास्थ इति वक्ति यत् ।
तेन सियुर्क्तिनोक्तेन सिलासदृशवृत्तिना ।४६
प्रोक्तं सर्वविरुद्धं न सोऽज्ञ:कपान्धदर्दुर: ।
पूर्वापरधियं त्यक्त्वा वर्तमाने मतिस्थित: ।४७

वेदा लोकादयश्चै ते पृष्टाः स्वानुभान्विताम् ।
वदन्तीमां दृशं सर्व यथा नश्यन्ति संशयाः ।४८
संविदेव शरीर चेच्छवं कस्मान्न चेतति ।
इतियस्य मतिस्तस्मै मूढायेदमिहोच्यते ।४९
ब्रह्मणो ब्रह्मरूपस्य सकल्पनगरं ततम् ।
इदं तावज्जभ्दनं तव स्वप्ननगरं यथा ।५०

जिस विद्वान् कहे जाने वाले पुरुष के उपदेशों से सब संशय दूर न हो सकें । वह इहलोक तथा व्यलोक्य में भी मूर्ख की कथा मात्र ही जाननी चाहिये ।४३। जो मूर्ख यह कहे कि यह प्रपंच प्रत्यक्ष प्रमाण वाला है इसलिये श्रुति आदि द्वारा सिद्ध जगत् का ग्रहण करना उचित नहीं, वह अपने युक्तिहीन सर्वभ्रंश के विरुद्ध और अभिज्ञजनों के लिये कर्णकटु एव पाषाण-वत् कठोर वचनों द्वारा विद्वज्जनों द्वारा अन्धकार का भेढक एव अज्ञानी माना गया है। क्योंकि वह विचार बुद्धि को छोड़कर प्रत्यक्ष प्रमाण में विश्वास बुद्धि से ही पशु के समान स्थित है ।४६-४७। ज्ञेय एव तत्वज्ञानी पुरुष प्रश्न करने पर मेरे ही समान दृष्टि का संशय नामक रूप से प्रतिपादन करने में समर्थ होते हैं ।४८। यदि प्रत्यंगात्मक संवित को ही शरीरादि जगत मान ले तो मृतदेह भी संवित होने से चैतन्य क्यों नहीं रहता ? जिस मूढ़ श्रोता की इस प्रकार की शङ्का है, उसके लिये यहाँ हम कहते हैं ।४९। जिस प्रकार तुम्हारा स्वप्न नगर है उसी प्रकार वह जगत भी ब्रह्मरूपी परब्रह्म का स्वप्ननगर ही है ।५०।

तत्समस्तं सदेवेदं चिन्मात्रत्म निरन्तरम् ।
भवत्यत्र न ते भ्रान्तिः स्वेस्वप्ननगरे यथा ।५१
तत्र तावद्दिशः शैलाः पृथ्व्यादिगरादि च ।
सर्व चिन्मयमाकाशमिति ते स्वानुभूतिमत् ।५२
संविद्व्योमघ्नं ब्रह्म तत्सकल्पपुरं विराट् ।
शद्बसविन्मयो ब्रह्मा तदिदं जगदुच्ते ।५३

ब्राह्मे संकल्पनगरे यद्यत्स कल्पितं यथा।
तथाऽणुभूतेय तत्तत्वत्संकल्पुरे यथा ।५४
संकल्पनगरे यद्यद्यथा संकल्पस्यते तथा।
तत्तथाऽस्त्येव च तदा त्वत्संकल्पपुरे यथा ।५५
तस्माद्देहस्य नियतौ यथैतो ब्रह्मणा चिता।
स्पन्दास्पन्दौ कल्पितौ द्वौ स तथैवाऽनुभूतवान् ।५६

यद्यपि वह सब चिन्मात्र हैं फिर भी जिस प्रकार स्वप्न नगर में चेतन भ्रान्ति कहीं उसी प्रकार जड़ में भी नहीं होती ।५१। स्वप्न में दिशायें पर्वत पृथ्वी नगर आदि जो कुछ है, वह सब चिन्मय आकाश ही स्वानुभूति से सिद्ध है ।५२। ब्रह्म संविसोकाशमय है, उसके संकल्प की पुरी विराट् है, ब्रह्म शुद्ध संवितमय है और उसके द्वारा निर्मित यह संसार भी शुद्ध संवित्-मय ही कहा गया है ।५३। जिस प्रकार तुम अपने संकल्पनगर में जिस पदार्थ का जैसा-जैसा संकल्प करते हो, वैसा-वैसा ही अनुभव करते हो। उसी प्रकार ब्रह्म के संकल्पनगर रूपी इसी संसार में चित् द्वारा जैसा-जैसा संकल्प किया जाता है, वैसा-वैसा ही अनुभव में आता है ।५४। तुम्हारे संकल्पनगर में संकटनगर में संकल्पों के अनुसार ही पदार्थ की स्थिति है, उसी के समान इस संकल्पनगर में भी जिसका जब जैसा संकल्प किया जाता है उस समय वह वैसा ही रहता है ।५५। इसीलिए मत शरीर की चेष्टा जीवित शरीर के समान होती। वैसा तो इस प्रकार नियत इन चेष्टा और अचेष्टा दोनों की कल्पना हिरण्यगर्भ रूप चित् ने की हैं, और उसी के अनुसार उसने अनुभव किया है। इसीलिए मृतक में चेतना का अभिव्यञ्जक करने वाली चेष्टा प्राप्त नहीं हो सकती ।५६।

महाद्रलयपर्यन्ते पुनः सर्गः प्रवर्तते।
समस्तकारणाभावाद्द्रव्यँ तावन्न विद्यते ।५७

विमुक्त त्वात्प्रजेशस्य क संभवति स्मृतिः ।
ब्रह्म येयमतो दीप्तिर्जगदित्येवभासते ।५८
तस्मादाद्यात्मना भातं स्वमेव ब्रह्मण स्वतः ।
जगत्सांकल्पनगरमिति बुद्धं च खेत खम् ।५९
यथा सांकल्पनगरं चिन्मात्रं भाति केवलम् ।
तथैवाऽकारणं भाति चिन्मात्रोन्मेषण जगत् ।६०
शरीरमस्तु वा माऽस्तु यत्र यत्राऽस्ति चिन्नभः ।
वेत्यात्मानँ तत्र द्वैतवितमयं जगत् ।६१।

महाप्रलय की समाप्ति पर पुनः सर्गारम्भ होता है, किन्तु सभी कारणों का अभाव होने के कारण वह सृष्टि द्रव्य नहीं है । यह यदि पूर्व कल्प वाले प्रजापति के बनाये द्रव्यों का इस नये सर्ग में प्रयोग होने से वह निर्द्रव्य कैसे होगा ? यह कहें तो भी अनुपयुक्त है क्योंकि पूर्व कल्प वाला प्रजापति ही नहीं रहा और उसका बनाया संसार भी पूर्ण विलीन हो चुका तो पूर्ण संसार के प्रकारादि स्मृति आदि निमित्त कारण नहीं हो सकते । तुम्हारा यह आश्रय हमारे सिद्धान्त से मिलता है, क्योकि जगत् के रूप में जो भासता है, वह स्वयं प्रकाश ब्रह्म ही है ।५७-५८। इसलिये हिरण्यगर्भ के रूप में सर्व प्रथम प्रजापति ब्रह्मा स्फुरित हुए और उन्होंने स्वयं हीं आकाश रूपी संकल्प नगर को जगत् रूप से समझा ।५९। जिस प्रकार चिन्मात्र रूपी संकल्प नगर का ही भान होता है, उसी प्रकार अकारण चिन्मात्र का उन्मेष ही जगद्रूप में भासमान है । ।६०। देह ही अथवा न हो, जहाँ-जहाँ चिदाकाल की विद्यमानता है, वहाँ-वहाँ वह द्वैत-अद्वैतमय विश्वरूप आत्मा को जानता है ।६१।

तस्माद्यथा स्वप्नपुरं तथा सांकल्पपत्तनम् ।
तथा पश्यति चिद्व्योम मरणानन्तरं जगत् ।६२
अपृथ्व्यादिमियं भाति पृथ्व्यादिमयवज्जगत् ।
यथेदमाप्रथमतो मृतस्याऽयखिलं तदा ।६३

देशकालौ न सगण प्रवुद्धय्येव तौ यथा ।
अणुमात्रमपि व्याप्तौ तदैव परलोकिनः ।६४
इदं प्रबुद्ध विषये स्वानुभूतमपि स्फुटम् ।
जगन्न विद्यते किंचित्कारनं गगने यथा ।६५
अप्रबुद्धस्याऽसदेव यथेद भाति भासुरम् ।
तथैव सर्गवद्भातिव्योमैव परलोकिनः ।६६

चिदाकाश जिस प्रकार का स्वप्ननगर या संकल्पनगर को देखता है वैंसे ही मरण के पश्चात् जगत को देखता है ।६२। जिस प्रकार सर्ग के आरम्भ से यह पृथ्वी-रहित विश्व, पृथ्वी आदि से युक्त प्रतीत होता है उसी प्रकार मृतक का भी सम्पूर्ण विश्व पृथ्वी आदि रहित होकर भी पृथ्वी आदि से युक्त ही भासमान होता है ।६३। जैंसे बुद्धिमान पुरुष के अथवा स्वप्न से निवृत्त हुये पुरुष के स्वप्नावस्था वाले देश और काल जाग्रत जगत से सम्बन्ध नहीं रहते, वैंसे ही परलोकगत पुरुष के भी इस लोक के देश काल परलोक में सम्बद्ध नहीं रहते ।६४। अपने द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत होने पर भी यह संसार बुद्धिमान के लिये उसी प्रकार कुछ नहीं है, जिस प्रकार कि आकाश का कुछ कारण नहीं है ।६५। अज्ञानी पुरुष को जैंसे यह जगत् जगत् भासमान है, बैंसे ही परलोक को प्राप्त हुये जीव को चिदाकाश ही सृष्टि के समान लगता है ।६६।

द्यु धराद्रियमाद्यढ्यं खमेव परलोकिनः ।
अभूतपूर्व माभाति भूतपूर्व वदाततम् ।६७
मृतोऽयं पुनरुत्पन्नो यमलोके शुभाशुभम् ।
भुञ्जेऽहमित्यतिघनं मृयो भ्रान्ति प्रपश्यति ।६८
मोक्षोपायानादरिणामेष मोहो न शाम्यति ।
वोधादवासनत्वेन मोन्ति एष प्रशाम्यति ।६९
अप्रबुद्धस्य या स वित्सा धर्माधर्मवासना ।
ख एव खात्मिका भाति यत्तदेव जगत्स्थितम् ।७०

न शून्यरूप न च सत्स्वरुप ।
प्रह्माभिधं भाति जगत्स्वरूपम् ।
तच्चाऽपरिज्ञानवशादनर्थं ।
भूत परिज्ञातवतः शिवात्म ।७१

परलोक में गये हुये को वह चिदाकाश ही आकाश पृथ्वी और यम आदि से युक्त पहिले से ही व्याप्त जैसा प्रतीत होता है।६७। मैं मरकर पुनः जीव रूप से यमलोक को प्राप्त हुआ अपने शुभ-अशुभ कर्मों को भोगता हूँ इस प्रकार की घोर भ्रान्ति को मृत-पुरुष देखता है।६८। मोक्ष के उपायों का आदर न करने वाले पुरुषों का मोह कभी नहीं मिटता बोध से वासना मिट जाती है, मोह भी शान्त हो जाता है। ।६९। अबुद्ध पुरुष की संचित् ही धर्म-अधर्म रूपी वासना है जो आकाश में ही आकाशरूप से प्रतीत होती है, वही यह जगद्रूप में स्थित है ।७०। यह जगत् न तो शून्य रूप में और व सत् रूप, अपितु जगत् के रूप में ब्रह्म संज्ञक चैतन्य ही है जो अज्ञान से अनर्थ रूप और ज्ञानी पुरुष के लिये आनन्द स्वरूप परम कल्याण ही है ।७१।

११६—सब रूपों में ब्रह्म ही स्थित है

शुभाशुभं यथोदेति प्रजानां गृहसंगमे ।
असँवद्धै रप्रति घैरस्थैस्तदिदँ श्रृणु ।१
ब्रह्मसंकल्पनगरं जगत्तावदिदं स्थितम् ।
यदृश्यं दृश्यबोधेन ब्रह्मै व ब्रह्मबोधतः ।२
यद्यत्संकल्पनगरे यदा संकल्प्यते तथा ।
तथाऽनुभूयते तत्तत्तदृग्विरचन तदा ।३
एवमस्मिन्गृहे याते सम्पन्नैवमियं प्रजा ।
एव संकल्पसम्पन्ने छगत्येव भविष्यलम् ।४

एतत्स्वसांकल्पपुरे यादृशं ते तथा स्थितम् ।
यथा संकल्पयसि यत्तत्तथा किल पश्यसि ।५

वसिष्ठजी बोले—हे राजन् ! प्रजाओं को अप्रकट, दूरस्थ होने से असम्बद्ध राजा-आज्ञा आदि से अपने ही घर में जैसे शुभाशुभा की प्राप्ति होती है, उसे सुनो ।१। ब्रह्म ही अज्ञान से दृश्य प्रतीत होता है और ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म है, इसलिये यह विश्व ब्रह्म के संकल्पनगर के रूप में विद्यमान है ।२। संकल्पनगर में जब जिस वस्तु का जैसा संकल्प किया जाय, उस समय वह वस्तु वैसी ही अनुभव में आयेगी ।३। तुम्हारे संकल्पमय घर की सृष्टि तुम्हारे संकल्प से ही हुई है उसी के समान ब्रह्म संकल्प वाले इस विषय की सृष्टि ब्रह्मसंकल्प से ही हुई है ।४। अपने संकल्पनगर में तुम्हारा यह सब जैसे स्थित है और तुम उसमें जैसा संकल्प करते हो, उसे वैसा ही देखते हो ।५।

यथैव वरशापाभ्यां शुद्धसांविदवाप्यते ।
सांवित्तथैव भवति ब्राह्ममेवेति कल्पनम् ।६।
प्रजाविधिनिषेधाभ्यामेनयाऽऽस्थाव्यवस्था ।
तथैव फलमाप्नोति बाह्यमेवेति कल्पनम् ।७
देहिनो ये जगत्यस्मिंस्तान्प्रत्यनुपलम्भतः ।
असदासीज्जगत्पूर्वं सत्यमित्युपलभ्यते ।८
चिद्रूपब्रह्मसांकल्पवशादेवैतदङ्ग सत ।
चिदुन्मेषनिमेषौ यौ तावेतौ प्रलयोदयौ ।९।
किं नोपलभ्यते पूर्वं किं पश्चादुपलभ्यते ।
जगच्चलद्वपुरिदं सुस्थिरारम्भभास्वरम् ।१०

वर और शाप से संवित् जैसे उस-उस व्यवहार में समर्थ है वैसे ही ब्रह्म संवित का होना समझो । क्योंकि वर और शाप भी तपस्वियों के द्वारा सिद्ध हों । इस ब्रह्म-कल्पना से सम्बधित सत्य ही है ।६। विधि निषेध शास्त्रों द्वारा प्रबोधित धर्माधर्म से अपनी आस्था के अनुसार जो प्रजावर्ग धर्म-अधर्म का फल प्राप्त करता है वह भी ब्रह्म के उस प्रकार

से संकल्प से ही उत्पन्न होता है ।७। शरीरो की अभिव्यक्ति के पूर्व उपलब्धि न होने के कारण यह जगत् पहले असत् रूप था, वही अभिव्यक्ति को प्राप्त होकर सत्यरूप प्रतीत होता है ।८। इसका ब्रह्म संकल्प से कुछ समय तक सत्ता रूप से जो किंचित भान होता है, अर्थात् सत्वरूप से प्रतीत होती है वह उस ब्रह्म के उन्मेष-निमेष होने से संसार के उदय और प्रलय ही हैं ।९। राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! ब्रह्म से संकल्प से यदि संसार सत् है तो सुषप्ति और प्रलयावस्था में प्रतीत न होकर जाग्रत या सर्गकाल में ही क्यों दिखाई देता है ? सदैव विकार से ग्रस्त रहता हुआ यह विश्व भले प्रकार स्थित हुये कार्य जैसे भासित है यह बताने का कष्ट करिये ।१०।

अस्मिश्चिचद्व्योलसंकल्पपुरस्थे भावईदृशः ।
यद्भूत्वा न भवत्येव पुनभवतिचक्षणात् ।११
बालसंकल्पपुरवद्व्योमकेशोण्ड्रकादिवत् ।
किलैते सदद्रूपा भान्ति सर्गाश्चिचदात्मनि ।१२
त्वं संकल्पपुरं कृत्वा विनाशयसि तत्क्षणात् ।
स्वतोऽन्यस विद्वशतः स्वस्वभावः सते यथा ।१३
चिद्व्योमकल्पनपुरे यदुन्मज्जमम् ।
स्यभावकचनं तस्य तद्विद्धि विमल तथा ।१४
स विद्धनस्प्बनाद्यन्तव्योमैव त्रिजगन्नभः ।
तेनासावद्य यन्नामकरोत्यपि च चेतति ।१५
तदनावरणस्याऽस्य योजनानां शतेष्वपि ।
युगेरहि स्वप्न इव कार्यकृद्वर्तमानवत् ।१६

इस चिदाकाश के संकल्पनगर में स्थित जगत् में ऐसा स्वभाव ही हैं कि यह सृष्टि में उत्पन्न होकर मोक्ष में प्रकट नहीं होता और फिर क्षणभर में ही प्रकट हो जाता है ।१२। बालक के संकल्पनगर के समान और आकाशस्थित के शौण्ड्रक के समान यह सब सद्रूप और असद्रूप सृष्टियाँ चिदात्मा में भासित हैं ।१३। तुम संकल्पनगर को बनाकर

संकल्प से तत्काल ही प्रलय संकल्प द्वारा उसे नष्ट कर देते हो, तुम्हारा ऐसा स्वभाव है उसी के समान चिदाकाश के संकल्पनगर में जो उन्मेष-निमेष है, वह ब्रह्म का निर्मल स्वभाव है।१३-१४। त्रिजगदाकाश संवित्-मय मात्र होकर आदि और अन्त से रहित ब्रह्मकाश ही है। क्योंकि जगत् वह स्वयं ही है, इसलिये वह जो संकल्प करता है, वह-वह कार्य करता है। उसके अनावृत्त सत्यसंकल्प से सैकड़ों योजन में अनेक युगों से व्याप्त कर्म परलोक आदि में निकट ही विद्यमान के समान स्वप्न-सदृश ही कार्यकारी होते हैं।१५-१६।

एवं सांकल्पसम्पन्ने जगत्नेवं भवत्यलम् ।
यथामणौ प्रकचति प्रोन्मज्जननिमज्जने ।१७
विधीनां प्रतिषेधानां लोकसांस्थाप्रयोजनम् ।
सैव संविदि रुढत्वात्प्रेत्यापि फलदा स्थिता ।१८
न कदाचन यात्यस्तुसुदेति न कदाचन ।
ब्रह्म ब्रह्मचिदाशानं सर्वदात्मन्यवस्थितम् ।१९
यथातु द्रष्टृदृश्यादिकल्पना कल्पनापुरम् ।
स्वयं जगदिवाऽऽभाति जातामिष्युच्यते तथा ।२०
यदा स्वभावात्कचन संहृत्याऽऽत्मनि तिष्ठति ।
ब्रह्मचिद्गगनैकात्मा शान्त इत्युच्यते तथा ।२१

जैसे मणि में उसकी चमक से ही उन्मज्जन और निमज्जन का अनुभव होता है, वैसे ही चित्मणि में जगतों के सर्ग एव प्रलय रूप विभिन्न परिवर्तन प्रतीत होते हैं।१७। विधि शास्त्र और निषेधशास्त्र इनका प्रयोजन लोक मर्यादा की रक्षामात्र ही है। ब्रह्म में उत्पन्न लोक-स्थित परलोकगत प्राणी को फल देने वाली है ।१८। ब्रह्म कभी भी उदय-अस्त को प्राप्त नहीं होता । ब्रह्मचिदाभास तो सदैव आत्मा में स्थित रहता है ।१९। जिस प्रकार द्रष्टा और दृश्य आदि जगत् रूपी कल्पना नगर निरी कल्पना में है वैसे ही वह स्वयं जगत जैसा भासता

है। वाणी द्वारा उसके जन्म का वर्णन करना भी अयथार्थ ही है।२०। जब चिदाकाशरूपी जीव स्वभाववश स्फुरण को छोड़कर अपने ही रूप में स्थित होता है, तब उसकी अवस्था को शान्त कहते हैं।२१।

कचना कचने यस्य स्यभावो निर्मलोऽभ्य: ।
यथैतावात्मनो नान्योस्पन्दास्पन्दौ नभस्वत: ।२२
जरामरणहन्तृणि क्षणान्यत्र पृथक्पृथक् ।
भवन्त्विति यथैतानि सन्ति त्वकल्पनापुरे ।२३
ब्रह्मसंकल्पनगरे स्वभावा उदितास्तथा ।
ओषधीनां पदार्थानां सर्वेषां च जगत्त्रये ।२४
न संकल्पयिता राजन्संकल्पनगरे स्वयम् ।
तृण त्रृणँक कल्पयति बाल: क्रीडनकानिव ।२५

जैसे स्पन्दन और अस्पन्दन वायु के स्वभाव से भिन्न नहीं है, वैसे ही स्फुरण और स्फुरण-रहितता आत्मा के निर्मल और अविनाशी स्वभाव से भिन्न नहीं है ।२२। तुम्हारे कल्पनापुर से सदृश यहाँ जरा, मरण और विनाश करने वाले मणि मन्त्र, औषधि पृथक्-पृथक् प्रभाव वाले होकर ब्रह्म संकल्प से आविर्भूत होते हैं इसलिये इस त्रैलोक्य के सभी स्वभाव संकल्प से ही उत्पन्न हुये हैं ।२३-२४। हे राजन् ! अपने संकल्पनगर रूपी त्रैलोक्य में ब्रह्म ही क्षण-क्षण से विविध वस्तुओ का संकल्प करता है, हम ऐसी कल्पना नहीं करते । बालक की क्रीड़ाओं के एक बार ही संकल्प करने के समान ही ब्रह्म अपने कार्यों की कल्पना करता है ।२५।

स्वयं स्वभाव एवैष चिद्घनस्याऽस्य सस्फुटम् ।
यद्यत्संबव्पयत्याशु तत्र तेऽवयवा अपि ।२६
चिदात्मकतया भान्ति नानात्मकतयाऽऽत्मनां ।
अप्येकसारास्तिष्ठन्ति नानाकारस्वभावगा: ।२७

प्रत्येकं किल तत्राऽस्ति ब्रह्म चिन्मात्रतात्मनि ।
सर्वात्मिक सा यत्राऽऽस्तेयथाऽन्त भाति तत्तथा ।२८
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यं ।
किंचिन्न किंचिच्च सदप्यसत्यम् ।
स्थित यथा यत्र तदात्म तत्र ।
सर्वात्मभूर्भतनृणादि जातौ ।२९

चिद्घन का यह स्वयं स्वभाव है कि वह जो कुछ संकल्प करता है वह सब पदार्थ क्षण भर में ही अपने अवयवों के साथ ही सिद्ध हो जाते हैं ।२६। संकल्पित पदार्थ स्वभाववश विभिन्न रूप से अवस्थित होने पर भी ब्रह्म में चिदात्म रूप से भासित हैं उसी के समान विभिन्न आकार के स्वभाव वाले होने पर सद्रूप से एकाकार में स्थित हैं ।२७। उनमें से प्रत्येक पदार्थ में ब्रह्म चिन्मात्रता ही है क्योंकि सर्वात्मक चित् जहाँ जैसे स्थित है, वहाँ वैसे ही भासित है ।२८। इस प्रकार अनादि, अव्यय अनन्त वीर्य ब्रह्म सत् और असत् दोनों रूप में विद्यमान है । वह सर्वात्मक होने के कारण जहाँ जो वस्तु है, वहाँ उसी स्वभाव में प्रसिद्ध होकर स्थित है ।२९।

११७— अन्य संकल्प से अन्य ब्रह्माण्ड

एकस्य जीवितं पुसः सुहृदा मरणं द्विषा ।
मृत्वाऽथितं प्रयागादौ क्षेत्रे यत्तादिद शृणु ।१
क्षेत्राणामर्थधर्माणां सर्वेषां प्रतितं फलम् ।
ब्रह्मणा कल्पितं सर्गे स्वके सांकल्पपत्तने ।२
यत्र पुण्यं यदर्थ च क्षेत्र ताभ्यां तथा कृतम् ।
थाति तद्विनियोज्यस्य तस्योन्नमति निष्कृतात् ।३
तत्तस्मान्महतः पापाद्भागमेऽखिल च वा ।
विमिशक्तत्रयात्म तत्पुण्य पपिभ्राम्योशाम्यति ।४

विनेपापमल्प चक्षेत्रधर्मोऽधिकस्ततः ।
तत्पापं नाशयित्वा तच्छब्द एव विवल्गति ॥५

वसिष्ठजी बोले—हे राजन् ! इच्छित फल के प्रदान करने वाले प्रयाग आदि क्षेत्रों में एक पुरुष के मित्र ने ही उसके चिरजीवन की शुभकामना करते हुये अन्तिम साँस ली, परन्तु उसी के शत्रु ने उमके शीघ्र ही मर जाने की प्रार्थना कर मृत्यु का आह्वान किया तो दोनों को चिरजीवन और शीघ्र मरण रूप विरुद्ध अभिलाषाओं की सम्पन्नता किस प्रकार हो सकती है अपने इस प्रश्न का समाधान सुनो ।१। ब्रह्म ने अपने सर्ग रूपी संकल्पनगर में उन प्रयाग आदि कामनाप्रद क्षेत्रों तथा अर्थ, धर्म आदि के फलों का समर्थन उस अधिकारी पुरुषों के हेतु ही किया है ।२। जिसमें अभिलाषित फल की सिद्धि के हेतु काम्य फलों के प्रदाता प्रयोग आदि क्षेत्र उनमें किये गए धर्म-तप, जप, दान, स्नानायज्ञ आदि तथा उन दोनों से तथा और पुण्य से संस्कृत हुये यदि यह तीनों शास्त्र सम्मत कर्मों में रत रहने वाले अधिकारी के हैं तो उससे यहाँ मेरे द्वारा किये गये पुण्य से मेरे इच्छित फल की उत्पत्ति अवश्य होगी । इस प्रकार विश्वास से अनुष्ठान किये गये प्रयाग आदि क्षेत्रों में मरण आदि इच्छित फल अवश्य ही होता है ।३। धर्मात्मा एवं अधिकारी पुरुष को जो उपरोक्त फल की उपलब्धि बताई गई है उसके अतिरिक्त जो पापी किन्तु श्रद्धालु पुरुष हैं उनका प्रयाग आदि पुण्य क्षेत्र में मरण होने से उत्पन्न हुए चिति-शक्ति स्वरूप वह पुण्य क्षेत्र के माहात्म्य के अनुसार ही पुरुष को उनके पापों से पृथक् कर स्वयं भी शान्ति को प्राप्त होता है ।४। पापी पुरुष में पाप की मात्रा न्यून हो और पुण्य क्षेत्र में किया जाने वाला स्नान दान, तप, पुण्य अधिक मात्रा में हो तो वह प्रबल पुण्य ही उस पाप को पूर्णतया नष्ट करे श्रुति-प्रतिपादिक फल के प्रभाव का समर्थन करना है ।५।

क्षेत्रक्तर्मेण तेनाऽस्य विनेयस्य महीपते ।
द्वे शरीरे विदौ सम्यक्कचतः प्रतीभात्मिके ॥६

इत्येवमादि पापानां पुण्यानां च फलं महत् ।
ब्रह्मसंकल्पकपितं यथा यद्यत्तथैव तत् ॥७
ब्रह्मोच्यतेऽसौ चिद्धातुः सौऽब्जजाद्यहमादि च ।
स यथाऽऽस्ते यथा मत्तत्तस्य संकल्पनं जगत् ॥८
प्रतिर्भव विनेयस्य क्षेत्रपुण्येन तादृशी ।
तथैवोदेति सा धातुर्विपरीतवतो यथा ॥९
एकात्मनाऽहमद्यै ष मृतोऽमी मम वन्धवः ।
रुदन्तीमे पर लोकं प्राप्तोऽयमहमेककः ॥१०

किन्तु जहाँ ज्ञानी पुरुष का पाप, पुण्य क्षेत्रों में अर्जित धर्म के तुल्य होता है, वहाँ बल के तुल्य होने के कारण ही धर्म के कारण पाप में प्रवृत्ति नहीं होती । इसलिये पाप और पुण्य दोनों के लिये उसके दो देह और उनके चिदाभास भ्रान्ति और प्रतिभाय स्फुरित होते हैं ।६। पाप-पुण्य का इस प्रकार जो महान् फल, जिस ब्रह्मसंकल्प से स्फुरण का प्राप्त होता है यह बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के यथावत् स्थित रहता है ।७। वह चिद्धातु ही ब्रह्म है, वही ब्रह्म है, वही ब्रह्मादि समष्टि जीव तथा अहमादि व्यष्टि जीव कहा गया है वह जो संकल्प करता है, उतना वह संकल्प समष्टि-व्यष्टि उपाधि में उसी प्रकार के जगद्रूप में स्थित होता है ।८। ब्रह्म संकल्प के अनुसार ही शासन के योग्य व्यक्ति की उन-उन पुण्य-क्षेत्रों में अर्जित पुण्यादि के अनुसार ही फल भोगरूप वाली, प्रतिभा स्वप्न के समान उसी उदय प्रकार उदय प्राप्त होता है, जिस प्रकार पुण्य के विरुद्ध अर्थात् पापी की प्रतिभा नरकादि के रूप में प्रकट होती हैं ।९। वह सोचता है—अरे, मैं आज अकेला ही मरण को प्राप्त हो गया मेरे जो यह सगे सम्बन्धी अथवा बन्धु-बान्धव हैं वे जीवित रह कर मेरे लिये रुदन कर रहे हैं, मैं एकाकी ही परलोक को प्राप्त हो गया हूँ ।१०।

बन्धुनामपि तत्रैव तदैवाऽस्य तथैव च ।
प्रतिभा तदृशैवेति धातुक्षोभवतामिव ॥११

अत्युग्रैः पुण्यपापैः स्वैर्वा महात्मभिरीक्षते ।
लक्ष्याण्यप्यन्यथा सन्ति नृणां चित्कल्पनावशात् ॥१२

अचेतनं शवीभूतं तेऽपि पश्यन्ति तं मृतम् ।
रुदन्ति तं च दहने क्षिपन्ति सह बान्धवैः ॥१३

निनेयः स यथाऽन्येन संविद्रूपेण देहिना ।
ऽजरामरणमात्मानं वेत्ति स्थितमदुःखितम् ॥१४

यथास्थितेन देहेन वेत्यसौ जोवितस्तिम् ।
मृतिं त्वदृश्येनाऽन्येन क्षेत्रपुण्यविदेरितः ॥१५

जिस प्रकार इस पुरुष का मरना प्रतिभा रूप है, उसी प्रकार इसके बन्धु-बान्धवों की मृत्यु पर भी रुदन एव मृतक-कर्म आदि सब धातु क्षोभ युक्त व्यक्तियों के समान वैसी ही प्रतिभा समझो ।११। किन्तु अति दारुण अथवा अत्योत्कृष्ट होने पर क्षोभ को प्राप्त हुये उन पाप या पुण्यों से महात्माओं द्वारा निग्रह-अनुग्रह वाली दृष्टि से देखे जाने पर अन्य पुरुषों द्वारा देखने या न देखने योग्य पुण्य या पापों के जो धम भूत देहादि होते हैं उनका भाव चित्संकल्प से ही होता है ।१२। कभी प्राणी कहीं अत्यधिक पाप या पुण्य से शासन योग्य पुरुष को शवरूप में अचेतन पड़ा देखते रुदन करते और बन्धु-बान्धवों के साथ जाकर उसका संस्कार करते हैं ।१३। मित्र अथवा शत्रु के विरुद्ध कर्मों से शासन के योग्य एक उस मित्र पुरुष ने जो प्रयागादि क्षेत्र में अभिलाषा की थी उसी के अनुसार वह अपने को जरा मृत्यु रहित तथा दुःख से मुक्त जानता है ।१४। वह अपने अवस्थित शरीर से जीवित होने का अनुभव करता है, तब उसके शत्रु का मनोरथ किस प्रकार पूर्ण होगा इसका समाधान यह है कि प्रयगादि क्षेत्र में शत्रु का मरण कराने वाले पुण्यकर्मा शत्रु से बलात् मरण के लिये प्रेरित होकर वह अन्य मित्र, बन्धु बान्धवादि से न दिखाई पड़ने वाले देह से मरण का भी अनुभव करता है ।१५।

आविला संविदा सविच्छून्यया वेद्यते क्षणात् ।
नहि सन्नद्धगात्रस्य क्लेशोऽसन्नद्धभेदने ॥१६
पश्यन्ति बन्धवोऽप्येन तथैवाऽमरतां गतम् ।
द्वयमित्येष लभते जीवित मरणं समम् ॥१७
इदमप्रतिघारम्भं भ्रान्तिमात्रं जगत्त्रयम् ।
नव सभवति को नाम भ्रान्तौ भ्रान्तिविपर्ययः ॥१८
संकल्पस्वप्नपुरयोयोर्या भ्रान्तिरनुभूयते ।
ततोऽधिकेयँन न्यूना जाग्रत्स्वप्नेऽनुभूयते ॥१९
धर्माधर्मो कथं ब्रह्मन्कारण देहसंविदः ।
तत्यामूर्तो कथ चैको द्विशरीरत्वमुच्छति ॥२०

शत्रु कृत अभिचार के प्रतीकार से रहित शासन योग्य संवित् शत्रु की कलुषित संवित् को तुरन्त जान लेती है। कवच एक शस्त्रास्त्र से सुसज्जित शत्रु को, कवच एव शस्त्रास्त्ररहित विश्वस्त पुरुष के देह को आहत करने अथवा भेदने में सरलता ही रह सकती है।१६। उस पुरुष को उसके बन्धु बान्धव भी उस प्रकार अमर देखते हैं। इस प्रकार जीवन और मरण दोनों की ही एक साथ प्राप्ति होती है।१७। अप्रतिहत रूप से आविर्भाव को प्राप्त हुआ यह त्रिजगत् भ्रान्ति में क्या विपरीत भ्रान्ति नहीं उत्पन्न हो सकती ?।१८। संकल्पनगर में अनुभव होने वाली भ्रान्ति से जाग्रत्प स्वप्न में अधिक भ्रान्ति का ही अनुभव होता है, शून्य भ्रान्ति का नहीं होता।१९। राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! धर्म और अधर्म ब्रह्म संवित् के कारण किस प्रकार हैं ? जब धर्म और अधर्म दोनों ही अमूर्त्त हैं तो उसमें से एक अन्य देह कैसे हो जाता है ?

संकल्पनगरे ब्राह्मे जगत्यस्मिन्महामते ।
किं नाम नो संभवति सत्यं वाऽप्यसमञ्जसम् ॥२१
तथैव संकल्पपुरे यन्न संभवतीह हि ।
तन्नास्त्येव तदेतस्मिन्किं वाऽस्तु ब्रह्मकल्पने ॥२२

स्वप्नसंकल्पपुरयोरेका गच्छति लक्षताम् ।
तथा चैकैव चित्स्वप्ने सेनात्वमुपगच्छति ॥२३
सहस्राण्येकतां यान्ति तथासैव सुषुप्तकम् ।
अन्यथा स्वप्नसंकल्पसेनानुभवसंस्मृतौ ॥२४
स्कल्पस्वप्नपुरयोरिति को नाऽनुभूतवान् ।
संविदाकाशमात्रेऽस्मिज्जगत्यनुभवात्मनि ॥२५
तस्मादस्मिश्चिदाकाशसंकल्पे जगदात्मनि ।
न संभवति किं नाम तत्संभवति वाऽति किम् ॥२६

वसिष्ठजी ने कहा—हे महामते ! ब्रह्म के संकल्प नगर रूप से स्थित इस संसार में क्या सत्यासंगत नहीं हो सकता ? ।२१। जिस प्रकार हमारे सङ्कल्पनगर में असम्भव कुछ नहीं हैं उसी प्रकार ब्रह्म के संकल्प नगर रूपी त्रिजगत् में भी कुछ असम्भब नहीं है ।२२। जैसे स्वप्ननगर में एक ही चित्त लाखों रूप धारण कर लेती है, वैसे ही जाग्रत रूप स्वप्न में एक ही चित्त सेना के रूप में असंख्य हो जाती है ।२३। जाग्रत में चित्त के एक से अनेक रूप होने के समान ही लाखों रूप वाली सुषुप्ति भी चित् होती है । एक ही चित् अनेक रूप धारण करती और अनेक रूप से एक रूप हो जाती है इसका स्वप्न और सङ्कल्प में सेना के होने और समूह के एक होने में अन्यथा अनुभूति होती है ।२४-२५। इस सब का संकल्प नगर और स्वप्ननगर में किसे अनुभव नहीं है ? इस प्रकार इस जगद्रूप चिदाकाश संकल्प में क्या सम्भव और क्या असम्भव है ।२६।

एवमेवमियं भ्रान्तिर्भातिभास्वन्नभोमयम् ।
नेह किंचन सन्नाऽसन्त वाऽसदिह किंचन ॥२७
तथाऽनुभूयते यद्यत्तत्तथा तत्वदर्शिनः ।
प्रबुद्धस्याऽत्र किं नाम तस्य एवाऽङ्कृतेत्यलम् ॥२८
इह चेद्विहितो धर्मस्तत्स्वेर्गेऽमृतपर्वताः ॥
स्थिता इतही संकल्पे कस्मान्न प्राणतवान्गिरीन् ॥२९

इह यत्क्रियते कर्मं तत्परत्रोमभुज्यते ।
इतीह संकल्पपुरे सर्वमेवाऽसमञ्जसम् ॥३०
यदि स्यात्सुस्थिर किंचिद्वस्तु तद्दृश्यको भवेत् ।
न्याय एषोऽखिल: किन्तु सवित्वात्स्वस्वकं स्थित: ॥३१
इत्येष कथितो न्याय: सिद्धा!स्वनुभवस्तत: ।
यतो जगन्ति संकल्पश्चितो ब्रह्मस्वरुपत: ॥३२

इस प्रकार यह भ्रान्ति भास्वर चिदाकाशमय ही भासती है। यहाँ सत् असत् या सदासत् कुछ भी नहीं है ।२७। जिस-जिस का जैसा अनुभव है उस उसका वैसा ही है। तत्वदर्शी और प्रबुद्ध पुरुष को इसमें असमंसज ही क्या हो सकता है ।२८। स्वर्ग में स्थित अमृतमय झरने, सरिता, फल पुष्पादि से युक्त देवोपभोग पर्वतादि का ज्ञान होने पर और तदनुसार संकल्प करके काम्य अनुष्ठान करने वाला पुरुष वहाँ पहुँचकर उन संकल्पों के अनुसार पर्वतादि को प्राप्त होने का अनुभव क्यों नहीं करता ? ।२९। इस संसार में किये गये कार्य का फल भोग परलोक में मिलता है इस प्रकार इस सङ्कल्पनगर में जो कुछ अनुभूति है वह सब असमञ्जस ही है ।३०। यदि संसार में भूत भुवन आदि जो भी वस्तु है उसमें विरोध होन। असमञ्जस ही है या नहीं है, इस प्रकार के न्याय से अकुण्ठा होती है परन्तु सभी द्रष्टाओ के संवित् होने से स्वसङ्कपत ही दृश्यरूप में अवस्थित है यह यथार्थ कुछ भी नहीं है ।३१। सब जगत् ब्रह्मरूप से अवस्थित चित् के सङ्कल्प रूप है इसलिये इस असमञ्जसता को दूर करने वाले न्याय की स्थित स्वप्न और सङ्कल्प को कल्पनाओं के आधार पर है, उसकी योजना जगतों में भी जानी चाहिए ।३२।

तव संकल्पनगरे नास्त्येवाऽसंभवो यथा ।
सर्वार्थानां तथा ब्राह्मे संकल्पे नास्त्ययम्भव: ॥३३
यद्यथा कल्पितं यत्र यावत्संकल्पमेव तत् ।
स्वभावेन तथैवाऽस्ति यतस्तत्सनिवेशवत् ॥३४

ततः संप्रेक्षणमिह संकरो न प्रवर्तते ।
विनाऽन्यचित्प्रयत्नेन भवत्यर्थस्तु नाऽन्यथा ॥३५
आकल्पमजसंकल्पे यथा भातं जगत्स्थितम् ।
पुनरन्येन संकल्परूपेणाऽन्यदुपैष्यति ॥३६
संकल्पात्म स्वयं भाति कल्पे-कल्पे जगत्तथा ।
प्रतिजीवं चितिस्वप्ने स्वाप्नपुरं यथा ॥३७
संकल्पपत्तनतनोन तदस्ति किंचि-
द्यद्यन्न संभवति तच्च चिदात्मनाऽस्मात् ।
नाऽन्यत्प्रकल्पयितुराद्यपरस्वरुपा-
द्ब्रह्मैव तेन सकल जगदङ्ग विद्धि ॥३८

जिस प्रकार तुम्हारे संकल्पनगर में कोई भी पदार्थ असम्भव नहीं है वैसे ही ब्रह्म के सङ्कल्प जगत् में किसी पदार्थ को असम्भव न समझो ।३३। ब्रह्म सङ्कल्प में जिसकी जैसी कल्पना की गई, वह संकल्प के रहने तक उस प्रकार के ही स्वभाव और सन्निवेश से युक्त रहती है ।३४। उस प्रकार के सन्निवेश से ही यहाँ सब वस्तुयें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा दिखाई देते हैं और कर्मेन्द्रियों का व्यवहार भी सार्थकता से पृथक रहता है । चित् के प्रयत्न से नियत आकार वाला पदार्थ, चित् के अन्य प्रयत्न बिना अन्यथा नहीं हो सकता ।३५। ब्रह्म-संकल्प में जगत् का जिस प्रकार अनुभव हुआ वह उसी प्रकार प्रलय होने तक स्थित रहा और प्रलयो-परान्त अन्य संकल्प होने पर अन्य ब्रह्माण्ड की प्राप्ति होगी ।३६। स्वप्न में स्वप्ननगर के अनुभव के समान ही कल्प-कल्प में चितिरूप चितिस्व-रूप में संकल्परूपी जगत् का ही प्रत्येक जीव के प्रति अनुभव होता है ।३७। हे नृपेन्द्र ! संकलनगर रूपी इस संसार में आप जो कुछ हो सकता ऐसा समझते हो, वह समझना मिथ्या है, अर्थात् इसमें सभी कुछ हो सकता है । वह जो कुछ है सब कल्पना करने वाले चिदात्म ब्रह्म से पृथक नहीं है, अतः आप सम्पूर्ण संसार को ब्रह्म ही जानो ।३८।

११८—ब्रह्म ही जगत् है

भलेऽक्षयेन्दुभ रूपे प्राप्ते ध्यातृशतैर्नभ ।
यथा न शतपूर्णेन्दु तथेदं कथनं शृणु ॥१
चन्द्रविम्बस्य ध्यातार: प्राप्ता: प्राप्तव्यसुस्थिता: ।
नेद नभस्तलं प्राप्ता न चेपं शशिनं श्रिता: ॥२
क्वेवान्यसंकल्पपुरमन्व: प्राप्नोति कथ्यताम् ।
संकल्पपुर्यामथप्तिस्तज्जन्तावेव नाऽपरे ॥३
पृथक्पृथक्स्वसंकल्पसर्गखेष्वेव ते स्थिता: ।
चन्द्रास्तपन्ति तत्रैव कलाक्षयविवर्जिता: ॥४
विशेयमस्मिन्नेवेदान्विति ध्याता निशाकरे ।
अस्मिन्नेव विशत्यन्तरात्मबुद्धिसुखोज्झित: ॥५

वसिष्ठजी बोले—हे राजन् ! ध्यान करने वाले सैकड़ों व्यक्तियों के द्वारा अक्षय चन्द्रस्वरूप की प्राप्ति हो जाने पर, जैसे आकाश में सैकड़ों चन्द्रमा नहीं हो सकत, उस प्रकार के मेरे कथन को श्रवण करो ।१। यद्यपि अहंभाव से सत्यचन्द्रबिम्ब का ध्यान करने वाले पुरुष अपने चिर ध्यान के अभ्यास से अन्य भाव के भूलने के कारण चन्द्रत्व को प्राप्त हैं, तो भी वे न आकाशतल में पहुँचे और न चन्द्रत्व को ही प्राप्त हैं, वैसे ही ब्रह्म के सङ्कल्पनगर में किसी भी पदार्थ का असम्भव न होना है ? सङ्कल्पनगर के पदार्थों की प्राप्ति उसी संकल्पनगर वाले पुरुष को होगी, अन्य को नहीं होसकती । अपनी-अपनी सङ्कल्प-सृष्टियों के पृथक्-पृथक् आकाशों में अवस्थित अक्षय कला वाले वे चन्द्रमा, वहीं-वहीं प्रकाशित होते हैं ।४। मैं इसी चन्द्रमा में प्रवेश करूँ ऐसे ध्यान वाला एवं अन्तर में आत्म बुद्धि के सुखसे शून्य जो ध्याता है, वही इसी चन्द्रमा से प्रवेश करता है ।५।

अहमिन्दु प्रविष्ट: स्यामिन्दुबिम्बसुखान्वित: ।
ध्यायेति तादृक्सुख भाग्यवतीति विनिश्चय: ॥६

यथाऽयमनुसंधत्ते स्वभावं संविदव्यया ।
तं तथैवाऽनुभवति भवेच्चेद् दृढनिश्चयः ॥७
यतेन्दुत्व स्वसकल्पात्सर्वंध्यातु पृथक पृथक् ।
भात्येवमेववनितालाभः काल्पानकः स्वतः ॥८
या ध्याने ध्यातृलक्षाणां साध्वी भार्यात्वमागता ।
तत्कल्पानुभवनं तेषां सत्वात्मनि स्थितम् ॥९
गृहादनिर्गतो जोवः सप्तद्वीपपतिः स्थितः ।
तस्याऽपि तत्काल्पनिक राज्यं व्योम्नि स्वमन्दिरे ॥१०

मैं चन्द्रबिम्ब के सुख से सम्पन्न होकर चन्द्रमा में प्रवेश करूँ ऐसा ध्यान करने वाला उपासक इसी प्रकार का सुख प्राप्त करता है। अर्थात् उसका जैसा ही निश्चय हुआ जैसा ही पाया ।६। ध्यान करने वाले के दृढ़ सङ्कल्प के कारण उस स्वभाव का अविनाशिनी साक्षि संवित् उसी प्रकार अनुभव करती है, उससे विपरीत नहीं ।७। जिस प्रकार सब ध्यान करने वालों को अपने-अपने सङ्कल्प के अनुसार पृथक्-पृथक् चन्द्रत्व की अनुभूति होती है, उसी प्रकार अपनी कल्पना से ही स्त्री लाभ की सिद्धि भी पृथक्-पृथक् होती है। ध्यान में जो साध्वी नारी लाखों ध्यान करने वालों की पत्नी बनी, उसकी कल्पना में उत्पन्न अनुभूति उनके अन्तः करण में उपहित साक्षी में विद्यमान है ।९। अपने घर में बाहर न निकलने वाला जो जीव वही सप्तद्वीपेश्वर होकर स्थित है उसका वह कल्पनासिद्ध राज्य अपने ही चिदाकाश में प्रतीत होता है ।१०।

समस्तं कल्पनामात्रमिदमाद्यजन्मनः ।
शून्यमप्रतिघँ शान्तं तेष्वपि स्यात्किमन्दथा ॥११
दानौर्ध्वदेहिकतपोजपादीनाँ परत्र यत् ।
अमूर्तानां फलँ मूर्त तदिदँ कथ्यते शृणु ॥१२
दानादिचिह्नितधियः परत्रस्वप्नवत्फलम् ।
पश्यन्त्यमूर्ता मूर्ताभमज चिन्मूकितल्पनात् ॥१३

वेदनावेदनाकारास्पन्दास्पन्दात्म वै पुनः ।
चिन्मात्रस्याऽस्य तद्भ्रान्तिशान्तौ शान्तात्म निर्मलम् ॥१४
चिन्मात्राभमितो दानादमुत्राऽऽत्तमवाप्नुयात् ।
संकल्पात्मेति कवयः कथं तन्नोपलभ्यते ॥१५

जब हमारा यह दिखाई देने वाला सम्पूर्ण संसार जन्म से सर्वज्ञ ब्रह्म की कल्पनामात्र तथा शून्य आकार रहित और शान्त है, तब उपासकों के द्वारा कल्पित संसारों में क्या अन्यथा और विचित्र सत्यता हो सकती है ? ।११। हे नृप ! दान और्ध्व-देहिक कर्म, तप, जप, आदि अमूर्त कर्मों का फल परलोक में मूर्तिमान किस प्रकार होगा ? अपनी इस शङ्का का समाधान सुनो ।१२। दान आदि लक्षण बुद्धि वाले अमूर्त जीव परलोक में स्वप्नवत् मूर्त जैसे भासमान अनुत्पन्न फल को देखते हैं । इनके आकार की कल्पना चित् से ही हो सकती है ।१३। मन एवं ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा वेदन और अवेदन जैसी भ्रान्ति होती है । उस भ्रान्ति के विषय की प्राप्ति के लिये ही चिन्मात्र मन के सहित कर्मेन्द्रियों द्वारा स्पन्द तथा अस्पन्द रूपत्व होता है । परन्तु उस भ्रान्ति के शमन होने पर स्वच्छ शान्त चिद्रूप आत्मा ही शेष रह जाता है ।१४। इस लोक में किये गये दान से परलोक में चित्-प्रतिमारूपी वह-वह फल मिलता है । विद्वानों का कथन है कि उसे संकल्प जीव पाता है तो फिर उस फल की प्राप्ति परलोक में क्यों न हो ? ।१५।

कल्पनात्मनि संसारे संकल्पोऽकुत्रिमा फलम् ।
चिन्मात्रमभितोऽदानाद्दानाद्वास्तु यथोदितः ॥१६
एतत्ते कथितं सर्वं यथापृष्टं महीपते ।
जगदप्रतिघं सर्वमिदं चिन्मात्रकल्पनम् ॥१७
सर्वादौ भगवन्देहमिदं चिन्मात्रकल्पनन् ।
कथ भाति कथं कुड्व पिना दीपः प्रकाशते ॥१८

त्वयाऽर्थो देहशब्दस्य यो बुद्धः सः महामुने ।
तत्वज्ञं प्रति नास्त्येव शिलानृत्यमिवाऽम्बरे ॥१९
य एव ब्रह्मशब्दार्थो देहशब्दार्थ एव सः ।
नाऽर्थयोरनयोर्भेदो वित्ततेम्बम्फसोरिव ॥२०

इस कल्पनायुक्त संसार में किये गए दान से पूर्व कहे हुये अकृतिम संकल्प ही परलोक में और चिन्मात्र रूपी भोग फल दान अथवा ऐश्वर्य आदि के रूप में हों और दान-रहितता से दारिद्रया आदि के रूप में हो, इसमें कोई विरोध नहीं है ।१६। हे महीपते ! आपने जो कुछ मुझ से पूछा, उस सबके विषय में मैंने कह दिया। यह सम्पूर्ण निराकार संसार चिन्मात्र की कल्पना समझो ।२७। राजा ने कहा हे भगवान् ! सर्गारम्भमें चिन्मात्र (देह-रहित जीव) और उसके द्वाराकी गई शरीर की कल्पना किस प्रकार भासती है । शरीरके विना चित् की अभिव्यक्ति संभव नहीं ।भला कभी भी मिति के बिना दीप-प्रभा का प्रकाश टिक सकता है ? ।१८। वशिष्ठजी ने कहा—हे महापते ! हे राजन् । शरीर शब्द का जो अर्थ आपने जाना है वह तत्वज्ञानी के प्रति उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार कि आकाशमें पत्थरों का नृत्य सम्भव नही है । ।१६। ब्रह्म शब्दका जो अर्थ है, वही अर्थ शरीर शब्द का है जैसेअम्बु और सम्भस् शब्द का अर्थ जल ही होने से अभिन्न है, वैसे ही ब्रह्म और शरीर के अर्थ में अभिन्नता है ।२०

यदेव ब्रह्मेदेहोऽसौ स्वप्न एव तु।
त्वद्बोधायाच्यते युक्तिर्न तु तत्स्वप्न एव तु ॥२१
स्वप्नस्तवाऽनुभूतार्थ स्तेनाऽतत्तवं प्रवोध्यसे ।
नतु सर्गे चिदाभाते सादृश्यं स्वप्नभस्मना ॥२२
कस्तत्र नाम देहोऽयं कस्यैते स्वप्रधीः क्व वा।
स्वप्नेन ज्ञानबुद्धेन भ्रमेणाऽज्ञोऽववोध्यते ॥२३
तत्र जाग्रन्न च स्वप्नो न सुषुप्तं न चेतरत् ।
किममीत्थमिदं भानं खमात्रं मौनमोमलम् ॥२४

अभानमेव भातीव यदद्येत्थमिदं तु तत् ।
प्राग्विभातं तथाऽत्स्यच्छजाग्रतत्स्वप्नादि नो यथा ॥२५

स्वप्न-देह समान यह देह ब्रह्म है। इसमें जो स्वप्न का दृष्टान्त दिया गया है, वह आपको सरलता से समझाने के लिए ही है, यथार्थ में तो स्वप्न-देह भी ब्रह्म है।२१। स्वप्न के अर्थ का आपको अनुभव होने से ही स्वप्न का दृष्टान्त दिया है। स्वप्न रूपी भस्म के साथ चिद्रूप से भासित सृष्टि में समानता कभी नहीं है।२२। स्वप्न में यह शरीर कौन है? स्वप्न के यह पदार्थ किसके हैं? अथवा स्वप्न बुद्धि कहाँ है ज्ञानी द्वारा अवअबुध भ्रमरूपी स्वप्न के द्वारा अज्ञानीजन को प्रबोध करते हैं।२३। ब्रह्मपद में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अथवा अन्य कुछ भी नहीं हैं, अपितु मन और वाणी से आग्रह्य विराट् विश्व एवं तैजस और सर्वप्रलय होने पर भी एक मात्र अवशिष्ट रहने वाला, स्वयं प्रकाश, निर्मल अवाच्य चिदाकाश ही इस जगत्रूप में प्रकाशित रहता है। जो आज यह सँसार भासमान सा लगता है वह भासित नहीं है। सच्चिदानन्दरूप से पूर्व भासित हुआ भी वह स्वरूप से उसी प्रकार अभासित है। जैसे जाग्रत स्वप्न आदि कभी नहीं है, वैसा ही अत्यन्त स्वच्छ ब्रह्म भी है।२५।

देशाद्देशान्तरप्राप्तौ यन्मध्ये संविदो वपुः ।
तन्मय सर्वमेवेद द्वैतमद्वैतमेव च ॥२६
अन्यत्र चिन्मय स्वप्नं द्वैताद्वैतं शुभाशुभम् ।
निरावरणचिन्मात्रनभसैवोपमीयते ॥२७
शून्यमर्थोपलम्भश्च भानं चाऽमानमेव च ।
द्वैमैक्यमसत्सच्च सर्व चिद्गगन परम् ॥२८
पूर्णत्पूर्ण प्रसरति पूर्णमेव स्थितं जगत् ।
न च भातं नचाऽऽभातं शिलाबद्धोदरोपमम् ॥२९
यतो जगच्चिदुन्मेषो व्योमात्माऽप्रतिधं ततः ।
चिन्मात्रं यत्र यत्राऽस्ति तत्र तत्रोचितं जगत् ॥३०

जिस प्रकार संवित् एक देश से दूसरे देश में जाने पर मध्य में सँवित् का रूप विषय-रहित रहता है, उसी प्रकार द्वैत-अद्वैत आदि विषय-रहित यह सभी कुछ चिन्मात्रयुक्त है ।२६। अज्ञानी की दृष्टि से भिन्न अर्थात् ज्ञानी की दृष्टि में चिन्मय स्वप्न, द्वैत, अद्वैत शुभ, अशुभ आदि जो कुछ भी है उस सबकी तुलना निरावरण चिन्मात्र से की जाती है ।२७। शून्य, अर्थों की उपलब्धि, मान-अमान अर्थात् सर्ग-प्रलय, द्वैत, ऐक्य, सत् असत् सभी कुछ चिदाकाश है ।२८। ब्रह्म से विश्व उत्पन्न होता है और यह पूर्ण ही इस प्रकार स्थित है। इसका कभी भान या अभाव हुआ ही नहीं । किन्तु शिलाबद्ध उदर के समान उसके घनीभूत मध्य जैसा यह चिन्मात्र घन है ।२९। इस विश्व के चित् का उन्मेषमात्र होने के कारण यह निराकार चिद्व्योम मात्र ही हैं । इस प्रकार जहां चिन्मात्र की स्थिति है वहाँ-वहाँ विश्व का रहना भी उचित ही है ।३०।

चिदव्योम चाऽस्ति सर्वत्र सर्वं चेतज्जगन्मयम् ।
सर्वं ब्रह्ममयँ शान्तं जगदित्यपि शब्दितम् ॥३१
यथास्थितमिदँ विश्वं तथासंस्थमनामयम् ।
बह्मैव निरवद्यात्म चित्साँकल्पपुराकृति ॥३२
असाँभवादन्ययुक्तेर्युँक्तिरेषैव शोभना ।
अयुक्त्यनुभवं तूक्तँ नाऽर्थिनामिहशोभते ॥३३
लोके शास्त्रेऽथ वेदादौ यत्सिद्धं सिद्धमेव तत् ।
सदस्त्वसद्वाऽऽत्मनि तद्धातुँ शक्यं न वा क्वाचिद् ॥३४
तदेवेत्थं परिज्ञातं ब्रह्मतामुपगच्छति ।
यदा तेन सभं विश्वं स्थितमेव विलीयते ॥३५
न्यायेनैतदिहोक्तोन लोकवेदादि सिद्धयति ।
सर्व सजीवन्मुक्तन्वेष एवोचितस्ततः ॥३६

चिद्व्योम सर्वत्र और सर्वव्यापक है, यही जगन्मय है, इसीलिए जगद् शब्द से कहा जाने पर भी यह सब ब्रह्ममय ही है ।३१। चिद्व्योम

व्योम के संकल्परूप में यथावस्थित यह विश्व उसी प्रकार अनामय रूप निरवद्यात्मक ब्रह्म ही है ।३२। इस विषय में अन्य कोई युक्ति उचित नहीं होने के कारण यह युक्ति शोभामयी है । यहाँ युक्ति और अपने अनुभव के बिना किसी पुरुष का पुरुषार्थ की इच्छा करने वाले व्यक्तियों के प्रति उपदेश देना अशोभनीय होता है ।३३।लोक, शास्त्र या वेदादि में युक्ति, प्रमाण एवं अनुभवादि से सिद्ध वस्तु ही सिद्ध तथा आत्याज्य है । इस प्रकार वेदादि से सिद्धि, ब्रह्म, को सद्रूप माने तथा असिद्धद्वैत की असद्रूप समझें ।२४। जब उपलब्ध ज्ञाने के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व यथा स्थित ही विलीनता को प्राप्प हो जाता है तब प्रथम ब्रह्मरुपता से भिन्न जाना हुआ विश्व ही ब्रह्मरूप से जाना जाकर ब्रह्मता को प्राप्त हो जाता है ।३३। मेरे द्वारा कहे गये न्याय से जीवन-मुक्त सहित लोक एवं वेदादि रुप सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही सिद्ध हुआ । अतः मैंने यह जो न्याय प्रतिपादित किया है, वह परम पुरुषार्थ का साधक होने के कारण सर्वथा ग्रहणीय है ।३६

परिजातं चिदाकाशंपरिज्ञातापावपे ।
सोऽहं त्रिजगदित्येव बन्धमोक्षविनिर्णयः ॥३७
यथास्थितामिदं द्रश्यं परिज्ञानाद्विलीयते ।
तज्जस्याऽस्तंगतास्यैव शिलामौनं तु शिष्यते ॥३८
लोके शास्त्रे च वेदे च यत्सिद्ध सिद्धमेव तात् ।
संबद्यते तादेवाऽयस्तादेवं फलति स्फुटम् ॥३९
सकलार्थनिरासेन यद्यत्संवेद्यते चिरम् ।
तादेव प्राप्यतेऽवश्यं सर्वत्रैवाऽन्यभावितांम् ॥४०
यथाऽनुभूतं यत्तत्तत्तथा नामाऽनुभूयते ।
तात्सत्यमस्त्व सत्थं वा यावत्लाभं ताथा नु तात् ॥४१
इत्थं महाप्रश्नविचारणं ते ।
मयेदमुक्ते र्मतिमन्महात्मन् ।

अनेन गच्छाऽऽशु पथा निराधि -
र्निरामयो निर्व्यसनो भवोच्चैः ॥४२

केवल इस अपरिज्ञात संसार रुपी वृक्ष में परिज्ञात चिदाकाश ही मैं ही हूँ अर्थात् जो परिज्ञात चिदाकाश है वह जगत् रुपी बन्धन एवं परिजात चिदाकाश मोक्ष है यही मेरा निर्णय है ।३७। यह सम्पूर्ण यथास्थित दृश्य परिज्ञानसे जल में डाले हुए लवण के समान विलीनता को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार बृश्यरुप में अस्त हुए ज्ञानी का शिला के समान मौन स्वरूप ही अवशिष्ट रह जाता है।३८। लोक, शास्त्र और वेद के द्वारा जो सिद्ध है वह सिद्ध ही है, असंख्य विचारों द्वारा निश्चित वस्तु अपने अनुभव से भी जानी जाती है,इसलिय यही पुरुषार्थ रुपसे फल देने वाली होती है, ।३९। सभी वस्तुओंके निराम द्वारा जिस जिस रुप का चिरकालतक ध्यान किया जाय उसकी प्राप्ति अवश्य भावी है। उसी प्रकार अन्यभावित वस्तु की प्राप्ति लौकिक कार्यो में भी अवश्य होती हैं ।४०। परन्तु जिस वस्तु का जैसा अनुभव होगा वही वैसी ही प्रतीत होगी। चाहे वह सत्य हो या असत्य जब तक उसकी स्थिति रहती है तब तक यथावत् ही रहती है ।४१। हे मतिमान् ! हे महात्मन् ! तुम्हारे महान् प्रश्नों का मैंने यह विचारपूर्वक फलभूत समाधान कह दिया है। तुम इसी मार्ग पर चलो । इससे तुम आधि व्याधि से रहित और इन्द्रियों के व्यसनों से बचते हुए उच्चता को प्राप्त करो ।४२।

—●—

११९—जगत् ब्रह्म ही है

इति तत्रोपविश्याऽहं पूजितस्तेन भूभुजा।
प्रयोजन स्वं संपाद्य स्वर्गन्तु गगनं प्लुतः ॥१

अद्यैतत्भवता प्रौक्तं मया मतिमतां वर।
अनया सुदृशा शान्तमनाः खात्मा भविष्यसि ॥२
ब्रह्मव तदिदं सर्व निर्नामिवाऽमलं नभः।
किमप्येवाऽजमाशान्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥३
चिदभानपात्रमित्युक्त ब्रह्मे ति कलिताभिधम्।
परात्परमिमि प्रोक्तं तत्तु निर्मामकं पदम् ॥४
सिद्धसाध्ययमब्रह्मविद्याधरदिवौकसाम्।
ब्रह्मन्कथय दृश्यन्ते लोका लोकधरा कथम् ॥५

वसिष्ठजी बोले—हे रघुनन्दन ! उस राजा के द्वारा पूजित हुआ मैं उस कुशद्वीप की इलावती नगरी में स्थित होकर जब राजा प्रज्ञप्ति पर अनुग्रहरूप अपना प्रयोजन पूरा कर चुका, तब स्वर्ग में जाने के लिए गगनमार्ग द्वारा चल पड़ा।१। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! आज यहाँ इस अयोध्या नगरी में अवस्थित हुए मैंने आपसे यह जो कुछ कहा है, उसके अनुसार अपना श्रेष्ठदृष्टि रखते हुये आप शांतमन वाले और चिदाकाश रूप हो जाओगे।२। क्योंकि यह सब कुछ वाणी से अगम्य, अजन्मा, परमशान्त आदि मध्य अन्त से सर्वथा शून्य है इसलिये ब्रह्माकाश रूप ही है।३। जो चिद्भानमात्र कहा गया है और जिसकी ब्रह्म, रूप से कल्पना की गई है, वह परात्पर कहा हुआ और नाम-रहित पद ही है।४। श्रीराम ने कहा—हे भगवान् ! सिद्ध, साध्य, यम, ब्रह्मा, विद्याधर और देवताओं के जो लोक हैं उनके निवासी जीव किस प्रकार के दिखाई देते हैं, यह आप मेरे प्रति कहिये।५।

सिद्धसाध्ययमब्रह्मविद्याधरदिवौकसाम्।
अन्येषामपि भूतानामपूर्वाणां महात्वनाम् ॥६
प्रतिरात्रं प्रतिदिनं पुरः पश्चादुपर्यधः।
पश्यस्यालोकयँल्लोकानपश्यँ न पश्यति ॥७
एते लोकाः किलैतेषां नाऽभ्यासः स्थानदूरगाः।
एते संकल्पकोकाख्या व्याप्तमेभिः किलाऽखिलम् ॥८

यथैते कल्पनालोका अर्थ लोकस्तथैव नः ।
यथा काल्पनिको वातो लोका लोकास्थैव ते ॥९
सङ्कल्पस्वप्नोका ये तव भान्ति दिवानिशम् ।
त एव तादृशाश्चाऽन्ये सङ्कल्पेन स्थिरीकृताः ॥१०

वसिष्ठजीं बोले—हे राम ! सिद्ध, साध्य, यम, ब्रह्मा विद्याधर, देवता तथा अन्याय अपूर्वभूत महात्माओं के लोकों को प्रत्येक रात्रि, प्रत्येक दिवस, सम्मुख पीछे, ऊपर और नीचे वाली धारणाओं से देखने पर ही तुम देखते हो, यदि उक्त रीतिसे न देखो, तो कुछ भी नहीं देख सकते ।६-७। सिद्ध लोक, महलोक चार प्रकार के हैं—महर्लोक, जनो लोक तपोलोक और सत्यलोक । प्रथम प्रकार का यह लोक बहुत दूरहै तथा दूसरे प्रकार के जो सिद्धों के लोक हैं, वे उनके संकल्प से निर्मित संकल्पलोक कहे जाते है । इनके सर्वत्र विद्यमान होने से सम्पूर्ण जगत् इनसे व्याप्त है । इन दोनों प्रकार के लोकों में धारणा के अभ्यास की आवश्यकता है, जो कि आपको नहीं है ।८। जिस प्रकार वे सिद्धलोक कल्पनाजन्य हैं, उसी प्रकार यह लोक भी कल्पनामात्र ही है । जैसे काल्पनिक वायु सर्वत्र भ्रमण शील है वैसे वे लोक भी घूमते, फिरते हैं । परन्तु यह लोक इससे भिन्न विशेषता वाला है । दिन-रात्रि जिन स्वप्नलोकों और संकल्पलोंकों की प्रतीति होती है वे ही सिद्धलोक हैं । उन्हीं के समान उन्होंने अन्यान्य लोकों की रचना करके संकल्पसे उन्हें स्थिर किया है ।९-१०।

ध्यानेन त्वमपीतांश्चेत्स्थिरता सुस्थिरात्मना ।
नयस्याशु तदेवैते स्थिरा यान्त्यविघ्नतः ॥११
यथाभिमताविस्तारा यथाभिमतसंपदः ।
सङ्कल्पभाववलिता जनः पश्यति सिद्धवत् ॥१२
किन्तु ते स्थितां नीताः सिद्धः स्वयानसंपदा ।
अस्थिरैर्ध्यानीवश्रान्तौ तैर्दुखैस्तदमी कृताः ॥१३
जगतप्रतिघं सर्व शान्तचित्व्योम सर्वदा ।
यथा दृढं सविदितं तथैवाभाति नाऽन्यथा ॥१४

न भात्येवाऽसंविदितमस्ति नास्ति न चोद्यता ।
शून्यं ह्यप्रतिघ चैतत्पराकाशमरोधकम्।। १५

हे राम ! यदि आप भी उसी प्रकार योगधारणा युक्त स्थिरीकृत ध्यान द्वारा संकल्पजन्य लोकों को स्थिर करने का यत्न करो तो वे भी निर्विघ्न रूप से स्थिर हो जायेंगे ।११। जैसे इच्छा हो वैसा ही उनका विस्तार और इच्छित सम्पत्तियों से परिपूर्ण कर सकते हैं । दृढ़ संकल्प से युक्त पुरुष उन्हें सिद्धों के समान ही स्थिर देख सकता है ।१२। पूर्व जन्म में उत्पादित जिन पुण्य सम्पत्तियों से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उन्हीं साधन रूपी सम्पत्तियों द्वारा सिद्धों ने उन लोकोंको स्थिर किया है। इस प्रकार उनके वे लोक अनायास ही सिद्ध हो गये है, परन्तु जिन्होंने अस्थिर ध्यान के अभ्यास में प्रयत्न किया है वे अत्यन्त दुःख पूर्वक ही इन लोकों को स्थिर बना सकेंगे ।१३। सम्पूर्ण जगत् सदैव निराकार शान्त चिद्व्योम ही है । अपने-अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार ही दृष्टि का स्फुरण होता है, उससे भिन्न नहीं होता।१४। निश्चयशून्य जगत का भान नहीं होता । जो जगत् अनिश्चिय है, उसमें भाव या अभाव का तर्क ही नहीं हो सकता । इसलिए शून्य निराकार, निरोध रहित यह जगत् परमाकाश ही है ।१५।

चित्स्वभाव भातं भारूपमिव दृश्यते ।
अस्मिश्चिदभिमानश्च विद्यते न स्वभावतः ।।१६
कार्यकारणभावाच्चेत्कथैवाऽत्र न विद्यते ।
व्योम्नोऽनन्तस्य कि कथं किल जायते ।।१७
यच्च जातमिवाऽभाति व्योम्नि व्योमेव तत्तथा ।
तत्रैकद्वित्वकलना कीदृशी स्वादरूपिणी ।।१८
तद्धि यादशमेवाऽसीत्तादृगेवाऽवतिष्ठते ।
निर्विकारं यथा स्वप्ने व्योमैवाऽचलवद्भवेत् ।।१९
सङ्कल्पे चित्तमाकारं यथोदेत्यद्रिलीलया ।
न च सोऽद्रिर्न तद्व्योम तथा ब्रह्म जगत्स्थितिः ।।२०

दृढ़ निश्चय से जिस वस्तु का भान होता है, वह चित्स्वभाव होने के कारण भारूपके समान दिखाई देतीहै। परन्तु इस असंविदिति लोक में चित्सत्ता और स्फूर्ति की स्वभावत न होने से वह शून्य एवं आकार रहित ही सिद्ध होता है।१६। यदि कहें कि कार्य-कारण भाव से इसकी अन्य सत्ता होगी, तो उसका यहाँ कहना ही क्या ? सर्गादि में प्रलीन हुए आकाश से अनन्त विश्व की उत्पत्ति क्या और किस प्रकार हो सकती है ?।१७। आकाश में जो भूत भुवन आदि उत्पन्न हुई दिखाई देते हैं,वह सर्ग आकार में आकाश की ही उस प्रकार की प्रतीति होती है इसलिये द्वैत अद्वैत की कल्पना भी कठिन हैं।१८। वह जैसा था, वैसा ही रहता है, उसमें कभी किसी प्रकार के विकार की सम्प्राप्ति नहीं होती। जिस प्रकार स्वप्न में अपने रूप को छोड़े बिनाही चिदाकाश स्वप्न-वस्तु का विवर्ताधिष्ठान है, उसी प्रकार वह अचल के समान ही है अर्थात् उसमें कारणतया या विकार कुछ भी नहींहै।१९। चित् संकल्प में जिस प्रकार की कल्पना करता हुआ पर्वत-लीला से उदय को प्राप्त होता है,वह असार ही है। यथार्थमें तो न वह आकाश है और न पर्वत ही है, उसी प्रकार ब्रह्म में विश्व की स्थिति है।२०।

काष्ठयन्मौनमास्थाय रटन्तोऽपि महाधियः।
इह व्यवहरन्त्येते बुधा दारुनरा इव ॥२१
यथा वारिणि वर्तन्ते तरङ्गावर्तवृत्तयः।
अनन्यः परिवर्तन्ते यथा ब्रह्मणि सृष्टयः ॥२२
यथा वायौ परिस्पन्दा यथा व्योमनि शून्यता।
अनन्याश्चाऽप्यमूर्ताश्च तथा ब्रह्मणि सृष्टयः ॥२३
यथा सङ्कल्पनगरं शून्यमेव पुरः स्थितम्।
साकारमप्यनाकारं ब्रह्मणोदं तथा जगत् ॥२४
चिरानुभूतमप्यर्थकार्यपोदं जगद्त्रयम्।
शून्यमेव निराकारं सङ्कल्पनगरं यथा ॥२५

काष्ठ के समान मौन में स्थित एवं रटते हुए भी ये महान् बुद्धि वाले जीवन्मुक्त पुरुष कठपुतली के समान व्यवहार करने से जान पड़ते हैं ।२१। जैसे जल में तरङ्ग और आवर्त्त आदि वृत्तियाँ जल से अभिन्न ही है, वैसे ही ब्रह्म में सृष्टियाँ भी अभिन्न हैं ।२२। जैसे वायु से अभिन्न स्पन्द की स्थिति है और जैसे आकाशसे अनन्य अमूर्त्त शून्यता है, वैसे ही ब्रह्म से अभिन्न वे सब अमूर्त्त सृष्टियाँ हैं ।२३। जिसप्रकार निराकार संकल्पनगर भी समक्ष स्थित रहता है, वह साकार प्रतीत होने पर भी निराकार है, उसी प्रकार ब्रह्म में विद्यमान यह जगत् भी आकार-रहित होने पर भी सामने स्थित है ।२४। यह त्रिलोकी चिर-काल में अनुभव में क्यों न आ रही हो, और यह अर्थयुक्त क्रिया की करने वाली भी क्यों न हो, तो भी जैसे स्वप्ननगर निराकार और शून्य है वैसे ही यह भी आकार-रहित और शून्य ही है ।२५।

यदेव चित्तसङ्कल्पस्तदेव नगरं यथा ।
तदाऽ तथाऽयं ब्रह्माच्छं तदेव जगदुच्यते ॥२६
चिरं नित्यानुभूतोऽपि जगदर्थो न किंचन ।
विद्यते पुरुषस्येह स्वप्ने स्वमरणं यथा ॥२७
स्वप्ने पुंसा मृतेनाऽपि स्वदाहो दृश्यते यथा ।
असदेव सदाभास प्रगदृष्टं परे तथा ॥२८
जगत्ता चाऽजगत्ताच परस्यैवाऽमलं वपुः ।
पराभिधानं च परं न सत्परमार्थतः ॥२९
इत्थमस्तु यदि वाऽन्यथाऽस्तुवा ।
मैव भूद्भवतु कोऽत्र सम्भ्रमः ।
मुञ्च फल्गुनि फले फलग्रहं
बुद्धवानसि कुतः परिश्रमैः ॥३०

संकल्पनगर के व्यवहार में चित्त का संकल्प हो उस नगर के रूप में है । उसी प्रकार यह निर्मल ब्रह्म ही दिखाई पड़ने वाला जगत् है । वही जगत् कहा जाता है । चिरकाल से नित्यप्रति अनुभव में आता

हुआ यह जगद्रूपी पदार्थ उसी प्रकार कुछ नहीं है जिस प्रकार कि स्वप्न में कोई पुरुष अपने मरण का अनुभव करके भी मरता नहीं है ।२७। जैसे स्वप्न में मरण को प्राप्त हुआ पुरुष अपना दाह संस्कार प्रत्यक्ष देखता है, तो भी वह मिथ्या है, वैसे ही ब्रह्म में दृश्यमान जगत् सत्य के समान भासित होने पर भी असत्य है ।२८। जगत्ता और अजगत्ता (असंसारता) ब्रह्म के ही मन-रहित देह है जो रज्जु आदि के सर्पादि संज्ञक न हो सकने के समान ही परमार्थतः असत् है ।२९। हे रघुनन्दन ! सिद्ध-लोकों के भोगादि का जो फल मैंने कहा वह कल्पना-मात्र हो, चाहे अन्य मुनियों द्वारा कहा गया फल अन्य प्रकार का हो, चाहे न हो, तो भी आप जीवन्मुक्त का उनके विषय में क्या संभ्रम हो सकता है ? हे वत्स ! आप सिद्धि आदि विषयक तुच्छ फल की इच्छा मत करो । ब्रह्मत्व को आपने जान लिया है, इसलिए केवल मायारूपी सिद्ध लोकों के ऐश्वर्य-ज्ञान के लिए व्यर्थ परिश्रम करने से कोई लाभ नहीं है ।३०।

१२०—ब्रह्म ही संकल्पमय त्रैलोक्य है

चित्वाद्ब्रह्मा खमेवाऽहमिति वेत्तीव यत्स्वयम् ।
तदैव परमेष्ठित्वं तस्योदमिदं जगत् ॥१
एवं स्थिते न च ब्रह्मा न च जातं जगत्स्थितम् ।
स्थितं यथास्थितमजं परं ब्रह्मैव पूर्ववत् ॥२
संवित्तौ तु जगद्रूपं भासतेऽप्येवमेवतत् ।
मृगतृष्णेव मिथ्यैव दृष्यमानमपि त्वसत् ॥३
अतः प्रभति शून्येयं भ्रान्तिरभ्युदिता न वा ।
कुतःकेव किल भ्रान्तिर्ब्रह्मैव तदनामयम् ॥४
जगद्ब्रह्मजलवर्तो द्वित्वैकत्वेकिलाऽत्र के ।
क्वाऽवर्तपयसोर्द्वित्वं द्वित्वात्क्व चैकता ॥५

तद्ब्रह्म घनमाशान्तं चित्वाच्चेतत्यहं विदत् ।
निजं शून्यत्वमन्तस्थं व्योमैव विततान्तरम् ॥६
पवनः स्पन्दनमिव हुताशन इवोष्णताम् ।
स्वशैत्यमिव पूर्णेन्दुः सत्तामर्थ इवाऽऽत्मनः ॥७

वसिष्ठजी बोले—हे राम ! जो पुरुष, ब्रह्माकाश चित्त होने के कारण अपने को अहंकार समष्टि स्वरूप हिरण्यगर्भ जानता है उसका वैसा ज्ञान ही परमेष्ठि स्वरूपत्व अथवा हिरण्यगर्भत्व है, उनका उदर ही यह त्रैलोक्य है ।१। इस प्रकार न ब्रह्म ही उत्पन्न हुआ और न यह दृष्ट जगत् ही । परब्रह्म अज ही यथा-पूर्व अवस्थित है ।२। संवित में भासित जगद्रूप ही सत् है वह मृगतृष्णा के समान मिथ्या एवं दिखाई देता हुआ भी असत् ही है ।३। आरम्भ से शून्य तक भ्रान्ति का ही अभ्युदय हुआ है अथवा वह सभी नहीं हुआ । यह भ्रांति क्याहै ? कहाँ से है ? यह जगत् निश्चय ही अनामय ब्रह्म है ।४। जगद्रूप ब्रह्म जल से आवर्त है इसमें एकत्व और द्वित्व—कौन—सा है ? आवर्त्त और जल में कहीं भेद है क्या ? जब भेद ही नही हैं तत्व एकत्व भी कहाँ से आया? क्योंकि एकत्व की सिद्धि भी द्वित्व पर आधारित है ।५। वह चिद्घन शान्त ब्रह्म चित्त होने से 'अहम् के द्वारा अहंकार समष्टि रूपत्व को उसी प्रकार जानता है, जिस प्रकार कि विस्तृत आकाश अपनी आन्तरिक शून्यता को जानता है ।६। जैसे वायु को अपने स्पन्दनशील गुरुका ज्ञान है, जैसे अग्नि को अपने उष्ण स्वभाव की जानकारी है जैसे पूर्ण चन्द्र अपनी शीतलता से परिचित है, वैसे ही ब्रह्म अपनी सत्ता के अर्थ से पूर्ण परिचित है ।७।

एतद्ब्रह्मन्कदा नाम तन्न चेतितवन्मुने ।
निरावृतमनाद्यन्तं किमिदानी प्रचेतति ॥८
एवमेतत्सदैवतदमाद्यपि चेतति ।
नह्य नादेरजस्याऽस्य काऽप्यपेक्षा स्वसंविदा ॥९

सर्गासर्गनभोरूपं ब्रह्म सर्वत्र सर्वदा ।
न कदाचिदिदं नेदं ज्ञातं नेदंचं किंचन ॥१०
पवनस्पन्दनं चन्द्रशैत्यं शून्यत्वमम्बरम् ।
ब्रह्माहंत्वमनन्यात्म न कदाचिन्न चेतति ॥११
सर्वदैवेदृशी सता न काचिदनीदृशी ।
जगद्यस्मादनाद्यन्तं ब्रह्मात्मैव निरामयम् ॥१२
केवलं त्वमबुद्धबाच्छब्दश्रवणवेधितः ।
अद्वये ब्रह्मबोधेऽस्मिन्द्वितामभ्युपगच्छसि ॥१३
न कश्चित्किंचिदेवेह न कदाचिन्न चेतति ।
न कश्चिच्च तदन्यात्मा न कदाचिच्च चेतति ॥१४
इदं त्रिभुवनाभासमीदृशं भाति सर्वदा ।
शान्तं राम समं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन ॥१५
न कदाचन जायन्ते नभसः पादपाद्रयः ।
ब्रह्मणश्च जगन्तीति मत्वा शान्ति परां व्रज ॥१६
उपदेश्योपदेशार्थं सदेहावसरेऽल्पधीः ।
यावन्न बुद्धस्तावत्त्वं भेदमभ्युपगच्छसि ॥१७
बोध्यस्य तु विबुद्धस्य न शास्त्रादि न शब्दधी ।
न भेदबुद्धिर्नो भेदः किमप्येष प्रजापतेः ॥१८

श्रीराम बोले–हे ब्रह्मन् ! हे मुने ! इसे अपने अहम् आदिका ज्ञान कब नहीं हुआ ? क्योंकि यह तो सदा आदि-अन्त रहित तथा आवरण हीन है, उसे सृष्टि काल से चेतता हुआ आपने कैसा कहा है ? ।४। वसिष्ठजी बोले–यह ठीक है कि ब्रह्म सदैव अहमादि अहंकारसमष्टि से बोध को प्राप्त होता है,क्योंकि अनादि एवं जन्म रहित उस,चिन्मात्र को किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है ।९। सर्ग असर्ग एवं नभ स्वरूप ब्रह्म सदैव सर्वत्र विद्यमान रहता है, यह भ्रम-पूर्ण दृष्टि से कभी भी नहीं जाना जा सकता और ज्ञान-दृष्टि से देखने पर किंचित भी नहीं है।१०। जैसे यायु में स्पन्दन, चन्द्रमा में शीतलता, आकाश में शून्यता अभिन्न

रूप से है, वैसे ही ब्रह्म में अहंकारादिजगद्रूपात अभिन्न रूप से है।११। क्योंकि आदि, अन्त से रहित यह जगत्–विकारशून्य एवं ब्रह्मरूप है अतः सर्वदा इसकी ऐसी ही सत्ता है।१२। यद्यपि इस अद्वितीय ब्रह्मबोध की प्राप्ति आपको हो चुकी है, तो भी आप अज्ञान से मेरे उपदेश के सुनने में आसक्ति वाले होकर मिली हुई दृष्टि से द्वैत को मानते हो, तत्व-दृष्टि से नहीं। मिश्रित दृष्टि में सर्वात्मक ब्रह्म के अन्तर्गत जो कोई जीव कुछ चेतता है वह उस जीव से अभिन्न ब्रह्म ही है। इस उसीके रूप से सब कुछ की प्रतीति है। किन्तु निर्विशेष ब्रह्म से कुछ भी नहीं चेतता क्योंकि उससे भिन्न रूप वाला अन्य कोई नहीं है १३-१४। हे राम ! बद्ध दृष्टि से यह ब्रह्म त्रैलोक्य जैसेही सदा प्रतीत होता, परन्तु मुक्त दृष्टि से वह परम शान्त है। उस ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं हैं।१५। नभसे वृक्ष और पर्वत आदि उत्पन्न नहीं हो सकते, वैसे ही ब्रह्म से जगत् भी उत्पन्न नहीं होते, यह समझ कर आप परम शान्त हो जाइए।१६। यदि सन्देह उपस्थित हो तो उपदेश के हेतु न्यून बुद्धि वाला बनकर (अर्थात् जिज्ञासु भाव से) जब तक पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति न हो, तब तक भेद मानों तो कोई हानि भी नहीं है।१७। बोध के प्राप्त होने पर न शास्त्र की आवश्यकता है न शब्द ज्ञान की प्रजापति की यह भेद बुद्धि भी आप में नहीं होगी।१८।

बुद्धमेतत्मया ब्रह्मन्प्रकृतं तदुदाहर।
वचो मदवबोधार्थ यदुदाहृतवानसि ॥१९
किं तस्मिश्चेतितेऽहंत्वे पदे सपद्यते परे।
बुद्धवानसि शश्रूषुर्नाहं तृप्तिमुपैमि हि ॥२०
अहंत्वे सत्ययैतस्मिन्व्योमसत्ता प्रवर्तते।
दिक्सत्ता कालसत्ता च भेदसत्ताऽप्युदेति ॥२१
यदा किलेहाऽहमिति तदा नाऽत्राऽपमित्यपि।
भामीन्यदेदि नाना खे ष्वात्पैव दैतपक्रमम् ॥२२

व्योमात्मिकानामेतासां सत्तानामभिधानधीः।
भविष्यत्युत्तरं कालं तदा त्वाकाशमेव तत् ॥२३
एतस्मिन्परिसंपन्ने दिक्कालकलनात्मनि।
अहंभावे निराकारे व्योमतन्मात्रवेदिनि ॥२४
इदमाभाति भरूपं भेदनं दृश्यनामयत्।
भून्वा ब्रह्मैव निर्बाधमब्रह्मेव विराजते ॥२५
व्योमैव जीवकलनामिव भावयित्वा।
व्योम्न्येव पश्यति निराबरणे विसारि।
दृश्यं स्वरूपमपि चाऽन्यनिवाऽऽत्मवित्त्वात् ॥२६

राम बोले-हे ब्रह्मन् ! मैं अपने प्रश्नों का निराकरण आपके द्वारा प्राप्त कर चुका हूँ। अब आपके मेरे बोध के लिए सुझाए हुए समष्टि अहंकार आदि का निरूपण करिए ।१६। उस परमपद में अहंकार चेतित होता है, तब क्या होताहै ? आप सर्वज्ञ होनेके कारण सब कुछ के ज्ञाता हैं। आपके उपदेश सुनने से अभी मैं तृप्त नहीं हो रहा हूँ । वसिष्ठजी बोले–हे राम ! अहंकार के स्फुरण पर आकाश, दिशा, काल और विविध परिच्छेद का अभ्यास हुआ करता है।२१।आत्माजब देह आदि में अहम् का आरोप करता है तब यह शून्य स्थल में अपने न होने को मान लेता है, वही देर से उत्पन्न परिच्छेद है। इस प्रकार अपना आत्मा ही विभिन्न परिच्छेदों के क्रम से द्वैत रूपत्व से आकाश में उदय को प्राप्त होता है ।२२। इसके पश्चात् व्योमात्मक पदार्थ-भेद आदि सत्ताओं का और भविष्य आदि काल वाचक शब्दों का अभ्यास होता है, वह सब चिदाकाश ही है ।२३। इस प्रकार परमपद में दिशा काल आदि कल्पनाओं के सिद्ध होने पर दिखाई पड़ते इस जगत् की प्रतीति होती है, उसमें अहं भाव के कारण, आवरणभाव से अकृतिम चित् की अभिव्यक्ति द्वारा जगदाकार रूप से निराकार ब्रह्म की विराजता है ।२४-२५। शान्त, अजन्मा एक आनन्द ब्रह्म ही जीव-भाव

की कल्पना से अनावर्त चिदाकाश में, जब तक आत्मज्ञान द्वारा तत्व का बोध नहीं कर लेता, तब तक उस विस्तृत दृश्य को देखता है ।२६।

१२१–गुरु शिष्य संवाद

यथा यत्पृष्टवान त्वं मामरिनिषूदन ।
शिष्येणैव सत्ता पूर्वमहं पृष्टो गुरुस्त्वया ॥१
पुरा कल्पे हि कस्मिश्चित्तत्वमत्मादिकात्मिका ।
आसीदियं चित्प्रतिभा गुरुशिष्यात्मना वने ॥२
गुरुस्तत्राऽहमभवं किष्यस्त्वमभवस्तदा ।
पृष्ट्वान्मां त्वमग्रस्थ इदमुद्दामधीरधीः ॥३
सर्वस्य भगवाँच्छिन्धि ममममतिसशयम् ।
किं नश्यति महाकल्पे किं वस्तु न विनश्यति ॥४
पुत्र शेषशेषेण दृश्यमाशु विनश्यति ।
यथा तथा स्वप्नपुरं सौषुप्तीं स्थितिमीयुषः ॥५

वसिष्ठ जी बोले-हे रिपुसूदन! जो प्रश्न आज आपने किया है, वह पूर्वजन्म में भी किया था । उस समय मैं गुरु था और आप शिष्य थे ।१। पूर्व कल्पकी वात है, उस समय भी आपको वैराग्य उत्पन्न होगया था, तब आप मेरे पास वनमें आकर प्रश्न करने लगे थे । अबके समान ही चित्प्रतिभा रूपी यह गुरु-शिष्य वार्ता उस समय भी हुई थी ।२। उस समय मुझ गुरु से शिष्य रूप में मेरे सामने बैठे हुए आपने उदार बुद्धि होते हुए भी अज्ञानी के समान यह प्रश्न किया था ।३। शिष्य ने कहा–हे भगवान् ! सम्पूर्ण लोक के विषय में मेरा जो यह संशय है, उसका निवारण कीजिए । महाकल्प की प्राप्ति पर कौनसी वस्तु नाश को प्राप्त होती है और कौन-सी नष्ट नहीं होती ? ।४। गुरु बोले हे पुत्र ! जैसे सुषुप्ति अवस्था से जागने पर स्वप्ननगर का विनाश हो

जाता है, वैसे ही यस दृश्यमान जगत् प्रलयकाल की प्राप्ति पर नष्टहो जाता है।५।

निर्विशेषेण नश्यन्ति भुवः शैला दिशो दश।
क्रिया कालः क्रमश्चैव न किंचिदवशिष्यते ॥६
नश्यन्ति सर्वभूतानि व्योमाऽपि परिणश्यति।
स सर्वं जगदाभासमुपलब्धुरसंभवात् ॥७
ब्रह्मविष्णवन्द्रपुरुद्राद्या ये हि कारणकारणम्।
तेषामप्यतिकल्पान्ते नामाऽपीह न विद्यते ॥८
शिष्यते हि चिदाकाशमव्यवस्याऽनुमीयते।
तत्कालशेषताऽनेन सर्गानुभवहेतुना ॥९
नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः।
इदं तत्कथमाभागि विद्यमानं क्व गच्छतिः ॥१०

उस समय सम्पूर्ण पृथिवीः पर्वत, दशों दिशा, क्रिया, काल सभी कुछ तो नष्ट हो जाता है, शेष बचता ही नहीं।६। सभी भूत नाश को प्राप्त हो जाते हैं सब लोकों के आभास के साथ आकाश भी अव्याकृत में लीन हो जाता है। भोग्य की स्थिति भोक्ताके अधीन होने से प्रलय-काल में भोक्ता रहना ही असम्भव है।७। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र आदि कारणों के कारण भी हैं, उनकी महा कल्पान्त में एवं विज्ञानोत्पन्न प्राकृतिक लय में स्थिति ही नहीं रहती, तो वे भोग्य वस्तु के भोक्ता भी कैसे रह सकते हैं ?।८। अब अविनाशी चिद्वस्तु का विवर्त्त नष्ट हो जाता है, तब चिदाकाश के ही अवशिष्ट रहने का आभास होता है क्योंकि स्वयं में अध्यस्त जगत् के अनुभव में जो कारणभूत चिदात्मा है। उसी से सर्व प्रपंच रहित अवशिष्ट प्रलयकाल की सिद्धि होती है। यदि प्रलय में उसका भी नष्ट होना मान लें तो साक्षि रहित प्रलय की सिद्धि नहीं।९। शिष्य ने शंका की कि जब असत् पदार्थ का अस्तित्व नहीं सत् पदार्थ का अभाव नहीं, तब यह विद्यमान जगत् कहां चला जाता है।१०।

न विनश्यति एवेदं ततः पुत्र न विद्यते ।
नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः ॥११
यत्तु वस्तुत एवाऽस्ति न कदाचन किंचन ।
तत्भावात्म तद्भावः कथ नाम विनश्यति ॥१२
क्व स्थित मृगतृष्णाम्बु क्व स्थिरो द्वीन्दुविभ्रमः ।
क्व स्थिरा केशदृग्व्योम्नि क्व भ्रान्त्यनभवः स्थिरः ॥१३
सर्वं दृश्यमिदं पुत्र भ्रान्तिमात्रमसन्मयम् ।
स्वप्ने पुरमिवाऽऽभाति कथमेतन्न शाम्यति ॥१४
शाम्यतीदमशेषेण तथा सर्वत्र सर्वदा ।
यथा जाग्रद्विधो स्वप्नः स्वप्ने वा जागरो यथा ॥१५

गुरु बोले—हे पुत्र ! प्रत्यक्ष रूप में सावयव पदार्थ नष्ट होते देखे जाते हैं, इससे जगत् का नष्ट होना सिद्ध है । इसलिए असत् की सत्ता नहीं रहती और सत् का अभाव नहीं होता ।११। यथार्थ से जो कभी अभावात्मक नहीं है उस सत् का भाव अस्तित्वहीन किस प्रकार हो सकता है ।१२। मृग तृष्णा का जल कहाँ है ? आकाश में कहीं दूसरे चन्द्रमा की स्थिति है ? आकाश में दिखाई देने वाले केशों के गोला कहाँ है? भ्रान्ति का अनुभव नहीं टिक सकता है ? हे वत्स! यह सम्पूर्ण दृश्य भ्रान्ति रूप होने से असत्य ही है । स्वप्न में दिखाई पड़ने वाले नगर के समान यह भासित है तो नाशको प्राप्त क्यों नहीं होगा । जो असत् है उसके नष्ट होने से आश्चर्य ही कैसा ? ।१३-१४। यह उसी प्रकार नाश को प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार जाग्रति में स्वप्न या स्वप्नावस्था में जाग्रति का अभाव हो जाता है ।१५।

यथा स्वप्नपुरं शान्तं न जाने क्वाऽऽशु गच्छति ।
शान्तं तथा जगद्दृश्यं जाने क्वाऽऽशु गच्छति ॥१६
द्विमिदं भाति भगवन्न विभाति च किं पुनः ।
कस्येदं वस्तुनो रूपं चिद्व्योम्नो विततात्कृते ॥१७

चिदाकाशमिदं पुत्रस्वच्छं कचकचायते ।
यन्नाम तज्जगभ्द्राति जगदन्नजगदन्यन्न विद्यते ॥१८
अस्यैतद्वस्तुनो रूपं चिद्व्योम्नो विततावृतेः ।
रूपमत्यजदेवाऽच्छं यदित्थमव बासते ॥१९
कचनाकचनं सर्गक्षयात्मास्य निजं वपुः ।
व्योमात्म शुक्लकृष्णं स्याद्यथाऽवयविनो वपुः ॥२०

जैसे जागने पर स्वप्न न जाने तुरन्त ही कहाँ चला जाता है, वैसे ही बोध-बाधा को प्राप्त हुआ जगत भी न जाने कहाँ जाकर अदृश्य हो जाता है ।१६। शिष्य ने कहा हे भगवन् ! यह दिखाई पड़ता हुआ विश्व बोध की प्राप्ति पर अदृश्य कैसे हो जाता है। यह कौन-से विस्तृत चिदाकाश का वस्तु स्वरूप है ? ।१७। गुरु बोले, हे पुत्र ! जैसे चमक-दमक वाली सीप भ्रान्ति से कभी चाँदी जैसी दिखाई दे जाय, वैसे ही जगत चिदाकाश का अत्यन्त स्फुरण होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं ।१८। यह विश्व इस विस्तृत चिदाकाश वस्तु का स्वरूप है। वह चिदाकाश अपने स्वच्छ रूप में स्थित रहता हुआ जगत रूप से भासित है ।१९। अवयव भेद अवयवी के देहों में जैसे विभिन्नता की प्रतीति होती है, वैसे ही सृष्टि और प्रलय इस व्योमात्म के लक्षण ही हैं ।२०।

यथाऽयं त्वं सितोदान्तरेक एवाऽऽदितः कचैः ।
तथा ब्रह्मैवमच्छात्म सर्गे सर्गक्षयेऽक्षयम् ॥२१
यथा स्वप्ने सुषुप्ते च निद्रीकैवाऽक्षयाऽनिशम् ।
सर्गेऽस्मिन्प्रलये चैव ब्रह्मैकं चितिवरव्ययम् ॥२२
यथा स्वप्ने जगद्द्रष्टुः शान्तं शाम्यत्यशेषतः ।
तद्वदस्मज्जगदिदं शान्तं शाम्यत्यशेयतः ॥२३
तदन्यत्राऽस्ति खे खाख्यं तथेत्यङ्ग न विद्महे ।
तशङ्कथं परखे त्वेतदस्मच्चिद्व्योनि संभवात् ॥२४

यथेहाऽस्मच्चिदाकाशकचनं सर्गसंक्षये ।
तथाऽन्यत्संविदाकाशं नैवमित्यत्र का प्रमा ॥२५

वत्स ! स्वच्छ जल वाले सरोवर में प्रविष्ट होकर अब तुम अपनी परछाईं देखते हो, उसको भाव और अभावरूपी भेद होने पर भी तुम और वह एक ही, वैसे ही ब्रह्म अपने सर्ग और प्रलय रूपी भेद से भी अक्षय और अभेद ही है ।२१। जैसे स्वप्न अथवा सुषुप्ति दोनों अवस्थाओं में एक अक्षय निद्रा ही रहती है, वैसे ही सर्ग या प्रलय दोनों में चित्त रूप अव्यय ब्रह्म ही स्थित रहता है।२२। जिस प्रकार स्वप्न देखन वाले पुरुष का स्वप्न वाला संसार जागने पर अथवा निद्रा (सुषुप्ति) में दिखाई नहीं देता उसी प्रकार यह संसार भी ज्ञान उत्पन्न होने पर शान्त हो जाता ।२३। वाधित होने के कारण शून्य हुआ वह स्वप्नलोक अन्य स्थान पर भी वैसे ही रहता है इसका ज्ञान हमें बोध दृष्टि से नहीं है । जीवाकाश में वह अन्य पुरुषों के साथ रहेगा, यह शंका इसलिए निर्मूल है कि हमारा वासनामय लोक चिदाकाश में ही सम्भव है । यदि उसे बाधित न मानें तो वह अन्य चिदाकाश में नहीं जा सकता ।२४। जैसे बोध होने पर स्वर्ग का क्षय हो जाता है तब हमारा संविदाकाश स्फुरित होता है, वैसे ही बोध होने पर अन्य के संविदाकाश में शुद्ध चिदाकाश में स्फुरित न होने के विषय में क्या प्रमाण है ।२५।

एवं चेत्तद्यथा स्वप्ने द्रष्टुरन्यः दृश्यधीः ।
विद्यते तद्वदन्यत्र मन्येऽस्ति जगदादिधी ॥२६
एवमेतन्महाप्राज्ञ स्वरूप तु न तज्जगत् ।
चिति भाति स्वरूपंतत्स्तद्वदे व न भाति च ।२७
न भाति न च तत्किंचिन्न च तत्किंचिदेव सत् ।
तच्चिदाकाशकंचनं के तत्र सदसदृशौ ॥२८
विद्यते तद्धि सर्वत्र सर्व सर्वेण सर्वदा ।
न विद्यते च तत्किंचित्सर्वं सर्वत्र सर्वदा ॥२९

तत्त सत्सर्वदा सर्वमसच्चाऽसदिवाऽखिलम् ।
तन्मयं तच्चिदाकाशं न नाशि न च नाशि तत् ॥३०

शिष्य ने कहा—हे गुरुदेव ! यदि हमारी संविद् विषयक सृष्टि अन्य की सृष्टि में भासित नहीं होती तो स्वप्न देखने वाले से भिन्न अर्थात् जागे हुए पुरुष की दृश्य बुद्धि से युक्त रहने वाले के समान ही प्रलयकाल में भी अन्य पुरुष में संसारादि दृश्य बुद्धि का होना मैं समझता हूँ ।२६। गुरु बोले—हे महाप्राज्ञ ! तुम ठीक कहते हो इसलिए प्रलय में ही ऐन्दव जगतों के सद्भाव का ब्रह्मा का दर्शन होने विषयक चर्चा हमने की थी । यदि जगत् चित्तका स्वरूप होती तो विशिष्ट नहीं होता । परन्तु जगत् चित्त का स्वप्न न होकर चित्त में अध्यस्त होने से देखने वाले को दिखाई देता है, किन्तु दूसरों को वैसा दिखाई नहीं देता । इसलिए उन पुरुषों के अनुसार ही स्वरूप व्यवस्थित होता है । ।२७। सबको समान अनुभूति न होने के कारण न वह तुच्छ है, न सत ही है, अपितु उन-उन प्राणियों के चिदाकाश का स्फुरणमात्र ही है,तब उसके प्रति सत् या असत् दृष्टि का प्रश्न ही कैसा ? ।२८। यदि उसे उसे चिदाकाश के रूप से वैसा माने तो उस अवस्था में सम्पूर्ण विश्व सर्वत्र है, किन्तु स्वरूप से वह कुछ भी नहीं है, उनकी सत्ता कभी कहीं है ।२९। वह ब्रह्म सत्त और असत् स्वरूप है, इसलिए यह विश्व भी सत-असत स्वरूप है तथा इस चिदाकाश के नाशवान न होने के कारण यह जगत भी नाश को प्राप्त नहीं होता ।३०।

यन्नाम सच्चिदाकाशं सर्गप्रलयरूपि तत् ।
तद्दु:खायाऽपरिज्ञात परिज्ञातं पर:शम: ॥३१
विद्यते सर्वथैवेद सर्व सर्वत्र सर्वदा ।
न विद्यते सर्वथा च सर्व सर्वत्र सर्वदा ॥३२
एष देवो घट: शैल पट: स्थोटस्तटो वट: ।
तृणमग्नि: स्थावरं च जंगमं सर्वमेव च ॥३३

अस्ति नास्ति च शून्यं च क्रिया कालो नभो मही ।
भावाभावौ भवो भूतिर्नाशाः ाशाः शुभाशुभाः ॥३४
तन्नास्त्येव न यन्नाम नित्यमेकस्तथा वहिः ।
आदिमध्यमथाऽन्तं कालत्रितयमेव च ॥३५

वही सत् चिदाकाश सर्ग प्रलय रूप होता है, उसका ज्ञान न होना ही दुःख का कारण है और ज्ञान होने पर तो दुःख का शमन हो ही जाता है ।३१। अपने-अपने ज्ञान के अनुसार ही यह चिदाकाश सत् और असत् है । ज्ञानी की दृष्टि में सदा सर्वत्र विद्यमान और अज्ञानी की दृष्टि में अविद्यमान रहता है ।३२। घट शैल, वस्त्र, शब्द, तट वट, तृण अग्नि, स्थावर, जङ्गम आदि सब कुछ यही है, विद्यमान अविद्यमान शून्य, क्रिया, काल, गगन, पृथिवी अभाव, जन्म विभूति, विनाश, तथा शुभाशुभ यही सब कुछ है ।३३-३४। जिस वस्तु का आदि मध्य और अन्त तीनों कालों में नित्य एक ही चिदाकाश उसी प्रकार का रूप धारण न करे तो वह बस्तु है ही नहीं ।३५।

सर्वं सर्वेण सर्वत्र सर्वदैवाऽत्र विद्यते ।
सर्वं सर्वेण सर्वत्र सर्वदाऽत्र न विद्यते ॥३६
यदैवं राम सर्वात्म सवमेवाऽस्ति सर्वदा ।
ब्रह्मात्मत्वात्स्वप्नसवित्पुरन्यायेन वै तदा ॥३७
तृण कर्तृ तृणं भोक्तृ ब्रह्मात्मत्वात्तृण विभुः ।
घटः कर्ता घटो भोक्ता घटः सर्वेश्वरेश्वरः ॥३८
पटः कर्ता पटो भोक्ता पटः सर्वेश्वरेश्वरः ।
दृशिः कर्त्ता दृशिर्भोक्ता दृशिः सर्वेश्वरेश्वरः ॥३९
गिरिः कर्ता गिरिभोक्ता गिरिः सर्वेश्वरेश्वरः ।
नरः कर्ता नरो भोक्ता नरः सर्वेश्वरेश्वरः ॥४०

जो ज्ञानीजन है उनके विचार में जो कुछ है वह सभी, सर्वत्र सदैव इसमें है और अज्ञानियों के विचारमें सब प्रकार सर्वत्र या सदैव कुछ भी इसमें नहीं है ।३६। हे राम ! जब इस प्रकार ब्रह्मात्मक

होने के कारण स्वप्न में अद्भुत पुरी के समान सभी कुछ सर्वदा सर्वात्मक है तब ब्रह्म स्वरूप होने के कारण तृण कर्त्ता भोक्ता एवं विभु है। घट भी कर्त्ता, भोक्ता और सब ईश्वरों का ईश्वर है।३७-३८। उसी प्रकार पट अर्थात् वस्त्र कर्त्ता भोक्ता सर्वेश्वर हैं। द्रष्टा भी कर्त्ता भोक्ता और सबों का ईश्वर है। पर्वत कर्त्ता है, पर्वत भोक्ता है, पर्वत सब ईश्वरों का ईश्वर भी है।३९-४०।

प्रत्येकं सर्ववस्तुतां कर्ता भोक्ता परात्पर।
अनादिनिधिनो धाता सर्वं ब्रह्मात्मकं यतः ॥४१
तृणकुम्भादयस्त्वेते स्वया विभुतया विभुः।
एवंरूपा स्थिता रूपं यद्विभातः क्षयोदवौ ॥४२
वाह्योऽर्थोस्ति स एवेह कर्ता भोक्ता तथाविधः।
विज्ञानमात्रमेवाऽस्ति कर्तृ भोक्तृ तथा बिदाम ॥४३
न कश्चिच्चैव कर्तेह न च भोक्ता तथा विदाम।
कश्चिदीश्वर एवेहकर्ता भोक्ता तथा विदाम् ॥४४
सर्वमेव पदे तस्मिन्संभत्युत्तमोत्तमे।
विधयः प्रति षेधाश्च के ते सन्ति न सन्ति के ॥४५

इस प्रकार जितनी वस्तुयें हैं, उनमें प्रत्येक ही कर्त्ता भोक्ता और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। (अर्थात् प्रत्येक वस्तु की अपनी-अपनी बिशेषता है) तथा आदि, अविनाशी एव धाता है, क्योंकि अभी कुछ ब्रह्मात्मक ही है।४१। यह तृण और कुम्भ आदि प्रत्यगात्मक रूप विभुता के कारण विभु ही हैं। जिस रूप में क्षय और प्रलव का भास होता है वह सब इस प्रकार के विभुत्व से ही विद्यमान है।४२। विज्ञान से भिन्न वाह्य अर्थ वाली बुद्धि से वही कर्त्ता, वही भोक्ता हैं, किन्तु विज्ञान मात्र के मतवालों की दृष्टि में विज्ञानमात्र ही कर्त्ता एवं भोक्ता है। शून्यबादी लोग कर्त्ता और भोक्ता दोनों को ही शून्य (अर्थात् कुछ नही) मानते हैं। कुछ लोगों के मत में ईश्वर ही कर्त्ता और भोक्ता है।४३-४४। उत्तमोत्तम सर्व शक्तिमान उस सर्वात्मक पद में सभी कुछ

सम्भव है। उस पद में उन-उन मतावलम्बियों द्वारा अङ्गीकार किए हुए विचित्र पदार्थ प्रक्रिया के साधनादि विषयों और परस्पर के प्रतिषेधों का होना पृथक्-पृथक् अविरोध रूप से सम्भव है।४५।

शुद्धे दृष्टैव चिद्व्योम दृश्यतामिव भासयात्
स्वमात्मानं जगदिति पश्येत्तिष्ठेनामयम् ॥४६
सर्वादृशा विधिनिषेधदृशश्च सर्वा
संकल्पवेदनविशेषशेसषपूर्वा:
सत्यात्मिका: सयतमेव न चैव सत्या।
रूपं यथानुभवमत्र यत: स्वरूपम् ॥४७
इति त्वया शिष्यतया मदन्तिका-
च्छ तंपुरा तेन न चाऽसि बुद्धवान्।
ततोऽनुभूयान्यजगदभावाद्भावा-
निहाद्यजातोऽसि तदेव पृच्छसि ॥४८
ज्ञानं सदेतदखिलं श्रुतमुत्तमं चि-
त्संसारदीर्घरजनीसितरश्मिविम्वम्।
जातस्त्वमभ्युदयवानमलैकबोध
उत्सार्य मोहमनुतिष्ठ यथागतं त्वम् ॥४९
तिष्ठंस्तदात्मनि परे विमलस्वभावे
सर्वात्मके तपति सर्वपदार्थ मुक्त:।
निर्वाणशान्तमतिरम्बरकोशकान्तो
धर्मेण राज्यमनुपालय तीर्णतृष्ण: ॥५०

वह चिद्व्योम अपने विशुद्धात्मा में विभिन्न वासनाओं के अनुसार दृश्य-भावना करता हुआ दृष्टा रूप अपनेको ही जगद्रूप में देखता और उन-उन उपाधियों में अवस्थित रहता है।४६। सभी दृश्व ओर परस्पर अद्भुत निषेध दृष्टियाँ, विभिन्न सकल्प, अनुभव वासनाओं आदि से युक्त होने से उन-उन व्यवहारों में उन-उन अर्थ क्रियाओं में समर्थ

होने के कारण सत्यात्मक हैं, किन्तु आत्म-दृष्टि से देखने पर असत्य है क्योंकि प्रत्यगात्मा निजानुभव के अनुकूल ही स्वरूप धारण करता है। ।४७। हे राम ! इस प्रकार पूर्वकाल में आपने दिव्य रूप में मुझ गुरु के मुख से निकले इन वचनों का श्रवण किया था फिर भी आपको बोध नहीं हो सका। उसी अज्ञान दोष से पुनर्जन्मरूपी यह जगत आपको प्राप्त हुआ है। इसलिए जो आपने पूर्व जन्म में पूछा था, वही आज पूछ रहे हैं ।४८। अब इस जन्म में भी आपने इस श्रेष्ठ परमार्थ ज्ञान को जो जगद्रूपी घोर रात्रि में अन्धकार को नष्ट करने वाले पूर्णचन्द्रके समान है, मुझसे पूर्णतया सुन लिया है। अब आप अपमे प्रजापालनादि वंश परम्परा के कार्य का मोह रहित रूप से निर्वाह कीजिए ।४९। आप सब दृश्य पदार्थोंसे मुक्त होकर सर्वत्र अपने यथार्थ, निर्मल आत्मा में स्थित होते हुए शान्त, निर्वाण रूप से आकाश कोश के समान तृष्णा रहित होकर अपने राज्य का धर्मपूर्वक पालन करिये ।५०।

१२२—कथा के अन्त में महोत्सव वर्णन

इत्युक्तवत्यथ मुनौ नभसो ननाद
वर्षामृताभ्रमिव दुन्दुभिरामरो द्राक्।
शुक्लीकृताखिलककुब्बदना तुषार-
वर्षोपमा भुवि पपात च तुष्पबृष्टिः ॥१
किंजल्कजालदिबसान्तघनांगरागा
वातावधूतसितकेसरगौरहारा।
पुष्पोदरोत्थमृदुसीकरशीतलागा।
प्राप्ता स्वयं सुरपुरादिव पुण्यलक्ष्मीः ॥२
कल्पान्तकालपिम्पितशुष्कशाखा-
त्स्वर्गद्रुमात्पतितमाशु विडम्बयन्ती।

तारागण प्रथितभासमनल्पहासः
माशामुखप्रसृतभैरवमम्बरस्था ॥३
सा पुष्पवृष्टिरथ दुन्दुभिनादगर्ज-
त्किंजल्कपुञ्जजलदा शममाजगाम ।
आपूरिताखिलसभा हिमहारिपुष्प-
पूरेण कौतुकविकासकरी क्षणेन ॥४
तानि दिव्यानि पुष्पाखि यथास्थानमधः स्थिताः ।
वसिष्ठाय नमस्कृत्वा सभ्याः संशोकितां जहुः ॥५
अहो नु सुविशात्मा नः संसारबितताकुतेः ।
विश्रान्ताः स्मश्चिरं श्रान्ता शुद्धा मेघा इवाऽचले ॥६
कर्मणामवधिः पूर्णो दृष्टं सीमान्त आपदाम् ।
ज्ञातं ज्ञेयमशेषेण विश्रान्ताः स्मः परे पदे ॥७

श्री वाल्मीकिजी ने कहा-हे मुने ! वसिष्ठजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर आकाश से वर्षाकारी मेघों की ध्वनि के समान दुन्दुभियाँ बजने लगी और हिम-वर्षा के समान पुष्प वर्षा होने लगी जिससे सभी दिशाएँ श्वेत हो गई।१।उस फूल वर्षाका लालरङ्ग केसर पुञ्जके समान अथवा सांध्यकालीन मेघों जैसा था। पुरुषों के भीतर से निकले हुए जलकणही उसके शीतल अङ्ग थे। वायु के द्वारा हिलते हुए श्वेत केसर ही मानो उसके मुक्ताहार थे। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता था कि पुण्यलक्ष्मी ही साक्षात् में सुरपुर से उतर आई हो।२। वह पुष्प वर्षा प्रलयरूपी बन्दरके द्वारा झकझोरी हुई शुष्क शाखा और स्वर्ग रूपीवृक्ष से पृथिवी पर पतित तारों का, जिन्हें गिरानेके लिए दिशाओं की ओर मुख करके भैरब झपटे, मन्द हास्य से मानों हँसी उड़ा रही थी।३। दुन्दुभि की ध्वनि से गर्जन करती हुई केसरपाशि ही जिसका मेघ था, ऐसी पुष्पवृष्टि ने हिम के समान श्वेत पुष्पों से सम्पूर्ण सभा परिपूर्ण कर दी थी, वह कुछ देर में ही शान्त हो गई।४। यथास्थान बैठे हुए

सभाजनों ने उन दिव्य पुष्पों की अंजलियाँ भर-भर कर वसिष्ठ जी को समर्पित कर नमस्कार किया, जिससे उनके सभी शोक नष्ट हो गये।५। तभी दशरथ महाराज ने विनय पूर्वक कहा—'हे भगवन् ! आपके उपदेश से संसार के दुर्गम पथ से भ्रान्त हुए हम परम पद में उसी प्रकार विश्राम को प्राप्त हो चुके हैं जिस प्रकार कि मेघ स्वच्छ पर्वतों पर विश्राम करते हैं ।६। आपकी कृपा से हमारे कर्त्तव्य कर्मों की अवधि पूर्ण हो चुकी और हमारे कष्टों की परम अवधि हम देख चुके हैं। अब हम ज्ञेय को भली प्रकार जानकर परमपद में स्थित हैं ।७।

ध्यानलब्धपरव्योमचिरानुभवनभ्रमैः ।
धारणाधारयिश्रान्त्या देहसन्त्यजनक्रमैः ॥८
संकल्पनवनिर्माणैः स्वप्नतृष्टजगज्ज्वरैः ।
शुक्तिरूप्बानुभवनैः स्वप्नात्ममृतिदर्शनैः ॥९
अनन्यैः पवनस्पन्दैरनन्यैः सलिलद्रवैः ।
इन्द्रजालपुरापूरैर्गन्धर्वनगरोत्करैः ॥१०
मायापूर्णपुराभोगैर्मृगतृष्णानदीरयैः ।
आययौ पवनस्पर्शैद्विचन्द्रानुभवोदयैः ॥११
मदभ्रन्शपुरस्पन्दैर्मुधा त्यवनिकम्पनैः ।
वालयक्षाद्यनुभवैः खकेशोण्ठ्रकदर्शनैः ॥१२
एवमादिभिरन्यैश्च दृष्टान्तैः स्वानुभूतिदैः ।
अहो न माजिता दृश्वदृष्टिर्भगवता मम ॥१३

ध्यानजन्य अन्य व्योम में विहारादि की चिरकालीन अनुभूति के क्रम से, धारण से सर्वाश्रम ब्रह्म में विश्राम करने से देहान्त के कर्मो से संकल्प वाले नव-निर्माण से, स्वप्न से परिलक्षित संस्कारों के ताप से शुक्ति रंजत अनुभव से स्वप्न में अपना मरण देखने से अनन्य पवन स्पन्दनों से, अभिन्न जल के द्रवों से, इन्द्रजालात्मक पुरियों की परिपूर्णता से, गन्धर्व नगरी से, माया से परिपूर्ण नगरों और मृग तृष्णा रूपी नदी के वेगों से, सर्गोतर काल की वेगवाले झंझा के झटकों से

द्विचन्द्रों के उदयानुभव से, मद से, नगरों के कम्पनों से, बालकों के यज्ञादि के अनुभवों से, केशोण्ड्रक के दर्शन से तथा स्वानुभूत अन्यान्य दृष्टान्तोंसे आपने मेरी दृश्य दृष्टि परिमार्जित कर दी है,इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूँ ।८-१३।

नष्टो मोहः पदं प्राप्तं त्वत्प्रसादान्मुनीश्वर ।
सपन्नोऽहमहं सत्ययत्यन्तमवदातधीः ॥१४
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः स्वभावे ब्रह्मरूपिणि ।
निरावरणविज्ञानः करिष्ये वचनं तव ॥१५
स्मृत्वा स्मृत्वाऽमृतासेकसौख्यदं वचनं तव ।
अर्हितोऽपि च शान्तोऽपि हृष्यातीव मुहुर्मुहुः ॥१६
नैव मेऽद्य कृतेनाऽर्थो नाऽकृतेनेह कश्चन ।
यथास्थितोऽस्मि तिष्ठातिथैव विगताज्वरः ॥१७
उपायस्तु तथा तेन दृष्टिर्वाऽस्तीह कीदृशी ।
अहो नु वितता भूमिः कष्टमेतादृशी दशा ॥१८
न शत्रुर्न च मित्रं न क्षेत्रं दुर्जनो जनः ।
दुर्वोधिषा जगत्क्षुवधा शान्ता सर्वार्थसुन्दरी ॥१९
कथमेतां जनो वेत्ति विना भवदनुग्रहम् ।
विनैव सेतुं पोतं वा वालोऽब्धि लंघयेत्कथाम् ॥२०

श्रीराम बोले—हे मुनीश्वर ! आपके प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैं परमपदको प्राप्त हो गयाहूँ । निर्मल बुद्धिसे सम्पन्न होकर साक्षात् मैं ब्रह्म ही हो गया हूँ ।१४। मेरे सभी सन्देह नष्ट हो चुके है और अपने स्वभावभूत ब्रह्म में स्थित होकर अज्ञान के पर्दा से रहितहो गया हूँ । अब आपके बारम्बार वचन स्मरण करता हुआ जो अमृत से सिंचन करने के समान सुखदायी थे, मैं अपमानित होने पर शांत रहता हुआ प्रसन्न के समान अवस्थित हूँ ।१६। आज मेरा यहाँ किसी कर्म या

अकर्म से प्रयोजन नहीं है, तो भी मैं सब सन्तापों से मुक्त हुआ पहिले के समान ही किसी दृष्टिसे देखा जाय जबकि यह संसार दशा कष्ट देने वाली है। अहो ! मुझे तो (उससे भिन्न) अधिक विस्तार वाली भूमि (अर्थात् सुखदायिनी भूमि) प्राप्त हो गई है।१८। न कोई हमारा शत्रु है न मित्र है न क्षेत्र है न दुर्जन अथवा सज्जन है। जब तक यह आत्म चित्त दुर्बोध रही, तब तक दुःखदायिनी थी, किन्तु अब बोध होने पर तो सर्वार्थ सुन्दरी हो गई है।१९। आपके अनुग्रह के बिना इस ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? कभी सेतु अथवा पोत (जहाज) के बिना कोई बालक समुद्र को भी लांघ सकता है ?।२०।

जन्मान्तरोपचितसंशयनाशनेन
जन्मान्तरोपचितपुण्यशतोदितेन ।
जातोद्यमे मुनिवचःपरिबोधनेन
जातोऽद्यमे मनसि चन्द्र इव प्रकाशः ॥२१
इद्दृश्यां दृश्यमानायां दृशि दोषदशाशतैः ।
काष्ठवद्दह्यते लोकः स्वद्भर्गतया तया ॥२२
अहो वत महत्पुण्य श्रुतं ज्ञानं मुनेर्मुखात् ।
येन गङ्गा सहस्रेण स्नाता इय वयं स्थिताः ॥२३
संपदामथ दृष्टीनां शास्त्राणामापदा गिराम् ।
देशानामथ दृष्टानां दृष्टः सीमान्त उत्तमः ॥२४
यन्न श्रुतं ब्रह्मलोके स्वर्ग भूमितले यथा ।
कर्णो तज्ज्ञानमाकर्ण्य यातौ मेऽद्य पवित्रताम् ॥२५
हार्द्रं वाह्यं च तिमिरमपमृष्टवता त्वया ।
मुने परमभानुत्वं नूनं नः संप्रदर्शितम् ॥२६

लक्ष्मणजी बोले—जन्मान्तरों की प्रबृद्ध दुर्वासनाओं से उत्पन्न संशयों के नाशक तथा जन्मान्तरों से संचित सैकड़ों पुण्य-फलोंको उदित करने वाले मुनि-वचनोंसे प्रबोध को प्राप्त हुए मेरे मनमें आजचन्द्रमाके

समान परमानन्ददायक-आत्म-प्रकाश उदित हो गया है ।२१। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार के उपदेश आत्मदृष्टि के साक्षात्कार से द्रश्यरूप होने पर भी दुर्भाग्यवश रोगादि में पड़कर सैकड़ों दोषों में युक्त दशा में काष्ठ-वत् दिन-रात्रि जलते रहते हैं ।२२। विश्वामित्र जी ने कहा—अहो ! मुनिवर वसिष्ठजी के मुख से जो पुण्यमय ज्ञान सुना है, उसके प्रभावसे हम सहस्रवार गङ्गा में स्नान करने के समान पवित्र होकर स्थित हैं। ।२३।श्रीराम ने कहा—सम्पत्तियों के उत्कर्ष वाली आनन्दमयी दृष्टियों से शास्त्रों की चरम सीमा से विनाशरूपी आपदाओं को चरम सीमा सर्व संसार का नाश देखा जाता है और सुख विश्रान्ति के कारण रूपी प्रदेशों की चरम सीमा रूप से परम विश्रान्ति का हेतुभूत परमात्म प्रदेश देखा गया है ।२४। नारद जी ने कहा—ब्रह्मलोक, स्वर्ग, तथा पृथिवी पर भी जो श्रेष्ठ तत्व सुनने में नहीं आया, उस ज्ञान को सुन-कर मेरे श्रोत्र परम पावन हो गये हैं ।२५। लक्ष्मणजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हमारे हृदय का तथा वाह्यान्धकर दूर हो गया है, क्योंकि आप इस सूर्य की अपेक्षा परम सूर्य हैं, जिसमें सम्पूर्ण अन्धकार नष्टहो चुका है ।२६।

निर्वृत्तोऽस्मि प्रशान्तोऽस्मि प्राप्ताऽस्मि परमं पदम् ।
चिरायपरिपूर्णोस्मि सुखमासे च केवलम् ।।२७
वहुजन्मोपलब्धेन पुण्येनाऽयं मुनीश्वरः ।
धीरः कथितवान्नस्तद्ये न पावनतां गताः ।।२८
इति तेषु वदत्स्वत्र सभ्येषु सहभूभृता ।
वसिष्ठः उवाचेदं ज्ञानपावनता गिरा ।।२९
राजन्नघुकुलैकेन्दो यदहं वच्मि तत्कुरु ।
इतिहासकथान्ते हि पूजनीया द्विजातयः ।।३०
तदद्यब्राह्मणौघांस्त्वं सर्वकामैः प्रपूरय ।
वेदार्थसमनुष्ठानफलं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।३१

मोक्षोपायकथाबस्तुसमाप्तौ द्विजपूजनम् ।
शक्तित: कीटकेनाऽपि कार्यकिमु महीभृता ॥३२

शत्रुघ्नजी बोले हे ब्रह्मन् ! आपके प्रसाद से निरतिशय आनन्द को प्राप्त हुआ मैं अत्यन्त प्रशान्त हुआ परमपद में स्थित पूर्णकाम एवं सुखरूप हूँ ।२७। महाराज दशरथ बोले बहुत जन्मों के संचित पुण्यों से सम्पन्न इन गुरु देव ने हमें जो आध्यात्मोपदेश दिया है, उससे हम पवित्र हो गये हैं ।२८। वाल्मीकिजी ने कहा—हे भारद्वाज ! महाराज दशरथ सहित सब सभासद जन इस प्रकार स्तुति वचन कह रहे थे तब वसिष्ठजी ने ज्ञान से पवित्र अपनी वाणी से कहा ।२९। हे राजन् ! हे रघुकुलरूपी चन्द ! मैं जो कहता हूं उसके अनुसार करिए । इतिहास कथा की समाप्ति पर द्विजों का पूजन करना उचित है ।३०। इसलिए आप ब्राह्मणों की सब इच्छाओ को पूर्ण परिपूर्ण करिये, इससे आपको वेदार्थ के श्रवण का शाश्वत फल प्राप्त होगा । ।३१। मोक्ष की उपाय-भूत कथा की समाप्ति के पश्चात् कीट के समान तुच्छ दरिद्र का भी कर्त्तव्य ब्राह्मण—पूजन करने का है तो आप जैसे पृथिवीपाल का तो कहना ही क्या है ।३२।

इति मौनं वच: श्रुत्वा सहस्राणि नृपो दश: ।
दूतैराकारयामास द्विजानां वेदवादिनाम् ॥३३
मथुरायां सुराष्ट्रेषुगौडेषु च वसन्ति ये ।
तेभ्य: लेभ्य: सोऽभ्यर्च्य समानीय द्विजन्मनाम् ॥३४
अधिकात्यधिकज्ञानप्रक्तद्विजभोजन: ।
तदा दशसहस्राणि भोजयामास भूपति: ॥३५
यथाभिमतभोज्यान्नदानदक्षिणया तया ।
एवं सम्पूज्य तान्विप्रान्पतृन्देवान्नृपांस्तथा ॥३६
पौरामात्यांस्तथा भृत्यान्दीनान्धकृपणांश्च तान् ।
तस्मिन्दशरथो राजा दिने सह सुहृज्जनै: ॥३७

लब्धसंसृतिसीमान्तश्चकारोत्सवमुत्तमम् ।
तथा नृपगृहे तस्मिन्कौशेयमणिकाञ्चने ॥३८
भूषिते नगरे चैव गीर्वाणनगसुन्दरे ।
ननृतुर्मत्तकामिन्यो विलासिन्यो गृहे गृहे ॥३९

मुनिवर का यह वचन सुनकर राजा दशरथ ने दस सहस्र वेदवादी ब्राह्मणों को दूतों के द्वारा निमन्त्रित किया ।३३। मथुरा, सौराष्ट्र और गौड़ आदि देशों के श्रेष्ठ ब्राह्मणों का पूजन करते हुए, उनको प्रमुखता सहित दस सहस्र ब्राह्मणों को विधि सहित भोजन कराया ।३४-३५। जिसकी जो इच्छा थी उसे उसके अनुसार ही भोजन अन्न, दक्षिणा आदि के द्वारा सन्तुष्ट किया तथा पितरों,देवताओं, राजाओं, प्रजाजनों अमात्यों, भृत्यों दीनजनों, अन्धे आदि अङ्गहीनोंका सत्कार कर संसार की सीमा को प्राप्त हुए महाराज दशरथ ने सुहृदजनों के सहित श्रेष्ठ उत्सव मनाया । उस अवसर पर रेशमी वस्त्रों, मणि-रत्नों और स्वर्ण से सजाये गए सुन्दर राजभवन में और सुमेरु के समान चमकती हुई अयोध्यापुरी में, यौवन से उन्मत्त कामनियों के नृत्य घर-घर में हुये ।३६-३९।

लसद्वंशलताकांस्यबीणामृरजमर्दलम् ।
ताण्डवेनोद्धतारावमन्योन्येतरशेखराः ॥४०
क्षुब्धी कृतापणकरभ्रान्तिपल्लवितास्बराः ।
मुग्धाट्टहासविक्षिप्तदन्तेन्दुकिरणच्छटाः ॥४१
मदाकुतिहुंकारा लीलासु तरलस्वराः ।
एकपादतलाघातहेलाहतधरातलाः ॥४२
स्रग्दामतारविगलत्कुसुमासारपाण्डुराः ।
धारापतितविच्छिन्नहारमुक्तास्खलत्पदाः ॥४३
लोलाभरणसाकातं कामं ननृतुरंगनाः ।
पेठुः स्फुटपदं विप्रा बन्दितोऽप्यंगनाश्च ताः ॥४४

पपुरुत्ताण्डवं पानं पानपामदशालिनः।
भोज्यं बुभुजिरे चित्रं भूषिता भोजनार्थिनः ॥४५

उस नृत्य में बाँसुरी, कांस्यताल, वीणा मुरज मर्दल आदि वाद्यों के सहित ताण्डव नृत्य की ध्वनि उठ रही थी। नृत्य करने वालियों की चोटियाँ आभूषणों से सजी थी उनके हाथों के चलायमान होने से उनके वस्त्र फैले हुए पत्तों जैसे लग रहे थे। अपने हास्य, अट्टहास से हुँकार भरती हुई तरल स्वर से युक्त मुग्ध थी। वे एक पाँव के तलुए के आघात से धरातल को व्याप्त कर रही थीं। वे पुष्प-मालों के झटकने से नक्षत्रों के समान विखरती हुई पुष्प वृष्टियों से श्वेत थीं, जिनके पाँव जलधारा के समान गिराये जाते हारोंपर पड़कर फिसलते थे। वे अपने चंचल आभूषणों से मानों कामदेवको ही मूर्त रूप दे रही हों, उन ललनाओं का नृत्य, विप्रों के वेदपाठ और वन्दियों के प्रशस्ति गान तथा नारियों के गायन चल रहे थे। आसवादि तथा मादक द्रव्यों का पान चल रहा था। किन्तु वस्त्राभूषणों से युक्त भोजनार्थी बाह्मणोंने विविध व्यञ्जनों को ग्रहण किया।४०-४५।

सुधादिपरिलेपेन रञ्जिता गृहभित्तयः।
रेजू रामेन्दुभानेन पुष्पधूपविलेपनैः ॥४६
वासांसि वसितश्चित्राण्युक्तमस्त्रग्विभूषणाः।
चेरुः परिचराश्चेट्यश्चारुगन्धा नृपाध्वरे ॥४७
देहयष्टिषु संयोज्य वनिता यक्षकर्दमम्।
जग्मुस्ताण्डवनर्तक्यः शृङ्गारात्मांगणान्तरम् ॥४८
भवबहुलनिशावसानहर्षा-
दिति घममुत्सवमेव सप्तरात्रम्।
दशरथ नृपतिः सदानभोग-
श्रियमकरोत्पदमक्षयं समेतः ॥४९

चूर्णक आदि से पुतकर स्वच्छ हुई घरों की भीतें, राम रूपी चन्द्रमा की देह-कान्ति रूपी ज्योत्स्ना से पुष्पों और रङ्गों के लेप से

तथा धूप में चमचमा रही थी ।४६। राजा दशरथ के उस उत्सवरूपी यज्ञ में विभिन्न प्रकार के परिधान धारण किये और श्रेष्ठ मालाओं से विभूषित तथा मनोहर सुगन्ध से समन्वित परिचर और परिचारिकायें इधर-उधर चल फिर रहीं थी ।४७। कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि से चर्चित देह वाली ताण्डव नृत्य करती हुई रमणियाँ अत्यन्त सुसज्जित राजसभा के दूसरे आँगन में पहुँची ।४८। बोध रूपी सूर्य के उदित होने पर अविनाशी पद को प्राप्त हुए महाराज दशरथ ने विश्वरूपी कृष्ण पक्ष को रात्रि की समाप्ति से उत्पन्न प्रसन्नता के कारण दान, भोग और ऐश्वर्य से सम्पन्न महोत्सव निरन्तर सात रात्रि तक किया ।४६।

१२३—शिष्यों द्वारा आत्म निवेदन

लतत्तै कथितं राजन्कुम्भयोनेः सुभाषितम् ।
अमुना तत्वमार्गेण तत्पदं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥१
भगवन्भवतो दृष्टिर्भवबन्धविनाशिनी ।
आलोकितो ययाचाऽहमुत्तीर्णोऽस्मि भवाम्बुधेः ॥२
इत्युक्त्वाऽसौ ततो राजा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
उवाच वचनं मां तु मधुरं श्लक्ष्णया गिरा ॥३
देवदूत कमस्तुभ्यं कुशलं चाऽस्तु ते विभो ।
सतां साप्तपदं मैत्रमित्युक्तं तत्वया कृतम् ॥४
इदानीं गच्छ भद्रं ते देवराचनिवेशनम् ।
अनेनश्रवणेनाऽहं निवृतो मुदितोऽपि च ॥५
श्रुतार्थं चिन्तयन्नत्र स्थास्यामि विगतज्वरः ।
इत्युक्तोऽहं ततो भद्रे परं विस्मयमागतः ॥६
न श्रुतं पूर्वमेवैतज्ज्ञानसारं श्रुतं मया ।
तेनैव मुदितश्चाऽन्तः पीतामृत इवाऽधुना ॥७

वाल्मीकिजी बोले—हे राजन् ! मुनिवर वसिष्ठ का राम से और अगस्त्य का सुतीक्ष्ण से कहा हुआ यह उपदेश मैंने आपको सुनाया है, इस तत्वमार्ग द्वारा आप उस सत्य पद को प्राप्त होंगे ।१। राजा ने कहा—हे भगवन् ! आपकी भवरूपी बन्धन को काटने वाली दृष्टि से मैं भवसागर से पार हो गया हूँ ।२। देवदूत बोला ऐसा कहकर राजा के नेत्र विकसित हो गये और वह मधुरवाणी में कहने लगे ।३। हे देवदूत ! हे विभो ! तुमको नमस्कार है, तुम्हारा कल्याण ही सज्जनों की मैत्री सात कदम चलती है, यह कदम आपने चरितार्थ कर दिया । अब आप देवराज के भवन में जाइए आपका कल्याण हो । मैं भी इस कथा को सुनकर सब तापों से शून्य और अत्यन्त मुदित हो गया हूँ।५। अब मैं सब तापों से शून्य मुनि-मुख से श्रवण किये अर्थ का चिन्तन करता हुआ रहूँगा । राजाके इसप्रकार के कहने पर मैं अत्यन्त विस्मय में डूब गया ।६। यह पहले कभी भी न सुना हुआ शास्त्र सत्सङ्गवश ही सुन सका हूँ । इसके द्वारा प्रसन्न अन्तःकरण वाला हुआ मैं अमृत पीकर तृप्त हुए के समान ही परितृप्त हो गया हूँ ।७।

ततो बाल्मीकिमातृच्छय आगतोऽस्मि त्वदन्तिके ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं त्वया पृष्टं ममाऽनघे ।
इतः परं गमिष्यामि शक्रस्य सदनं प्रति ॥८
नमोऽस्तु ते महाभाग देवदूत त्वया मम ।
श्रावितादर्थं विज्ञानात्परां निर्वृतिमागता ॥९
कृतार्था वीतशोकाऽस्ति स्थास्यामि विगतज्वरा ।
इमानीं गच्छ भद्रं ते यथेच्छं शक्रसंन्निधौ ॥१०
ततः सा सुरुचि श्रेष्ठा तमेवाऽर्थं मचिन्तयत् ।
स्थिता सा हिमवत्पृठे समीपे गन्धमादने ॥११
कच्चिदेतच्छतं पुत्रं वसिष्ठस्योपदेशनम् ।
तत्सर्वमवधार्याऽथ यथेच्छसि तथा कुरु ॥१२

स्मृतिर्वान्दृष्टिसत्ता च स्वप्ने वन्ध्यासुतेऽजले ।
मरीचिका यथा तद्वज्ज्ञानात्सारिकी स्थितिः ॥१३
मम नाऽस्ति कृतेनाऽर्थो नात्कुतेनेह कश्चन ।
यथा प्राप्तेन तिष्ठामि ह्यकर्मणिक आग्रहः ॥१४

हे अनघ ! फिर वाल्मीकि जी ने अनुमति लेकर मैं तुम्हें सदुपदेश देने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ और तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे चुका हूँ अब मैं इन्द्र भवन की ओर जा रहा हूँ ।७। अप्सरा ने कहा—हे महाभाग ! हे देवदूत ! तुमको नमस्कार है तुम्हारे द्वारा सुनाये हुए इस शास्त्र को सुनकर मैं भी दुःख शोक-रहित सुखमें विश्रान्ति को पा गई हूँ सभी ताप मुझसे दूर हो गए हैं । अब तुम अपनी इच्छानुसार देवराज के पास जाओ, तुम्हारा कल्याण हो । अग्निवेश्य ने कहा—कि सुरुचि नाम की यह अप्सरा गन्धमादन के निकट हिमालय की पीठ पर बैठकर देवदूत के उपदेशानुसार तत्वार्थ का चिन्तन करने लगी ।६-११। हे पुत्र ! क्या तुमने मुनि वशिष्ठका वह उपदेश सुना? मोक्ष का साधन कर्म है अथवा ज्ञान ? तुम्हारे उस संशय का समूल नाश हो चुका अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार करो ।१२। कारुण्य बोला—हे भगवन् ! विषयों से मेरी स्मृति वाली दृष्टि स्वप्न में दिखाई पड़ने वाले बन्ध्या पुत्रके समान विषय-रहित हो गई है । मरीचिकाके समान मेरी सांसारिक स्थिति हो गई है और मैं सब प्रकार के सन्देहों से शून्य हो चुका हूँ । इस जगत में मेरा कर्म या ज्ञान, किसी से कुछ प्रयोजन नहीं है। अब मैं यथा प्राप्त के अनुकूल व्यवहार करता रहूँगा, क्योंकि कर्मत्याग में ही मेरा क्या आग्रह हैं ? ।१३-१४।

इत्युक्त्वा नाम कारुण्य अग्निवेश्यसुतः कृती ।
प्राप्तकर्मा यथा न्यायं काले-काले ह्युपाहरम् ॥१५
संदेहोऽत्र न कर्तव्यः सुतीक्ष्ण ज्ञानकर्मणि ।
संशयाद्भ्रश्यते स्वार्थात्संशयात्मा विनश्यति ॥१६

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यमनेकार्थैक्यबोधनम् ।
नमस्कृत्य गुरुं प्राह अन्तिकेविनयान्वितः ॥१७
नष्टमज्ञानतत्कार्यं प्राप्तं ज्ञानमणुत्तमम् ।
साक्षिणि स्फुरिताभासे ध्रुवे दीप इव क्रियाः ।१८
सति यस्मिन्प्रवर्त्तन्ते चित्तेहाः स्पन्दमूर्तयः ।
कटकांगदकेयूरनूपुरैरिव काञ्चनम् ॥१९
पयसीव तरंगाली यस्मात्फुरति दृश्यभूः ।
तदेवेदं जगत्सर्वं पूर्णे पूर्णं व्यवस्थितम् ॥२०

अगस्त्य ने कहा—अग्निवेश्य पुत्र कारुण्य ने यह कहकर जब-जब जिस-जिस कर्म की आवश्यकता हुई, वही यथा न्याय करने लगा ।१५। हे सुतीक्ष्ण ! ज्ञान और कर्मके विषय में कुछ सन्देह करना उचित नहीं है, क्योंकि संशय वाला जीव परमार्थरूपी स्वार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। कहा गया है कि संशयात्मा विनाश को प्राप्त होता है ।१६। मुनि अगस्त्य का यह वाक्य सुनकर सुतीक्ष्ण ने विनयपूर्वक नमस्कार करके गुरुजी से निवेदन किया ।१७। सुतीक्ष्ण बोला-हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरा अज्ञान नष्ट होकर श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हो गई है। जैसे रङ्ग-शाला में दीपक के प्रकाश में ही अभिनयादि क्रियायें होती हैं, वैसे ही ब्रह्म के स्वयं ज्योति होने से सब स्पन्दमूर्तियाँ तथा क्रियाएँ होती हैं। जैसे स्वर्ण ही कटक अङ्गद, केयूर और नूपुरादि आभूषणों के रूप में या जल ही तरङ्ग रूप से स्फुरित होता है, वही यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत पूर्ण रूप से व्यवस्थित है ।१८-२०।

यथाप्राप्तोऽनुवर्तामि को लंघयति सद्वचः ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन ज्ञातज्ञेयोऽस्मि संस्थितः ॥२१
कृताऽर्थोहं नमस्तेऽस्तु दण्डवत्पतितो भुवि ।
गुरोरुत्तीर्णता केन शिष्याणामस्ति कर्मणा ॥२२
कायवाङ्मनसा तस्माच्चित्तस्यैरात्मनिवेदनम् ।
गुरोरुत्तीर्णता सैव नाऽन्या केनाऽपि कर्मणा ॥२३

स्वामिस्तव प्रसादेन उत्तीर्णोऽहं भवाम्बुधेः ।
आपूरितजगज्जालं स्थितोऽस्मि गतसंशयः ॥२४
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् ।
श्रुत्वा ह्युदीर्यंति साम्नि तस्नं ब्रह्मात्मने नमः ॥२५
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति ।
द्वन्द्वातीतं गगसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकनित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षि भूतं ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं श्री वसिष्ठं नताः स्मः ॥२६

इसलिए जब जैसा प्राप्त होता है, वैसे व्यवहार का मैं अनुसरण करता हूँ। सदवचनों का उल्लंघन कौन कर सकता है? हे भगवन् ! आपके प्रसाद से ज्ञेय तत्व को जानकर भले प्रकार स्थित हूँ ।२१। हे गुरो ! मैं भूमि में दण्ड के समान गिरकर आपको नमस्कार करता हूँ। गुरु के उपकार से शिष्य किस प्रकार उऋण हो सकते हैं ? उन्हें तो शरीर, वाणी और मन से गुरु के सम्मुख आत्म निवेदन कर देना चाहिए, यही गुरु के उपकार से उऋण होना है, अन्य किसी भी कर्म से उऋण होना सम्भव नहीं है ।२२-२३। हे स्वामिन् ! आपकी कृपासे मैं भव-वारिधि से पार हो गया और संशय-विहीन होकर जगत्-जाल को पूर्णानन्द से व्याप्त करके स्थित हूँ ।२४। जो ब्रह्म अधिकारी जनोंके लिए प्रत्यक्ष रूप से उपदिष्ट हैं, उस रूप वाले ब्रह्मात्मा के लिए नमस्कार है ।२५। परम सुख देने वाले ब्रह्मानन्द रूप अद्वितीय ज्ञान मूर्ति, द्वन्द्वों से शून्य, आकाश के समान स्वच्छ, तत्वमसि आदि वाक्यों के लक्ष्यरूप, एक नित्य विमल, सब बुद्धियों के साक्षी, भाव से अतीत, तीनों गुणों से रहित उन महामुनि वसिष्ठ जी को नमस्कार है ।२६।

॥ योग वासिष्ठ (द्वितीय खण्ड) समाप्त ॥

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ट व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीज मन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से भावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आध्यात्मिक उत्थान के लिए कोई दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इसी कमी को अनुभव करते हुए विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना के सभी परिपत्र निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय बरेली से मंगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके चार अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना-पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष ३३००० साधकों द्वारा १५०० करोड़ मन्त्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप भी सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार रहस्य, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली नामक २५ पैसे मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत

चमनलाल गौतम

विश्व ओंकार परिवार
ख्वाजाकुतुब, वेदनगर
बरेली २४३००३ (उ० प्र०)

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	....	७२)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	...	३६)
३—यजुर्वेद	...	१८)
४—सामवेद	...	१६)
५—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	..	५७)
६—बृहदारण्कोपनिषद	..	१०)
७—छान्दोग्योपनिषद्	..	१०)
८—ईशावास्योपनिषद (भा.टी.)	...	१०)
९—कठोपनिषद् (भा.टी.)	...	१०)
१०—वैशेषिक दर्शन	..	१३)
११—न्याय दर्शन	...	१३)
१२—सांख्य दर्शन	..	१३)
१३—योग दर्शन	...	१२)
१४—वेदान्त दर्शन	..	१४)
१५—मीमांसा दर्शन	...	१६)
१६—मनुस्मृति	..	२४)
१७—योग वासिष्ठ २ खण्ड	...	४०)
१८—ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता (भा.टी.)	....	२३)
२९—अष्टावक्र गीता	...	११)
२०—विचार सागर	...	३०)
२१—विचार चन्द्रोदय	...	७)
२२—पञ्चीकरण	...	१०)
२३- देश साहस्री		१०)
ा प्रभाकर		१३)
ान्दर्य लहरी	.	१२)

प्रकाशक—संस्कृति संस्थान, ।कुतुब, वेदनगर
बरेली-२४३०० ० प्र०)

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	...	१४)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	...	३२)
३—यजुर्वेद	...	५१)
४—सामवेद	—	१४)
५—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	...	४८)
६—उपनिषदों के आध्यात्मिक रहस्य	...	१०)
७—बृहदारण्यकोपनिषद	...	८)
८—छान्दोग्योपनिषद्	..	८)
९—ईशावास्योपनिषद (भा.टी.)	...	८)
१०—कठोपनिषद् (भा.टी.)	...	१८)
११—वशैषिक दर्शन	...	११)
१२—न्याय दर्शन	...	११)
१३—सांख्य दर्शन	...	११)
१४—योग दर्शन	...	११)
१५—वेदान्त दर्शन		११)
१६—मीमांसा दर्शन	..	१५)
१७—मनुस्मृति	...	१[illegible])
१८—योग वासिष्ठ २ खण्ड	...	११)
१९ ज्ञानेश्वरी भगवदगीता (भा.टी.)	...	११)
२०—पञ्चदशी	...	११)
२१—विचार सागर	...	२६)
२२—विचार चंद्रोदय	...	५)
२३—पञ्चीकरण	...	८)५०
२४—उपदेश साहस्री	...	६)५०
२५—वृत्ति प्रभाकर	...	११)
२६ सौन्दर्य लहरी	...	१०)
२७—तत्वानुसंधान	..	१५)

प्रकाशक—संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, वेदनगर,
बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)